

आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। इसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, गाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जावेंगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी का साहित्य भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

चौहत्तरवाँ अध्याय

गाय छीन लेने और बेचने का तथा गोदान के बाद सुवर्ण-दक्षिणा देने का फल

इन्द्र ने कहा—भगवन्, जो मनुष्य जान बूझकर गायें चुराता या बेच डालता है उसे किस प्रकार की गति मिलती है ?

ब्रह्माजी ने कहा—देवराज ! भोजन के लिए, बेचने के लिए अथवा ब्राह्मण को दान करने के लिए गाय छीन लेने का फल सुनो। जो मनुष्य गो-मांस खाता है और जो लालच में पड़कर कसाई को गो-वध करने की आज्ञा देता है उन सबको उतने वर्ष तक नरक में रहना पड़ता है जितने उस गाय के रोएँ होते हैं। ब्राह्मण के यज्ञ में विघ्न डालने से जो पाप होता है वही पाप; गाय बेचने या चुरा लेने से लगता है। जो मनुष्य गाय चुराकर ब्राह्मण को दान कर देता है वह उस दान के कारण जितने दिनों तक स्वर्ग का सुख पाता है उतने ही दिनों तक उसे नरक भोगना पड़ता है। शास्त्रकारों ने गोदान के समय दक्षिणा में सोना देने की आज्ञा दी है, अतएव दक्षिणा में सोना देना ही श्रेष्ठ है। दान और दक्षिणा के विषय में सोने से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। सोना परम पवित्र है। गोदान करने से चौदह पीढ़ियों का और गोदान करके दक्षिणा में सोना देने से अट्ठाईस पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। सोने का दान करने से दाता का कुल पवित्र हो जाता है। १

भीष्म कहते हैं—धर्मराज ! ब्रह्माजी से यह वृत्तान्त सुनकर इन्द्र ने दशरथ से, दशरथ ने अपने पुत्र राम से, राम ने अपने प्रिय भाई लक्ष्मण से और लक्ष्मण ने वनवासी ऋषियों से यह कथा कही थी। उसके बाद धार्मिक राजाओं ने ऋषियों से यह कथा सुनी है। मैंने अपने गुरु से यह वृत्तान्त सुना है। ब्रह्माजी ने कहा है कि जो ब्राह्मण ब्राह्मणों की सभा में, यज्ञ में, गोदान के समय अथवा किसी से बातचीत करते हुए गोदान का माहात्म्य कहेगा वह देवताओं के साथ अक्षय लोक में निवास करेगा। १

पचहत्तरवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से सत्य और दम आदि की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपके मुँह से धर्म का वर्णन सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब मुझे जो सन्देह है उसे दूर कीजिए। व्रत, नियम, जितेन्द्रियता, अध्ययन, अध्यापन, वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, दान, प्रतिग्रह, दान न लेना, अपने कर्म करना, शूरता, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, दया और माता पिता आचार्य तथा गुरु की सेवा, इन सबका क्या फल है ? विस्तार के साथ इनका वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—बेटा, विधि के अनुसार व्रत आरम्भ करके उसे विधिपूर्वक समाप्त करनेवाले को अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। नियम और यज्ञ का फल तो तुम स्वयं भोग रहे

हो, इसलिए उसका फल प्रत्यक्ष ही है। विशेष रूप से अध्ययन करने से इस लोक में और अन्त को ब्रह्मलोक में परम सुख मिलता है। जितेन्द्रिय मनुष्य सर्वत्र परम सुख भोगता है। उसे कोई क्लेश नहीं उठाना पड़ता। वह चाहे जहाँ जा सकता है। उसके साथ कोई शत्रुता नहीं करता। वह जो चाहता है वही उसे प्राप्त हो जाता है। तपस्या, पराक्रम, दान और विविध यज्ञ करने से मनुष्यों को जिस तरह स्वर्ग का सुख मिलता है उसी तरह का सुख केवल जितेन्द्रियता के प्रभाव से मिल सकता है। जितेन्द्रियता दान की अपेक्षा श्रेष्ठ है। दानी मनुष्य को कभी-कभी क्रोध आ जाता है; किन्तु जितेन्द्रिय मनुष्य कभी क्रोध नहीं करता। जो मनुष्य क्रोध न करके दान करता है उसे सनातन लोक प्राप्त होते हैं; किन्तु जो क्रोध करके दान करता है उसका वह दान निष्फल हो जाता है। महर्षि लोग जितेन्द्रियता की ही बदौलत अदृश्य लोकों को जा सकते हैं।

जो मनुष्य नियमानुसार होम आदि करता हुआ शिष्यों को पढ़ाता है वह ब्रह्मलोक में अक्षय सुख पाता है। जो मनुष्य आचार्य से वेद पढ़कर शिष्यों को पढ़ाता है और अपने आचार्य के कामों की प्रशंसा करता है वह निस्सन्देह स्वर्ग में सम्मानित होता है। जो क्षत्रिय यज्ञ, दान और अध्ययन करते हैं तथा युद्धभूमि में दूसरों की रक्षा करते हैं उन्हें भी स्वर्ग का सुख मिलता है। जो वैश्य अपने धर्म का पालन करता हुआ दान और जो शूद्र अपने कर्म में स्थित रहकर श्रेष्ठ वर्णों की सेवा करता है वह भी स्वर्ग का सुख पाने का अधिकारी है। शूर अनेक प्रकार के हैं। जो मनुष्य जिन कामों को जी-जान से करता है वह उन्हीं कामों में शूर है। जो यज्ञ करता रहता है वह यज्ञशूर, जो हमेशा सत्य का पालन करता है वह सत्यशूर और जो प्राण जाने तक युद्ध से नहीं भागता वह युद्धशूर कहलाता है। इसी प्रकार दानशूर, सांख्य-शूर, योगशूर, वनवासशूर, गृहवासशूर, त्यागशूर, आत्मोन्नति-विधानशूर, क्षमाशूर, सरलता-शूर, नियमशूर, वेदाध्ययनशूर, गुरुसेवाशूर, पितृसेवाशूर, मातृसेवाशूर, भिक्षाशूर, अतिथि-सत्कारशूर आदि अनेक प्रकार के सत्कार्यशूर इस लोक में मौजूद हैं। वे सब अपने-अपने कर्म के फल से श्रेष्ठ लोकों को जाते हैं। सब वेद पढ़ लेने और सब तीर्थों में स्नान करने से सत्य बोलने के समान फल होता है या नहीं, इसमें सन्देह है। हज़ार अश्वमेध यज्ञ और सत्य को तौलने से यज्ञ की अपेक्षा सत्य का पलड़ा भारी होगा। सत्य के प्रभाव से सूर्य तपते हैं। सत्य के ही प्रभाव से आग जलती और हवा चलती है। सत्य में ही सम्पूर्ण जगत् स्थित है। देवता, ब्राह्मण और पितृगण सत्य के ही प्रभाव से प्रसन्न होते हैं। सत्य परम धर्म है। सत्यवादी मनुष्य आसानी से स्वर्ग का सुख पा सकता है, अतएव सत्य की उपेक्षा कदापि न करे। महात्मा मुनि लोग सत्यव्रत, सत्यपराक्रमी और सत्यप्रतिज्ञ होते हैं, इसी कारण सत्य सबसे श्रेष्ठ है। हे धर्मराज, यह मैंने दमगुण और सत्य का फल विशेष रूप से कहा। अब ब्रह्मचर्य का फल सुनो।

जो जन्म भर ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसे कुछ दुर्लभ नहीं है। सत्यवादी जितेन्द्रिय करोड़ों ऊर्ध्वरेता महर्षि ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ब्रह्मलोक में निवास करते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं और यदि ब्राह्मण ब्रह्मचर्य रक्खे तो क्या कहना है। ब्राह्मण अग्नि-स्वरूप हैं। तपस्वी ब्राह्मणों को अग्नि प्रत्यक्ष हो जाता है। ब्रह्मचारी के कुपित होने पर इन्द्र भी डर जाते हैं, महर्षियों के ब्रह्मचर्य-पालन करने का यह प्रत्यक्ष फल है। जो मनुष्य माता, पिता, गुरु और आचार्य की सेवा करता है और कभी उनसे द्वेष नहीं करता वह स्वर्गलोक को जाता है। गुरु की सेवा करने से कभी नरक नहीं देखना पड़ता। ४१

छिहत्तरवाँ अध्याय

गोदान की विधि

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! जिसके द्वारा मनुष्य सनातन लोकों को जाता है उस गोदान की विधि सुनने की मेरी इच्छा है।

भीष्म कहते हैं—बेटा, गोदान से बढ़कर कोई दान नहीं है। न्याय के अनुसार प्राप्त की हुई गाय का दान करने से कुल का उद्धार हो जाता है। प्राचीन समय में सज्जनों के लिए जो विधि प्रचलित थी वही अब भी है। वही गोदान की विधि बतलाता हूँ। प्राचीन समय में महाराज मान्धाता ने बृहस्पति से गोदान की विधि पूछी थी। बृहस्पति ने कहा—महाराज, ब्राह्मण को गोदान करने का निश्चय करके एक दिन पहले लाल रङ्ग की गायें मँगावे और उन गायों को 'समङ्गे, बहुले' कहकर पुकारे। रात में उन गायों के पास जाकर उनसे यों कहे—'बैल मेरा पिता है, गाय मेरी माता है, वे मुझे इस लोक में और स्वर्गलोक में सुख दें।' उस रात को गायों के साथ रहकर, मन्त्र पढ़कर, गोदान करने का सङ्कल्प करे। उस रात में गायों के बैठने पर बैठे और उनके सोने पर सोवे। इस प्रकार, छाया के समान, गायों का सहचारी होने पर सब पापों से छुटकारा मिल जाता है। फिर प्रातःकाल सूर्योदय होने पर बछड़ों समेत गायों का दान करे। इस नियम के अनुसार गोदान करने से निस्सन्देह स्वर्गलोक प्राप्त होता है। गोदान कर चुकने पर इस प्रकार प्रार्थना करे—उत्साहवती, प्रज्ञाशालिनी, यज्ञीय हवि की क्षेत्रस्वरूपा, संसार की आश्रयभूता, ऐश्वर्य देनेवाली, वंश की वृद्धि करनेवाली, प्रजापति सूर्य और चन्द्रमा के अंश से उत्पन्न गायें मेरे पाप का नाश करें, मुझे स्वर्ग दें और माता के समान मेरे शरीर की रक्षा करें। मैं जिन वस्तुओं की इच्छा करूँ वे सब उनकी कृपा से मुझे प्राप्त हों। हे गायो, तुम्हारे पञ्चगव्य का सेवन करने से क्षय ११
रोग का नाश होता और मोक्षपद मिलता है। तुम पवित्र नदी के समान कल्याण करती हो। तुम परम पवित्र हो। अतएव मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे अभीष्ट गति दो। ऐसी प्रार्थना करके फिर कहे—हे गायो, मैं तुम्हारे रूप में मिल गया हूँ अतएव तुम्हारा दान करके मैंने आत्मदान किया है।

दाता के यों कहने पर ग्रहीता कहे—हे गायो, अब तुम पर दाता का ममत्व नहीं है; अब तुम मेरे अधिकार में हो अतएव हम दोनों को तुम अभीष्ट भोग प्रदान करो।

जो मनुष्य गाय का मूल्य, वस्त्र अथवा सोना देता है वह भी गोदाता है। इस प्रकार का गोदानी दान करते समय ग्रहीता से 'यह बड़े थनोंवाली भाग्यवती वैष्णवी गाय लीजिए" कहकर दान कर दे। ऐसा गोदान करने से बीस हज़ार चवालीस वर्ष तक स्वर्ग का सुख मिलता है। जिस समय ग्रहीता दान लेकर अपने घर की ओर आठ क़दम चलता है उसी समय इस प्रकार के गोदाता को दान का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य गोदान करता है वह इस लोक में सच्चरित्र, जो गाय का मूल्य देता है वह निर्भय और जो गाय के रूप में वस्त्र-सोना आदि देता है वह सुखी होता है। परलोक में इन तीनों प्रकार के दाताओं को विष्णुलोक, चन्द्रमा के समान प्रकाश और असाधारण ऐश्वर्य प्राप्त होता है। गोदान करने के बाद तीन रात तक गोव्रत करे। गायों के साथ एक रात निवास करे और गोपाष्टमी से तीन रात तक गोबर खावे तथा गोमूत्र और गाय का दूध पिये। एक बैल का दान करने से ब्रह्मचर्य और दो बैलों का दान करने से वेद प्राप्त होता है। जो यज्ञ-शील मनुष्य विधि के अनुसार गोदान करता है वह निस्सन्देह श्रेष्ठ लोकों को जाता है। जो गोदान की विधि नहीं जानता उसे श्रेष्ठ लोक मिलने की सम्भावना नहीं है। जो मनुष्य दूध देती हुई एक गाय का भी दान करता है उसे पृथिवी के सम्पूर्ण पदार्थों के दान करने का फल मिलता है। जो मनुष्य शिष्य नहीं है, जो व्रत नहीं करता, जिसे श्रद्धा नहीं है और जिसकी बुद्धि कुटिल है उसे इस धर्म का उपदेश न दे। यह धर्म गोपनीय है। इसका प्रचार सर्वत्र करना उचित नहीं। संसार में श्रद्धाहीन, क्षुद्रस्वभाव, राक्षसरूप अनेक मनुष्य हैं और अल्प पुण्यवाले नास्तिकों की संख्या भी कम नहीं है। यदि उनको इस धर्म का उपदेश दिया जाता है तो अनिष्ट होता है।

हे धर्मराज, जिन राजाओं ने बृहस्पति के बतलाये हुए इस धर्म को सुनकर गोदान करके शुभ लोक प्राप्त किये हैं उन पुण्यात्माओं के नाम सुनो। महाराज उशीनर, विश्वगश्व, नृग, भगीरथ, यौवनाश्व मान्धाता, मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, नैषध, सोमक, पुरूरवा, भरत, दशरथ के पुत्र राम और दिलीप आदि कितने ही राजाओं ने विधिपूर्वक गोदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया है। महाराज मान्धाता सदा यज्ञ, दान, तपस्या और गोदान करते थे। तुम भी कौरव-राज्य ग्रहण करके, बृहस्पति की बतलाई विधि के अनुसार, प्रसन्नता से ब्राह्मणों को गोदान करो।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, महात्मा भीष्म के इस प्रकार उपदेश देने पर धर्मराज गोदान करने की प्रतिज्ञा और मान्धाता के किये हुए धर्म का अनुसरण करके गोबर के साथ जौ के कण खाकर, बैल के समान, पृथिवी पर सोने लगे। वे उस दिन से कभी बैलों के छकड़े में सवार नहीं हुए; घोड़े पर या घोड़ों के रथ पर ही सवार होते थे।

सतहत्तरवाँ अध्याय

गोदान के फल का और कपिला गाय की उत्पत्ति का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इसके बाद बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर ने नम्रता के साथ भीष्म से फिर पूछा--पितामह, आपका उपदेश अमृत के समान है। उसे सुनने से मेरी सुनने की इच्छा बढ़ती ही जाती है, अतएव आप फिर गोदान का फल विशेष रूप से कहिए।

महात्मा भीष्म ने कहा—बेटा! ब्राह्मण को सुलक्षणा जवान गाय, कपड़ा ओढ़ाकर, दान करने से पाप का लेश नहीं रह जाता। गोदाता को कभी अन्धकारमय नरक में नहीं जाना पड़ता। किन्तु जो मनुष्य–बिना पानी की बावली की तरह—दूध न देती हुई लूली-लँगड़ी, बूढ़ी गाय ब्राह्मण को देकर उसे व्यर्थ गो-सेवा करने का क्लेश देता है उसे निस्सन्देह घोर नरक में गिरना पड़ता है। जो मनुष्य दुबली, रोगिन, मरकही गाय का अथवा जिस गाय के दाम नहीं दिये गये हैं उसका दान करता है उसके अन्य शुभ कर्मों द्वारा उपार्जित स्वर्ग आदि लोक निष्फल हो जाते हैं। अतएव हृष्ट-पुष्ट जवान सीधी सुगन्धयुक्त गायों का दान करे। जैसे सब नदियों में गङ्गा श्रेष्ठ हैं वैसे ही गायों में कपिला श्रेष्ठ है।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, कपिला गाय के दान की अधिक प्रशंसा क्यों की जाती है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैंने बड़े-बूढ़ों से कपिला की उत्पत्ति के विषय में जो सुना है वह बतलाता हूँ। प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने दक्ष को प्रजा की सृष्टि करने की आज्ञा दी थी। दक्ष प्रजापति ने, प्रजा के हित के लिए, सबसे पहले उसकी जीविका का उपाय निर्धारित किया। जिस तरह देवता अमृत पीकर जीवित रहते हैं उसी तरह प्रजा दक्ष की बतलाई जीविका द्वारा प्राण धारण करती है। स्थावर प्राणियों में जङ्गम, जङ्गम प्राणियों में मनुष्य तथा मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं; क्योंकि यज्ञ आदि उन्हीं के द्वारा सम्पन्न होते हैं। यज्ञ से अमृत उत्पन्न होता है। यह अमृत गायों में स्थित है इसे पीकर देवता बहुत सन्तुष्ट होते हैं। जिस तरह भूखा बालक अपने माँ-बाप के पास दौड़ा जाता है उसी तरह प्रजा उत्पन्न होकर, जीविका के लिए, जीविका-दाता दक्ष के पास गई। प्रजापति दक्ष ने प्रजा को जीविका के लिए अपने शरण में आई देख-कर स्वयं अमृत पी लिया। अमृत पीकर प्रजापति दक्ष के सन्तुष्ट होने पर उनके मुँह से सुगन्ध निकलने लगी। उस सुगन्ध से सुरभि की उत्पत्ति हुई। सुरभि ने, प्रजा की माता के समान, कपिला गायें उत्पन्न कर दीं। उनका रङ्ग सोने का सा था; वे प्रजा की जीविका का एक-मात्र अवलम्बन थीं। जैसे नदियों की तरङ्गों से फेन उत्पन्न होता है वैसे ही अमृतवर्ण की कपिला गायों के दूध से फेन उठने लगा। एक बार उन गायों के दूध का फेन, उनके बछड़ों के मुँह से गिरकर, महादेवजी के सिर पर पड़ा। इससे क्रुद्ध होकर वे अपने सिर के नेत्र से कपिला गायों की ओर देखकर उन्हें भस्म करने लगे। जिस तरह सूर्य की किरणें बादलों को अनेक रङ्ग

फे कर देती हैं उसी तरह महादेवजी की क्रोधपूर्ण दृष्टि से कपिला गायों के रङ्ग अनेक प्रकार के हो गये। जिन गायों ने महादेवजी की क्रोध-दृष्टि बचाकर चन्द्रमा की शरण ली थी उन्हीं का स्वरूप पहले का सा रह गया।

इसके बाद प्रजापति दक्ष ने, शङ्करजी को कुपित देखकर, कहा—देवदेव, आपके सिर पर बछड़ों के मुँह से दूध का फेन गिरने से आप अमृत-रस से सिँच गये हैं। गायों के मुँह से गिरी हुई वस्तु जूठी नहीं समझी जाती। जैसे चन्द्रमा अमृत का संग्रह करके फिर उसे बरसा देता है वैसे ही कपिला गायें अमृत से उत्पन्न दूध देती हैं। वायु, अग्नि, सोना और समुद्र जिस तरह कभी दूषित नहीं होते उसी तरह अमृत देवताओं के पीने से और गायों का दूध बछड़ों द्वारा पिये जाने पर जूठा नहीं समझा जाता। कपिला गायें दूध और घी द्वारा संसार को पुष्ट करती हैं। उनका अमृतमय ऐश्वर्य पाने की इच्छा सबको रहती है। इसके पश्चात् प्रजापति दक्ष ने महादेवजी को कुछ गायें और एक बैल दिया। शङ्करजी ने प्रसन्न होकर उस बैल को अपना वाहन बना लिया। इसी से महादेवजी का नाम वृषभध्वज प्रसिद्ध हुआ। उसी समय देवताओं ने आकर उनको पशुओं का अधिपति बना दिया, इससे उनका नाम पशुपति हुआ।

हे धर्मराज, इसी से कपिला गाय का दान अन्य गायों के दान की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता है। गायें संसार की श्रेष्ठ वस्तु हैं; वे संसार के लिए जीवन-स्वरूप हैं। वे अमृतमय, अमृत-सम्भूत, परम पवित्र और कामप्रद हैं; शङ्कर उनके अधिष्ठाता हैं। अतएव गोदान करना सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओं का दान करने के समान है। अपने कल्याण की इच्छा से जो मनुष्य सदाचारी होकर गायों की उत्पत्ति का यह वृत्तान्त पढ़ता है वह सब पापों से छूट जाता है; उसे पशु, पुत्र, धन-सम्पत्ति सब कुछ प्राप्त होता है। शान्तिकर्म और तर्पण करने तथा बूढ़े और बालक को तृप्त करने से जो फल होता है तथा हव्य, कव्य, विविध पेय पदार्थ और वस्त्र का दान करने का जो फल है वह सब गोदान करने से ही प्राप्त हो सकता है।

अठहत्तरवाँ अध्याय

गो-माहात्म्य वर्णन में वसिष्ठ और सौदास का संवाद

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज! प्राचीन समय में, इक्ष्वाकु-वंश में, सौदास नाम के एक राजा थे। उन्होंने एक बार अपने कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठ को प्रणाम करके पूछा—भगवन्, तीनों लोकों में पवित्र कौन है? किस मन्त्र का जप करने से मनुष्य श्रेष्ठ गति पा सकता है?

तब गोमन्त्र के जानकार परमपवित्र महर्षि वसिष्ठ ने गायों को प्रणाम करके कहा—महाराज, गायों के शरीर से गुग्गुल की गन्ध और अनेक-प्रकार की सुगन्ध निकलती है। गायें सब प्राणियों की स्थिति, मङ्गल, भूत, भविष्य, सनातन पुष्टि और लक्ष्मी का कारण कहलाती हैं।

अतएव उनको जो कुछ दिया जाता है वह निष्फल नहीं जाता। पण्डितों ने गायों को मनुष्यों
के लिए अन्न की उत्पत्ति का, देवताओं के लिए होम करने की वस्तुओं की उत्पत्ति का तथा
स्वाहाकार, वषट्कार, यज्ञ और यज्ञ के फल का कारण बतलाया है। गायें प्रातःकाल और
सायंकाल होम के समय महर्षियों को हवि देती हैं। अतएव जो मनुष्य गोदान करता है वह
सब पापों से मुक्त हो जाता है। जिसके हज़ार गायें हों वह सौ गोदान करने से जो फल १०
पाता है वही फल सौ गायों का अधिपति दस गोदान और दस गायों का मालिक एक गोदान
करने से पा सकता है। जो सौ गायों के होने पर अग्न्याधान नहीं करता, जो हज़ार गायों का
मालिक होने पर यज्ञ नहीं करता और जो धनवान् होने पर भी कृपण होता है, उन तीनों का
सम्मान न करें। दुहने के लिए काँसे का बर्तन और वस्त्र ओढ़ाकर कपिला गाय तथा उसके
बछड़े का दान करने से दोनों लोकों में विजय होती है। जो मनुष्य ब्राह्मण को सैकड़ों बैलों के
झुण्ड का सरदार बड़े सींगोंवाला बलवान् अलङ्कृत साँड़ देता है उसे प्रत्येक जन्म में अतुल ऐश्वर्य
प्राप्त होता है। सोने के समय और जागने पर गाय का नाम ले, प्रातःकाल और सायंकाल
गायों को प्रणाम करे, गोमूत्र और गोबर को देखकर घृणा न करे तथा गोमांस खाने की इच्छा न
करे। जो मनुष्य इन नियमों का पालन करता है उसका कल्याण होता है। मनुष्य प्रत्येक
समय, विशेषकर दुःस्वप्न देखने पर, गाय का स्मरण करे। गोबर मिले हुए जल में स्नान करे और
सूखे गोबर पर बैठे। सूखे गोबर पर थूकना या मल-मूत्र त्यागना उचित नहीं। जो मनुष्य गीले
चमड़े पर बैठकर घी खाता हुआ पश्चिम दिशा की ओर देखता है; अग्नि में आहुति देता है; घी
द्वारा स्वस्ति-वाचन, घी का दान और घी का भोजन करता है उसकी गायों की वृद्धि होती है। जो २१
मनुष्य 'गोमाँ अग्ने विमाँ' इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित करके सब रत्नों से युक्त तिलधेनु का दान
करता है उसे कभी पुण्य-पाप का शोक-सन्ताप नहीं करना पड़ता। दिन, रात, निर्भय स्थान,
भयङ्कर स्थान, प्रत्येक समय सब स्थानों में सब मनुष्यों को यह बात कहनी चाहिए कि जैसे सब
नदियाँ समुद्र में गिरती हैं वैसे ही सोने से मढ़े हुए सींगोंवाली दुग्धवती सुरभी और सौरभेयी
गायें मुझे प्राप्त हों। मैं सदा गायों के दर्शन करूँ और गायें हमेशा मुझे देखें, मैं गायों के
आश्रित रहूँ और गायें मेरे आश्रय में रहें, जहाँ गायें रहें वहीं मैं रहूँ। महाराज, महाभय
उपस्थित होने पर मनुष्य इन्हीं वाक्यों का उच्चारण करके भय से छूट जाता है। २५

उन्नासीवाँ अध्याय

गायों के वरदान का और विशेष गोदान के विशेष फल का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—महाराज, गायों ने प्राचीन समय में श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए एक लाख वर्ष तक घोर तपस्या की थी। तपस्या करने का उनका यह अभिप्राय था कि हम सब प्रकार की

दक्षिणा में श्रेष्ठ हों; हमको कोई दोष न लगे; मनुष्य जल में हमारा गोबर मिलाकर स्नान करने से पवित्र हों; देवता और मनुष्य आदि सब प्राणी पवित्र होने के लिए हमारा गोबर काम में लावें और हमारा दान करनेवाले को हमारा लोक प्राप्त हो।

इस इच्छा से गायों के लाख वर्ष घोर तपस्या करने पर ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनको वरदान दिया कि तुम्हारी सब कामनाएँ सफल हों। तुम इस लोक में रहकर प्राणियों का निस्तार करो। ब्रह्माजी से वरदान पाकर गायें उस समय से सब लोकों को पवित्र कर रही हैं और सब मनुष्यों का आश्रय, परम पवित्र तथा सब प्राणियों की शिरोधार्य हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल गायों को प्रणाम करता है उसका भला होता है। ब्राह्मण को वस्त्र और कपिल वर्ण के बछड़े समेत दूध देती हुई कपिला गाय का दान जो मनुष्य करता है वह ब्रह्मलोक, जो वस्त्र और लाल रङ्ग के बछड़े समेत दूध देती हुई लाल रङ्ग की गाय का दान करता है वह सूर्यलोक, जो वस्त्र और चितकबरे बछड़े समेत दूध देती हुई चितकबरी गाय देता है वह चन्द्रलोक, जो वस्त्र और सफ़ेद रङ्ग के बछड़े समेत दूध देती हुई सफ़ेद रङ्ग की गाय देता है वह इन्द्रलोक, जो वस्त्र और काले रङ्ग के बछड़े समेत दूध देती हुई काली गाय का दान करता है वह अग्निलोक और जो वस्त्र और मटमैले रङ्ग के बछड़े समेत दूध देती हुई मटमैले रङ्ग की (धूम्रवर्ण) गाय का दान करता है वह धर्मराज के लोक में जाकर सबका सम्मान-पात्र होता है। जो मनुष्य ब्राह्मण को वस्त्र और बछड़े समेत दूध देती हुई पानी के फेने के समान गाय और दुहने के लिए काँसे का बर्तन देता है वह वरुणलोक को जाता है। जो मनुष्य काँसे का बर्तन, वस्त्र, बछड़ा और धूल के समान धूसर वर्ण की गाय ब्राह्मण को देता है वह वायुलोक में सम्मानित होता है। काँसे के बर्तन और वस्त्र समेत पीली आँखोंवाली सुनहरी गाय और बछड़ा देने से कुबेरलोक की प्राप्ति होती है। काँसे का बर्तन, वस्त्र, बछड़ा और धूम्र वर्ण की गाय का दान करने से पितृलोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य ब्राह्मण को गले का आभूषण, अनेक अलङ्कार, बछड़ा और मोटी-ताज़ी गाय देता है उसे विश्वेदेवाओं का लोक प्राप्त होता है। जो वस्त्र, सफ़ेद रङ्ग का बछड़ा और दूध देती हुई सफ़ेद गाय देता है वह वसु-लोक को जाने का अधिकारी होता है। जो काँसे का बर्तन, वस्त्र और सफ़ेद कम्बल के रङ्ग की गाय, बछड़े समेत, दान करता है वह साध्यगण के लोक को जाकर परम सुख भोगता है। जो मनुष्य सब रत्नों से अलङ्कृत करके चौड़ी पीठवाले बैल का दान करता है वह मरुद्गण का लोक, जो सब रत्नों से अलङ्कृत नीले रङ्ग का जवान बैल ब्राह्मण को देता है वह गन्धर्वों और अप्सराओं का लोक और जो मनुष्य सब रत्नों से अलङ्कृत, गले में आभूषण पहनाकर, बैल का दान करता है वह प्रजापति का लोक प्राप्त करने का अधिकारी होता है। जो पुरुष गोदान करता रहता है वह सूर्य के समान महातेजस्वी होकर, दिव्य विमान पर बैठकर, बादलों को हटाता हुआ स्वर्गलोक को जाता है। वहाँ सुन्दरी अप्सराएँ हाव-भाव द्वारा उसे हमेशा प्रसन्न

अग्निलोक, भेड़ का दान करने से वरुणलोक, घोड़े का दान करने से सूर्यलोक, हाथी का दान करने से नागलोक, भैंसे का दान करने से असुरलोक, मुर्गे और सुअर का दान करने से राक्षस-तुल्य लोक और भूमिदान करने से यज्ञ का फल, गोलोक, वरुणलोक और चन्द्रलोक प्राप्त होते हैं। किन्तु यह भेड़-बकरे आदि का दान सुवर्ण के दान से निकृष्ट है। प्राचीन समय में सम्पूर्ण जगत् को मथने से जो तेज उत्पन्न हुआ था वही सुवर्ण है। सुवर्ण सब रत्नों से श्रेष्ठ है। इसी से देव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, मनुष्य और पिशाच इसे बड़े यत्न से रखते हैं। सोने के मुकुट और विजायठ आदि आभूषण पहने जाते हैं। अतएव भूमि, गाय और ५०
अन्य रत्नों की अपेक्षा सोना श्रेष्ठ है तथा सुवर्ण-दान भूमिदान और गोदान से बढ़कर है। सोने का दान अक्षय और परम पवित्र है। तुम ब्राह्मणों को सुवर्ण-दान करो। दान-दक्षिणा में सोना सबसे श्रेष्ठ बतलाया गया है। जो सुवर्ण-दान करता है वह सब कुछ दान कर चुका। अग्नि सब देवताओं का स्वरूप है। सुवर्ण उसी अग्नि से उत्पन्न हुआ है, इसलिए सुवर्ण-दान करना देवताओं का दान करने के समान है।

हे परशुराम! मैंने प्राचीन ग्रन्थ में प्रजापति का वाक्य पढ़ा है कि पार्वती के साथ विवाह
करके भगवान् शङ्कर, पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से, हिमालय पर्वत पर रहने लगे। यह देखकर ६१
देवता घबरा गये। वे सब के सब शिव-पार्वती के पास जाकर, उनको प्रणाम करके, बोले—भगवन्, आप तपस्वी हैं और देवी पार्वती भी तपस्विनी हैं। इसलिए यह संयोग आपको प्रसन्न करनेवाला और पार्वती को भी आनन्द देनेवाला है। आप दोनों का तेज अमोघ है। आप जो पुत्र उत्पन्न करेंगे वह महापराक्रमी होगा; वह अपने बल-वीर्य के प्रभाव से तीनों लोकों में कुछ बाक़ी न रक्खेगा। अतएव हम लोग नम्रता के साथ आपसे यह वर माँगते हैं कि आप, प्रजा के हित के लिए, अपना तेज कम कर दीजिए। आप और देवी पार्वती तीनों लोकों से श्रेष्ठ हैं, इसलिए आप दोनों का संयोग सब लोकों के सन्ताप का कारण होगा। और, आपके तेज से उत्पन्न पुत्र निस्सन्देह देवताओं को परास्त कर देगा। आपके तेज को पृथिवी, आकाश और स्वर्ग कोई नहीं धारण कर सकता। उसके प्रभाव से सम्पूर्ण जगत् भस्म हो जायगा। अत-एव हम सब पर प्रसन्न होकर आप ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें आपके वीर्य और पार्वती के गर्भ से पुत्र न उत्पन्न हो। आप धैर्य के साथ अपने प्रज्वलित तेज को रोक लीजिए। ७०

उनकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् शङ्कर ने अपना वीर्य ऊपर चढ़ा लिया। उसी समय से उनका नाम ऊर्ध्वरेता प्रसिद्ध हुआ। महादेवजी के ऊर्ध्वरेता हो जाने पर देवी पार्वती ने, अपने गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति में देवताओं द्वारा यह विघ्न देख, कुपित होकर कहा—देवताओ, तुमने मेरे पति को सन्तान उत्पन्न करने से रोक दिया इससे मैं शाप देती हूँ कि तुम लोग कभी सन्तान न उत्पन्न कर सकोगे।

हे भार्गव, जिस समय देवताओं ने महादेवजी के पास जाकर यह प्रार्थना की थी उस समय अग्नि उनके साथ नहीं थे इसलिए वे पार्वती के शाप से बच गये। किन्तु और देवता लोग, पार्वती के शाप के कारण, पुत्र नहीं उत्पन्न कर सके।

महादेवजी ने जब अपना वीर्य ऊपर को चढ़ाया था तब उसका कुछ अंश, स्खलित होकर, अग्नि में गिर पड़ा था। अग्नि में पड़ने से उसका तेज और भी बढ़ गया। कुछ दिनों बाद इन्द्र आदि देवता और साध्यगण तारकासुर के बल-वीर्य से बहुत पीड़ित हुए। देवताओं के घर, विमान और नगर तथा महर्षियों के सब आश्रम असुरों ने छीन लिये।

पचासी अध्याय

सुवर्ण की उत्पत्ति का वर्णन

देवता और ऋषि पीड़ित होकर दीन भाव से ब्रह्माजी की शरण में आकर कहने लगे—भगवन्, तारकासुर आपके वरदान से दर्पित होकर हम सबको सता रहा है। उसके भय से हम लोग बहुत व्याकुल हैं, आप शीघ्र उसका विनाश करके हमारी रक्षा कीजिए। इस समय आपके सिवा हम लोगों की दूसरी गति नहीं है।

ब्रह्माजी ने कहा—देवताओ, मेरे लिए सब प्राणी बराबर हैं। मैं अन्याय नहीं कर सकता। मैंने तारकासुर के विनाश का उपाय पहले ही कर दिया है। तुम शीघ्र ही उस दुरात्मा का नाश करोगे। वेद और धर्म का कभी लोप नहीं हो सकता। तुम धैर्य रक्खो।

देवताओं ने कहा कि भगवन्! दुरात्मा तारकासुर आपसे—देवताओं, असुरों और राक्षसों से अवध्य होने का—वर पाकर गर्वित हो गया है। उसका वध करना हमारी शक्ति से बाहर है। इसके सिवा हम लोगों ने महादेवजी से सन्तान न उत्पन्न करने के लिए प्रार्थना की थी, इस कारण देवी पार्वती ने कुपित होकर हम सबको निःसन्तान रहने का शाप दे दिया है। हम लोग निश्चय नहीं कर सकते कि तारकासुर का वध किस प्रकार होगा।

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवताओ, पार्वती ने जिस समय तुम लोगों को शाप दिया था उस समय अग्निदेव वहाँ नहीं थे। अतएव अग्निदेव असुरों का वध करने के लिए पुत्र पैदा करेंगे। वह पुत्र देवताओं, दानवों, राक्षसों, गन्धर्वों, सर्पों, मनुष्यों और पक्षियों को अतिक्रम करके अमोघ अस्त्रों द्वारा तुमको भयभीत करनेवाले दुष्ट तारक को और अन्यान्य असुरों को मारेगा। भगवान् शङ्कर के वीर्य का कुछ अंश अग्नि में गिर पड़ा है। अग्निदेव, असुरों का वध करने के लिए, अपने समान उस वीर्य को गङ्गा में फेंक दें तो तुमको निर्भय करनेवाला कुमार उत्पन्न हो। अतएव तुम महातेजस्वी अग्नि को ढूँढ़ो। तारकासुर के वध का यही उपाय है। पार्वती ने जिस समय तुम लोगों को शाप दिया था उस समय अग्निदेव वहाँ नहीं थे, इसी से उनको यह शाप नहीं

जलती हुई लकड़ियों से जो रस निकला था वह मास, पक्ष, दिन-रात और मुहूर्तरूप हो गया। उसके बाद अग्नि से रुधिर, रुधिर से रौद्र और सुवर्णवर्ण मैत्र देवता, धुएँ से वसुगण, शिखा से बारह आदित्य और अङ्गार से ग्रह-नक्षत्र आदि की उत्पत्ति हुई। इसी से महर्षि लोग अग्नि को सर्वदेवमय कहते हैं। प्रजापति ब्रह्मा ने अग्नि को परब्रह्म कहा है।

भृगु आदि की उत्पत्ति हो जाने पर वारुणी-मूर्तिधारी भगवान् शङ्कर ने देवताओं से कहा—हे देवताओ! मैंने यह यज्ञ किया है, मैं ही इस यज्ञ का अधीश्वर हूँ। अतएव सबसे पहले जो तीन पुत्र अग्नि से उत्पन्न हुए हैं वे मेरे हैं। मैंने यज्ञ किया है, इसलिए यज्ञ से जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सब मेरा है।

अग्नि ने कहा—हे देवताओ, ये तीन पुत्र मेरे अङ्ग से उत्पन्न हुए हैं। अतएव ये मेरे हैं। वरुण-रूपी महादेव का इन पर कोई अधिकार नहीं।

अब ब्रह्माजी ने कहा—ये तीनों पुत्र मेरे वीर्य से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए मेरे हैं। शास्त्र के अनुसार बीज का बोनेवाला ही उसका फल भोगने का अधिकारी है। १२०

इस प्रकार का विवाद होने पर देवताओं ने हाथ जोड़कर प्रणाम करके ब्रह्माजी से कहा—भगवन्, आप ही तो साक्षात् सृष्टिकर्ता हैं। हम सब आपसे उत्पन्न हुए हैं। अतएव आप प्रसन्न होकर अग्नि और वरुण-रूपी महादेव को एक-एक पुत्र देकर इनका मनोरथ पूर्ण कीजिए। यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने सूर्य के समान तेजस्वी भृगु महादेव को तथा अङ्गिरा अग्नि को देकर कवि को स्वयं पुत्र-रूप से ग्रहण किया। तब प्रजापति महात्मा भृगु वारुण, श्रीमान् अङ्गिरा आग्नेय और महायशस्वी कवि ब्राह्म कहलाये। उसके बाद महात्मा भृगु ने च्यवन, वज्रशीर्ष, शुचि, और्व, शुक्र, विभु और सवन ये सात पुत्र अपने समान पुण्यवान् उत्पन्न किये। तुम उन्हीं भृगु के वंश में उत्पन्न हुए हो, इसी से भार्गव कहलाते हो। भगवान् अङ्गिरा से बृहस्पति, उतथ्य, २८
पयस्य, शान्ति, घोर, विरूप, संवर्त और सुधन्वा तथा भगवान् कवि से कवि, काव्य, धृष्णु, शुक्राचार्य, भृगु, विरजा, काशी और उग्र उत्पन्न हुए। फिर इन महात्माओं से वंश चले। इसी से भृगु आदि महात्माओं के ये सब पुत्र प्रजापति कहलाये और इन्हीं के वंश से सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण हो गया। वरुण-मूर्तिधारी महादेवजी के यज्ञ से महात्मा भृगु, अङ्गिरा और कवि उत्पन्न हुए हैं, इसी से उनके वंशजों का साधारण नाम वारुण है। किन्तु भृगु के वंश में जिनका जन्म हुआ है वे भार्गव, अङ्गिरा के वंश में जिनका जन्म हुआ है वे आङ्गिरस् और कवि के वंश में जिनका जन्म हुआ है वे काव्य कहलाते हैं।

हे परशुराम, देवताओं ने ब्रह्माजी के पास जाकर कहा था—भगवन्! आप प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिए कि महर्षि भृगु आदि के वंश में उत्पन्न ये सब महात्मा प्रजापति हों, वंश-प्रवर्तक हों, तपस्या और ब्रह्मचर्य का पालन करके देवताओं के पक्ष में रहें और शान्तमूर्ति होकर आपका

१४१ तेज बढ़ाते हुए सब लोकों का उद्धार करें। ये महात्मा और हम सब आपसे ही उत्पन्न हैं।
इसलिए हम सब आपस में मेल रक्खें। अपने-अपने उत्कर्ष के लिए एक-दूसरे को नीचा दिखाने
का उद्योग न करें। ये सब महात्मा प्रत्येक युग में इसी प्रकार प्रजा की सृष्टि करें। देवताओं की यह
प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनकी बात मान ली। तब देवता कृतकार्य होकर अपने-अपने
स्थान को चले गये। हे परशुराम! वरुण-रूपधारी महादेव के यज्ञ में यह अद्भुत काम हुआ था।

अग्नि ही प्रजापति ब्रह्मा और पशुपति रुद्र-स्वरूप हैं। सुवर्ण इन्हीं अग्निदेव का पुत्र है।
वेद और शास्त्र के अनुसार, अग्नि के अभाव में, सुवर्ण ही अग्निस्वरूप गिना जाता है। कुशों पर
सोना रखकर अग्नि के उद्देश्य से आहुति दी जाती है। वल्मीक के बिल में, बकरे के दाहिने
कान में, सम भूमि और तीर्थ के जल में तथा ब्राह्मण के हाथ में आहुति देने से अग्निदेव प्रसन्न
५० होते हैं। अग्नि सर्वदेवमय हैं और सनातन ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए हैं। अग्नि से सुवर्ण की
उत्पत्ति हुई है। इसलिए जो मनुष्य सुवर्ण-दान करता है वह मानों सब देवताओं का दान कर
चुका। इस दान के पुण्य से उसे श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं और धनाधिपति कुबेर स्वर्ग में उसका
अभिषेक करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल मन्त्र पढ़कर सुवर्ण-दान करता है उसे कभी दुःस्वप्न नहीं
देख पड़ते। जो मनुष्य सूर्योदय होते ही सोने का दान करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते
हैं। जो दोपहर में सुवर्ण-दान करता है उसके भावी पाप नष्ट होते हैं और जो सन्ध्या के समय
सुवर्ण-दान करता है वह ब्रह्मा, वायु, अग्नि और चन्द्रमा के लोक को जाता, इन्द्रलोक में सम्मा-
नित होता और इस लोक में यशस्वी होता है। उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। संसार में
उसके समान कोई नहीं होता और वह सब लोकों को जा सकता है। सुवर्ण का दान करने से
जो श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं वे अक्षय होते हैं। जो मनुष्य सूर्योदय होने पर आग जलाकर,
१६० किसी व्रत के उपलक्ष्य में, सोने का दान करता है उसकी सब कामनाएँ सफल होती हैं। सुवर्ण
अग्नि-स्वरूप है। सुवर्ण-दान करने से सुख की वृद्धि होती, अभीष्ट गुण प्राप्त होते और मन शुद्ध
हो जाता है। हे परशुराम, यह मैंने सुवर्ण और कार्त्तिकेय की उत्पत्ति का वृत्तान्त तुमसे कहा।
इस प्रकार महात्मा कार्त्तिकेय जन्म लेकर, क्रमशः बड़े होकर, देवासुर-संग्राम में देवताओं द्वारा
सेनापति बनाये गये। उन्होंने इन्द्र की आज्ञा से महापराक्रमी तारक और अन्य दानवों का
विनाश करके संसार का हित किया। हे परशुराम, मैंने जो सुवर्ण-दान का फल बतलाया वह
तुमने सुना। अब तुम पवित्र होकर ब्राह्मणों को सुवर्ण-दान करो। महर्षि वसिष्ठ के यों कहने
पर परशुरामजी ने ब्राह्मणों को सुवर्ण-दान करके अपने पाप का नाश कर दिया।

हे युधिष्ठिर, यह मैंने सुवर्ण की उत्पत्ति का और सुवर्ण-दान का फल तुमसे कहा। अब
१६८ तुम ब्राह्मणों को सुवर्ण-दान करो। सुवर्ण का दान करने से सब पापों से छुटकारा पा जाओगे।

छियासी अध्याय

कार्त्तिकेय की उत्पत्ति और तारकासुर के वध का वृत्तान्त

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने सुवर्ण-दान का फल और उसकी उत्पत्ति का ब्योरा
विशेष रूप से बतलाया। आप पहले कह चुके हैं कि तारकासुर को देवता आदि कोई भी नहीं
मार सकता तो फिर वह महासुर किस प्रकार मारा गया?

भीष्म ने कहा—बेटा, जब गङ्गाजी ने गर्भ का त्याग कर दिया तब देवताओं और ऋषियों
ने, सङ्कट देखकर, उस गर्भ की रक्षा के लिए छः कृत्तिकाओं को भेजा। उनके सिवा देवलोक
में दूसरा कोई अग्नि के तेज को नहीं धारण कर सकता था। कृत्तिकाओं ने देवताओं की आज्ञा
से वहाँ जाकर अग्नि के वीर्य को पी लिया। अब वे गर्भ को धारण करके उसका पालन करने
लगीं। इससे अग्निदेव उन पर बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद गर्भ बढ़ने पर उनके शरीर में तेज
व्याप्त हो गया। कृत्तिकाओं को किसी तरह चैन न पड़ता था। समय आने पर उन सबने एक
साथ प्रसव किया। अब वे सब पुत्र एक में मिल गये। फिर पृथिवी ने उस पुत्र को ग्रहण १०
किया। वह अग्नि के समान तेजस्वी और दिव्य-स्वरूप कुमार शरवन में बढ़ने लगा। प्रातः-
काल के सूर्य के सदृश तेजस्वी उस बालक को कृत्तिकाओं ने, स्नेह से दूध पिलाकर, पाला-पोसा।
उस बालक को देखने के लिए सब दिशाएँ, दिक्पाल, रुद्रदेव, ब्रह्मा, विष्णु, यम, पूषा, अर्यमा,
भग, अंश, मित्र, साध्यगण, इन्द्र, वसुगण, अश्विनीकुमार, जल, वायु, आकाश, चन्द्रमा, नक्षत्र,
ग्रह और सूर्य आदि सब देवता वहाँ आने लगे। ऋषियों ने स्तुति की और गन्धर्वों ने गाना
गाया। देवताओं और ऋषियों ने ब्राह्मणप्रिय, स्थूलशरीर, द्वादश बाहुओं और द्वादश नेत्रोंवाले,
शरगुल्मशयान, षडानन को देखकर प्रसन्नता के साथ तारकासुर के वध का विश्वास कर लिया।

इसके बाद सब देवता कार्त्तिकेय को प्रिय वस्तुएँ और खिलौने तथा पक्षी आदि देने
लगे। राक्षसों ने उन्हें वराह और महिष, गरुड़ ने सुन्दर मोर, अरुण ने अग्नि के सदृश मुर्ग़, २१
चन्द्रमा ने भेड़, सूर्य ने मनोरम प्रभा, गोमाता सुरभी ने एक लाख गायें, अग्नि ने गुणवान् बकरा,
इला ने बहुत से फल-फूल, सुधन्वा ने छकड़े और सुन्दर रथ, वरुण ने अपने हाथी तथा इन्द्र ने
सिंह, बाघ, हाथी, अन्यान्य पक्षी और अनेक प्रकार के छत्र दिये। राक्षस और असुरगण उनके
अनुगामी हो गये। कार्त्तिकेय को बढ़ते देखकर तारकासुर अनेक उपायों द्वारा उनको मार
डालने की चेष्टा करने लगा। किन्तु वह कृतकार्य न हो सका।

अब देवताओं ने तारकासुर के उपद्रव का सब वृत्तान्त महाबाहु कार्त्तिकेय से कहकर
उनको सेनापति बनाया। उन्होंने सेनापति होकर, अमोघ शक्ति का प्रहार करके, तारकासुर को
मार डाला और इन्द्र को फिर स्वर्ग का राजा बना दिया। महादेवजी के प्रिय सुवर्ण-स्वरूप ३०
भगवान् कार्त्तिकेय इस प्रकार देवताओं के सेनापति हुए थे। अग्नि के तेज से सुवर्ण उत्पन्न हुआ

है, वह कार्त्तिकेय का भाई है; इसी कारण वह मङ्गल वस्तु और श्रेष्ठ रत्न कहलाता है। हे धर्मराज, महर्षि वसिष्ठ ने परशुराम को यह उपाख्यान सुनाया था और परशुराम सुवर्ण-दान करके, सब
३५ पापों से मुक्त होकर, स्वर्ग के अधिकारी हुए हैं। अतएव तुम भी सुवर्ण का दान करो।

सत्तासी अध्याय

प्रतिपदा आदि तिथियों में श्राद्ध करने का फल

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मैंने आपके मुँह से चारों वर्णों का धर्म सुना। अब विस्तार के साथ श्राद्ध की विधि सुनाइए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! मैं यश बढ़ानेवाली, धन्य, वंश की वृद्धि करनेवाली पवित्र श्राद्ध-विधि का वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पिशाच और किन्नर आदि सबको हमेशा पितरों की पूजा करनी चाहिए। महात्माओं ने पहले पितरों की पूजा करके फिर देवताओं की पूजा की है। अतएव मनुष्य पितरों की पूजा किया करे। पण्डितों ने प्रत्येक अमावास्या को पितरों के लिए पिण्डदान करने को श्राद्ध की सामान्य विधि बतलाई है; किन्तु सब तिथियों में श्राद्ध करने से पितर सन्तुष्ट होते हैं। जिस तिथि में श्राद्ध करने से जो फल मिलता है वह सुनो। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को श्राद्ध करने से बहुत से पुत्र पैदा करनेवाली परम सुन्दरी स्त्रियाँ मिलती हैं; द्वितीया को श्राद्ध करने से कन्याएँ पैदा होती हैं; तृतीया को श्राद्ध करने से अनेक प्रकार के घोड़े मिलते हैं; चतुर्थी को श्राद्ध करने से
१० बहुत से छोटे पशु प्राप्त होते हैं; पञ्चमी को श्राद्ध करने से अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं; षष्ठी को
श्राद्ध करने से सौन्दर्य बढ़ता है; सप्तमी को श्राद्ध करने से खेती में सफलता मिलती है; अष्टमी को श्राद्ध करने से व्यवसाय में उन्नति होती है; नवमी को श्राद्ध करने से घोड़े आदि मिलते हैं; दशमी को श्राद्ध करने से बहुत सी गायें मिलती हैं; एकादशी को श्राद्ध करने से पुत्र और कपड़े बर्तन आदि प्राप्त होते हैं; द्वादशी को श्राद्ध करने से विचित्र सुवर्ण और चाँदी आदि मिलता है तथा त्रयोदशी को श्राद्ध करने से अपने सजातीयों में श्रेष्ठता प्राप्त होती है। जो मनुष्य चतुर्दशी में श्राद्ध करता है उसे शीघ्र संग्राम में जाना पड़ता है और उसके घर के सब मनुष्य जवानी में ही मर जाते हैं। अमावास्या को श्राद्ध करने से सब कामनाएँ सफल होती हैं। शास्त्र में चतुर्दशी को छोड़कर कृष्णपक्ष की दशमी से लेकर अमावास्या तक सब तिथियाँ श्रेष्ठ हैं। शुक्लपक्ष की अपेक्षा कृष्णपक्ष जिस प्रकार श्राद्ध के लिए श्रेष्ठ है उसी प्रकार पूर्वाह्न की अपेक्षा अपराह्न का समय
१९ श्राद्ध के लिए श्रेष्ठ माना जाता है।

अट्ठासी अध्याय

श्राद्ध में तिल और मांस आदि देने का फल

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, पितरों को दान की हुई कौन सी वस्तु अक्षय होती है? किस वस्तु के देने से पितर अधिक दिनों तक और किस वस्तु के देने से अनन्त काल तक तृप्त रहते हैं?

भीष्म ने कहा—बेटा, श्राद्ध में जो-जो वस्तुएँ पितरों को देनी चाहिएँ और जिनके देने से जिस प्रकार का फल मिलता है उनका वर्णन सुनो। तिल, चावल, जौ, उड़द, जल, कन्द-मूल और फल द्वारा श्राद्ध करने से पितर एक महीने तक तृप्त रहते हैं। मनु का वचन है कि अधिक तिलों द्वारा श्राद्ध करने से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। श्राद्ध के समय जो भोजन दिया जाता है उसमें तिल सबसे श्रेष्ठ हैं। श्राद्ध में मछली देने से दो महीना, भेड़ का मांस देने से तीन महीना, ख़रगोश का मांस देने से चार महीना, बकरे का मांस देने से पाँच महीना, सुअर का मांस देने से छः महीना, पक्षी का मांस देने से सात महीना, पृषत मृग का मांस देने से आठ महीना, रुरु मृग का मांस देने से नव महीना, गवय (नीलगाय) का मांस देने से दस महीना, भैंसे का मांस देने से ग्यारह महीना और गो-दुग्ध (गव्य ?) देने से एक वर्ष तक पितर तृप्त रहते हैं। घी और खीर देने से गव्य के समान पितरों को तृप्ति होती है, अतएव श्राद्ध में खीर और घी अवश्य देना चाहिए। श्राद्ध में वाध्रीणस (वह बारह साल का सफ़ेद बकरा जिसके लम्बे कान पानी पीते समय पानी में डूबें उस) का मांस देने से पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं। गैंड़े का मांस, कालशाक (चूक ?) और लाल रङ्ग के बकरे का मांस देने से पितर अनन्त
काल तक तृप्त रहते हैं। मैंने सनत्कुमार के मुँह से सुना है कि पितर कहते हैं कि यदि हमारे १०
वंश में उत्पन्न कोई पुरुष दक्षिणायन में, मघा नक्षत्र और त्रयोदशी तिथि में घी और खीर देता है अथवा गजच्छाया योग में लाल रङ्ग के बकरे के मांस से श्राद्ध करता है और श्राद्ध में पंखे से हवा करता है तो हमको अक्षय तृप्ति होती है। बहुत से पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा करनी चाहिए, क्योंकि उनमें से कोई तो अक्षय वट से शोभित गया को जायगा। अमावास्या को श्राद्ध में जल,
मूल, फल, मांस और अन्न—शहद मिलाकर—देने से पितर अनन्त काल तक तृप्त रहते हैं। १५

नवासी अध्याय

अश्विनी आदि नक्षत्रों में श्राद्ध करने का फल

भीष्म ने कहा—बेटा, यम ने राजा शशबिन्दु को जो भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में काम्य श्राद्ध का उपदेश दिया था उसका मैं वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य कृत्तिका नक्षत्र में श्राद्ध करता है वह शोक-सन्तापहीन और पुत्रवान् होकर यज्ञ करने को समर्थ होता है। रोहिणी में सन्तान की इच्छा से और मृगशिरा में तेज की कामना से श्राद्ध करना चाहिए। आर्द्रा नक्षत्र में श्राद्ध

करने से क्रूर कर्म करने में मनुष्यों की प्रवृत्ति होती है और पुनर्वसु नक्षत्र में श्राद्ध करने से धन की इच्छा बढ़ती है। पुष्य नक्षत्र में श्राद्ध करने से शरीर पुष्ट होता है। आश्लेषा नक्षत्र में श्राद्ध करने से शान्त स्वभाव के पुत्र होते हैं; मघा नक्षत्र में श्राद्ध करने से सजातीय लोगों में प्रधानता मिलती है; पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से सौभाग्य-वृद्धि होती है। उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से सन्तान-प्राप्ति होती है; हस्त नक्षत्र में श्राद्ध करने से अभीष्ट फल मिलता है; चित्रा नक्षत्र में श्राद्ध करने से रूपवान् पुत्र होते हैं; स्वाती नक्षत्र में श्राद्ध करने से वाणिज्य में उन्नति होती है; विशाखा नक्षत्र में श्राद्ध करने से बहुत से पुत्र होते हैं; अनुराधा नक्षत्र में श्राद्ध करने से राज्य मिलता है; ज्येष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करने से आधिपत्य मिलता है; मूल नक्षत्र मे श्राद्ध करने से आरोग्य-वृद्धि होती है; पूर्वाषाढ़ नक्षत्र मे श्राद्ध करने से यश बढ़ता है; उत्तराषाढ़ नक्षत्र में श्राद्ध करने से शोक का नाश होता है; अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध करने से वैद्यक-विद्या आती है; श्रवण नक्षत्र में श्राद्ध करने से परलोक में सद्गति मिलती है; धनिष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करने से राज्य मिलता है; शतभिषा नक्षत्र में श्राद्ध करने से आयुर्वेद-शास्त्र में पारदर्शिता प्राप्त होती है; पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में श्राद्ध करने से भेड़-बकरा आदि मिलते हैं; उत्तरभाद्रपद में श्राद्ध करने से असंख्य गायें बढ़ती हैं; रेवती नक्षत्र में श्राद्ध करने से काँसा-पीतल आदि धातुएँ मिलती हैं; अश्विनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से घोड़े और भरणी नक्षत्र में श्राद्ध करने से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है।

हे धर्मराज! राजा शशबिन्दु ने, यम से इस प्रकार श्राद्ध के नियम सुनकर, विधिपूर्वक श्राद्ध करके पृथिवी का विजय और शासन किया था।

नव्वे अध्याय

श्राद्ध में निमन्त्रण देने के योग्य और अयोग्य ब्राह्मणों के लक्षण

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मुझे बतलाइए कि श्राद्ध में किस प्रकार के ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिए।

भीष्म ने कहा—बेटा! दान-धर्म के जानकार क्षत्रिय, दान देने के समय, चाहे ब्राह्मणों की परीक्षा न भी करें; किन्तु देवकार्य और पितृकार्य के समय उनकी परीक्षा अवश्य कर लें। मनुष्य दैव तेज से सम्पन्न होकर देवताओं की आराधना करते हैं; किन्तु श्राद्ध में ब्राह्मण के द्वारा श्राद्धीय देवताओं और पितरों की तृप्ति होती है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध के समय ब्राह्मणों के कुल, शील, वय, रूप और विद्या की परीक्षा कर ले। बहुत से ब्राह्मण पंक्तिदूषक और बहुत से पंक्तिपावन होते हैं। मैं पहले पंक्तिदूषक ब्राह्मणों का वर्णन करता हूँ। ठग, ब्रह्महत्यारा, यक्ष्मा का रोगी, पशुपालक, अपढ़, गाँव का सेवक (चौकीदार ?), सूदखोर, गवैया, सब कुछ बेचनेवाला, घर फूँकनेवाला, विष देनेवाला, जारज मनुष्य का अन्न खानेवाला, सोम बेचनेवाला,

सामुद्रिक का जानकार, राजदूत, तेल पेरनेवाला (या बेचनेवाला ?), कुटिल, पिता से झगड़नेवाला, पुंश्चली का पति, निन्दनीय, चोर, शिल्पजीवी, बहुरूपिया, चुग़लख़ोर, मित्रद्रोही, परस्त्रीगामी, शूद्रों को पढ़ानेवाला, शस्त्रजीवी, शिकारी, जिसे कुत्ते ने काटा हो, बड़े भाई का विवाह होने से पहले अपना विवाह करनेवाला, चर्मरोगी, गुरुपत्नी हरनेवाला, हल जोतनेवाला, पुजारी और ज्योतिषी, ये ब्राह्मण पंक्तिदूषक कहे जाते हैं। ब्रह्मवादी महात्माओं ११
का कहना है कि इस प्रकार के ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन कराना राक्षसों का पेट भरना है। जो मनुष्य श्राद्ध में भोजन करके उस दिन वेद पढ़ता है या शूद्रा स्त्री के साथ भोग करता है उसके पितर उस दिन से लेकर एक महीने तक उसके मैले में पड़े रहते हैं। सोम बेचनेवाले ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन देने से वह भोजन विष्ठा के समान है, चिकित्सा करनेवाले ब्राह्मण को भोजन कराने से पीब और रुधिर के समान है, पुजारी को देने से निष्फल और सूदख़ोर ब्राह्मण को देने से पितरों को नहीं प्राप्त होता। वाणिज्य करनेवाले को देने से दोनों लोकों में निष्फल और पौनर्भव को देने से, राख में गिरे हुए घी की तरह, निरर्थक हो जाता है। जो मनुष्य भूल से अधर्मी दुश्चरित्र ब्राह्मणों को हव्य-कव्य देता है उसे परलोक में उस दान का फल नहीं मिलता और जो मनुष्य जान-बूझकर इस प्रकार के ब्राह्मणों को हव्य-कव्य देता है उसके पितरों को निस्सन्देह विष्ठा खानी पड़ती है। जो ब्राह्मण शूद्रों को उपदेश देता है उस अविवेकी को भी पंक्तिदूषक कहते हैं। जिस पंक्ति में काना ब्राह्मण बैठता है उस पंक्ति के साठ ब्राह्मण, जिस पंक्ति में नपुंसक ब्राह्मण बैठता है उस पंक्ति के सौ ब्राह्मण और जिस पंक्ति में सफ़ेद कोढ़वाला ब्राह्मण बैठकर जितने ब्राह्मणों को देखता है वे सब दूषित हो जाते हैं। सिर पर कपड़ा रखकर, दक्षिण को मुँह करके या खड़ाऊँ पहनकर श्राद्ध में भोजन करना आसुरी भोजन है। ईर्ष्यावान् और श्रद्धाहीन होकर श्राद्ध की जिन वस्तुओं का दान किया जाता है वे वस्तुएँ बलि (असुर)
को मिलती हैं। पंक्तिदूषक ब्राह्मणों और कुत्तों के देख लेने से श्राद्ध निष्फल हो जाता है, २०
अतएव खुली जगह में श्राद्ध न करे। तिल बिखेरकर श्राद्ध करना चाहिए। जो मनुष्य श्राद्ध के समय क्रोध करता है अथवा तिल का दान किये बिना श्राद्ध करता है उसके श्राद्ध को राक्षस और पिशाच नष्ट कर डालते हैं। श्राद्ध में भोजन कर रहे जितने ब्राह्मणों को पंक्तिदूषक ब्राह्मण देख लेता है, उतने ब्राह्मणों का भोजन कराना निष्फल हो जाता है।

हे धर्मराज, अब पङ्क्तिपावन ब्राह्मणों का वर्णन सुनो। वेदव्रती ब्राह्मणों में जो सदाचारी हैं उन्हीं को पङ्क्तिपावन कहते हैं। त्रिणाचिकेत मन्त्र का अध्ययन करनेवाले, गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियों के उपासक, त्रिसुपर्ण मन्त्र के ज्ञाता, वेद के छहों अङ्गों के विद्वान्, वेदाध्यायी के वंश में उत्पन्न, सामवेद के विद्वान् ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए; साम का गान करनेवाले, पिता-माता के वशवर्त्ती, अथर्ववेद के विद्वान्, ब्रह्मचारी, व्रतपरायण, सत्यवादी, धर्म-

शील, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण को ही श्राद्ध का निमन्त्रण देना चाहिए; जिसके दस पीढ़ी तक के पूर्वज
श्रोत्रिय रहे हों, जो ऋतुकाल के विहित समय में धर्मपत्नी से भोग करता हो और जिसने तीर्थों
में स्नान आदि किया हो उसी ब्राह्मण को श्राद्ध का निमन्त्रण देना चाहिए; जिसने विधिपूर्वक यज्ञ
करके अवभृथ स्नान द्वारा अपने को पवित्र किया हो तथा जो क्रोधहीन, गम्भीर, क्षमाशील, जिते-
३१ न्द्रिय और सब प्राणियों का हितैषी हो उसी ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए। ऐसे
ब्राह्मणों को जो वस्तु दान की जाती है उसका अक्षय फल होता है। संन्यासी, मोक्षधर्म-परायण
और महायोगी पुरुष भी पङ्क्तिपावन हैं। जो ब्राह्मणों को इतिहास सुनाते हैं, जो भाष्य और
व्याकरण के विद्वान् हैं, जिन्होंने पुराण और धर्मशास्त्र पढ़ा हो, जो धर्मशास्त्र के अनुसार चलते
हों, जो नियमित समय तक गुरुकुल में रह चुके हों और जो वेद के पढ़ने तथा वेद के प्रवचन में
निपुण हों इस प्रकार के सत्यवादी ब्राह्मण जितनी दूर तक पङ्क्ति को देखते हैं उतनी पङ्क्ति पवित्र
हो जाती है। इसी से इनका नाम पाङ्क्तपावन है। जिसके वंश में परम्परा से वेदाध्यापक या
ब्रह्मज्ञानी होते आये हों वह अकेला ही साढ़े तीन कोस तक पवित्र कर सकता है। जो ब्राह्मण
ऋत्विक् और उपाध्याय नहीं है वह यदि, ऋत्विक्गण की आज्ञा के बिना, श्राद्ध में श्रेष्ठ आसन
ग्रहण करता है तो उस पंक्ति में बैठे हुए सब मनुष्यों का पाप उसी को लगता है। वेदवित्,
निर्दोष, पुण्यवान् ही पङ्क्तिपावन हैं। अतएव श्राद्ध में विशेष रूप से परीक्षा करके धर्मनिष्ठ कुलीन
४० ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे। जो मनुष्य श्राद्ध में मित्रों को बुलाकर भोजन कराता है उसके श्राद्ध
में न तो देवता और पितर प्रसन्न होते हैं और न उसे स्वर्ग मिलता है। जो मनुष्य श्राद्ध का
भोजन देकर मनुष्यों के साथ मित्रता जोड़ता है उसे स्वर्गलोक नहीं मिलता और जिस तरह कैदी
मनुष्य विषय-भोग नहीं कर सकता उसी तरह वह भी कर्मों का फल नहीं पा सकता। इसी से
बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध में मित्रों का सत्कार नहीं करते। मित्रों को, सन्तुष्ट करने के लिए, धन दे
दे। श्राद्ध में उनके प्रति मित्रभाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं। उसी ब्राह्मण को श्राद्ध में
भोजन कराना चाहिए जो न शत्रु हो न मित्र। ऊसर में बीज बोने से जिस प्रकार न तो वह
बीज उगता है और न उसका कोई फल मिलता है उसी तरह अयोग्य मनुष्यों को श्राद्ध में भोजन
कराने से कहीं उसका फल नहीं मिलता। जो ब्राह्मण अध्ययनशील नहीं हैं वे फूस की आग की
तरह तेजहीन हैं, उनको श्राद्ध में भोजन कराना राख में घी डालना है। श्राद्धीय भोजन का परस्पर
लेन-देन, पिशाच को दिये हुए दान की तरह, निष्फल है। उससे देवताओं और पितरों को तृप्ति
नहीं होती। श्राद्धीय भोजन का लेन-देन करनेवाले मनुष्य, जिसका बछड़ा मर गया है उस गाय
की तरह, दुखी होकर इसी लोक में भ्रमते हैं। जैसे नचैये और गवैये को दिया हुआ दान निर-
र्थक हो जाता है वैसे ही नीच ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन कराने से कोई फल नहीं होता। अपात्र
ब्राह्मण को दी हुई श्राद्धीय वस्तुएँ क्या दाता और क्या ग्रहीता किसी को तृप्त नहीं कर सकतीं,

बल्कि दाता के पितरों को स्वर्ग से भ्रष्ट कर देती हैं। जो मनुष्य ऋषियों के बतलाये हुए आच-
रण करता है तथा सर्वधर्मज्ञ और शास्त्र में विश्वास रखनेवाला है वही यथार्थ ब्राह्मण है। महर्षि-
गण स्वाध्याय-निरत, ज्ञाननिष्ठ, तपस्वी और कर्मनिष्ठ होते हैं। ज्ञाननिष्ठ महर्षियों को श्राद्ध में ५०
भोजन कराना चाहिए। जो ब्राह्मणों की निन्दा नहीं करता वही यथार्थ मनुष्य है। ब्राह्मणों
की निन्दा करनेवाले बड़े अधम हैं, उनको श्राद्ध में भोजन कराना उचित नहीं। मैंने वानप्रस्थी
ऋषियों के मुँह से सुना है कि ब्राह्मणों की निन्दा करने से तीन पीढ़ियाँ नरक में गिरती हैं। ब्राह्मणों
के परोक्ष में ही उनकी परीक्षा करनी चाहिए। मन्त्रवित् ब्राह्मण प्रिय हो या अप्रिय, निरपेक्ष भाव
से उसे श्राद्ध में भोजन कराने से हज़ारों ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल मिलता है। ५४

इक्यानवे अध्याय

श्राद्ध में वर्जित अन्न और शाक आदि बतलाते हुए भीष्म का अत्रि
और निमि का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, किस समय किस महर्षि द्वारा श्राद्ध प्रचलित हुआ है?
श्राद्ध में कौन-कौन से फल-मूल और धान्य निषिद्ध हैं?

भीष्म कहते हैं—बेटा, जिस समय जिसने जिस प्रकार श्राद्ध का प्रचलन किया है
उसका इतिहास सुनो। प्राचीन समय में ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि के वंश में दत्तात्रेय नाम के एक
महर्षि का जन्म हुआ था। दत्तात्रेय के पुत्र महातपस्वी निमि हुए। निमि के पुत्र का नाम
श्रीमान् था। इन्होंने हज़ार वर्ष तक घोर तपस्या करके शरीर का त्याग कर दिया। महर्षि
निमि ने, शोक से अधीर होने पर भी, शास्त्र के अनुसार अशौच-निवारण की क्रियाएँ कीं।
फिर उन्होंने चतुर्दशी के दिन सब सामग्री इकट्ठा की और दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शोक को
शान्त कर, श्राद्ध करने का विचार करके, सावधानी से पुत्र के प्रिय फल, मूल और अन्यान्य
शास्त्रोक्त श्रेष्ठ पदार्थ एकत्र किये। इसके बाद पूज्य सात ब्राह्मणों को बुलाकर उनकी प्रदक्षिणा १०
करके उनको कुशासन पर बैठाया और उन्हें अलोना श्यामाक (साँवाँ) भोजन कराया। भोजन
कराने के बाद अपने पुत्र श्रीमान् के नाम और गोत्र का उच्चारण करके उन्होंने कुशों के ऊपर
पिण्डदान किया। इस प्रकार श्राद्ध करने के बाद महर्षि निमि पछताने लगे कि मैंने यह क्या कर
डाला है। इसे तो पहले किसी महर्षि ने किया ही न था। ब्राह्मण लोग मेरे इस अपराध से
कुपित होकर मुझे शाप दे देंगे। महर्षि निमि ने इस प्रकार सोचकर अपने वंशकर्ता अत्रि का
स्मरण किया। स्मरण करते ही महर्षि अत्रि वहाँ आ गये। उन्होंने पुत्र-शोक से व्यथित निमि
को आश्वासन देकर कहा—बेटा, तुमने जो पितृयज्ञ किया है उससे क्यों डरते हो? ब्रह्माजी
स्वयं इसके प्रवर्तक हैं। उनके सिवा और कोई श्राद्ध की विधि नहीं जानता। ब्रह्माजी की २०

बनाई हुई श्रेष्ठ श्राद्ध-विधि बतलाता हूँ। सन्देह छोड़कर उसी विधि के अनुसार श्राद्ध करो। पहले मन्त्र पढ़कर अग्नौकरण क्रिया करके अग्नि, सोम और वरुणदेव को उनका भाग देना चाहिए। पितरों के साथ जो विश्वेदेवगण रहते हैं उनका भाग भी दे दे। इन सबके भागों की कल्पना ब्रह्माजी ने स्वयं की है। श्राद्ध करते समय श्राद्ध की आधारभूता पृथिवी की स्तुति वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया देवी के रूप में करनी चाहिए। श्राद्ध के लिए जल लाते समय, वरुणदेव की स्तुति करके, अग्नि और सोमदेव की पूजा करे। ब्रह्माजी ने ऊष्मप नाम के जिन पितृदेवताओं के भाग की कल्पना की है उन्हीं पितृदेवताओं की श्राद्ध में पूजा करने से श्राद्धकर्ता के पिता-पितामह आदि पूर्वज नरक से मुक्त हो जाते हैं। अग्निष्वात्त आदि सात पितरों का उल्लेख ब्रह्माजी ने किया है। श्राद्ध में भाग पाने योग्य जिन विश्वेदेवगण का उल्लेख ब्रह्माजी ने किया है उनके
२९ नाम ये हैं—बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत्, पावन, पार्ष्णिक्षेम, समूह, दिव्यसानु, विवस्वान्, वीर्यवान्, ह्रीमान्, कीर्तिमान्, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयङ्कर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान्, शैलाभ, परमक्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज, वज्री, वरी, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्य, सावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद, विश्वायु, दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शङ्कर, भव, ईश, कर्ता, कृति, दक्ष, भुवन, दिव्यकर्मकृत्, गणित, पञ्चवीर्य, आदित्य, रश्मिवान्, सप्तकृत, विश्वकृत, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर। ये मैंने विश्वेदेवगण के नाम बताये। इन नामों का काल भी नहीं जानता।

श्राद्ध में ये वस्तुएँ निषिद्ध हैं—कोदों, चावल के कण, हींग, पियाज, लहसुन, सहिजन, कचनार, विष में बुझाये गये शस्त्र से मारे हुए पशु का मांस, पेठा, लौकी, पालतू सुअर का मांस, बिना धोया हुआ मांस, काला ज़ीरा, शीतपाकी (शाक), बाँस आदि के अंकुर, सिंघाड़ा,
४० सब प्रकार के नमक और जामुन। छींक या आँसू से दूषित हुई वस्तु श्राद्ध में न देनी चाहिए। श्राद्ध और यज्ञ में सुदर्शन का शाक देने से पितर और देवता तृप्त नहीं होते। श्राद्ध के समय चण्डाल, श्वपाक, रँगे कपड़े पहननेवाला, कोढ़ी, पतित और उसका सम्बन्धी, ब्रह्महत्यारा और सङ्करवर्ण ब्राह्मण यदि वहाँ खड़ा हो तो उसे हटा देना चाहिए। इस प्रकार निमि को उप-
४५ देश देकर महर्षि अत्रि ब्रह्मलोक को चले गये।

बानवे अध्याय

श्राद्ध की विधि

भीष्म ने कहा—धर्मराज! सबसे पहले महर्षि निमि के श्राद्ध करने पर धर्मात्मा व्रतधारी महर्षियों ने, उसी दृष्टान्त के अनुसार, विधिपूर्वक पितरों का श्राद्ध और तीर्थ के जल से तर्पण करना आरम्भ किया। फिर धीरे-धीरे चारों वर्णों के मनुष्य देवताओं और पितरों के

लिए अन्नदान करने लगे। इस प्रकार लगातार श्राद्ध में भोजन करते-करते देवताओं और पितरों को अजीर्ण हो गया। तब उन्होंने चन्द्रमा के पास जाकर कहा—भगवन्, श्राद्ध में भोजन करने से हमको अजीर्ण हो गया है। आप कोई उपाय बतलाइए। चन्द्रमा ने उनसे कहा—यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो ब्रह्माजी के पास जाइए। वे आपका कष्ट दूर कर देंगे।

यह उपदेश सुनकर देवता और पितर सुमेरु पर्वत पर स्थित ब्रह्माजी के पास जाकर कहने लगे—भगवन्, श्राद्ध में लगातार भोजन करते रहने से हम लोगों को अजीर्ण हो गया है, अतएव आप प्रसन्न होकर हमारी रक्षा का उपाय कीजिए। ब्रह्माजी ने कहा—हे महानुभावो, ये जो अग्निदेव मेरे पास बैठे हैं यही तुम्हारा कल्याण करेंगे।

अब महातेजस्वी अग्नि ने देवताओं और पितरों से कहा—आप मेरे साथ श्राद्ध में भोजन
करने चला कीजिए, इसी से आपका अजीर्ण दूर हो जायगा। तब देवता और पितर अग्नि १०
को साथ लेकर श्राद्ध में भोजन करने लगे। इसी उपाय से उनका अजीर्ण नष्ट हो गया। इसी कारण श्राद्ध में सबसे पहले अग्नि को भाग दिया जाता है। सबसे पहले अग्निदेव को भाग देने से श्राद्ध में ब्रह्मराक्षसगण विघ्न नहीं करते। जिस यज्ञ में अग्निदेव मौजूद रहते हैं, उस यज्ञ के पास राक्षस नहीं आते। पहले पिता को पिण्डदान करके उसके बाद पितामह और प्रपितामह को पिण्ड दे। श्राद्धकर्ता प्रत्येक पिण्डदान करते समय गायत्री और 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इत्यादि मन्त्र पढ़े। रजस्वला और कनकटी स्त्री श्राद्ध को न देखने पावे। दूसरे गोत्र की स्त्री से श्राद्ध का भोजन न तैयार करावे। तर्पण करते समय पिता और पितामह आदि का नाम लेना चाहिए तथा पिण्डदान और तर्पण नदी के किनारे श्रेष्ठ होता है। पहले अपने पितरों का तर्पण करके उसके बाद सुहृद् सम्बन्धी आदि का तर्पण करे। बैलगाड़ी या नाव पर बैठकर नदी के पार जाते समय पितरों का तर्पण अवश्य करना चाहिए। अमावास्या श्राद्ध के लिए श्रेष्ठ समय है। अतएव उस दिन श्राद्ध अवश्य करे। पितृभक्त पुरुष पुष्टि, आयु, वीर्य और श्री प्राप्त करता है। ब्रह्माजी, महर्षि पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, अङ्गिरा, क्रतु और कश्यप महायोगेश्वर तथा पितृगण कहलाते हैं। पिण्डदान करने से पितर प्रेतयोनि से छुटकारा पा जाते हैं। यह मैंने
विस्तारपूर्वक श्राद्ध की विधि, उसकी उत्पत्ति और पितरों का वर्णन किया। अब दान का विषय सुनो। २३

तिरानवे अध्याय

उपवास और ब्रह्मचर्य आदि के लक्षण, दान लेने की निन्दा
तथा वृषादर्भि और महर्षि का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, यदि किसी व्रतधारी ब्राह्मण को कोई ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन करने के लिए निमन्त्रण दे तो वह अपना व्रत छोड़ दे या निमन्त्रण को अस्वीकृत कर दे?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! जो ब्राह्मण वेदोक्त व्रत का पालन न कर रहा हो वह, ब्राह्मण के कहने से, व्रत का त्याग कर सकता है; किन्तु जो वेदोक्त व्रत का पालन कर रहा है वह यदि किसी के कहने से भोजन कर ले तो उसे व्रत त्यागने का पाप अवश्य लगता है।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, साधारण मनुष्य उपवास को तपस्या समझते हैं। अतएव मैं जानना चाहता हूँ कि उपवास ही तपस्या है या तपस्या दूसरे प्रकार की होती है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, जो मनुष्य एक महीना या पन्द्रह दिन उपवास करने को तपस्या समझते हैं वे उपवास करके केवल अपना शरीर क्षीण करते हैं। उपवास करनेवाला मनुष्य न तपस्वी है न धर्मज्ञ। तपस्या तो लोभ आदि का त्याग करना है। ब्राह्मणों को सर्वदा उपवासी और ब्रह्मचारी होना चाहिए। मांस खाना उचित नहीं। वे सदा पवित्र रहें और सत्य बात कहें। मुनि होकर वेद पढ़ें। ब्राह्मणों को कुटुम्बी, दानशील, धर्मार्थी, निद्रात्यागी, अमृताशी, विघसाशी और अतिथिप्रिय होना चाहिए।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! सर्वदा उपवासी, ब्रह्मचारी, विघसाशी और अतिथिप्रिय ब्राह्मण किस प्रकार होते हैं ?

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! जो मनुष्य केवल प्रातःकाल और सन्ध्याकाल भोजन करता है, इसके सिवा बीच में नहीं खाता-पीता वह सर्वदा उपवासी है। जो केवल ऋतुकाल में भार्या के साथ सहवास करता है वह ब्रह्मचारी है। जो 'वृथा मांस' नहीं खाता वह निरामिषभोजी है। जो दिन में नहीं सोता वह निद्रात्यागी है। अतिथियों और कुटुम्बियों के भोजन कर चुकने पर जो भोजन करता है वह अमृताशी है। जो ब्राह्मण को भोजन कराकर भोजन करता है उसे निस्सन्देह स्वर्गलोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य देवताओं, पितरों और आश्रित मनुष्यों को भोजन कराने के बाद भोजन करता है वह विघसाशी है। ये लोग गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा सेवित होकर अनन्त काल तक ब्रह्मलोक में रहते हैं। वहाँ देवताओं और पितरों के साथ भोजन और पुत्र-पौत्रों के साथ सुख-भोग करते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, ब्राह्मणों को मनुष्य अनेक प्रकार की वस्तुएँ दान करते हैं। बतलाइए कि किस प्रकार के दाता का धन लेना चाहिए और किस प्रकार के दाता का नहीं।

भीष्म ने कहा—युधिष्ठिर, सज्जन का दान लेने से अल्प दोष लगता है और दुर्जन का दान लेने से भारी पाप लगता है। दान चाहे सज्जन का हो चाहे दुर्जन का, लेनेवाले को पाप अवश्य लगता है। इसी से प्राचीन समय में अनेक महात्मा पुरुष कभी किसी का दान नहीं लेते थे। मैं इस विषय में सप्तर्षि और वृषादर्भि का संवाद सुनाता हूँ। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि, ये सात महर्षि और देवी अरुन्धती ब्रह्मलोक प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या करते हुए पृथिवी पर विचरते थे। इनकी गण्डा नाम की एक दासी थी।

पशुसख नाम के शूद्र के साथ उसका विवाह हुआ था। पशुसख भी इन्हीं महर्षियों के साथ रहकर हमेशा इनकी सेवा करता था। एक बार पृथिवी पर पानी न बरसने के कारण घोर दुर्भिक्ष पड़ा। मनुष्य भूखों मरने लगे। महाराज शिवि के पुत्र वृषादर्भि ने एक यज्ञ करके ऋत्विजों को अपना एक पुत्र दक्षिणा-स्वरूप दे दिया था। वह कुमार इस दुर्भिक्ष में दैव-वश अकाल में हीं मर गया। बहुत दिनों से भोजन न मिलने के कारण महर्षिगण व्याकुल हो रहे थे। इस समय इस राजकुमार को मरा हुआ देखकर, अपने शरीर की रक्षा के लिए, वे उसका मांस खाने की इच्छा से उसे पकाने लगे। उसी समय महाराज शैव्य घूमते-फिरते वहाँ आ पहुँचे।

महर्षियों को मुर्दे का मांस पकाते देखकर उन्होंने कहा—महर्षियो, यदि आप लोग दान लेना स्वीकार करें तो आपको यह अभक्ष्य न खाना पड़े। मेरे पास अतुल धन है। यदि आप दान लें तो मैं आप लोगों को हज़ार ख़च्चर, बच्चों समेत इतनी ही सफ़ेद ख़च्चरियाँ, भारी बोझा ले चलनेवाले मोटे-ताज़े सफ़ेद रङ्ग के दस हज़ार बैल, हृष्ट-पुष्ट नई ब्याई हुई इतनी ही गायें, अच्छे-अच्छे गाँव, बहुत सा अन्न, अनेक प्रकार की सुख की सामग्री, जौ, रत्न, रस और अनेक प्रकार की दुर्लभ वस्तुएँ दे सकता हूँ। अतएव आप यह अभक्ष्य भक्षण करने का इरादा छोड़कर मेरा दान लेना स्वीकार कीजिए। जो ब्राह्मण मुझसे माँगते हैं, उनको मैं अपने प्राण से भी अधिक प्रिय करता हूँ। ३३

"महाराज! राजा का दान लेने से स्वादिष्ट भोजन तो मिलता है; किन्तु परिणाम में वह विष के समान हो जाता है। आप इस बात को अच्छी तरह जानते हैं तो फिर क्यों हम लोगों को प्रलोभन दे रहे हैं! ब्राह्मणों के शरीर में देवता निवास करते हैं। तपस्वी ब्राह्मणों के शरीर परम पवित्र होते हैं। उनके प्रसन्न होने पर देवता प्रसन्न होते हैं। ब्राह्मण जिस दिन राजा का दान लेते हैं उसी दिन उनकी सब तपस्या नष्ट हो जाती है। इसलिए महाराज, आप माँगनेवालों को ही दान कीजिए।" यह कहकर और मुर्दे का मांस छोड़कर ऋषि लोग भोजन की खोज में वन को गये।

ऋषियों के चले जाने पर महाराज शैव्य ने मन्त्रियों से कहा कि महर्षियों को प्रतिदिन गूलर दिया करो। इससे मन्त्री लोग वन में जाकर उन महर्षियों को प्रतिदिन बड़े-बड़े गूलर देने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन महाराज शैव्य ने नौकर के हाथ उन महर्षियों के पास बहुत से गूलर भेजे। उन गूलरों के भीतर राजा ने सोना रख दिया था। महर्षि अत्रि ने इन गूलरों ४० का पहले के गूलरों की अपेक्षा भारी वज़न देखकर इनके लेने से इनकार कर कहा—हम लोग न तो विवेकहीन हैं और न असावधान। इनमें जिन गूलरों के भीतर सोना रक्खा है, उनको मैं जानता हूँ। इनके लेने से अन्त में हम लोगों का अनिष्ट होगा। जो मनुष्य इस लोक और परलोक में सुख पाने की इच्छा करता हो वह इनको ग्रहण न करे।

वसिष्ठ ने कहा—हम एक निष्क ग्रहण करेंगे तो हमको सौ या हज़ार निष्क ग्रहण करने का पाप लगेगा। अतएव बहुत से निष्क लेने पर तो निस्सन्देह हमारी अधोगति होगी।

कश्यप ने कहा—इस पृथिवी पर अन्न, पशु, रत्न और सोना आदि जितने पदार्थ हैं वे सब किसी को मिल जायँ तो भी उसे सन्तोष न होगा। अतएव शान्ति का अवलम्बन करना ही अच्छा है।

भरद्वाज ने कहा—मनुष्य की आशा की सीमा नहीं है। जिस तरह रुरु मृग के सींग दिन-दिन बढ़ते रहते हैं उसी तरह मनुष्य की आशा भी बढ़ती जाती है।

गौतम ने कहा—मनुष्य की आशा समुद्र के समान है। पृथिवी की सब वस्तुएँ एक मनुष्य को मिल जाने पर भी उसकी आशा पूरी नहीं हो सकती।

विश्वामित्र ने कहा—मनुष्य की एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी कामना उत्पन्न हो जाती है।

जमदग्नि ने कहा—जो ब्राह्मण दान नहीं लेते उन्हीं की तपस्या अक्षय होती है। दान लेनेवालों की तपस्या शीघ्र नष्ट हो जाती है।

अरुन्धती ने कहा—कोई-कोई धर्म करने के लिए धन का संग्रह करना उचित बतलाते हैं, किन्तु मेरी राय में धन-सञ्चय करने की अपेक्षा तप का सञ्चय करना ही श्रेष्ठ है।

गण्डा ने कहा—मेरे मालिक परम तेजस्वी होकर भी जब दान लेने से डरते हैं तब मैं
५० यदि इससे डरूँ तो सन्देह ही क्या है?

पशुसख ने कहा—धर्म से बढ़कर कोई धन नहीं है। लोभ आदि के वशीभूत होने से यह धन नहीं प्राप्त हो सकता। इस धन के प्राप्त करने का उपाय ब्राह्मण ही जानते हैं। इसी से उस धर्मरूप धन की प्राप्ति का उपाय सीखने के लिए मैं ब्राह्मणों की सेवा कर रहा हूँ।

इस प्रकार सबके कह चुकने पर महर्षियों ने एक स्वर से कहा—जिसने इन गूलरों में सोना छिपाकर हम लोगों के पास भेजा है उसके दान का और उसका भला हो।

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज! व्रतधारी ऋषि यह कहकर, उन गूलरों को छोड़कर, वहाँ से चले गये। तब मन्त्रियों ने महाराज शैव्य के पास जाकर कहा—महाराज, ब्राह्मणों ने गूलरों के भीतर सोना रक्खा हुआ जानकर उन्हें त्याग दिया। अब वे किसी दूसरे स्थान को चले गये।

यह सुनकर राजा शैव्य महर्षियों पर बड़े कुपित हुए। वे महर्षियों का अनिष्ट करने का विचार करके अपने घर को गये। वहाँ अति कठोर नियम का पालन करके, आभिचारिक मन्त्र पढ़कर, वे अग्नि में आहुति देने लगे। आहुति दे चुकने पर उसी अग्नि से एक भयावनी राक्षसी निकल आई। राजा वृषादर्भि ने उसका नाम यातुधानी रक्खा। कालरात्रि-स्वरूपा यातुधानी अग्नि से निकलकर, राजा के पास जाकर, हाथ जोड़कर बोली—महाराज, मुझे क्या आज्ञा है?

शैव्य ने कहा—यातुधानी! तुम शीघ्र अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, गोतम, विश्वामित्र और जमदग्नि इन सातों ऋषियों, अरुन्धती और उनके सेवक पशुसख तथा उनकी दासी गण्डा के पास जाओ; उनका नाम पूछो और उनके नाम के अनुरूप काम देखकर उन सबका नाश कर डालो। उनको मारकर फिर चाहे जहाँ चली जाना। राजा के यों कहने पर यातु- ६०
धानी उसी वन को गई जिसमें वे ऋषि लोग थे।

उस समय अत्रि आदि महर्षि फल-मूल खाकर वन में घूम रहे थे। घूमते-घूमते उन्होंने एक हृष्ट-पुष्ट संन्यासी को, मोटा-ताज़ा कुत्ता साथ लिये, उसी ओर आते देखा।

उसे देखकर अरुन्धती ने ऋषियों से कहा—हे महर्षियो! यह संन्यासी जितना मोटा है उतने मोटे आप लोग कभी नहीं हो सकते।

महर्षि वसिष्ठ ने अरुन्धती से कहा—प्रिये, प्रतिदिन सायङ्काल और प्रातःकाल होम करना हमारा काम है। इस समय उस नियम का पालन न कर सकने से हम लोग बहुत दुखी हैं; किन्तु इस मनुष्य को वह दुःख नहीं है। इसी से यह और इसका कुत्ता इतना मोटा-ताज़ा है।

अत्रि ने कहा—कल्याणी! जिस तरह हम लोगों को भोजन दुर्लभ है, हमारी भूख बहुत बढ़ गई है और हमारा वेदज्ञान लुप्त हो गया है वैसी दशा इसकी नहीं है। इसी से यह और इसका कुत्ता हृष्ट-पुष्ट है।

विश्वामित्र ने कहा—भद्रे, हम इस समय शास्त्र के अनुसार धर्म का पालन नहीं कर सकते और भूख से पीड़ित होकर आलसी हो गये हैं। किन्तु इस मनुष्य को किसी प्रकार का कष्ट नहीं है, इसी से यह और इसका कुत्ता दोनों मोटे-ताज़े हो रहे हैं।

जमदग्नि ने कहा—कल्याणी, हम लोगों की तरह इसे भोजन और ईंधन की चिन्ता नहीं है। इसी कारण इसका और इसके कुत्ते का शरीर इतना स्थूल हो रहा है।

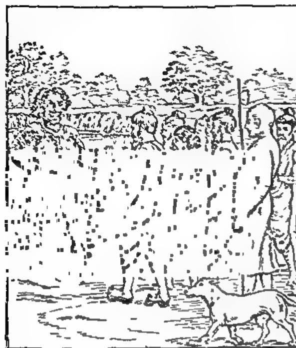
कश्यप ने कहा—कल्याणी, मेरे चार भाई पेट के लिए भीख माँगते फिरते हैं इसलिए मुझे घोर कष्ट हुआ है। किन्तु इस मनुष्य को वैसा कष्ट नहीं भोगना पड़ता। इसी से इसका और इसके कुत्ते का शरीर हृष्ट-पुष्ट है।

भरद्वाज ने कहा—कल्याणी, जिस प्रकार भार्यापवाद के कारण मुझे शोक है उस प्रकार की कोई चिन्ता इसे नहीं है। इसी से यह और इसका कुत्ता, दोनों मोटे-ताज़े बने हैं। ७०

गोतम ने कहा—कल्याणी, हमारे पास कुश की तीन रस्सियों से युक्त रंकु-मृग की मृगछालाएँ हैं। वे भी तीन-तीन वर्ष की पुरानी हो गई हैं। किन्तु इसे, हमारी तरह, वस्त्र का कष्ट नहीं है। इसी से इसका और इसके कुत्ते का शरीर मोटा-ताज़ा बना है।

इस प्रकार ये महर्षि आपस में बातचीत कर रहे थे कि वह मोटा-ताज़ा संन्यासी, कुत्ते समेत, उनके पास आ गया। उसने रीति के अनुसार सब ऋषियों से हाथ मिलाया। इसके

बाद ऋषियों ने संन्यासी से कहा—इस वन में बड़ी कठिनता से भोजन मिलता है, इसलिए चलिए हम लोग भोजन के लिए फल-मूल ढूँढ़ें।



अब वे लोग वन में फल ढूँढ़ने लगे। एक दिन वे लोग वन में घूम रहे थे कि उनको एक सुन्दर तालाब देख पड़ा। उस तालाब का जल निर्मल था। उसमें अनेक जल-जन्तु और पक्षी रहते थे। उसके घाट बहुत सुन्दर थे। उसमें कीचड़ नहीं था। वह सुन्दर कमलों और वैदूर्यमणि के रङ्ग के पद्मपत्रों से शोभित था। उस तालाब में पैठने के लिए एक मार्ग था। शैब्यराज की भेजी हुई भीषण स्वरूपवाली राक्षसी, उसी मार्ग में खड़ी, उस तालाब की रक्षा करती थी। महर्षियों ने तालाब देखकर, मृणाल लेने की इच्छा से, उस संन्यासी समेत उसी मार्ग से तालाब में पैठने का इरादा किया। आगे बढ़ते ही वह राक्षसी देख पड़ी। ऋषियों ने उससे
८१ पूछा—कल्याणी, तुम कौन हो? किसके किस काम के लिए यहाँ अकेली खड़ी हो?

राक्षसी ने कहा—महर्षियो! मैं कोई भी होऊँ, मेरा नाम-गोत्र आदि पूछने की आवश्यकता नहीं। मैं इस तालाब की रखवाली करती हूँ, मेरा इतना ही परिचय काफ़ी है।

महर्षियों ने कहा—भद्रे, हम लोग भूख के मारे व्याकुल हो रहे हैं। हमारे पास खाने को कुछ नहीं है। तुम कहो तो हम इस तालाब से कुछ मृणाल उखाड़ लें।

राक्षसी ने कहा—महर्षियो, आप लोग पहले अपने-अपने नाम का अर्थ बतला दें तब मैं आप लोगों को मृणाल लेने दूँगी।

महर्षि अत्रि ने, उसे सब ऋषियों के वध के लिए आई हुई राक्षसी समझकर, उससे कहा—कल्याणी, मैंने वेद पढ़ने के लिए जागरण करके रात्रि को अरात्रि अर्थात् दिन के समान समझ लिया था। मैं रात्रि में अध्ययन नहीं करता, मेरे हिसाब से तो रात्रि है ही नहीं। और, मैं सब मनुष्यों का अत् (पाप) से त्राण करता हूँ, इस कारण मेरा नाम अत्रि है।

राक्षसी ने कहा—महर्षि, मैं आपके नाम का अर्थ कुछ भी न समझ सकी। अच्छा, आप तालाब में जाइए।

वसिष्ठ ने कहा—कल्याणी ! मैं वसु (अणिमा आदि ऐश्वर्य) से सम्पन्न और वसी (गृहवासी) मनुष्यों में श्रेष्ठ हूँ, इसी से मेरा नाम वसिष्ठ है।

राक्षसी ने कहा—महर्षि, मैंने आपके नाम का अर्थ कुछ भी नहीं समझा। आप तालाब में जा सकते हैं।

कश्यप ने कहा—भद्रे, मैं कश्य (शरीर) की रक्षा करता हूँ और तप के प्रभाव से काश्य (दीप्तिमान्) हो गया हूँ। इसी से मेरा नाम कश्यप है। ९०

राक्षसी ने कहा—तपोधन, आपके नाम का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। अब आप तालाब में जाइए।

भरद्वाज ने कहा—कल्याणी ! मैं द्वाज (देवता, ब्राह्मण, स्त्री और शिष्यहीन तथा पुत्र-हीन व्यक्ति आदि) का भरण-पोषण करता हूँ, इसी से मेरा नाम भरद्वाज है।

राक्षसी ने कहा—महर्षि, आपके नाम का अर्थ मैं कुछ भी नहीं समझ सकी। अच्छा, अब आप तालाब में जाइए।

गौतम ने कहा—भद्रे ! जन्म होते ही मेरे शरीर की गो (किरणों) द्वारा अँधेरा दूर हो गया था और मैंने गो (इन्द्रियों) का दमन कर दिया है, इसी से मेरा नाम गौतम है।

राक्षसी ने कहा—महर्षि, मैं आपके नाम का अर्थ कुछ भी नहीं समझ सकी। अब आप तालाब में जा सकते हैं।

विश्वामित्र ने कहा—भद्रे ! विश्वेदेवगण मेरे मित्र हैं और मैं विश्व का मित्र हूँ, इसी से मेरा नाम विश्वामित्र है।

राक्षसी ने कहा—तपोधन, आपके नाम का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। आप तालाब में जा सकते हैं।

जमदग्नि ने कहा—कल्याणी ! मैं जमत् (देवताओं के हवन करने योग्य) अग्नि से उत्पन्न हुआ हूँ, इसी से मेरा नाम जमदग्नि है।

राक्षसी ने कहा—तपोधन, मैंने आपके नाम का अर्थ कुछ भी नहीं समझा। अब आप इच्छानुसार तालाब में जा सकते हैं।

अरुन्धती ने कहा—कल्याणी, मैं पति के साथ अरु (पृथिवी) को धारण करती हूँ और पतिदेव के मन को रोके रहती हूँ। इसी से मेरा नाम अरुन्धती है। १००

राक्षसी ने कहा—तपस्विनी, आपके नाम का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। आप तालाब में जा सकती हैं।

गण्डा ने कहा—कल्याणी ! गण्ड धातु का अर्थ मुँह का एक भाग है। मेरा गण्ड ऊँचा है, इसलिए मेरा नाम गण्डा है।

राक्षसी ने कहा—कल्याणी, मैं तुम्हारे नाम का अर्थ कुछ भी नहीं समझ सकी। अब तुम तालाब में जाओ।

पशुसख ने कहा—कल्याणी, मैं पशुओं को प्रसन्न रखता हूँ और उनकी रक्षा करता हूँ। मैं पशुओं का प्रिय सखा हूँ, इसी से मेरा नाम पशुसख है।

राक्षसी ने कहा—मैंने तुम्हारे नाम का अर्थ कुछ भी नहीं समझा। तुम तालाब में जा सकते हो।

संन्यासी ने कहा—कल्याणी, इन महात्माओं ने जिस तरह अपने-अपने नाम का अर्थ बतलाया है उस तरह मैं अपने नाम का अर्थ नहीं बतला सकता। मेरा नाम शुनःसखसखा है।

राक्षसी ने कहा—हे तपोधन, आपकी सन्दिग्ध बात मेरी समझ में नहीं आई। अतएव आप अपना नाम फिर से बतलाइए।

"तुमने जब एक बार बतलाने से मेरा नाम अच्छी तरह नहीं सुन लिया तब मैं तुमको इस त्रिदण्ड से अवश्य मार डालूँगा।" यह कहकर संन्यासी ने उसके सिर पर ऐसा डण्डा मारा कि वह राक्षसी पृथिवी पर गिरकर मर गई।



वह संन्यासी इस प्रकार राक्षसी का संहार करके, पृथिवी पर त्रिदण्ड रखकर,
१० घास पर बैठ गया। कुछ देर बाद महर्षिगण, देवी अरुन्धती और पति समेत गण्डा सब लोग बड़े परिश्रम से कमल और मृणाल उखाड़कर तालाब के बाहर आये। किनारे पर मृणाल रखकर, फिर तालाब में जाकर, वे पितरों का तर्पण करने लगे।

तर्पण करके महर्षिगण, अरुन्धती, गण्डा और पशुसख, सब लोग मृणाल खाने के लिए तालाब के बाहर आये किन्तु वहाँ कहीं मृणाल न देख पड़े। तब वे एक-दूसरे पर सन्देह करके कहने लगे कि हम सब लोग बहुत भूखे हैं, अतएव हमीं में से किसी ने सब मृणाल चुरा लिये हैं। हम सबको इस विषय में शपथ करना चाहिए।

अत्रि ने कहा—जिसने ये मृणाल चुराये हों वह गाय को लात मारे, सूर्य के सामने पेशाब करे और अनध्याय में अध्ययन करे।

वसिष्ठ ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह कुक्कुरजीवी (चण्डाल ?), उच्छृंखल संन्यासी, शरणागत-घातक और कन्योपजीवी (नट ?) हो तथा कृपण मनुष्य से धन माँगे।

कश्यप ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह सब जगह सब तरह की बातें करे, धरोहर को हज़म कर जाय, झूठी गवाही दे, 'वृथा मांस' खावे, वृथा दान ले और दिन में सम्भोग करे। १२१

भरद्वाज ने कहा—जिस दुष्ट ने मृणाल चुराये हों वह स्त्री, गाय और सजातीय लोगों के साथ अधर्म करे; युद्ध में ब्राह्मण को परास्त करे; आचार्य का अनादर करके वेद पढ़े और फूस की आग में होम करे।

जमदग्नि ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह जल में मल त्यागे, गायों से शत्रुता रक्खे, आपस में आतिथ्य स्वीकार करे, ऋतुकाल के सिवा अन्य समय में भी सम्भोग करे, सबसे द्वेष रक्खे, स्त्री के द्वारा जीविका करे, मित्रहीन हो और उसके शत्रु अधिक हों।

गोतम ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह पढ़े हुए वेदों को भूल जाय, सोम बेचे, तीनों अग्नियों का त्याग कर दे और एक ही कुएँवाले गाँव के निवासी शूद्रा के पति ब्राह्मण के के समान लोक को जावे।

विश्वामित्र ने कहा—जिस मनुष्य ने मृणाल चुराये हों उसके जीवित रहते ही दूसरा मनुष्य उसके माता-पिता आदि गुरुजनों और परिवार के लोगों का भरण-पोषण करे, जिससे उसकी सद्गति न हो। उसके बहुत से पुत्र हों; वह अपवित्र, ब्राह्मणाधम, धन के गर्व से गर्वित, खेतिहर, ईर्ष्यायुक्त, राजा का पुरोहित और अयाज्य वर्ण का ऋत्विक् हो। वह जिसका वेतन-भोगी हो उसी के साथ कपट करे। ३०

अरुन्धती ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह हमेशा सास की निन्दा करे, पति से रूठी रहे, अकेली ही स्वादिष्ट भोजन करे, सजातीय मनुष्य के घर में रहकर सन्ध्या समय सत्तू खावे, रति के अयोग्य हो और उसके बेटे कायर हों।

गण्डा ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह हमेशा झूठ बोले, भाइयों के साथ विरोध करे, शुल्क लेकर कन्यादान करे, भोजन बनाकर अकेली भोजन कर ले, दासी होकर जीविका करे और जार के संसर्ग से गर्भ धारण करे।

पशुसख ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह दासी के गर्भ से उत्पन्न होकर हमेशा दरिद्र रहे, उसके बहुत से पुत्र हों और वह देवताओं को नमस्कार न करे।

इस प्रकार सबके शपथ कर चुकने पर संन्यासी ने कहा—जिसने मृणाल चुराये हों वह यजुर्वेद और सामवेद के विद्वान् ब्रह्मचारी ब्राह्मण को कन्यादान दे और अथर्ववेद का अध्ययन समाप्त करके स्नान करे।

संन्यासी के यों कहने पर ऋषियों ने कहा—महाशय, तुमने जो कुछ कहकर शपथ की है वह तो ब्राह्मणों में होता ही है। यह तो तुम्हारी शपथ नहीं हुई। अतएव हमको विश्वास है कि तुम्हीं ने हम लोगों के मृणाल चुराये हैं।

संन्यासी ने कहा—महर्षियो, आप लोग मुझे संन्यासी न समझें। मैं इन्द्र हूँ। मैंने
आप लोगों के मृणाल चुराये तो हैं, किन्तु उनको खाने की ज़रूरत मुझे नहीं है। मैंने आप
लोगों की परीक्षा के लिए, सबके सामने ही, सब मृणाल ग़ायब कर दिये। मैं आप लोगों की
रक्षा करने के लिए स्वर्गलोक से आया हूँ। जो स्त्री तालाब में उतरने का मार्ग रोके खड़ी थी वह
१४० यातुधानी थी। वह पापिनी शैब्यराज के होमाग्नि से उत्पन्न होकर, उनकी आज्ञा से, आप
लोगों को मारने यहाँ आई थी। वह देखिए, मैंने उसे मार डाला है। आप लोग लोभ का
त्याग करके अक्षय लोक के अधिकारी हुए हैं। अतएव अब आप लोग उन लोकों को चलिए।
अपना परिचय देकर देवराज के यों कहने पर अत्रि आदि महर्षि, अरुन्धती, गण्डा और
पशुसख, सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और इन्द्र की बात स्वीकार करके उनके साथ स्वर्ग को गये।
ये महात्मा भूखे रहने पर भी सुख के प्रलोभन से लोभ के वश नहीं हुए। इसी से इनको स्वर्ग-
लोक प्राप्त हुआ। अतएव सभी अवस्थाओं में लोभ का त्याग करना सबका कर्तव्य और श्रेष्ठ
धर्म है। जो मनुष्य सभा में यह उपाख्यान कहता है उसे धन मिलता और उसके पाप नष्ट
हो जाते हैं। ऋषि, देवता और पितर उस पर प्रसन्न रहते हैं। परलोक में भी वह धर्म, अर्थ
१४६ और यश का भागी होता है।

चौरानवे अध्याय

महर्षियों और राजर्षियों का तीर्थयात्रा करते हुए ब्रह्मसर तीर्थ में जाना। वहाँ अगस्त्य का तालाब से मृणाल निकालकर बाहर रखना और मृणाल के चोरी जाने पर सब महर्षियों और राजर्षियों का शपथ करना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, प्राचीन समय में कुछ महर्षियों और राजर्षियों ने तीर्थयात्रा करके इसी प्रकार मृणाल के लिए शपथ की थी। मैं यहाँ वह प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। महर्षि शुक्र, अङ्गिरा, कवि, अगस्त्य, नारद, पर्वत, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, गालव, अष्टक, भरद्वाज, अरुन्धती, वालखिल्यगण और राजर्षि शिवि, दिलीप, नहुष, अम्बरीष, ययाति, धुन्धुमार और पुरु आदि महात्मा भगवान् इन्द्र के साथ प्रभास तीर्थ में एकत्र होकर आपस में सलाह करके पृथिवी के तीर्थों का दर्शन करने चले। अनेक तीर्थों में भ्रमण करके निष्पाप होकर वे माघ की पूर्णिमा को अति पवित्र कौशिकी तीर्थ पर पहुँचे। उस तीर्थ में ब्रह्मसर नाम का, कमल और कोकाबेली से शोभित, पवित्र तालाब था। महर्षि और राजर्षि-



अध्याय ६३ पृ० ४१२४
सन्यासी ने कहा—जो स्त्री तालाव में उतरने का मार्ग रोके खड़ी थी वह यातुधानी ॥·······
वह देखिये, मैंने उसे मार डाला

गण उस तालाब के पवित्र जल में स्नान करके कमल और कोकाबेली के मृणाल उखाड़कर खाने और सञ्चय करने लगे। महर्षि अगस्त्य ने कुछ मृणाल उठाकर तालाब के किनारे रख दिये। वे सब अकस्मात् चोरी चले गये। किन्तु चोरी किसने की, यह निश्चित न हो सका। अगस्त्य ने महर्षियों और राजर्षियों से कहा—मुझे जान पड़ता है कि आप हीं लोगों में से किसी ने मृणाल चुराये हैं, अतएव जिसने लिये हों वह शीघ्र मुझे दे दे। मेरी वस्तु चुरा लेना आप लोगों को
उचित नहीं। मैंने सुना है कि समय पाकर धर्म का नाश हो जायगा। मेरी समझ में वह ६
धर्मद्रोही समय अब आ गया। अतएव जब तक लोक में अधर्म की प्रवृत्ति न हो, जब तक ब्राह्मण शूद्रों को वेद न पढ़ाने लगें, जब तक राजा अधर्मी होकर प्रजा पर अत्याचार न करने लगे, जब तक उत्तम, मध्यम और नीच मनुष्य परस्पर अपमानित न हों और जब तक पराक्रमी मनुष्य दुर्बल मनुष्यों पर अत्याचार न करने लगें उसके पहले ही मैं स्वर्गलोक को चला जाऊँगा।

भगवान् अगस्त्य के ये वचन सुनकर महर्षियों और राजर्षियों ने उदास होकर उनसे कहा—"तपोधन, हम लोगों पर आप वृथा दोषारोपण न करें। हम शपथ करके कहते हैं कि हम लोगों ने मृणाल नहीं चुराये।" अब वे महर्षि और राजर्षि एक-एक करके शपथ करने लगे।

भृगु ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह तिरस्कृत होकर तिरस्कार करे, ताड़ित होकर प्रहार करे और घोड़ा, बैल, ऊँट आदि का मांस खावे।

वसिष्ठ ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह विद्याहीन होकर कुत्ते के साथ खिलवाड़ करे और संन्यासी होकर राजधानी में रहे।

कश्यप ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह सब स्थानों में सब वस्तुएँ ख़रीदे और बेचे; धरोहर को हड़प ले और झूठी गवाही दे।

गौतम ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह अभिमानी, काम-क्रोध के वशीभूत, कृषि-कर्म करनेवाला और ईर्ष्यायुक्त होकर जीवित रहे।

अङ्गिरा ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह अपवित्र, निन्दित,
कुत्ते के साथ क्रीड़ा करनेवाला, ब्रह्महत्यारा और प्रायश्चित्तहीन हो। २०

धुन्धुमार ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह मित्र के साथ कृतघ्नता, शूद्रा के गर्भ से सन्तान की उत्पत्ति और अकेला स्वादिष्ठ भोजन करे।

पुरु ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह चिकित्सा का व्यवसाय (वैद्यक, डाक्टरी इत्यादि) करे, भार्या के पैदा किये हुए धन से निर्वाह करे और ससुराल का अन्न खावे।

दिलीप ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह उस ब्राह्मण की सी गति पावे, जो एक ही कुआँवाले गाँव में रहता हो और शूद्रा स्त्री का पति हो।

शुक्र ने कहा—जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह 'वृथा मांस'-भक्षण, दिन में सम्भोग और दूत का काम करे।

जमदग्नि ने कहा—जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह अनध्याय में अध्ययन और शूद्र के श्राद्ध में भोजन करे तथा स्वयं भी श्राद्ध करके मित्रों को भोजन करावे।

शिवि ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह अग्निहोत्र-हीन होकर मरे, यज्ञ में विघ्न डाले और तपस्वियों के साथ विरोध करे।

ययाति ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह जटाधारी और व्रत-परायण होकर ऋतुकाल के अतिरिक्त भार्या के साथ भोग करे और वेदों का अनादर करे।

नहुष ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह संन्यासी होकर घर में रहे, दीक्षित होकर इच्छानुसार काम करे और वेतन लेकर विद्या पढ़ावे।

अम्बरीष ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह धर्म का परित्याग तथा ब्रह्महत्या करे और स्त्री, सजातीय लोगों तथा गायों के साथ क्रूर व्यवहार करे।

नारद ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह शरीर को ही आत्मा
१० माने, निन्दित गुरु से शास्त्र पढ़े, उलटे-सीधे स्वर से वेदपाठ और गुरुजनों का अपमान करे।

नाभाग ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह हमेशा झूठ बोले, सज्जनों से विरोध करे और शुल्क लेकर कन्यादान करे।

कवि ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह गाय को लात मारे, सूर्य की ओर मुँह करके पेशाब करे और शरणागत का अनादर करे।

विश्वामित्र ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह नौकरी करके मालिक के साथ कपट करे और राजा तथा अयाज्य मनुष्य का पुरोहित हो।

पर्वत ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह गाँव का मुखिया हो, गधों के रथ पर सवार हो और जीविका के लिए कुत्ते पाले।

भरद्वाज ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह क्रूर और मिथ्यावादी मनुष्य के समान पाप का भागी हो।

अष्टक ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह मन्दबुद्धि, यथेच्छाचारी पापी राजा होकर अधर्म के अनुसार पृथिवी का शासन करे।

गालव ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह पापी मनुष्य से बढ़कर निन्दनीय हो और हमेशा सजातीय मनुष्यों से द्रोह करे तथा दान करके उसका वर्णन करे।

अरुन्धती ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह सास की निन्दा करे, पति से रूठी रहे और अकेली स्वादिष्ट भोजन करे।

वालखिल्यगण ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह जीविका के लिए गाँव के समीप एक पैर पर खड़ा हो और धर्मज्ञ होकर धर्म का त्याग कर दे।

शुन:सख ने कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह अग्निहोत्र का अनादर करके सुख से सोवे और संन्यासी होकर यथेच्छाचार करे। ४०

सुरभी ने कहा—भगवन्! जिसने आपके मृणाल चुराये हों उसके पैरों को मनुष्य बालों की रस्सी से बाँधकर, दूसरी गाय के बछड़े की सहायता से, काँसे के बर्तन में उसको दुहें।

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इस प्रकार सब लोगों के शपथ कर चुकने पर इन्द्र ने कुपित महर्षि अगस्त्य से कहा—भगवन्, जिसने आपके मृणाल चुराये हों वह ब्रह्मचारी यजुर्वेदी या सामवेदी ब्राह्मण को कन्यादान करे और अथर्ववेद का अध्ययन करके स्नान करे। वह सब वेदों का ज्ञाता, पुण्यवान् और धर्मात्मा होकर ब्रह्मलोक को जावे।

अगस्त्य ने कहा—देवराज, तुम शपथ के बदले अपने कल्याण की प्रार्थना कर रहे हो। इससे निश्चित है कि तुम्हीं ने मेरे मृणाल चुराये हैं; अतएव तुम शीघ्र मेरे मृणाल मुझे देकर अपने धर्म की रक्षा करो।

इन्द्र ने कहा—भगवन्! मैंने लोभ के वश होकर आपके मृणाल नहीं चुराये, मैंने तो धर्म सुनने के लिए ही यह काम किया है। इस समय मैंने महर्षियों के मुँह से अनेक प्रकार का सनातन धर्म सुना। अतएव आप क्रोध छोड़कर अपने मृणाल ले लीजिए और मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

इन्द्र के इस प्रकार विनय करने पर अगस्त्यजी ने प्रसन्न होकर अपने मृणाल ले लिये।
महर्षियों तथा राजर्षियों समेत वे फिर अनेक तीर्थों में विचरने और स्नान करने लगे। जो मनुष्य ५१
नियमपूर्वक, प्रत्येक पर्व में, इस पवित्र उपाख्यान का पाठ करेगा वह मूर्ख पुत्र का पिता, विद्या-
हीन, विपद्ग्रस्त, रोगी और बुढ़ापे से पीड़ित न होगा। वह रजोगुणहीन और मङ्गल-युक्त होकर
अन्त को स्वर्गलोक प्राप्त करेगा और जो मनुष्य इन महर्षियों के प्रणीत शास्त्र का अध्ययन करेगा
उसे सनातन ब्रह्मलोक की प्राप्ति होगी। ५४

पञ्चानवे अध्याय

छाता और खड़ाऊँ की उत्पत्ति तथा उनके प्रचार का कारण बतलाते
हुए सूर्य और जमदग्नि का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, श्राद्ध में और अनेक पुण्यकर्मों में खड़ाऊँ और छाता दिये जाते हैं। अतएव विस्तार के साथ बतलाइए कि छाता और खड़ाऊँ का दान करने की प्रथा किस महात्मा ने चलाई है, इन दोनों वस्तुओं की उत्पत्ति किस प्रकार हुई और श्राद्ध आदि कर्मों में इनका दान क्यों किया जाता है।

भीष्म कहते हैं—बेटा ! जिस प्रकार छाता और खड़ाऊँ की उत्पत्ति हुई, इनके दान की प्रथा प्रचलित हुई और जिस कारण ये दोनों वस्तुएँ पवित्र समझी जाती हैं वह सब सुनो। प्राचीन समय में एक बार भगवान् जमदग्नि, क्रीड़ा करते हुए, धनुष-बाण लेकर बाण चलाने लगे और उनकी स्त्री रेणुका उन बाणों को ला-लाकर उन्हें देने लगीं। ज्या और बाणों का शब्द सुनते-सुनते क्रमशः महर्षि की खेलने की इच्छा बढ़ने लगी। तब उन्होंने लगातार बाण चलाना आरम्भ किया। रेणुका भी बाण ला-लाकर उन्हें देती गईं। यह खेल करते-करते दोपहर हो गये, तब भी उन्होंने बाणों का चलाना बन्द न किया। उन्होंने बाण चलाकर रेणुका से कहा—प्रिये, तुम झटपट बाण उठा लाओ; मैं उसे फिर चलाऊँगा। आज्ञा पाकर रेणुका बाण लेने के लिए दौड़ीं। एक तो जेठ का महीना दूसरे दोपहर का समय; पतिव्रता रेणुका पति की आज्ञा से दौड़ते-दौड़ते थक गईं। उनके सिर और पैरों में जलन होने लगी। तब विवश होकर वे, थोड़ी देर के लिए, एक वृक्ष की छाया में खड़ी हो गईं। तनिक विश्राम करके बाणों को लेकर, धूप से व्याकुल, वे महर्षि के शाप के भय से काँपती हुई उनके पास आईं। तब जमदग्नि कुपित होकर कहने लगे—तुमने इतनी देर क्यों लगाई ?

स्वामी को क्रुद्ध देखकर रेणुका ने नम्रता से कहा—भगवन्, आप मुझ पर क्रोध न कीजिए। मारे गर्मी के मेरे सिर और पैर जलने लगे थे, इस कारण मैं थोड़ी देर वृक्ष की छाया में खड़ी हो गई थी। इसी से देर हुई।

रेणुका के कष्ट का हाल सुनकर महातेजस्वी जमदग्नि ने सूर्य के प्रति कुपित होकर रेणुका से कहा—प्रिये, आज मैं अपने तेज से तुम्हारे दुःखदाता सूर्य को नष्ट कर दूँगा।

अब महर्षि धनुष-बाण लेकर सूर्य के सामने खड़े हो गये। सूर्यदेव ने उनको युद्ध-वेश में खड़े देखकर, ब्राह्मण का वेश धारण करके, पास आकर कहा—भगवन्, सूर्य ने आपका क्या अपराध किया है ? वे प्राणियों के हित के लिए आकाश में स्थित रहकर, अपनी किरणों द्वारा रस खींचकर, वर्षाकाल में बादलरूप होकर वही रस पृथिवी पर बरसा देते हैं। उसी से सब ओषधियाँ, फल-फूल से युक्त लताएँ और प्राणियों का प्राण-स्वरूप अन्न उत्पन्न होता है। जातकर्म, व्रत, उपनयन, विवाह, गोदान, यज्ञ, शास्त्रज्ञान, सम्पत्ति का लाभ और धन का सञ्चय आदि सब श्रेष्ठ काम अन्न से ही होते हैं। मैंने जो आपसे कहा है, यह सब विशेष रूप से आप जानते ही हैं। अतएव मैं विनयपूर्वक कहता हूँ कि आप सूर्य को नष्ट न कीजिए।

छियानबे अध्याय

छाता और खड़ाऊँ की उत्पत्ति के विषय में सूर्य और जमदग्नि का वृत्तान्त तथा उनके दान की प्रशंसा

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, ब्राह्मण का वेश धारण करके इस प्रकार सूर्यदेव के प्रार्थना करने पर महातेजस्वी जमदग्नि ने क्या किया ?

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, सूर्यदेव के यों प्रार्थना करने पर भी, अग्नि के समान तेजस्वी, जमदग्नि का क्रोध शान्त न हुआ। तब सूर्यदेव ने उनको हाथ जोड़कर मधुर वचनों से फिर कहा—भगवन्, सूर्य आकाश में हमेशा चलते ही रहते हैं अतएव आप किस तरह इस चलते हुए निशाने को वेध सकेंगे ? जमदग्नि ने कहा—ब्रह्मन्, मैं ज्ञानचक्षु के द्वारा देखता हूँ कि सूर्य तुम्हीं हो। तुम किसी समय चलते और किसी समय ठहर जाते हो, यह भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तुम दोपहर के समय आधा पल आकाश में विश्राम करते हो। मैं उसी समय तुमको बाण से मार डालूँगा। सूर्य ने कहा—भगवन्, आप निस्सन्देह मुझे बाण से मार सकते हैं। मैंने आपका अपकार भी किया है, अब मैं आपकी शरण हूँ।

भगवान् जमदग्नि ने हँसकर कहा—हे दिवाकर, यदि तुम मेरी शरण हो तो अब तुमको डर नहीं है। जो मनुष्य ब्राह्मणों की सरलता, पृथिवी की स्थिरता, चन्द्रमा का सौम्य भाव,
वरुण की गम्भीरता, अग्नि के तेज, सुमेरु
की प्रभा और सूर्य के प्रताप को नहीं
मानता वही शरणागत व्यक्ति का नाश
कर सकता है। शरणागत का नाश करने १०
से गुरुपत्नी के साथ भोग करने, ब्रह्महत्या
करने और मदिरा पीने का पाप लगता
है। अब तुम ऐसा उपाय करो जिसमें
मार्ग में चलने पर मेरी पत्नी को तुम्हारे
तेज के कारण कोई कष्ट न हो।



सूर्यदेव ने एक छाता और दो खड़ाऊँ देकर महर्षि से कहा—भगवन्, मेरी किरणों से सिर और पैरों की रक्षा करने के लिए छाता और खड़ाऊँ लीजिए। आज से अक्षय फल देनेवाले छाता और खड़ाऊँ का दान प्रचलित होगा।

हे धर्मराज, छाता और खड़ाऊँ की प्रथा सूर्यदेव की चलाई हुई है। इन वस्तुओं का दान तीनों लोकों में पवित्र समझा जाता है। अतएव तुम ब्राह्मणों को छाता और खड़ाऊँ का दान करो। इससे तुम्हारे धर्म की वृद्धि होगी। जो मनुष्य ब्राह्मणों को सौ तीलियोंवाला सफ़ेद छाता देता है वह परलोक में परम सुख भोगता और अप्सराओं तथा ब्राह्मणों द्वारा सम्मानित होकर स्वर्गलोक में रहता है। सूर्य की किरणों से तपी हुई पृथिवी पर चलने से

जिस ब्राह्मण के पैर जल रहे हों उसको जो मनुष्य खड़ाऊँ देता है वह देवताओं के प्रशंसित
२२ लोकों को प्राप्त करता और प्रसन्नता से गोलोक में निवास करता है।

सत्तानवे अध्याय

गृहस्थ-धर्म का वर्णन। पृथिवी और वासुदेव का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, संसार में किन कर्मों के करने से गृहस्थ मनुष्य का कल्याण
हो सकता है? आप विस्तार के साथ गृहस्थ-धर्म का वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं कि बेटा, मैं इस विषय में वासुदेव और पृथिवी का संवाद सुनाता हूँ।
एक बार श्रीकृष्ण ने पृथिवी से पूछा—देवी, मेरे समान गृहस्थ मनुष्य किस प्रकार के कर्म करके
अपना कल्याण कर सकता है?

पृथिवी ने कहा—वासुदेव! देवताओं, पितरों, महर्षियों और मनुष्यों का सम्मान करना
चाहिए। उनकी पूजा की रीति बतलाती हूँ। गृहस्थ मनुष्य यज्ञ द्वारा देवताओं, आतिथ्य-सत्कार
द्वारा मनुष्यों और गायत्री आदि मन्त्रों द्वारा वेदों की उपासना करके महर्षियों को प्रसन्न करे।
देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, भोजन के पहले, अग्नि की आराधना और बलिकर्म करना
आवश्यक है। प्रतिदिन अन्न, जल और फल-मूल द्वारा श्राद्ध करने से पितर प्रसन्न होते हैं।
सिद्ध अन्न द्वारा अग्नि में विधिपूर्वक वैश्वदेव-कर्म अवश्य करे। अग्नि, सोम, वैश्वदेव, धन्व-
१० न्तरि और प्रजापति के उद्देश से होम करके दिग्बलि देना उचित है। दक्षिण दिशा में यम को,
पश्चिम दिशा में वरुण को, उत्तर दिशा में चन्द्रमा को, वास्तु के मध्य में प्रजापति को, उत्तर-पूर्व
के कोने में धन्वन्तरि को, पूर्व-दिशा में इन्द्र को, घर के द्वार पर मनुष्यों को, गृह के मध्य में
देवताओं और मरुद्गण को तथा आकाश में विश्वेदेवगण को बलि प्रदान करना चाहिए। इस
प्रकार सब देवताओं को बलि देकर ब्राह्मण को अन्न आदि का दान करे। ब्राह्मण न मिले तो
गृहस्थ मनुष्य अन्न आदि का अग्रभाग अग्नि में छोड़ दे। गृहस्थ जब पितरों का श्राद्ध करने
लगे तब विधिपूर्वक पितरों की पूजा और उनके लिए तर्पण करके पूर्वोक्त देवताओं को बलि प्रदान
करे। उसके बाद वैश्वदेव-कार्य करके ब्राह्मण से स्वस्तिवाचन करावे और वैश्वदेव की पूजा से
बचे अन्न द्वारा समागत अतिथियों को सम्मानपूर्वक भोजन करावे। आगन्तुकों की स्थिति
अनित्य है, इसी से उनका नाम अतिथि है। पहले अतिथियों को भोजन कराके फिर अन्य
मनुष्यों को भोजन करावे। गृहस्थ मनुष्य आचार्य, पिता, सखा और अतिथि से घर की कोई
वस्तु छिपा न रक्खे। सदा इन सबकी आज्ञा का पालन करे और सबके भोजन कर चुकने
२० पर भोजन करे। राजपुरोहित, स्नातक ब्राह्मण, गुरु और ससुर यदि एक वर्ष तक घर में रहें,
तो भी मधुपर्क द्वारा प्रतिदिन उनकी पूजा करनी चाहिए। प्रतिदिन सायङ्काल और प्रातःकाल

विश्वदेवगण को तृप्त करने के लिए कुत्तों, श्वपचों और पक्षियों को अन्न आदि देना गृहस्थ का परम धर्म है। जो मनुष्य ईर्ष्याहीन होकर इस प्रकार गृहस्थ-धर्म का पालन करता है वह इस लोक में महर्षियों से वर पाता और शरीर त्यागकर स्वर्गलोक को जाता है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, श्रीकृष्ण ने पृथिवी से इस प्रकार गृहस्थ-धर्म सुनकर उसी समय से उसके अनुसार चलना प्रारम्भ कर दिया था। तुम भी इस धर्म का पालन करो। यदि तुम नियमानुसार इस धर्म का पालन करोगे तो निस्सन्देह इस लोक में यश और शरीर छूटने पर स्वर्ग प्राप्त करोगे। २५

अट्ठानवे अध्याय

पुष्प, धूप और दीप के दान का माहात्म्य। बलि और शुक्र का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! दीपदान किस प्रकार होता है? इसका प्रचलन कैसे हुआ और इसका फल क्या है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, इस विषय में सुवर्ण और मनु का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन समय में सुवर्ण नाम के एक धर्मात्मा ऋषि थे। उनका रङ्ग सुवर्ण के समान उज्ज्वल था, इसी से उनका नाम सुवर्ण पड़ा। ये विद्वान् महर्षि अपने गुणों द्वारा अच्छे-अच्छे कुलीन पुरुषों से श्रेष्ठ हो गये। एक बार ये महर्षि तपस्वियों में श्रेष्ठ मनु को देखकर उनके पास गये। महर्षि मनु इनका यथोचित सम्मान करके, सुमेरु पर्वत पर जाकर, इनके साथ एक रमणीय शिला पर बैठ गये। वहाँ बैठकर ये दोनों महर्षि ब्रह्मर्षियों, देव-दानवों और पुराण की अनेक प्रकार की कथाएँ कहने लगे। महर्षि सुवर्ण ने स्वायम्भुव मनु से कहा—भगवन्! फूलों [, धूप और दीप] से देवताओं की पूजा की जाती है। यह प्रथा किसने चलाई और इसका क्या फल है? आप संसार के हित के लिए इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दीजिए।

मनु ने कहा—तपोधन, मैं इस विषय में बलि और शुक्र का संवाद सुनाता हूँ। एक १०
बार भृगुकुल-तिलक शुक्र तीनों लोकों के अधीश्वर विरोचन के पुत्र बलि के पास गये। दानवराज बलि ने अर्घ्य आदि द्वारा पूजा करके उन्हें आसन पर बैठाया और स्वयं उनके पास बैठकर पूछा—ब्रह्मन्! फूल और धूप-दीप द्वारा देवताओं की पूजा करने से क्या फल होता है?

शुक्र ने कहा—दानवराज, पहले तपस्या की और फिर धर्म की उत्पत्ति हुई है। उसके बाद ओषधियों, लताओं और अनेक प्रकार के वृक्षों की उत्पत्ति हुई। चन्द्रमा ओषधि आदि के अधिष्ठाता हैं। इन उद्भिज जातियों में बहुत सी तो अमृत और बहुत सी विष कहलाती हैं। जिसे देखने से ही आन्तरिक प्रसन्नता उत्पन्न हो वह अमृत और जिसकी गन्ध से मन फीका पड़ जाय वही विष है। अमृत मङ्गल करनेवाला और विष अमङ्गल करनेवाला है। ओषधियों में कुछ तो अमृत

और कुछ विष हैं। जो बहुत उग्र और तेजस्वी हैं वे विष हैं और जो सौम्य हैं वे अमृत हैं। वृक्ष
और लताओं में भी इसी प्रकार—अमृत और विष—दो जातियाँ हैं। जिस वृक्ष और लता के फूल
३० मन को प्रसन्न करते हैं वे अमृत हैं। मन को प्रसन्न करने से ही फूलों का नाम 'सुमन' है। जो
मनुष्य देवताओं को सुगन्धित फूल चढ़ाता है उस पर देवता बहुत प्रसन्न होते हैं और उसे पुष्टि देते
हैं। अब देवताओं असुरों राक्षसों सर्पों यक्षों मनुष्यों और पितरों के धारण करने योग्य, जोती हुई
पृथिवी में लगाये हुए ग्राम्य और अपने आप उगे हुए जङ्गली, कण्टकाकीर्ण तथा अकण्टक वृक्षों से
उत्पन्न फूलों का विषय सुनो। फूलों में अच्छी और बुरी, दो तरह की गन्ध होती है। अच्छी
गन्धवाले फूलों से देवता प्रसन्न होते हैं। अकण्टक वृक्षों में फूलनेवाले सफ़ेद फूलों से देवता बहुत
प्रसन्न होते हैं। कमल के फूल गन्धर्वों, नागों और यक्षों को चढ़ाना चाहिए। अथर्ववेद में
लिखा है कि शत्रुओं का अनिष्ट करने के लिए आभिचारिक क्रिया में कटुगन्ध तीक्ष्णवीर्य (गरम),
३१ काँटेदार और प्राणियों को अप्रसन्न करनेवाले लाल तथा काले फूलों का उपयोग करे। जो फूल
देखने में सुन्दर और मधुर गन्ध से युक्त हों उन्हीं को मनुष्य अपने काम में लावे। श्मशान और
देवमन्दिरों में उत्पन्न फूलों का व्यवहार विवाह और क्रीड़ा के समय न करे। पहाड़ों पर उत्पन्न
सुन्दर फूलों को धोकर देवताओं के अर्पण करे। देवता फूलों की गन्ध से, यक्ष और राक्षस
उनके देखने से, सर्प उनका उपभोग करने से और मनुष्य उनके गन्ध, दर्शन तथा उपभोग तीनों
से प्रसन्न होते हैं। फूल अर्पण करनेवाले पर देवता प्रसन्न होकर उसका कल्याण करते हैं।
देवता असन्तुष्ट हो जाते हैं तो मनुष्यों का समूल नाश कर डालते हैं।

अब धूप के लक्षण और धूपदान का फल सुनो। धूप तीन प्रकार की होती है—निर्यास,
सारी और कृत्रिम। इन धूपों की गन्ध भी अच्छी और बुरी होती है। सल्लकी के सिवा और
वृक्षों के रस से उत्पन्न धूप निर्यास धूप कहलाती है। इस धूप से देवता प्रसन्न होते हैं। वृक्षों
४० के रस से उत्पन्न धूपों में गुग्गुल सबसे श्रेष्ठ है। आग में जिन लकड़ियों के जलने से सुगन्ध
उत्पन्न होती है उनका नाम सारी धूप है। इस धूप से भी देवता प्रसन्न होते हैं। अगुरु
सब प्रकार की 'सारी' धूप से श्रेष्ठ है। सल्लकी वृक्ष के रस से उत्पन्न निर्यास धूप से यक्ष-राक्षस
प्रसन्न होते हैं। सर्जरस (राल) और सुगन्धित काष्ठ आदि अष्टगन्ध से जो धूप बनाई जाती है
वह कृत्रिम धूप है। इस धूप से देवता, मनुष्य और दानव आदि सभी प्रसन्न होते हैं। इनके
सिवा भोग-विलास के उपयुक्त और भी अनेक प्रकार की धूप हैं। वे केवल मनुष्यों के व्यवहार
करने योग्य हैं। फूल चढ़ाने का जो फल बतलाया गया है वही फल धूप लगाने का भी है।

अब विस्तार के साथ बतलाता हूँ कि किस समय और किस प्रकार दीपदान करना चाहिए।
दीप ऊर्ध्वगामी तेज है, अतएव दीपदान करने से मनुष्य की ऊर्ध्व गति होती और उसका तेज बढ़ता
है। अन्धतामिस्र नरक से बचने के लिए, उत्तरायण सूर्य में, रात के समय मनुष्य दीपदान करे। देवता

तेजस्वी, प्रभा-सम्पन्न और प्रकाशमान होते हैं तथा राक्षसगण अन्धकार-स्वरूप हैं। अतएव देवताओं के समान गुण से सम्पन्न दीप का दान करके देवताओं को प्रसन्न करना चाहिए। दीपक को चुराना या बुझा देना उचित नहीं। दीपदान करने से मनुष्य सुन्दर आँखोंवाला और तेजस्वी
होकर स्वर्ग में दीपकों की पंक्ति के समान प्रकाशित होता है। जो मनुष्य दीपक चुराता है वह ५०
तेजहीन और अन्धा होकर अन्त को नरक भोगता है। घी का दीपक जलाकर दान करना श्रेष्ठ है। घी के अभाव में तेल का दीपक देवे। किन्तु दीपक में चर्बी आदि जलाकर दान करना उचित नहीं। अपना कल्याण चाहनेवाले को प्रतिदिन पर्वत के पास, वन में, चैत्यवृक्ष के नीचे और चौराहे पर दीपदान करना चाहिए। दीपदाता इस लोक में कुल की कीर्ति बढ़ाता है और विशुद्ध-अन्तःकरण होकर अन्त को चन्द्रमा और सूर्य आदि के समान तेजस्वी स्वरूप प्राप्त करता है।

देवताओं, यक्षों, सर्पों, मनुष्यों, भूतों और राक्षसों को बलिदान देने से जो फल होता है वह सुनो। जो मनुष्य ब्राह्मणों, देवताओं, अतिथियों और बालकों को भोजन दिये बिना पहले स्वयं भोजन कर लेता है वह राक्षस के समान है। अतएव आलस्य छोड़कर सावधानी से देवताओं को भोजन का अग्रभाग देना और बलिकर्म करना मनुष्य का कर्तव्य है। देवता, पितर, यक्ष, राक्षस, साँप और अतिथि गृहस्थों से भोजन पाने की आशा करते हैं। गृहस्थ के दिये हुए भोजन से ही देवता और पितर सन्तुष्ट होते हैं। उनकी प्रसन्नता से गृहस्थों के धन, यश
और आयु की वृद्धि होती है। देवताओं को फूलों से युक्त बलि, यक्षों और राक्षसों को दूध दही ५९
रुधिर और मांस तथा सुगन्ध से युक्त बलि, साँपों को मदिरा धान के लावा पिष्टक और कमल तथा भूतों को गुड़ और तिल मिलाकर बलि प्रदान करे। जो मनुष्य देवताओं को भोजन का अग्रभाग देता है वह बलवान् और वीर्यवान् होकर अनेक प्रकार के भोग करता है। अतएव गृहस्थ को सबसे पहले देवताओं को भोग लगाना चाहिए। गृह-देवता सदा घर में रहते हैं। जो गृहस्थ अपना कल्याण चाहे वह प्रतिदिन, भोजन करने के पहले, गृह-देवताओं की पूजा करे।

हे धर्मराज, सबसे पहले महात्मा शुक्राचार्य ने दानवराज बलि से यह कथा कही थी। उसके बाद महात्मा मनु ने सुवर्ण से, सुवर्ण ने नारदजी से और नारदजी ने मुझसे उस कथा का वर्णन किया। इस समय मैंने तुमसे वही कथा कही है। तुम इसी
उपदेश के अनुसार काम करो। ६६

निन्नानवे अध्याय

बलि, धूप और दीप के दान का माहात्म्य कहते हुए नहुष का चरित कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! धूप, दीप, पुष्प, फल और बलि का दान करने से जो फल होता है वह मैंने सुना। अब यह बतलाइए कि गृहस्थ बलि-प्रदान किस लिए करते हैं।

भीष्म कहते हैं—महाराज! महर्षि भृगु, अगस्त्य और राजा नहुष का संवाद एक प्रसिद्ध
इतिहास है, मैं इस विषय में वही सुनाता हूँ। राजा नहुष ने अपने पुण्य के बल से स्वर्ग में
जाकर वहाँ भी दैव और मानुष सब कर्म किये थे। उन्होंने समिधा और कुश एकत्र करके
होम, अन्न और लावा द्वारा बलि-प्रदान तथा धूप-दीप-दान, ध्यान, जप और शास्त्र के अनुसार
देवार्चना आदि अनेक कर्म किये थे। कुछ दिनों बाद उनके मन में यह अहङ्कार उत्पन्न हुआ कि
१० 'मैंने इन्द्रत्व प्राप्त किया है' इसलिए उनके पूर्वसञ्चित सब कर्म नष्ट होने लगे। उन्होंने गर्वित
होकर ऋषियों से अपनी सवारी खिचवाई। ऋषि लोग क्रमशः उनका रथ खींचने लगे। इस
प्रकार बहुत दिन हो जाने पर एक दिन महर्षि अगस्त्य की बारी आई। उसी दिन ब्रह्मज्ञानियों
में श्रेष्ठ महातपस्वी भृगु ने अगस्त्यजी के आश्रम पर जाकर उनसे कहा—भगवन्, पापी नहुष हम
लोगों पर बड़ा अत्याचार कर रहा है। अब हम लोगों से उसका अत्याचार सहा नहीं जाता।
आप छुटकारा पाने का कोई उपाय सोचिए।

अगस्त्य ने कहा—महर्षि, दुरात्मा नहुष ने ब्रह्माजी से जो वरदान पाया है वह आपसे
छिपा नहीं है। भला मैं इस समय उसे किस प्रकार शाप दूँ? इस नीच ने स्वर्ग को आते
समय ब्रह्माजी से यह वर माँगा था कि 'जिस पर मेरी नज़र पड़े वह मेरे वश में हो जाय' और
ब्रह्माजी ने उसे यह वरदान देकर अमृत पिला दिया है। इसी से क्या आप, क्या मैं और क्या
अन्यान्य महर्षि कोई भी अभी तक न तो उसे भस्म कर सका और न स्वर्ग से गिरा सका।
यह दुरात्मा, ब्रह्माजी के वरदान से दर्पित होकर, ब्राह्मणों को सता रहा है। जो हो, आज आप
२१ मुझे जो उपदेश देंगे मैं उसी के अनुसार काम करूँगा।

भृगु ने कहा—भगवन्, मैं बहुत ही दुखी होकर नहुष को उसका फल देने के लिए
ब्रह्माजी की आज्ञा से ही आपके पास आया हूँ। पापी नहुष ने आज आपको रथ में जोतने का
निश्चय किया है। अतएव आज मैं, आपके सामने ही, अपने तेज से उस अधम को इन्द्रत्व से
भ्रष्ट करके पुरन्दर को इन्द्र बनाऊँगा। आज वह ब्राह्मण-द्रोही ऐंठ में आकर अपने विनाश के
लिए जिस समय आपको लात मारेगा उसी समय मैं कुपित होकर, आपके सामने ही, उसे साँप
होने का शाप देकर पृथिवी पर गिरा दूँगा। कहिए, आपकी क्या सलाह है। इस पर अगस्त्यजी
२९ ने प्रसन्नता प्रकट की अर्थात् स्वीकृति दे दी।

सौ अध्याय

नहुष का, भृगु के शाप से, स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर गिरना और फिर अपने
पूर्वकृत बलि-दीप-दान आदि के प्रभाव से स्वर्ग-लोक को जाना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! राजा नहुष किस प्रकार इन्द्रत्व से भ्रष्ट होकर पृथिवी पर गिरे थे?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, महाराज नहुष इन्द्रत्व प्राप्त करके देवताओं और मनुष्यों के अनेक प्रकार के कर्म करने की इच्छा से सोचने लगे कि सदाचारी गृहस्थ लोग मृत्यु और स्वर्ग दोनों लोकों में उन्नति कर सकते हैं। धूप-दीप-बलि प्रदान और नमस्कार करके अतिथि को भोजन देने से देवता प्रसन्न होते हैं। बलिकर्म करने से गृहस्थों को जितना आनन्द होता है, उससे सौ गुना देवताओं को होता है। इसी से ज्ञानी महात्मा लोग अतिथियों को धूप दीप देकर, पितरों का तर्पण और उनको नमस्कार करके देवताओं को प्रसन्न करते हैं। विधिपूर्वक पूजित होने से देवता, पितर, महर्षि और अतिथि प्रसन्न होते हैं। देवराज नहुष इस प्रकार विचारकर स्वर्गलोक में दीपदान, बलिकर्म और अनेक प्रकार के दैव मानुष-कर्म करने लगे। ११

कुछ दिन बीतने पर उनके दुर्भाग्य का समय आ गया। उन्होंने देवताओं की पूजा करना छोड़ दिया। पहले की तरह धूप-दीप-दान और तर्पण आदि कर्मों में उनकी श्रद्धा न रही। तब राक्षसगण उनके यज्ञस्थल में अनेक प्रकार के उत्पात करने लगे।

एक दिन महाराज नहुष ने महर्षि अगस्त्य को, रथ में जोतने के लिए, बुलाया। उसी दिन महर्षि भृगु ने अगस्त्य से कहा कि तपोधन! आप आँखें मूँद लें, मैं आपकी जटाओं में प्रविष्ट होता हूँ। महर्षि अगस्त्य आँखें मूँदकर काठ की तरह स्थिर हो गये। तपस्वियों में श्रेष्ठ भृगु ने, नहुष का नाश करने के लिए, अगस्त्य की जटाओं में प्रवेश किया। इसके बाद महर्षि अगस्त्य ने नहुष के पास आकर कहा—देवराज, मैं तुम्हारे रथ को कहाँ ले चलूँ? जहाँ कहोगे वहीं मैं तुमको ले चलूँगा। यह सुनकर देवराज नहुष ने उसी दम उनको रथ में जोत दिया। अगस्त्य की जटाओं में बैठे हुए महर्षि भृगु, उनको रथ में जुता हुआ देखकर, बहुत प्रसन्न हुए। वे गुप्त रूप से जटाओं में बैठे थे, उनको नहुष न देख सके। महर्षि २०
अगस्त्य ब्रह्माजी से नहुष को वरदान मिलने की बात जानते थे, इसी से नहुष को ऐसा अत्याचार करते देखकर भी उन्होंने क्रोध नहीं किया। अब नहुष, अगस्त्य की पीठ पर, कोड़े लगाने लगे; किन्तु इससे भी उनको क्रोध न आया। फिर नहुष ने कुपित होकर अगस्त्य के सिर पर बाईं लात मारी। अगस्त्य की जटाओं में महर्षि भृगु तो बैठे थे ही। नहुष की लात लगते ही उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर कहा—रे मूर्ख! तूने क्रोध करके महर्षि अगस्त्य के सिर में लात मारी है, इस दुष्कर्म के कारण तू शीघ्र सर्प होकर पृथिवी पर जा।

महर्षि भृगु के शाप देते ही महाराज नहुष साँप होकर पृथिवी पर गिर पड़े; किन्तु पूर्वकृत दान, तप और नियमों के प्रभाव से उनकी स्मरण-शक्ति बनी रही। यदि भृगु शाप देते समय नहुष के सामने होते तो, नहुष के तेज से अभिहत होकर, वे उनको पृथिवी पर न गिरा सकते। पृथिवी पर गिरकर महाराज नहुष उस शाप से मुक्त होने के लिए भृगु से प्रार्थना करने लगे। इससे महर्षि अगस्त्य को दया आ गई। उन्होंने नहुष को शाप से मुक्त कर देने का भृगु से

अनुरोध किया। महर्षि भृगु ने नहुष पर प्रसन्न होकर कहा—पृथिवी पर युधिष्ठिर नाम के एक कुलप्रदीप राजा होंगे। वे नहुष को इस शाप से मुक्त कर देंगे। यह कहकर महात्मा भृगु अन्तर्धान हो गये। महर्षि अगस्त्य भी, पुरन्दर का हित करने के कारण, ब्राह्मणों से सम्मानित होकर अपने आश्रम को चले गये। महर्षि भृगु ने नहुष को शाप देकर, ब्रह्मलोक में जाकर, ब्रह्माजी से यह सब वृत्तान्त कह दिया। ब्रह्माजी ने देवताओं को बुलवाकर कहा—देवताओ, नहुष मेरे वरदान से देवराज हुए थे। अब महर्षि भृगु के शाप से वे पृथिवी पर चले गये। उनको राजा युधिष्ठिर के सिवा कोई शाप से मुक्त नहीं कर सकता। अतएव देवराज के पद पर फिर इन्द्र का अभिषेक करो। यह सुनकर देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा कि भगवन्, हम लोग इसका अनुमोदन करते हैं। इसके बाद ब्रह्माजी ने देवराज के पद पर पुरन्दर का अभिषेक कर दिया।

हे धर्मराज, इसी से राजा नहुष तुम्हारे द्वारा शाप से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को गये हैं। धर्म के व्यतिक्रम से उनकी यह दुर्दशा हुई थी। दीपदान आदि के प्रभाव से ही उनको फिर इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त हुई। अतएव गृहस्थ मनुष्य शुद्धचित्त होकर सन्ध्या के समय दीपदान करे। सन्ध्या के समय दीपदान करनेवाला मनुष्य शरीर त्यागने के बाद दिव्य चक्षु पाता है; पूर्ण चन्द्रमा के समान उसकी कान्ति हो जाती है। दीपदान का दीपक जितने पल तक
४१ जलता रहता है, उतने वर्षों तक दीपदाता रूपवान् और बलवान् होकर स्वर्ग में सुख भोगता है।

एक सौ एक अध्याय

ब्राह्मण का धन हर लेने से होनेवाले अनिष्ट के वर्णन में एक राजा और चण्डाल का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, जो निर्दय मूर्ख मनुष्य ब्राह्मणों का धन हर लेते हैं उनको किस प्रकार की गति मिलती है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मैं इस विषय में एक क्षत्रिय और चण्डाल का संवाद सुनाता हूँ। एक बार किसी क्षत्रिय ने [एक चण्डाल को अपने शरीर में लगा हुआ दूध धोते देखकर] पूछा—चण्डाल, तुमको इस बुढ़ापे में बालक के समान काम करते देखकर मुझे बड़ा सन्देह हुआ है। तुम कुत्तों और गधों की धूल तो शरीर में लगाये रहते हो; किन्तु गाय के दूध से इतना घबराते हो कि अपनी पवित्रता के लिए उसे धो रहे हो। इसी से तो सज्जन लोग चण्डालों के काम की निन्दा करते हैं।

चण्डाल ने कहा—महाराज, [मेरे शरीर में ब्राह्मण की गाय का दूध लग गया है इसी से मैं इसे धो रहा हूँ।] मेरे पूर्वजन्म में एक बार कोई राजा किसी ब्राह्मण की गायें छीनकर अपनी राजधानी में ले आया। उन गायों के थनों से दूध टपक रहा था। इसके बाद कुछ

ब्राह्मणों ने सोमलता का रस पीकर उस गाय छीन लानेवाले राजा का यज्ञ कराया। यज्ञ करानेवाले
वे सोमपायी ब्राह्मण और वह राजा, सबके सब, मरने के बाद नरक को गये। राजा के पुत्र-पौत्र
आदि भी नष्ट हो गये। उस यज्ञ में जिन मनुष्यों ने उन गायों का दूध, दही और घी खाया-
पिया था उन सबको नरक में जाना पड़ा। राजन्, मैं भी जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी होकर उसी
स्थान पर रहता था। दुर्भाग्यवश उन गायों के दूध के कुछ छींटे मेरे भिक्षा के अन्न में पड़ गये।
वही अन्न मैंने खा लिया। इसी से मुझे इस जन्म में चण्डाल होना पड़ा। अतएव ब्राह्मण का १०
धन हर लेना कदापि उचित नहीं। उन्हीं गायों का दूध सोमलता पर गिरा था, तभी से विद्वान्
लोग सोमरस बेचने की निन्दा करते हैं। जो मनुष्य सोमरस ख़रीदता या बेचता है वह यमलोक
को जाकर रौरव नरक में गिरता है। जो मनुष्य श्रोत्रिय होकर सोमरस बेचता है वह नरकगामी
होकर तीस बार विष्ठाभोजी कीड़े का जन्म पाता है। महाराज, अभिमान ही ब्राह्मण का धन
हरने का कारण है अतएव अभिमान के समान दूसरा पाप नहीं है। नीच-सेवा, अभिमान और
मित्र की स्त्री का हरण, इन तीनों पापों को तौलने से अभिमान का वज़न सबसे भारी होगा।
मेरा यह कुत्ता पूर्वजन्म में मनुष्य था, केवल अभिमान करने के कारण कुत्ते का जन्म पाकर इस
प्रकार दुर्बल और दुखी हो रहा है। मैं पूर्वजन्म में धनाढ्य कुल में उत्पन्न हुआ था। ज्ञान-
विज्ञान का भी मैं अच्छा जानकार था। यद्यपि मैं अभिमान को दूषित समझता था तो भी अभि-
मान के वश होकर प्राणियों पर क्रोध करता और अभक्ष्य मांस खाता था। उसी असद् व्यवहार
और अभक्ष्य भक्षण करने के कारण इस समय मेरी यह दुर्दशा हुई है। जिस प्रकार कपड़े को
आग जला देती है उसी प्रकार पाप मेरे शरीर को भस्म कर रहा है। जान पड़ता है मानो
मेरे शरीर में भौंरे काट रहे हैं। मैं इसी दुःख से, क्रोध के मारे, दौड़ता फिरता हूँ। वेद पढ़ने २०
और अनेक प्रकार के दान करने से गृहस्थ को पापों से छुटकारा मिलता है। ब्राह्मण विषयों को
त्यागकर आश्रम में निवास करके वेदाध्ययन करने से निष्पाप हो सकता है; किन्तु मैं इस पाप-
योनि में उत्पन्न हुआ हूँ इसलिए समझ में नहीं आता कि किस तरह पाप से मुक्त हो सकूँगा।
पूर्वजन्म के पुण्य से मैं जातिस्मर हूँ, इसी से शुभ कर्म करके पाप से मुक्त होने की इच्छा करता
हूँ। आप वह उपाय बतलाइए जिससे मैं इस चण्डाल योनि से छुटकारा पा सकूँ।

क्षत्रिय ने कहा—चण्डाल, तुम ब्राह्मण के लिए युद्धभूमि में प्राण त्यागकर मांसाहारी
जीवों को अपना शरीर दे देने पर पाप से मुक्त होकर अभीष्ट गति पा सकोगे। तुम्हारी सद्गति
का और कोई उपाय नहीं है।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज! क्षत्रिय के यों कहने पर चण्डाल ने, ब्राह्मण का हित करने
के लिए, अपना शरीर त्यागकर अभीष्ट गति प्राप्त की थी। तुम यदि सनातन लोक प्राप्त करना
चाहते हो तो ब्राह्मणों के धन की रक्षा करो। ब्राह्मणों का धन हर लेना उचित नहीं। २९

एक सौ दो अध्याय

जिन कर्मों के फल से जो लोक प्राप्त होते हैं, उनके वर्णन में
गोतम और इन्द्र का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, कर्मनिष्ठ मनुष्य कर्म करके एक ही लोक को जाते हैं या उनको अनेक प्रकार के लोक प्राप्त होते हैं ?

भीष्म कहते हैं—महाराज, कर्म करने से मनुष्य अनेक लोकों को जाते हैं। पुण्यवान् मनुष्य पवित्र लोकों को और पापी मनुष्य पापलोकों को प्राप्त करते हैं। इस विषय में गोतम और इन्द्र का संवाद सुनो। एक बार दमगुण-सम्पन्न, जितेन्द्रिय, मृदुस्वभाव, द्विजवर गोतम ने वन में एक मातृहीन हाथी के बच्चे को देखा। माता के मर जाने से वह वन में बड़ा दुःख पा रहा था। महर्षि गोतम दयाभाव से उसे अपने आश्रम में लाकर उसका पालन करने लगे। कुछ दिनों बाद वह हाथी का बच्चा पर्वत के समान ऊँचा, बड़ा बलवान् और मदस्रावी हो गया। एक दिन इन्द्र, धृतराष्ट्र का रूप धारण करके, उस मतवाले हाथी को चुराकर ले चले। महर्षि गोतम ने धृतराष्ट्र को हाथी ले जाते देख लिया। उन्होंने पुकारकर कहा—हे कृतघ्न धृतराष्ट्र, मैंने बड़े कष्ट से इस हाथी को पाला है। यह मेरा पुत्र-स्वरूप है, तुम इसे न ले जाओ। तुमने मेरे आश्रम में आकर मुझसे बातचीत की है, इसलिए मेरे साथ तुम्हारी मित्रता हो गई है। अब यह हाथी चुराकर तुम मित्रद्रोही मत बनो। जब मैं आश्रम में नहीं रहता तब यह हाथी मेरे आश्रम की रक्षा करता है और लकड़ी तथा पानी आदि ला देता है। यह बहुत सीधा, काम
१० करने में होशियार, कृतज्ञ और मेरा अत्यन्त प्रिय है। तुम इसे मत ले जाओ।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि ! मैं आपको एक हज़ार गायें, सौ दासियाँ, पाँच सौ सोने की मुद्रा और अनेक प्रकार का धन दूँगा। यह सब लेकर आप यह हाथी मुझे दे दीजिए। आप ब्राह्मण हैं। हाथी का आप क्या करेंगे ?

गोतम ने कहा—राजन् ! गायें, दासियाँ, सोने की मुद्रा और अनेक प्रकार के रत्न लेकर मैं क्या करूँगा ? मैं ब्राह्मण हूँ, मुझे धन लेने की क्या आवश्यकता ?

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, ब्राह्मण को हाथी रखने की क्या आवश्यकता है ? हाथी से क्षत्रियों का ही उपकार होता है। हाथी हम लोगों का वाहन है। अतएव अपना वाहन ले जाने से मुझे अधर्म भी नहीं है। अब आप इसकी आशा छोड़ दीजिए।

गोतम ने कहा—राजन्, यमराज के यहाँ जाकर पुण्यात्मा तो आनन्द पाता और पापी शोकसागर में डूबता है। जब हम और तुम वहाँ जायँगे तब हम तुमसे अपना हाथी ले लेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि, कर्महीन इन्द्रिय-लोलुप पापी नास्तिक मनुष्य ही यमलोक में दुःख पाते हैं। मैं यमलोक को न जाऊँगा, मैं तो श्रेष्ठ लोक प्राप्त करूँगा।

गौतम ने कहा—राजन्, यमलोक में सत्य के सिवा कभी झूठ व्यवहार नहीं होता। वहाँ निर्बल व्यक्ति भी बलवान् से अपनी वस्तु ले सकता है। जब तुम वहाँ जाओगे तब मैं तुमसे अपना हाथी ले लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्! जो मनुष्य मदान्ध होकर पिता, माता और बड़ी बहन के साथ शत्रु का सा व्यवहार करता है उसी को यमलोक जाना पड़ता है। मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मैं उससे श्रेष्ठ लोक को जाऊँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र! जिस कुबेरपुरी को भोगी मनुष्य जाते हैं; जहाँ गन्धर्व, यक्ष और अप्सराएँ रहती हैं वहाँ यदि तुम जाओगे तो मैं वहीं आकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि, जो मनुष्य अतिथि-सत्कार करता हुआ व्रतपरायण होकर ब्राह्मणों को आश्रय देता है और पहले अपने आश्रित मनुष्यों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करता है वही कुबेरपुरी को जाता है। मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं उससे श्रेष्ठ लोक प्राप्त करूँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र! सुमेरु पर्वत के शिखर पर जहाँ किन्नरियाँ गाया करती हैं, सुन्दर फूल फूले रहते हैं और बड़ा भारी जम्बू वृक्ष है, उस रमणीय उपवन को यदि तुम जाओगे
तो मैं वहाँ पहुँचकर तुमसे अपना हाथी लूँगा। २०

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि! जो ब्राह्मण मृदुस्वभाव, सत्यवादी, अनेक शास्त्रों के विद्वान् और सब प्राणियों के प्रिय होते हैं; जो इतिहास और पुराण पढ़ते तथा ब्राह्मणों को मधुदान करते हैं वही सुमेरु-शिखर के उपवन को जाते हैं। मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं उससे श्रेष्ठ लोक प्राप्त करूँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र! अनेक पुष्पों से युक्त, किन्नरों के निवासस्थान, नारद के प्रिय जिस नन्दन वन में हमेशा अप्सराएँ और गन्धर्व रहते हैं, उस वन को यदि तुम जाओगे तो मैं वहाँ आकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि, जो मनुष्य नाचने-गाने में चतुर होते हैं और कभी किसी से कुछ नहीं माँगते वे नन्दन वन को जाते हैं। मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं उससे श्रेष्ठ लोक को जाऊँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र! जिस उत्तरकुरु में देवताओं के साथ रहकर मनुष्य आनन्द करते और जहाँ अग्नि से (जैसे धृष्टद्युम्न), जल से तथा पर्वत से उत्पन्न प्राणी निवास करते हैं; जहाँ देवराज इन्द्र सबके मनोरथ पूर्ण करते हैं; जहाँ सब स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी हैं तथा जहाँ स्त्री और पुरुष किसी से ईर्ष्या नहीं करते वहाँ यदि तुम जाओगे तो मैं वहीं पहुँचकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि! जो मनुष्य निर्लोभ, ममताहीन, न्यस्तदण्ड होते और मांस नहीं खाते; जो हानि-लाभ और निन्दा-स्तुति को एक समान समझते हैं और स्थावर-जङ्गम किसी प्राणी की हिंसा नहीं करते वही उत्तरकुरु को जाते हैं। मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं उससे श्रेष्ठ लोक को जाऊँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र ! सोमलोक में जो पवित्र सुगन्ध से युक्त, रजोगुण और शोक से हीन, स्थान हैं उन स्थानों को यदि तुम जाओगे तो मैं वहाँ पहुँचकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—तपोधन, जो मनुष्य दानशील होते और किसी का दान तथा दूसरों का धन नहीं लेते; जो अतिथिप्रिय, पुण्यवान् और क्षमाशील होते, जो दूसरों को दुर्वचन नहीं कहते, हमेशा प्रसन्न रहते और सब प्राणियों की रक्षा करते हैं वही मनुष्य सोमलोक को जाते हैं। मैं
३१ उस लोक को न जाऊँगा, मैं उससे श्रेष्ठ लोक प्राप्त करूँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र ! सूर्यलोक में जो रजोगुण और तमोगुण से हीन शोकशून्य स्थान हैं, उन स्थानों को यदि तुम जाओगे तो मैं वहाँ आकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—तपोधन ! जो मनुष्य स्वाध्यायसम्पन्न, तपस्वी, व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ, उद्योगी होते; गुरु की सेवा करते और आचार्य के अनुकूल बातें करते हैं और जो स्वयं आकर गुरुजनों का काम करते हैं वही विद्वान्, शुद्धस्वभाववाले महात्मा सूर्यलोक को जाते हैं; किन्तु मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं तो उससे श्रेष्ठ लोक प्राप्त करूँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र ! वरुणलोक में जो पवित्र गन्धयुक्त, शोक-शून्य, रजोगुणहीन स्थान हैं उन स्थानों को यदि तुम जाओगे तो मैं वहाँ आकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—तपोधन ! जो मनुष्य चातुर्मास्य-यज्ञ का अनुष्ठान करते, एक सौ दस यज्ञ करते, श्रद्धा के साथ तीन वर्ष तक वेद-विधि के अनुसार अग्निहोत्र करते हैं और प्राणपण से धर्म में निरत रहकर सन्मार्ग पर चलते रहते हैं वही महात्मा वरुणलोक को जा सकते हैं। मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं उससे श्रेष्ठ लोक प्राप्त करूँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र ! इन्द्रलोक में जो रजोगुणहीन, शोकशून्य, अति दुर्गम स्थान हैं और जहाँ जाने की इच्छा सभी करते हैं, उस लोक को यदि तुम जाओगे तो मैं वहाँ आकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि ! जो मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है; जो महापराक्रमी, वेदाध्यायी, याज्ञिक और अप्रमत्त होता है वही इन्द्रलोक को जाता है। मैं उस लोक को न जाऊँगा। मैं उससे श्रेष्ठ गति प्राप्त करूँगा।

गौतम ने कहा—धृतराष्ट्र ! स्वर्ग में जो शोकशून्य, सबके प्रार्थनीय, प्रजापति-लोक हैं
४० उनमें तुम जाओगे तो मैं वहाँ आकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि ! जो राजा राजसूय यज्ञ, प्रजा का भली भाँति पालन और अश्वमेध यज्ञ करके अवभृथ स्नान करते हैं वे प्रजापति-लोक को जाते हैं। मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं तो उनसे भी श्रेष्ठलोक प्राप्त करूँगा।

गोतम ने कहा—धृतराष्ट्र, प्रजापति-लोक के ऊपर जो पवित्र गन्ध से युक्त रजोगुणहीन शोक-शून्य अति दुर्लभ गोलोक हैं उन लोकों को तुम जाओगे तो मैं वहाँ पहुँचकर तुमसे अपना हाथी लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—महर्षि ! जो मनुष्य हज़ार गायों का मालिक होने पर प्रतिवर्ष सौ, सौ गायों का मालिक होने पर प्रतिवर्ष दस और दस या पाँच गायों का मालिक होकर प्रतिवर्ष एक गोदान करता है; जो ब्रह्मचारी महात्मा तीर्थयात्रा करता और वैदिक धर्म के अनुसार चलता है; जो प्रभास, मानस, पुष्कर, नैमिष, बृहत् सरोवर, बाहुदा, करतोया, गङ्गा, (गया, गयशिर,) फल्गु, विपाशा, कृष्णा, पञ्चनद, महाह्रद, गोमती, कौशिकी, पम्पा, सरस्वती, दृशद्वती और यमुना आदि तीर्थों में स्नान करता है वही गोलोकों को जाता है। मैं वहाँ न जाऊँगा, मैं उनसे श्रेष्ठ लोक प्राप्त करूँगा।

गोतम ने कहा—धृतराष्ट्र ! जहाँ सरदी-गरमी, भूख-प्यास, सुख-दुःख, राग-द्वेष, शत्रुता-मित्रता, बुढ़ापा-मौत और पुण्य-पाप कुछ भी नहीं हैं उस रजोगुणहीन, सत्त्वगुण की खानि, अति पवित्र ब्रह्मलोक को यदि तुम जाओगे तो मैं वहाँ पहुँचकर तुमसे अपना हाथी ले लूँगा। ५१

धृतराष्ट्र ने कहा—तपोधन ! जिस ब्रह्मलोक को सब विषयों से हीन, अध्यात्मयोगनिरत, कृतात्मा, जितेन्द्रिय, सात्त्विक मनुष्य जाते हैं उस लोक में जाकर मैं ऐसा गुप्त रहूँगा कि वहाँ मुझे आप देख भी न सकेंगे।

गोतम ने कहा—धृतराष्ट्र ! जहाँ सामवेद का गान होता है, जहाँ वेदियों पर पुण्डरीक यज्ञ होता है, जहाँ घोड़े पर सवार होकर सोमपायी लोग जाते हैं, यदि तुम ब्रह्मलोक में उस स्थान को जाओगे तो मैं वहाँ जाकर तुमसे अपना हाथी लूँगा। जो हो, तुम्हारी बातों से मालूम होता है कि तुम इन्द्र हो। तुम ब्रह्माण्ड भर में विचरते रहते हो। मैंने अभी तक तुमको नहीं पहचाना था, अतएव मैंने बिना जाने तुमको जो कठोर वचन कहे हैं उनके लिए क्षमा करो।

धृतराष्ट्र-रूपी इन्द्र ने कहा—हे तपोधन, मैं इन्द्र हूँ। मैं यह हाथी लेने के लिए पृथिवी पर आया हूँ। अब मैं इस अपराध के कारण विनीत भाव से आपकी आज्ञा चाहता हूँ। आप जो आज्ञा देंगे उसका पालन मैं करूँगा।

गोतम ने कहा—इन्द्र, आप जिस हाथी को लेने आये हैं इसे मैंने पुत्र की तरह पाला है। यह सफ़ेद रङ्ग का हाथी का बच्चा दस वर्ष का है। इस निर्जन वन में केवल यही मेरे साथ रहता है। इस हाथी के सिवा और कोई मेरा सहायक नहीं है। अतएव आप यह हाथी मुझे दे दीजिए।

इन्द्र ने कहा—तपोधन, इस हाथी को पुत्र की तरह आपने पाला है। यह आपकी ही ओर देख रहा है। देखिए, यह आपके पास आकर अपनी सूँड़ से आपके पैर सूँघ रहा है। आप अपना हाथी लीजिए और मुझे आशीर्वाद दीजिए। आपको प्रणाम है।

गौतम ने कहा—देवराज, मैं सदा आपका कल्याण चाहता हूँ और आपकी पूजा किया करता हूँ। आपका दिया हुआ यह हाथी अब मुझे फिर मिला। अतएव आप भी मेरे कल्याण की कामना कीजिए।

६० "तपोधन ! आप विद्वान्, सत्यवादी महात्माओं में श्रेष्ठ हैं। मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ। आप अपने इस हाथी समेत मेरे साथ चलिए। आप अनन्तकाल तक शुभ लोकों में निवास करने योग्य हैं।" यह कहकर इन्द्र उस हाथी समेत महर्षि गौतम को अपने साथ लेकर देव-लोक को गये। हे धर्मराज, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस उपाख्यान को सुनेगा या पढ़ेगा
६३ वह निस्सन्देह महात्मा गौतम की तरह ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकेगा।

एक सौ तीन अध्याय

युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म का अनशन व्रत को महातप बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! आपने अनेक प्रकार के दान, शान्ति, सत्य, अहिंसा और अपनी स्त्री में सन्तोष के फल का विस्तार के साथ वर्णन किया है। अब यह बतलाइए कि श्रेष्ठ तपस्या क्या है।

भीष्म ने कहा—बेटा ! मनुष्य जैसी तपस्या करता है उसी के अनुसार उसे लोक प्राप्त होते हैं; किन्तु इस लोक में अनशन (उपवास) के समान दूसरी तपस्या नहीं है। मैं इस विषय में ब्रह्मा और भगीरथ का संवाद सुनाता हूँ। महात्मा भगीरथ शरीर त्यागकर देवलोक और गोलोक को लाँघकर ब्रह्मलोक को गये थे। एक बार ब्रह्माजी ने उनसे कहा—भगीरथ ! देवता, गन्धर्व और मनुष्य, कोई भी घोर तपस्या किये बिना इस लोक में नहीं आ सकता। तुम किस पुण्य से इस दुर्लभ लोक में आ गये ?

भगीरथ ने कहा—भगवन्, मैंने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके ब्राह्मणों को सोने की लाखों मुद्राएँ दी थीं। मैंने एक रात में और पाँच रात में समाप्त होनेवाले यज्ञ दस बार, ग्यारह रात में समाप्त होनेवाले यज्ञ ग्यारह बार और ज्योतिष्टोम यज्ञ सौ बार किये थे। सौ वर्ष तक गङ्गा-किनारे रहकर मैंने घोर तपस्या की और ब्राह्मणों को हज़ार खच्चरियाँ तथा बहुत सी कन्याएँ दान
१० की थीं। पुष्कर तीर्थ में ब्राह्मणों को एक लाख बार एक लाख घोड़े, दो लाख गायें, सुवर्ण-चन्द्र(हार ?) से अलङ्कृत एक हज़ार और सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित साठ हज़ार सुन्दरी कन्याएँ मैंने दी थीं। गोमव यज्ञ का अनुष्ठान करके बछड़े समेत दूध देती हुई दस अरब गायें और दुहने के लिए सोने तथा काँसे के बर्तन दान किये थे। सोमयज्ञ में दीक्षित होकर मैंने प्रत्येक ब्राह्मण को एक बार की ब्याई हुई दस-दस गायें और सौ-सौ रोहिणी गायें दान की थीं और बहुत सा दूध देती हुई सौ गायें दान की थीं। मैंने एक-एक बार ब्राह्मणों को वाह्लीक देश के

सफ़ेद एक लाख घोड़े और आठ करोड़ सोने की मुद्राएँ दी थीं। दस वाजपेय यज्ञ करके, सोने की मालाएँ पहने हुए श्यामकर्ण और हरिद्वर्ण सत्रह करोड़ घोड़े, सोने की मालाएँ पहने बड़े दाँतोंवाले सत्रह हज़ार हाथी और सोने के आभूषणों से सजे हुए घोड़ों समेत सत्रह हज़ार रथ
मैंने ब्राह्मणों को दान किये थे। इन्द्र के समान प्रभावशाली, सुवर्ण के हार पहने हुए, राजाओं को २१
जीतकर मैंने ब्राह्मणों की आज्ञा से उनको स्वाधीन कर दिया था। सब राजाओं को जीतकर, आठ राजसूय यज्ञ करके, प्रत्येक ब्राह्मण को मैंने गङ्गा की धारा से भी अधिक दक्षिणा दी थी। एक-एक ब्राह्मण को तीन-तीन बार, अनेक अलङ्कारों से विभूषित, दो हज़ार घोड़े और एक-एक सौ गाँव दिये थे। नियताहार होकर, मौन व्रत धारण करके मैंने शान्त होकर हिमवान् पर्वत पर गङ्गाजी के किनारे बहुत दिनों तक तपस्या की थी। हे पितामह, क्या इस तपस्या के प्रभाव से भी मैं इस लोक में न आ सकूँ ? फेंकने से जहाँ शम्या (सैला) गिरती थी वहाँ वेदी बनाकर अनेक यज्ञ, एक दिन में समाप्त होनेवाले यज्ञ, तेरह दिन में और बारह दिन में समाप्त होनेवाले पुण्डरीक यज्ञ करके मैंने देवताओं की पूजा की थी। ब्राह्मणों को सोने से सींग मढ़ाकर सफ़ेद रङ्ग के आठ हज़ार बैलों का और प्रत्येक बैल के साथ सोने की माला पहन रही एक-एक गाय का दान किया था। अनेक महायज्ञ करके ब्राह्मणों को बहुत से सोने, रत्न, धन-धान्य से समृद्ध
हज़ारों गाँवों और एक बार की ब्याई हुई बछड़े समेत दस हज़ार गायों का मैंने दान किया था। ३१
एक बार ग्यारह दिन में समाप्त होनेवाला यज्ञ, दो बार बारह दिन में समाप्त होनेवाला यज्ञ, सोलह बार आकर्षण यज्ञ और अनेक बार अश्वमेध यज्ञ मैंने किये थे। एक योजन विस्तृत, सुवर्ण-रत्न से विभूषित आम के पेड़ों से शोभित, वन मैंने ब्राह्मणों को दान किया था। क्रोधहीन होकर तीस वर्ष तक तुरायण व्रत का अनुष्ठान करके मैंने प्रतिदिन ब्राह्मणों को नव सौ गायें दान की थीं। एक दिन भी ऐसा नहीं गया, जिस दिन मैंने बैल का और दूध देती हुई गाय का दान न किया हो। तीस अग्निचयन, आठ सर्वमेध, सात नरमेध और एक हज़ार अठारह विश्वजित् यज्ञ मैं कर चुका हूँ। मैंने सरयू, गङ्गा, बाहुदा और नैमिष तीर्थ में दस लाख गोदान किये थे। किन्तु इन सब पुण्यों के फल से मुझे इस दुर्लभ लोक की प्राप्ति नहीं हुई। [मैंने केवल अनशन व्रत के प्रभाव से इस दुर्लभ ब्रह्मलोक को प्राप्त किया है।] पहले इन्द्र ने अनशन व्रत करके इसे गुप्त रक्खा था, उसके बाद शुक्राचार्य ने तपोबल से उसे प्राप्त करके प्रकट किया। मैंने जिस समय इस गुप्त
अनशन व्रत का आरम्भ किया था उसी समय हज़ारों महर्षि और ब्राह्मण मेरे पास आये। ४०
उन्होंने प्रसन्नता से मुझे आशीर्वाद दिया कि 'तुमको ब्रह्मलोक प्राप्त हो'। इस दुर्लभ लोक की प्राप्ति का यही कारण है। पवित्र अनशन व्रत का यही माहात्म्य है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, राजा भगीरथ के यों कहने पर ब्रह्माजी ने उनका यथोचित सम्मान किया था। अतएव तुम अनशन व्रत करके ब्राह्मणों की पूजा करना। ब्राह्मणों को

अन्न, वस्त्र और गोदान देकर सन्तुष्ट करना देवता और मनुष्य सबका कर्तव्य है। अतएव तुम लोभहीन होकर अनशन व्रत करके ब्राह्मणों की सेवा करो। ब्राह्मणों की कृपा से, क्या इस लोक
४५ में और क्या परलोक में, सर्वत्र सब काम सिद्ध होते हैं।

एक सौ चार अध्याय

आयु को बढ़ाने और नष्ट करनेवाले शुभाशुभ कर्मों का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! शास्त्र का वचन है कि पुरुष सौ वर्ष की आयुवाले और महापराक्रमी होकर जन्म लेते हैं; तो फिर अकाल में उनकी मृत्यु क्यों हो जाती है? तपस्या, ब्रह्मचर्य, जप, होम, औषध, कर्म, मन और वाणी का क्या सम्बन्ध है जिससे मनुष्य दीर्घायु, अल्पायु, धनवान् और यशस्वी होते हैं?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! मनुष्य जिस कारण दीर्घायु, अल्पायु, धनवान् और यशस्वी होते हैं उसको सुनो। मनुष्य केवल सदाचार के प्रभाव से दीर्घायु, धनवान् और दोनों लोकों में यशस्वी होते हैं। दुराचारी मनुष्य दीर्घायु नहीं हो सकता। जिसे अपने कल्याण की इच्छा हो उसे सदाचारी होना चाहिए। सदाचार से पापी मनुष्य पाप से छुटकारा पा जाता है। सदाचार धर्म का और सच्चरित्रता सज्जन का प्रधान लक्षण है। सज्जनों के आचरण को ही
८ सदाचार कहते हैं। जो मनुष्य धर्म और शुभ कर्म करता है उसको बिना ही देखे, केवल नाम सुनकर, लोग उसका हित करते हैं। जो मनुष्य नास्तिक, क्रियाहीन, वेद-विमुख, शास्त्रत्यागी, अधर्मी, दुराचारी और नियमहीन होता है और जो असवर्णा परस्त्री पर आसक्त रहता है उसे इस लोक में अल्पायु होकर अन्त को नरक में जाना पड़ता है। मनुष्य सुलक्षणहीन होने पर भी सदाचारी, श्रद्धावान्, ईर्ष्याहीन, सत्यवादी, सरलस्वभाव और क्रोधहीन होने से सौ वर्ष तक जी सकता है। जो मनुष्य हाथ से ढेले तोड़ता रहता है, जो नख से तिनके काटता है, जो दाँत से नख काटता है, जो हमेशा अशुद्ध रहता है और जो चञ्चल होता है, वह दीर्घजीवी नहीं होता। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में जागकर धर्म और अर्थ का विचार करे; फिर शौच आदि के उपरान्त स्नान करके प्रातःसन्ध्या और सायङ्काल मौन होकर सायंसन्ध्या करे। उदय और अस्त होते समय, ग्रहण के समय और मध्याह्नकाल में तथा जल में सूर्य की ओर न देखना चाहिए। प्रातःकाल और सायङ्काल सन्ध्यावन्दन करने से महर्षियों की आयु बढ़ी हुई थी। अतएव मौन होकर प्रातःकाल की और सायङ्काल की सन्ध्या करनी चाहिए। जो मनुष्य सन्ध्योपासन न करता हो
१ उससे धर्मात्मा राजा शूद्रों के काम करावे। किसी भी वर्ण का मनुष्य परस्त्री-गमन न करे। परस्त्री-गमन से बढ़कर आयु क्षीण करनेवाला दूसरा काम नहीं है। जो मनुष्य परस्त्री-गमन करता है उसे उतने हज़ार वर्ष तक नरक में रहना पड़ता है जितने उस स्त्री के शरीर में रोएँ होते

हैं। दिन के पहले पहर में ही केशों को सँवारे, अञ्जन लगावे, दतौन करे और देवताओं
की पूजा करे। मल-मूत्र को देखना या पैर से उसे छूना उचित नहीं। बड़े तड़के, दोपहर
और शाम के समय कहीं न जावे। न तो अपरिचित मनुष्य के साथ यात्रा करे, न शूद्र के
साथ और न अकेले हो। ब्राह्मण, गाय, राजा, वृद्ध, गर्भवती स्त्री, दुर्बल मनुष्य और बोझा लादे
हुए मनुष्य को मार्ग देना उचित है। राह में चलते समय परिचित वृक्षों और चौराहों को
दाहिनी ओर छोड़ना चाहिए। प्रातःकाल, सायङ्काल, दोपहर को, रात में और विशेषकर आधी-
रात के समय चौराहों पर न जावे। दूसरे के पहने हुए कपड़े और जूते न पहने। पैर के
ऊपर पैर न रक्खे। अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी और दोनों पक्षों की अष्टमी को स्त्री-प्रसङ्ग न
करे। वृथा मांस और पृष्ठ (वर्जित) मांस न खावे। दूसरों की निन्दा, चुगली और तिरस्कार
न करे। नीच मनुष्य का दान न ले। वचनरूपी बाण मुँह से निकलकर दूसरों के मर्म को ३०
छेद डालते हैं। उनसे पीड़ित मनुष्य दिन-रात बेचैन रहता है; बुद्धिमान् मनुष्य ऐसे वचन कभी
न कहे। कुल्हाड़ी से काटा हुआ वन फिर अङ्कुरित हो सकता है; किन्तु वचनरूपी बाण का घाव
कभी नहीं भरता। कर्णि, नालीक और नाराच आदि अस्त्र शरीर में लगने से तो निकाले जा
सकते हैं, किन्तु वचनरूपी शल्य का निकलना बहुत कठिन है। वचनरूपी शल्य जिसे लगता है
उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, मूर्ख, अपढ़, निन्दित, कुरूप, निर्धन और
निर्बल मनुष्य की हँसी न उड़ानी चाहिए। नास्तिकता, वेदों और देवताओं की निन्दा, अभि-
मान, विद्वेष और उग्रता कदापि न करे। कुपित होकर किसी पर लाठी तान देना या मार देना
अच्छा नहीं होता। पुत्र और शिष्य को शिक्षा के लिए ताड़ना दे। न तो ब्राह्मण की निन्दा करे
और न गिनकर नक्षत्र तथा तिथि बतावे। मल-मूत्र त्यागने और राह चलने के बाद तथा पढ़ने
और भोजन करने के पहले पैर अवश्य धो ले। जो वस्तु अपवित्र न हो, जो धोई गई हो और
जिसकी ब्राह्मण प्रशंसा करते हों उन्हीं तीन प्रकार की वस्तुओं को देवताओं ने ब्राह्मणों के काम में
लाने योग्य बतलाया है। हलुवा, कृसर (*खिचड़ी आदि, दो अन्न*), *मांस*, कचौड़ी और खीर
केवल अपने भोजन के लिए न बनावे। ये चीज़ें देवताओं के निमित्त बनाई जाती हैं। प्रतिदिन ४०
भिखारी को भीख दे, हवन करे और मौन होकर दतौन करे। सूर्योदय के बाद सोना उचित
नहीं। यदि सूर्योदय के बाद किसी दिन सो जाय तो प्रायश्चित्त करे। प्रातःकाल उठकर
माता, पिता, आचार्य और अन्य बड़े-बूढ़ों को प्रणाम करे। जिन वृक्षों की दतौन करना निषिद्ध
है उनकी दतौन न करे। पर्व के दिन दतौन न करे। उत्तर की ओर मुँह करके शौच करना
चाहिए। दतौन किये बिना देवपूजा न करे और पूजा किये बिना गुरु, वृद्ध, धार्मिक और विज्ञ
पुरुष के सिवा दूसरे मनुष्य के पास न जावे। मलिन दर्पण में मुँह न देखे। गर्भवती और
ऋतुमती स्त्री के साथ सम्भोग न करे। उत्तर और पश्चिम की ओर सिरहाना न करे; पूर्व और

दक्षिण की ओर सिर करके सोना अच्छा है। टूटी हुई या पुरानी खटिया पर न सोवे।
उजाले में शय्या को देखकर उस पर अकेला सीधा सोवे। किसी काम के लिए नास्तिक के साथ
५० कहीं न जावे। पैर से खींचकर आसन पर न बैठे। नङ्गे होकर जल में पैठना, रात में
स्नान करना, स्नान करने के बाद शरीर मलना, स्नान किये बिना चन्दन लगाना, स्नान करके
गीला वस्त्र हिलाना और प्रतिदिन गीला वस्त्र पहनना उचित नहीं। अपने हाथ अपने गले से
माला उतारना और दुपट्टे के ऊपर माला पहनना उचित नहीं। रजस्वला स्त्री से बातचीत भी न
करे। खेत और गाँव के किनारे तथा जल में मल-मूत्र त्यागना उचित नहीं है। भोजन करने
के पहले और पीछे तीन-तीन बार आचमन करे और भोजन करने के बाद दो बार मुँह धोवे।
पूर्व की ओर मुँह करके मौन होकर भोजन करे। भोजन की निन्दा न करे। भोजन के
बर्तन को बिलकुल ख़ाली न करके उसमें कुछ छोड़ देना चाहिए। भोजन करने के बाद अग्नि
का स्पर्श करे। जो मनुष्य पूर्व की ओर मुँह करके भोजन करता है वह दीर्घायु, जो दक्षिण की
ओर मुँह करके भोजन करता है वह यशस्वी, जो पश्चिम की ओर मुँह करके भोजन करता है
वह धनवान् और जो उत्तर की ओर मुँह करके भोजन करता है वह सत्यवादी होता है।
भोजन के बाद अग्नि का स्पर्श करके सब इन्द्रियाँ, सब अङ्ग, नाभि और हथेलियाँ धो डाले।
भूसे पर, भस्म पर, बालों और मनुष्य की हड्डियों पर कभी न बैठे। किसी मनुष्य के नहाये हुए
जल को न छुए। शान्ति, होम और गायत्री का जप करे। बैठकर भोजन करे। चलते-
६० फिरते कोई वस्तु न खावे। न तो खड़े-खड़े पेशाब करे और न राख या गोबर पर करे। पैर
धोकर गीले पैर भोजन तो करे, किन्तु गीले पैरों बैठना या सोना उचित नहीं। जो मनुष्य पैर
धोकर भोजन करता है वह सौ वर्ष तक जी सकता है। अपवित्र होकर अग्नि, गाय और ब्राह्मण,
-- इन तीन तेजस्वियों को स्पर्श न करे तथा सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की ओर न देखे। किसी वृद्ध
के आने पर युवक जब तक उठकर उनको प्रणाम नहीं करता तब तक उसके प्राण कण्ठगत रहते
हैं; जब उठकर प्रणाम कर लेता है तब उसके प्राण अपने स्थान पर आ जाते हैं। अतएव आग-
न्तुक वृद्ध को प्रणाम करके अपने हाथ से आसन देना चाहिए। उनके बैठ जाने पर हाथ जोड़-
कर उनके पास बैठे। जाने लगने पर पीछे-पीछे कुछ दूर तक उन्हें पहुँचा आवे। टूटे हुए आसन
पर बैठना और काँसे के फूटे बर्तन को काम में लाना अनुचित है। भोजन करते समय दूसरा
वस्त्र (अँगोछा) पास रक्खे। नङ्गा होकर स्नान और शयन न करे तथा जूठे मुँह न बैठे।
शास्त्र का वचन है कि सिर में प्राण स्थित हैं, अतएव अपवित्र अवस्था में सिर को न छूना चाहिए।
न तो किसी के सिर में मारे और न केश पकड़े। दोनों हाथों से सिर न खुजावे। स्नान
करते समय सिर पर बहुत ज़ोर से पानी न छोड़े। स्नान कर चुकने पर मालिश न करे। तिल
७० मिलाकर अन्न न खावे। जूठे मुँह पढ़ना-पढ़ाना वर्जित है। जिस समय आँधी आती हो या

किसी प्रकार की दुर्गन्ध आ रही हो उस समय मन में भी वेद का अध्ययन न करे। महात्मा यम ने कहा है कि जो ब्राह्मण जूठे मुँह वेद-शास्त्र पढ़ता है उसकी आयु और सन्तान का नाश हो जाता है। जो ब्राह्मण अनध्याय-काल में मूर्खतावश वेद पढ़ते हैं उनका वह पढ़ना निष्फल होता और आयु क्षीण हो जाती है, अतएव अनध्याय में वेद न पढ़े। सूर्य, अग्नि, गाय और ब्राह्मण की ओर मुँह करके या बीच रास्ते में पेशाब करनेवाले की आयु क्षीण हो जाती है। दिन में उत्तर की ओर और रात में दक्षिण की ओर मुँह करके मल-मूत्र त्यागने से आयु क्षीण नहीं होती। ब्राह्मण, क्षत्रिय और साँप, इन तीनों जातियों में तीक्ष्ण विष होता है; अतएव दीर्घायु चाहनेवाले को इन तीन जातियों की, निर्बल समझकर भी, अवज्ञा न करनी चाहिए। क्रुद्ध साँप आँखों से देखकर और कुपित क्षत्रिय तेज द्वारा मनुष्य को भस्म कर सकते हैं। ब्राह्मण क्रुद्ध होकर ध्यान और दृष्टि द्वारा वंश का नाश कर देते हैं। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य इन तीनों से सावधान रहे। गुरु के साथ विवाद न करे। गुरु क्रुद्ध हो जायँ तो यथोचित सम्मान
करके उनको प्रसन्न कर ले। यदि गुरु मिथ्यावादी हो तो भी उसकी निन्दा न करे। गुरु की ८०
निन्दा करनेवाले की आयु क्षीण हो जाती है। भला चाहनेवाला घर के पास अतिथिशाला न बनवावे; न तो घर के पास पैर धोवे और न वहाँ जूठन ही फेंके। सफ़ेद माला ही पहने। लाल माला, सफ़ेद कमल और सफ़ेद कमल की माला कभी न पहने। माथे में कुंकुम और मोथा नामक सुगन्ध लगावे। सोने की माला पहनने से कोई हानि नहीं। स्नान करके प्रतिदिन आर्द्र लेप का दान करे। बुद्धिमान् मनुष्य उलटे कपड़े न पहने। दूसरे के पहने हुए और समय के विरुद्ध कपड़े न पहनना चाहिए। सोने, बाहर निकलने और देवपूजा के लिए अलग-अलग वस्त्र हों। चन्दन, प्रियङ्गु, बेल, तगर और केसर आदि सुगन्धित वस्तुएँ शरीर में लगानी चाहिएँ। स्नान करके, अलङ्कृत होकर, उपवास करे। पर्वों के दिन ब्रह्मचारी रहे। किसी के साथ एक बर्तन में भोजन न करे। न तो रजस्वला स्त्री से रसोई बनवावे और न उसका छुआ दूध ही पीवे। याचकों
को भोजन दिये बिना भोजन न करे। अपवित्र मनुष्य के पास बैठकर या सज्जन की अवज्ञा ९०
करके भोजन न करे। जो वस्तुएँ धर्मशास्त्र में अभक्ष्य बतलाई गई हैं उनको, छिपाकर भी, न खावे। पीपल और बरगद के फल, सनई का शाक और गूलर के फल न खावे। बकरी, गाय और मोर का मांस, सूखा मांस और बासी अन्न खाना अति निन्दित है। हाथ में लेकर लवण और रात में दही तथा सत्तू न खावे। 'वृथा मांस' भी न खावे। सावधानी से केवल एक बार दिन में और एक बार रात में भोजन करे। न तो शत्रु के श्राद्ध में भोजन करे और न ऐसी वस्तु खावे जिसमें बाल पड़े हों। एक वस्त्र पहनकर, ऊँघता हुआ, खड़े होकर और पृथिवी पर खाने की वस्तु रखकर भोजन न करे। आसन पर बैठकर, मौन होकर, भोजन करे। पहले अतिथि को भोजन और जल देकर फिर भोजन करना चाहिए। पंक्ति में बैठकर वही भोजन करे जो

सबको परोसा जाय। कुटुम्बियों को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन कर लेना विष खाने
के समान है। सत्तू, पानी, खीर, दही, घी और शहद, ये वस्तुएँ किसी को जूठी न दे।
भोजन करते समय यह शङ्का न करे कि 'यह भोजन पचेगा या नहीं'। भोजन करने के बाद
१०० दही न पिये। भोजन करने के बाद मुँह धो डाले और दाहिने पैर के अँगूठे पर पानी छोड़
ले। भोजन के बाद आचमन करके सिर पर हाथ फेरने और अग्नि का स्पर्श करने से अपनी
जाति में श्रेष्ठता मिलती है। नाभि, हथेली और नाक आदि को पानी से धो डाले; किन्तु हाथों
को गीला रखकर न बैठे। अँगूठे का मूल स्थान ब्राह्मतीर्थ, कनिष्ठा अँगुली का अग्रभाग देवतीर्थ
और अँगूठे के पास की तथा बीच की अँगुली का मध्य भाग पितृतीर्थ कहलाता है। न तो
दूसरों की निन्दा करे, न अप्रिय वचन बोले और न दूसरों को क्रोध दिलावे। पतित मनुष्य के
साथ बैठना-उठना और बातचीत करना तो दूर रहा, उसका मुँह तक न देखे। दिन में सम्भोग
करना और रजस्वला स्त्री, कुमारी तथा कुलटा का संसर्ग करना अत्यन्त दूषित है। ब्राह्मण
आदि वर्णों को अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान द्वारा तीन बार आचमन और दो बार ओष्ठ धोकर
नाक आदि इन्द्रियों का स्पर्श करना चाहिए। तीन बार जल छिड़ककर वेद-विधि के अनुसार
१० देवकार्य और पितृकार्य करे। अब ब्राह्मणों की पवित्रता का विषय सुनो। ब्राह्मणों को भोजन
के पहले और पीछे तथा अन्यान्य शुभ कार्यों में ब्राह्मतीर्थ द्वारा आचमन करना चाहिए। थूकने
और छींकने के बाद तुरन्त आचमन कर लेने से ब्राह्मण पवित्र हो जाता है। बूढ़े, सजातीय,
दरिद्र और मित्र को अपने घर में ठहरावे। कबूतर, तोता और मैना को घर में पालना, तैल-
पायिक पक्षी की तरह, अशुभ नहीं है; बल्कि इनको घर में रखने से गृहस्थ का कल्याण होता
है। खद्योत, गिद्ध, जङ्गली कबूतर और भ्रमर घर के भीतर आ जायँ तो उसी समय शान्तिकर्म
करावे। महात्माओं की गुप्त बातें किसी पर प्रकट न करे। राजा, वैद्य, बालक, वृद्ध, नौकर,
भाई, ब्राह्मण, शरणागत और अपने सम्बन्धी मनुष्यों की स्त्री का संसर्ग करना निषिद्ध है।
बुद्धिमान् को ऐसे घर में रहना चाहिए जिसे अच्छे कारीगर ने ब्राह्मण की सलाह से बनाया हो।
सन्ध्या के समय पढ़ना, सोना और भोजन करना निषिद्ध है। रात में पितृकार्य करना, सत्तू
१२१ खाना, स्नान करना और भोजन के बाद केश सँवारना अच्छा नहीं। जूठी वस्तुएँ, बहुत अच्छी
क्यों न हों, फेंक देनी चाहिएँ। रात में छककर भोजन न करे। पक्षियों का वध न करे।
मोल लेकर मांस खावे; किन्तु वध करके मांस न खावे। अच्छे कुल में उत्पन्न सुलक्षणों से युक्त
वयस्था कन्या के साथ विवाह करे। वंश की रक्षा के लिए पुत्र उत्पन्न करके, ज्ञान और कुल-
धर्म की शिक्षा के निमित्त, उसे विद्वान् को सौंप दे। कन्या उत्पन्न हो तो उसका विवाह कुलीन
बुद्धिमान् मनुष्य के साथ कर दे। पुत्र का विवाह भी अच्छे घराने की कन्या के साथ करे
और उनकी जीविका का प्रबन्ध कर दे। सिर से स्नान करके देवकार्य और पितृकार्य करे।

जिस नक्षत्र में अपना जन्म हुआ हो उस नक्षत्र में श्राद्ध न करे। पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा, और मूल नक्षत्र में तथा अपने जन्म-नक्षत्र से उस दिन के नक्षत्र तक गिनकर नव का भाग देने पर यदि वह नक्षत्र पाँचवाँ पड़े तो उसमें श्राद्ध न करे। इनके सिवा ज्योतिष-शास्त्र में जिन नक्षत्रों में श्राद्ध करना निषिद्ध बतलाया गया है उन नक्षत्रों में श्राद्ध न करे। पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके हजामत बनवावे। निन्दा करना अधर्म है; अतएव न तो दूसरों
की निन्दा करे और न अपने को निन्द्य समझे। अङ्गहीन, अधिक अङ्गवाली, कुमारी, अपने ३०
गोत्र की और नाना के गोत्र की, बूढ़ी, संन्यासिनी, पतिव्रता, अपने से नीच, श्रेष्ठ वर्ण की और जिसका कुल न मालूम हो उस स्त्री से सहवास न करे। जो पिङ्गलवर्ण, कुष्ठ रोगवाली अथवा अङ्गहीन हो, जिसके कुल में किसी की देह पर सफ़ेद दाग़ हों और जो मिरगी रोगवाले या क्षय रोगवाले कुल में उत्पन्न हुई हो उस कन्या के साथ विवाह न करे। सुलक्षणा और सुन्दरी कन्या के साथ विवाह करे। अपने से श्रेष्ठ या अपने समान कुल में विवाह करना शास्त्र-सम्मत है। अग्नि स्थापित करके, वेद और ब्राह्मण के उपदेशानुसार, सब कर्म करे। स्त्रियों से ईर्ष्या न करे। अपनी भार्या की रक्षा भली भाँति करे। ईर्ष्या करने से आयु क्षीण होती है, अतएव मनुष्य ईर्ष्या कभी न करे। दिन में और सूर्योदय के बाद सोने से आयु क्षीण हो जाती है। प्रातःकाल सोना और रात में अपवित्र होकर सोना निषिद्ध है। परस्त्री-गमन श्रेयस्कर नहीं होता। हजा-
मत बनवाकर नहा लेना चाहिए। सन्ध्या के समय वेद का पाठ, भोजन और स्नान न करे। १४०
किसी काम को तत्काल न करके सोच-समझ करके करे। स्नान करके ब्राह्मणों की पूजा, देवताओं को नमस्कार और गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए। बिना बुलाये न जावे। यज्ञ देखने के लिए बिना बुलाये भी यज्ञस्थल में चला जाय। अकेले विदेश को जाना और रात में चलना अच्छा नहीं होता। किसी काम के लिए घर से बाहर जावे तो सन्ध्या होने के पहले ही लौट आवे। पिता-माता आदि की आज्ञा का पालन करने में आगा-पीछा न करे। वेद पढ़ना, धनुर्वेद सीखना, हाथी और घोड़े पर सवारी करना और रथ हाँकने में निपुणता प्राप्त करना क्षत्रियों का कर्तव्य है। जिस राजा का शत्रु, भृत्य और कुटुम्बियों पर दबदबा रहता है और जो अपनी प्रजा को प्रसन्न रखता है उसकी कभी हानि नहीं होती। तर्कशास्त्र, शब्द-शास्त्र, गन्धर्वशास्त्र और चौंसठ कलाओं का सीखना तथा पुराण, इतिहास, आख्यायिका और महात्माओं के जीवन-चरित सुनना राजा का कर्तव्य है। रजस्वला स्त्री के साथ भोग करना या
उसे अपने पास बुलाना उचित नहीं। ऋतुस्नान के दूसरे दिन भार्या के साथ भोग करने से ५०
कन्या और उसके दूसरे दिन भोग करने से पुत्र की उत्पत्ति होती है। सजातीयों, सम्बन्धियों और मित्रों का हमेशा आदर करे। यज्ञ करे और यथाशक्ति दक्षिणा दे। इन धर्मों का पालन करके गृहस्थ मनुष्य वृद्धावस्था में वानप्रस्थ आश्रम में चला जावे।

हे युधिष्ठिर, जिन नियमों का पालन करने से आयु बढ़ती है उनका वर्णन मैंने संक्षेप में कर दिया। इनके सिवा और जो नियम रह गये हैं उन्हें तुम विद्वान् ब्राह्मणों से पूछ लेना। सारांश यह कि आचरण से ही मनुष्यों की कीर्ति और आयु बढ़ती है। अतएव मनुष्य अनाचार से दूर रहे। आचरण को शास्त्रों ने सबसे श्रेष्ठ माना है। सदाचार से धर्म उत्पन्न होता है और धर्म के प्रभाव से आयु की वृद्धि होती है। मैंने तुमको जो उपदेश दिया है इससे आयु और यश की वृद्धि होती तथा कल्याण होता है। इसके प्रभाव से मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर
१५७ सकता है। प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने कृपा करके सब वर्णों को यह उपदेश दिया था।

एक सौ पाँच अध्याय

भाइयों में परस्पर उचित बर्ताव का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, बड़े भाई को छोटे के साथ और छोटे भाई को बड़े के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, तुम भीमसेन आदि के बड़े भाई हो अतएव भीम आदि के साथ वैसा ही बर्ताव करो जैसा गुरु शिष्य के साथ करता है। बड़े भाई के नासमझ होने पर छोटे भाई उसके अधीन नहीं रह सकते। बड़े भाई के दीर्घदर्शी होने पर छोटे भाई भी दीर्घदर्शी होते हैं। छोटे भाइयों से भूल-चूक हो जाय तो बड़ा भाई एकाएक सख़्ती न करे। छोटे भाई कुमार्गगामी हों तो बड़ा भाई किसी बहाने उनके आचरण को सुधारने का यत्न करे। यदि बड़ा भाई प्रकट रूप से छोटे भाई को दबाने का इरादा करता है तो उसके शत्रु, बुरी सलाहें देकर, भाइयों में फूट डाल देते हैं। अतएव सावधान होकर छोटे भाइयों को दुराचार से हटाना चाहिए। कुल के बनने-बिगड़ने का उत्तरदायित्व बड़े भाई पर ही है। जो बड़ा होकर छोटे भाइयों के साथ चालाकी करता है वह न तो बड़ा कहलाने योग्य है और न ज्येष्ठांश पाने का उसे कोई अधिकार है। वह तो राजा के द्वारा दण्ड पाने योग्य है। जो मनुष्य धूर्तता करता है उसको घोर पाप लगता है। धूर्त मनुष्य का जन्म, बेत के फूल के समान, निरर्थक है। जिस कुल में पापी का जन्म होता है उस कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती और चारों ओर अकीर्ति फैलती है। कुलाङ्गार से वंश का सत्यानाश हो जाता है। छोटे भाइयों के कुमार्गगामी होने पर बड़ा भाई पैतृक धन में से
१० उनको हिस्सा न दे; किन्तु वे सच्चरित्र हों तो उनका हिस्सा अवश्य दे दे। बड़ा भाई यदि पैतृक धन की सहायता लिये बिना स्वयं धन पैदा करे और अपने पैदा किये हुए धन में छोटे भाइयों को हिस्सा न दे तो वह पाप का भागी नहीं होता। यदि पिता की जीवित अवस्था में ही सब भाई पैतृक धन बाँट लेना चाहें तो पिता उन सबको बराबर-बराबर हिस्सा दे दे। बड़ा भाई पापी हो तो भी छोटे भाइयों को उसका सत्कार करना चाहिए। स्त्री अथवा छोटे भाई

अनाचारी हों तो भी उनके साथ भलाई करनी चाहिए। धर्मज्ञ पण्डितों ने दूसरों के साथ भलाई करना धर्म बतलाया है। आचार्य से दसगुना उपाध्याय, उपाध्याय से दसगुना पिता और पिता तथा सारे संसार से दसगुना माता का गौरव अधिक है। माता के समान पूज्य दूसरा नहीं है। इसलिए मनुष्य को सदैव माता की सेवा करनी चाहिए। पिता का देहान्त हो जाने पर बड़ा भाई, पिता के समान होकर, छोटे भाइयों का पालन करता है; अतएव छोटे भाई बड़े भाई की आज्ञा उसी तरह मानें जिस तरह पिता की मानते थे और उसी तरह उसका मान करें। पिता और माता से शरीर की उत्पत्ति होती है किन्तु आचार्य से अजर और अमर ज्ञान प्राप्त होता है, अतएव आचार्य का सम्मान अवश्य करे। बड़ी बहन, बड़े भाई की स्त्री और
जिसने बालकपन में अपना दूध पिलाया हो, ये सब माता के समान हैं। २०

एक सौ छः अध्याय

उपवास के फल का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, ब्राह्मण आदि चारों वर्ण और म्लेच्छ जाति के लोग उपवास क्यों करते हैं? ब्राह्मण और क्षत्रिय को व्रत आदि नियमों के पालन करने की विधि बतलाई गई है; किन्तु उपवास करने से क्या फल मिलता है? नियम का पालन और सद्गति प्राप्त करने के एकमात्र उपाय, परम पुण्यजनक, उपवास करने से मनुष्य को कौन सा फल मिलता है? किस प्रकार के कर्म करने से मनुष्य पाप से मुक्त होकर धार्मिक होता है? किस प्रकार उसे स्वर्ग और पुण्य प्राप्त होता है? उपवास करके किस वस्तु का दान करना चाहिए और किस प्रकार के धर्म का पालन करके मनुष्य सुखी हो सकता है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, उपवास करने से जो श्रेष्ठ फल मिलता है वह मैं सुन चुका हूँ। इस समय तुमने जो उपवास की विधि मुझसे पूछी है वही मैंने, प्राचीन समय में, तपस्वी अङ्गिरा
से पूछी थी। उन्होंने बतलाया था कि गृहस्थ ब्राह्मण और क्षत्रिय को तीन रात उपवास करना १०
चाहिए। वे दो रात अथवा एक रात का उपवास भी कर सकते हैं। वैश्य और शूद्र को एक रात का उपवास करना चाहिए। मनुष्य जितेन्द्रिय होकर पञ्चमी, षष्ठी और पूर्णिमा को केवल एक बार भोजन करने से क्षमायुक्त, रूपवान् और शास्त्रज्ञान-सम्पन्न होता है। वह वंशहीन और दरिद्र नहीं होता, देवपूजा में उसकी श्रद्धा होती है और वह हमेशा कुलीन ब्राह्मणों को भोजन कराता है। जो मनुष्य अष्टमी और कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उपवास करता है वह नीरोग और बलवान् होता है। जो मनुष्य अगहन महीने में एक बार भोजन करता है और भक्तिपूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह रोग और पाप से मुक्त हो जाता है। उसका सब विषयों में कल्याण होता और वह धन-धान्य से परिपूर्ण तथा बलवीर्य-सम्पन्न होता है। जो पौष

२० मास में एक बार भोजन करता है वह भाग्यवान्, प्रियदर्शन और यशस्वी होता है। जो माघ
महीने में एक बार भोजन करता है वह समृद्ध वंश में जन्म पाता और अपनी जाति के मनुष्यों में
प्रधान होता है। जो मनुष्य फाल्गुन मास में एक बार भोजन करता है वह स्त्रियों का परम
प्रिय होता है और स्त्रियाँ हमेशा उसके वश में रहती हैं। जो चैत्र मास में एक बार भोजन
करता है वह समृद्ध वंश में जन्म लेता है। जो जितेन्द्रिय होकर एक बार भोजन करके वैशाख
का महीना बिता देता है वह सजातीय लोगों में श्रेष्ठता प्राप्त करता है। जो मनुष्य ज्येष्ठ मास
में एक बार भोजन करता है वह ऐश्वर्यवान् होता है। आषाढ़ में एक बार भोजन करनेवाला
धन-धान्य-सम्पन्न होता है और उसके बहुत से पुत्र होते हैं। जो श्रावण मास में एक बार भोजन
करता है वह जिस देश में रहता है वहीं प्रभुत्व जमा लेता है और उसके द्वारा उसके सजातीय लोग
समृद्धिशाली होते हैं। जो भाद्र मास में एक बार भोजन करता है उसे गोधन-रूप स्थिर सम्पत्ति
मिलती है। आश्विन मास में एक बार भोजन करनेवाला पवित्र होता है और उसके अनेक पुत्र
तथा वाहन होते हैं। जो मनुष्य कार्तिक मास में एक बार भोजन करता है उसके बहुत सी
३० स्त्रियाँ होती हैं और वह शूर-वीर तथा यशस्वी होता है। यह मैंने प्रत्येक महीने के उपवास का
फल वर्णन किया। अब तिथियों के नियम सुनो।

जो मनुष्य एक पक्ष का अन्तर देकर दूसरे पक्ष में एक बार भोजन करता है वह गो-सम्पन्न
और बहुपुत्रयुक्त होता है। उसके अनेक स्त्रियाँ होती हैं। जो मनुष्य बारह वर्ष तक प्रत्येक
महीने तीन रात का उपवास करता है वह निर्विघ्न गणाधिपत्य प्राप्त करता है। इन नियमों का
पालन बारह वर्ष तक करना चाहिए। जो मनुष्य दिन में एक बार और रात में भी एक बार
भोजन करता है तथा अहिंसक रहकर होम आदि करता रहता है वह छः वर्ष में सिद्धि प्राप्त कर
सकता है। उसे अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है। वह रजोगुणहीन होकर नृत्य-गीत
से निनादित अप्सराओं के लोक में हज़ारों स्त्रियों के साथ विहार करता और तपाये हुए सोने के
रङ्ग के विमान पर सवार होता है। वह हज़ार वर्ष तक ब्रह्मलोक में निवास करता है और
उसके बाद फिर पृथिवी पर आकर महत्त्व प्राप्त करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक एक बार
भोजन करता है, उसे यज्ञ करने का फल मिलता है और वह दस हज़ार वर्ष स्वर्ग में निवास
४० करके फिर पृथिवी पर जन्म लेकर गौरव प्राप्त करता है। जो मनुष्य अहिंसानिरत, सत्यवादी
और जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष तक तीन दिन उपवास करके चौथे दिन भोजन करता है उसे
वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है और वह दस हज़ार वर्ष स्वर्ग में निवास करता है। जो एक
वर्ष तक पाँच दिन उपवास करके छठे दिन भोजन करता है वह अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता
है और चक्रवाकयुक्त विमान पर सवार होकर स्वर्ग में जाकर चालीस हज़ार वर्ष तक सुख भोगता
है। जो मनुष्य एक वर्ष तक सात दिन उपवास करके आठवें दिन भोजन करता है उसे गोमेध

यज्ञ करने का फल मिलता है और वह हंस-सारस-युक्त विमान पर सवार होकर स्वर्गलोक को जाता है और वहाँ पचास हज़ार वर्ष तक रहता है। जो मनुष्य एक पक्ष उपवास करके दूसरे पक्ष में भोजन करता है वह वर्ष भर में छः मास का उपवास कर लेता है। वह साठ हज़ार वर्ष तक स्वर्ग में निवास करके वीणा और बाँसुरी का शब्द सुनकर निद्रा त्यागता है। जो मनुष्य वर्ष में एक महीने केवल जल पीकर रहता है उसे विश्वजित् यज्ञ का फल मिलता है; वह सिंह बाघ आदि हिंसक जीवों से युक्त विमान पर सवार होकर सत्तर हज़ार वर्ष तक स्वर्गलोक में
रहता है। एक मास से अधिक उपवास किसी को न करना चाहिए। जो मनुष्य नीरोग ५१
होकर प्रसन्नता से ये सब उपवास करता है वह पग-पग पर यज्ञ का फल पाता है और हंसयुक्त विमान पर स्वर्ग को जाकर एक लाख वर्ष तक अप्सराओं के साथ विहार करता है। जो मनुष्य रोगी और पीड़ित होने पर भी ये सब उपवास करता है वह हज़ार हंसों से युक्त विमान पर सवार होकर स्वर्ग को जाता है और वहाँ अप्सराओं के नूपुर और करधनी के शब्दों को सुनकर निद्रा त्यागता है। स्वर्ग चाहनेवाला मनुष्य इस लोक में दुर्बल होने पर बलवान्, रोगी होने पर औषध का सेवन, घायल होने पर चङ्गे होने का उपाय करने, क्रुद्ध होने पर प्रसन्न और दुखी होने पर धन आदि के द्वारा सुखी होने की इच्छा नहीं करता। इसी से वह शरीर त्यागने के बाद देवलोक में हज़ारों सुन्दरियों के साथ सुनहले रङ्ग के विमान पर सवार होकर विचरता है और
अलङ्कृत, विशुद्धचित्त, स्वस्थ, सफल-मनोरथ तथा पापहीन होकर परम सुख भोगता है। जो ६१
मनुष्य भोजन किये बिना प्राण त्यागता है, उसके शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने हज़ार वर्ष तक वह स्वर्ग में निवास करता है और दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी, वैदूर्य-मणि-खचित, पताका से शोभित, वीणा मुरज और दिव्य घण्टा के शब्दों से परिपूर्ण विमान पर सवार होकर भ्रमण करता है। वेद से श्रेष्ठ कोई शास्त्र नहीं है; माता के समान श्रेष्ठ गुरु, धर्म से बढ़कर परम लाभ, उपवास से बढ़कर तप और इस लोक में तथा स्वर्ग में ब्राह्मण से बढ़कर पवित्र कोई नहीं है। उपवास के प्रभाव से देवता स्वर्ग के अधिकारी हुए हैं और उपवास के प्रभाव से ही ऋषियों ने सिद्धि प्राप्त की है। महर्षि विश्वामित्र ने देवताओं के हज़ार वर्ष तक एक बार भोजन किया था, इसी के प्रभाव से वे ब्राह्मण हुए हैं। महर्षि च्यवन, जमदग्नि, वसिष्ठ, गोतम और भृगु, इन क्षमाशील महात्माओं ने उपवास के ही प्रभाव से स्वर्गलोक प्राप्त किया है। यह उपवास का विषय महर्षि अङ्गिरा ने अन्य महर्षियों को बतलाया था। जो मनुष्य दूसरों को उपवास-व्रत की शिक्षा देता है उसे कभी कोई दुःख नहीं मिलता। हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य अङ्गिरा की बतलाई हुई इस उपवास-विधि को पढ़ता या सुनता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, उसका मन दूषित नहीं होता,
वह पशु-पक्षी आदि की भाषा समझ सकता है और उसकी कीर्ति होती है। ७२

एक सौ सात अध्याय

यज्ञ न कर सकने योग्य दरिद्रों के लिए यज्ञ-तुल्य फल देनेवाले उपवास की विधि

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आपने जिन यज्ञों का वर्णन किया है उनको दरिद्र मनुष्य नहीं कर सकता। गुणवान् राजा या राजपुत्र ही बहुविध सामग्री एकत्र करके यज्ञ कर सकता है। अतएव उस नियम का वर्णन कीजिए जिसका अनुष्ठान करके दरिद्र मनुष्य, राजा के किये हुए, यज्ञ के समान फल प्राप्त कर सकें।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, महर्षि अङ्गिरा ने कहा है कि उपवास करने से यज्ञ के समान फल मिलता है। जो मनुष्य हिंसा न करके नित्य होम करता हुआ प्रतिदिन केवल एक बार दिन में और एक बार ही रात में भोजन करता है वह छः वर्ष में सिद्ध हो जाता है। वह तपाये हुए सोने के सदृश चमकीले विमान पर सवार होकर ब्रह्मलोक को जाता है और वहाँ अप्सराओं के साथ एक पद्म वर्ष तक रहता है। जो मनुष्य क्षमाशील, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, दानशील, ब्राह्मणों का भक्त और ईर्ष्याहीन होकर तथा अपनी पत्नी में सन्तुष्ट रहकर लगातार तीन वर्ष तक प्रतिदिन केवल एक बार भोजन करता है उसे अग्निष्टोम और बहुसुवर्ण यज्ञ का
११ फल मिलता है। इन्द्र उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं। वह हंस-युक्त दिव्य विमान पर सवार होकर श्रेष्ठ लोक को जाता है और वहाँ दो पद्म वर्ष तक अप्सराओं के साथ रहता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक एक दिन उपवास करके दूसरे दिन एक ही बार भोजन करता है और प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अग्नि में आहुति देता है उसे अतिरात्र यज्ञ करने का फल मिलता है; वह हंस-सारस-युक्त दिव्य विमान पर सवार होकर इन्द्रलोक को जाकर वहाँ अप्सराओं के साथ निवास करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक दो दिन उपवास करके तीसरे दिन केवल एक बार भोजन करता है और प्रातःकाल उठकर अग्नि में आहुति देता रहता है वह अतिरात्र यज्ञ का फल पाता है। वह हंस-मयूर-युक्त विमान पर सवार होकर सप्तर्षि-लोक को जाकर वहाँ तीन पद्म वर्ष तक अप्सराओं के साथ रहता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक तीन दिन उपवास करके चौथे दिन केवल एक बार भोजन करता और प्रतिदिन अग्नि में आहुति देता है उसे वाजपेय यज्ञ
२० करने का फल मिलता है। वह इन्द्रकन्या के साथ दिव्य विमान पर सवार होकर इन्द्रलोक में जाकर एक कल्प तक इन्द्र की क्रीड़ा देखता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक हिंसा-द्वेष आदि पापों से मुक्त होकर लोभहीन, सत्यवादी और ब्राह्मण-भक्त रहकर चार दिन उपवास करके पाँचवें दिन केवल एक बार भोजन करता है और प्रतिदिन अग्नि में आहुति देता है उसे द्वादशाह यज्ञ का फल मिलता है और वह सूर्य के समान चमकीले, सफ़ेद, हंस-युक्त, सुवर्णमय दिव्य विमान पर सवार होकर, स्वर्ग में जाकर, इक्यावन पद्म वर्ष तक वहाँ निवास करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक त्रिकाल-स्नान करके असूयाहीन और ब्रह्मचारी होकर पाँच दिन उपवास करने के बाद

छठे दिन केवल एक बार मौन होकर भोजन करता और प्रतिदिन अग्नि में आहुति देता है वह
अति श्रेष्ठ गोमेध यज्ञ का फल पाता है और हंस-मयूर-युक्त, अग्नि के समान तेजस्वी, सुवर्णमय दिव्य
विमान पर सवार होकर स्वर्ग में जाकर दो महापद्म, अठारह पद्म, एक हज़ार तीन सौ करोड़,
पचास अयुत और सौ रीछों के चमड़ों पर जितने रोएँ होते हैं उतने वर्ष तक वहाँ निवास करके
अप्सराओं के साथ शय्या पर सोता और उनके नूपुर तथा करधनी के शब्दों को सुनकर जागता
है। जो मनुष्य ब्रह्मचारी होकर माला, चन्दन और मधु-मांस आदि का त्याग करके एक वर्ष ३१
तक छः दिन उपवास करने के बाद सातवें दिन केवल एक बार भोजन करता और प्रतिदिन अग्नि
में आहुति देता है वह बहुसुवर्ण यज्ञ करने का फल पाता है। देवलोक और इन्द्रलोक में
असंख्य वर्षों तक निवास करके वह देवकन्याओं से सम्मानित होता है। जो मनुष्य क्षमा-
शील होकर एक वर्ष में सात दिन उपवास करके आठवें दिन एक बार भोजन करता है और
प्रतिदिन देवताओं की पूजा करके अग्नि में आहुति देता है उसे पौण्डरीक यज्ञ का फल मिलता
है। वह कमलवर्ण दिव्य विमान पर सवार होकर देवलोक को जाकर हाव-भाव दिखलाने-
वाली नवयुवतियों के साथ विहार करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक आठ दिन उपवास
करके नवें दिन भोजन करता है और प्रतिदिन अग्नि में आहुति देता है उसे हज़ार अश्व-
मेध यज्ञों का फल मिलता है। वह पुण्डरीक के सदृश सफ़ेद दिव्य विमान पर सवार होकर ४०
सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विनी, दिव्य मालाओं से अलङ्कृत, रुद्रलोकवासिनी अप्सराओं
के साथ रुद्रलोक को जाकर वहाँ एक कल्प एक करोड़ एक लाख अठारह हज़ार वर्ष तक परम
सुख से रहता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक नव दिन उपवास करके दसवें दिन भोजन
करता है और प्रतिदिन अग्नि में आहुति देता है वह हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता
है। वह नीले और लाल कमल के सदृश, स्फटिक के खम्भों से युक्त, वेदी-सम्पन्न, विचित्र मणि-
मालाओं से अलङ्कृत, शङ्खध्वनि से परिपूर्ण, हंस-सारस-युक्त दिव्य विमान पर सवार होकर देवलोक
को जाता है और वहाँ रूपवती अप्सराओं के साथ सुखपूर्वक विहार करता है। जो मनुष्य
एक वर्ष में दस दिन उपवास करके ग्यारहवें दिन केवल घी (हवि) खाता है और प्रतिदिन
अग्नि में आहुति देता तथा कभी परस्त्री-गमन करने की इच्छा तक नहीं करता और माता-पिता
का हित करने के लिए भी झूठ नहीं बोलता उसे हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। ५०
वह विमान पर स्थित देवदेव महादेव का साक्षात्कार करता है और हंसयुक्त दिव्य विमान पर
सवार होकर रूप-लावण्यवती अप्सराओं के साथ रुद्रलोक में जाकर अनन्त काल तक विहार
करता तथा प्रतिदिन भगवान् रुद्र को प्रणाम करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक ग्यारह दिन
उपवास करके बारहवें दिन घी खाता है उसे सर्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और वह
द्वादश आदित्यों के समान चमकीले दिव्य विमान पर सवार होकर ब्रह्मलोक को जाकर मणि,

मोती और मूँगे जड़े हुए हंस-मयूर-चक्रवाक-युक्त, स्त्रियों और पुरुषों से परिपूर्ण, दिव्य भवन में
बहुत दिनों तक निवास करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक बारह दिन उपवास करके तेरहवें
६० दिन घी खाता है उसे देवसत्र नामक यज्ञ का फल मिलता है। वह देवकन्याओं से परिपूर्ण,
अनेक रत्नों से विभूषित, सुवर्णमय दिव्य विमान पर सवार होकर दिव्य गन्धयुक्त पवित्र वायु-
लोक में जाकर अनन्त काल तक भेरी और पणव आदि बाजों के शब्द, गन्धर्वों के गान और
अप्सराओं की सेवा से अति प्रसन्न रहता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक तेरह दिन उपवास
करके चौदहवें दिन घी खाता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और वह रूप-लावण्यवती
दिव्य आभूषणों से विभूषित देवकन्याओं के साथ दिव्य विमान पर सवार होकर इन्द्रलोक को
जाता है। वहाँ अनन्त काल तक निवास करके अप्सराओं के, राजहंस के समान, कण्ठस्वर
तथा उनकी मेखला और नूपुर के शब्दों को सुनकर जागता है। जो मनुष्य एक वर्ष में चौदह
दिन उपवास करके पन्द्रहवें दिन केवल एक बार भोजन करता है और प्रतिदिन अग्नि में आहुति
७० देता है उसे एक हज़ार राजसूय यज्ञ करने का फल मिलता है। वह हंस-मयूर-युक्त, एक खम्भवाले,
सप्तवेदि-सम्पन्न, सहस्रपताका-युक्त, सुवर्णमय, मणियों मोतियों और मूँगों से जड़े हुए दिव्य विमान
पर सवार होकर दिव्य आभूषणों से विभूषित गाती हुई दिव्य अप्सराओं के साथ देवलोक को
जाता है और वहाँ एक हज़ार युग तक निवास करता है। उस लोक में गैंड़ा और हाथी उसके
वाहन होते हैं। जो मनुष्य पन्द्रह दिन उपवास करके सोलहवें दिन केवल एक बार भोजन
करता है उसे सोम यज्ञ का फल मिलता है। वह सुन्दरी स्त्रियों के साथ चन्द्रलोक में असंख्य
वर्षों तक विहार करता है और दिव्य गन्ध लगाकर अपनी इच्छा के अनुसार विचरता है। जो
मनुष्य सोलह दिन उपवास करके सत्रहवें दिन केवल घी खाता है और प्रतिदिन अग्नि में आहुति
देता है उसे वरुण, इन्द्र, रुद्र, वायु, और शुक्र का तथा ब्रह्मदेव का लोक प्राप्त होता है। वहाँ देव-
८० कन्याएँ आसन देकर उसकी सेवा करती हैं। वह वहाँ भूर्भुव नाम के देवर्षि और विश्वरूप का दर्शन
करता है। जब तक आकाश में सूर्य और चन्द्रमा विद्यमान रहेंगे तब तक वह अमृत पान करके
बत्तीस प्रकार के रूप धारण करनेवाली, दिव्य आभूषणों से विभूषित, देवकन्याओं के साथ सुख-
पूर्वक विहार करेगा। जो मनुष्य सत्रह दिन उपवास करके अठारहवें दिन एक बार भोजन
करता है वह सिंह-बाघ आदि से युक्त, मेघ के समान गम्भीर शब्दवाले, विमान पर सवार होकर
भूर्भुव आदि सप्तलोकों में भ्रमण और अमृत पान करके एक हज़ार कल्प तक देवकन्याओं के
साथ विहार करता है। सुसज्जित रथ पर सवार देवकन्याएँ और स्तुति-पाठ करते हुए वन्दी-
गण उसके पीछे चलते हैं। जो मनुष्य एक वर्ष में अठारह दिन उपवास करके उन्नीसवें दिन
एक बार भोजन करता है उसे भी भूर्भुव आदि सप्तलोकों के दर्शन होते हैं। वह गन्धर्वों का
गाना सुनता हुआ सूर्य के समान चमकीले विमान पर सवार होकर, दिव्य वस्त्र पहनकर, अप्स-

राओं के साथ श्रेष्ठ लोक को जाता है और वहाँ दस करोड़ वर्ष तक देवकन्याओं के साथ सुख-
पूर्वक विहार करता है। जो मनुष्य मांस-परित्यागी, ब्रह्मचारी, सर्वभूतहितैषी, सत्यवादी और ९०
व्रतधारी होकर एक वर्ष तक उन्नीस दिन उपवास करके बीसवें दिन एक बार भोजन करता है
वह अति विस्तीर्ण आदित्यलोक को जाता है। दिव्य माला और दिव्य गन्ध धारण करनेवाले
गन्धर्व और अप्सरागण सुवर्णमय दिव्य विमान लेकर उसके पीछे चलते हैं। जो मनुष्य एक
वर्ष तक बीस दिन उपवास करके इक्कीसवें दिन एक बार भोजन और प्रतिदिन हवन करता है
वह दिव्य विमान पर सवार होकर परम सुख से देवकन्याओं के साथ विहार करता हुआ शुक्र,
इन्द्र, वायु और अश्विनीकुमार आदि के लोकों को जाता है। जो मनुष्य ईर्ष्याहीन, हिंसा-परि-
त्यागी, सत्यवादी होकर एक वर्ष तक इक्कीस दिन उपवास करके बाईसवें दिन एक बार भोजन
और प्रतिदिन हवन करता है वह कामचारी होकर, दिव्य विमान पर चढ़कर, वसुलोक को
जाता है। वहाँ परम सुख से सुधा-भोजन और देवकन्याओं के साथ विहार करता है। जो
मनुष्य एक वर्ष तक बाईस दिन उपवास करके तेईसवें दिन केवल एक बार भोजन करता है वह
कामचारी होकर—दिव्य विमान पर चढ़कर—अप्सराओं के साथ वायु, शुक्र और रुद्र के लोक में
जाकर देवकन्याओं के साथ विहार करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक तेईस दिन उपवास १०१
करके चौबीसवें दिन घी खाता है और प्रतिदिन अग्नि में आहुति देता है वह दिव्य माला, दिव्य
वस्त्र और दिव्य गन्ध धारण करके अनन्त काल तक प्रसन्नता से आदित्यलोक में निवास करता और
हंसयुक्त सुवर्णमय दिव्य विमान पर सवार होकर अयुत सहस्र देवकन्याओं के साथ विहार करता है।
जो मनुष्य एक वर्ष तक चौबीस दिन उपवास करके पचीसवें दिन एक बार भोजन करता है वह दिव्य
विमान पर सवार होकर देवलोक को जाकर वहाँ हज़ार कल्प तक सुधा-पान करता और सैकड़ों
अप्सराओं के साथ सुख भोगता है। सिंह-बाघ आदि चिह्नों से युक्त, सुवर्णमय मेघ के समान
गम्भीर शब्दवाले, दिव्य रथों पर सवार देवकन्याएँ उसके पीछे चलती हैं। जो मनुष्य एक वर्ष
तक पचीस दिन उपवास करने के बाद छब्बीसवें दिन एक बार भोजन करता है और जितेन्द्रिय
तथा निःस्पृह होकर अग्नि में आहुति देता है वह स्फटिक-निर्मित, अनेक रत्नों से अलंकृत, दिव्य
विमान पर सवार होकर सप्तमरुत् और अष्टवसु के लोक को जाता है। वहाँ गन्धर्वों और ११
अप्सराओं से सम्मानित होकर देवताओं के दो हज़ार वर्ष तक सुखपूर्वक निवास करता है। जो
मनुष्य एक वर्ष तक छब्बीस दिन उपवास करने के बाद सत्ताईसवें दिन एक बार भोजन और
प्रतिदिन हवन करता है वह श्रेष्ठ फल पाता और देवलोक में सम्मानित होता है। वह दिव्य
विमान पर सवार होकर स्वर्ग को जाता है। वहाँ अनन्त काल तक सुधा-पान और सुन्दरी
स्त्रियों के साथ विहार करता है। जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष तक सत्ताईस दिन
उपवास करने के बाद अट्ठाईसवें दिन एक बार भोजन करता है वह सूर्य के समान तेजस्वी होता

है और सूर्य-सदृश दिव्य विमान पर सवार होकर देवलोक को जाकर अयुत शत कल्प तक दिव्य
१२० आभूषणों से विभूषित सुन्दरियों के साथ परम सुख से विहार करता है। जो मनुष्य सत्यपरायण
होकर एक वर्ष तक अट्ठाईस दिन उपवास करने के बाद उन्तीसवें दिन एक बार भोजन करता है
वह वसु, मरुत्, साध्य, रुद्र, ब्रह्म और अश्विनीकुमार के लोक को जाता है; वह दिव्य शरीर पाकर
अग्नि के समान तेजस्वी होकर विविध रत्नों से विभूषित, गन्धर्वों और अप्सराओं से परिपूर्ण,
सुवर्णमय, चन्द्रमा और सूर्य के समान चमकीले दिव्य विमान पर सवार होकर सुन्दरियों के
साथ विहार करता है। जो मनुष्य एक वर्ष तक उन्तीस दिन उपवास करके तीसवें दिन एक बार
भोजन करता है उसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। वह सूर्य के समान तेजस्वी होकर अति मनोहर
स्वरूप धारण करके सुधारस पीता है और दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य गन्ध से शोभित
३० होता है। उसे रत्ती भर भी दुःख नहीं होता। अनेक-रूपधारिणी, मधुरभाषिणी रुद्र-कन्याएँ और
देवर्षिकन्याएँ हमेशा उसकी पूजा करती हैं। वह सूर्यकान्त और वैदूर्य मणि के समान दिव्य विमान
पर—जिसका पृष्ठ भाग चन्द्रमा के सदृश, वाम भाग मेघ सदृश, दक्षिण भाग रक्तवर्ण, निचला भाग
नीलवर्ण और ऊर्ध्व भाग विचित्रवर्ण होता है—सवार होकर अप्सराओं के साथ विचरता है।
वर्षा के समय जम्बू द्वीप में आकाश से पानी की जितनी बूँदें गिरती हैं उतने वर्ष तक वह ब्रह्म-
लोक में रहता है। जो मनुष्य दमगुणसम्पन्न, जितेन्द्रिय और जितक्रोध होकर तीस दिन उपवास
करने के बाद इकतीसवें दिन भोजन, नित्य सन्ध्योपासन, हवन और अनेक नियमों का पालन करता
है वह दस वर्ष के बाद महर्षि होकर, बादलों से निकले हुए सूर्य के समान तेज प्राप्त करके, देवता
की तरह सदेह स्वर्ग को जाता है और वहाँ मनमाने सुख भोगता है। यह मैंने उपवास
१४० करने की उत्तम विधि और उसके फल का वर्णन कर दिया।

हे धर्मराज ! दरिद्र मनुष्य जिस प्रकार दम्भ-द्रोह-हीन, नियमशील, सावधान, पवित्र
और विशुद्धबुद्धि होकर उपवास द्वारा यज्ञ-फल और श्रेष्ठ गति प्राप्त कर सकता है, उसका वर्णन
१४४ मैं कर चुका। इसमें तुम किसी प्रकार का सन्देह न करना।

एक सौ आठ अध्याय

पवित्र तीर्थों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, कौन सा तीर्थ सबसे श्रेष्ठ और पवित्र है ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं वे सभी फलप्रद हैं। उनमें जो परम पवित्र है उसका वर्णन मैं पहले करता हूँ। मनुष्य हमेशा सत्य का अवलम्बन करके अगाध, निर्मल, विशुद्ध और सत्यरूप जल तथा धैर्यरूप ह्रद (कुण्ड)-संयुक्त मानस-तीर्थ में स्नान करे। इस तीर्थ में स्नान करने से अनर्थित्व, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, दया, इन्द्रियदमन-शक्ति

और शान्ति की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य निर्द्वन्द्व, ममताशून्य, अहङ्काररहीन और सर्वत्यागी
होकर भीख माँगकर भोजन करते हैं वही पवित्र तीर्थ हैं। तत्त्वज्ञानी और अहङ्काररहित व्यक्ति
ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं। जिसके मन से सत्त्व, रज और तमोगुण दूर हो गये हैं; जो बाहरी
पवित्रता-अपवित्रता का विचार न करके सदा अपने कर्तव्य में तत्पर रहते हैं; जो सर्वज्ञ, समदर्शी
और त्यागशील हैं और जिनके चरित्र परम पवित्र हैं वही मनुष्य परम पवित्र हैं। शरीर को
जल से धो लेना स्नान नहीं कहलाता; सच्चा स्नान तो इन्द्रियों का दमन करना ही है। इसी स्नान
से बाह्य और आभ्यन्तर शुद्ध हो सकता है। जो बीती हुई बातों की परवा नहीं करते, जो धन
प्राप्त होने पर भी उसकी ममता नहीं करते और जो विषयों का लोभ नहीं करते वही परम पवित्र
हैं। पाप न करने और तीर्थ में स्नान करने से बाह्य और आभ्यन्तर दोनों शुद्ध हो जाते हैं; १०
ज्ञान, विषय-निःस्पृहता, मन की प्रसन्नता और इन्द्रिय-निग्रह से भीतर-बाहर शुद्ध हो जाता है।
किन्तु इन सबमें ज्ञान ही सबसे बढ़कर पवित्र है। मानस-तीर्थ में ब्रह्मज्ञान-रूप जल द्वारा स्नान
को ही तत्त्वदर्शी पुरुष श्रेष्ठ कहते हैं। जो व्यक्ति भक्तियुक्त, गुण-सम्पन्न और विशुद्ध-स्वभाव
का है वही यथार्थ पवित्र है।
यह मैंने शरीर में स्थित तीर्थों का वर्णन किया। जिस तरह शरीर में तीर्थ हैं उसी
तरह पृथिवी के अनेक स्थान और नदियाँ पवित्र (तीर्थ) हैं। तीर्थों का नाम लेने, उनमें
स्नान और पितरों का तर्पण करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और स्वर्ग का फल मिलता है।
पृथिवी और जल के तेज के प्रभाव से और सज्जनों के आने-जाने के कारण विशेष-विशेष स्थान
पवित्र कहलाते हैं। जो मनुष्य पृथिवी के सब तीर्थों और शरीर में स्थित तीर्थ में स्नान करता
है उसे शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जैसे क्रियाहीन बल और बलहीन क्रिया से कोई कार्य सिद्ध
नहीं होता, किन्तु उन दोनों के एकत्र मिलने से सब कार्य सिद्ध होते हैं वैसे ही शरीर के और
पृथिवी के तीर्थों की उपासना करने से मनुष्य शीघ्र सिद्ध हो सकता है। २१

एक सौ नव अध्याय

प्रत्येक मास की द्वादशी को विष्णु की पूजा करने का फल

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! सब उपवासों में जिसका फल सबसे बढ़कर, श्रेयस्कर और असन्दिग्ध हो, उसका वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! ब्रह्माजी ने इस विषय में जो कहा है और जिसके करने से परम सुख प्राप्त होता है उसका वर्णन सुनो। जो मनुष्य अगहन की द्वादशी को उपवास करके दिन-रात केशव की पूजा करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पौष की द्वादशी को उपवास करके दिन-रात नारायण के नाम का स्मरण

करता है वह वाजपेय यज्ञ का फल और परम सिद्धि पाता है। जो माघ की द्वादशी को उप-
वास करके उस दिन आठ पहर माधव की पूजा करता है वह राजसूय यज्ञ का फल पाता और
अपने कुल का उद्धार कर सकता है। जो फाल्गुन की द्वादशी को उपवास करके उस दिन
दिन-रात गोविन्द की पूजा करता है उसे अतिरात्र यज्ञ का फल मिलता और सोमलोक प्राप्त होता
है। जो मनुष्य चैत्र की द्वादशी को उपवास करके आठों पहर उस दिन विष्णु की पूजा करता
है उसे पुण्डरीक यज्ञ का फल मिलता है और वह देवलोक को जाता है। जो वैशाख की द्वादशी
को उपवास करके मधुसूदन की पूजा करता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल और चन्द्रलोक
प्राप्त होता है। जो मनुष्य ज्येष्ठ की द्वादशी को उपवास करके दिन-रात त्रिविक्रम की पूजा
करता है वह गोमेध यज्ञ का फल पाता और अप्सराओं के साथ विहार करता है। आषाढ़ की
द्वादशी को उपवास करके जो मनुष्य वामन की पूजा करता है वह नरमेध यज्ञ का फल पाता
१० और पुण्यवान् होता है। जो श्रावण की द्वादशी को उपवास करके चौबीस घण्टे श्रीधर की
पूजा करता है वह पञ्चयज्ञ का फल पाता और विमान पर चढ़कर देवलोक को जाता है। जो
मनुष्य भाद्र मास की द्वादशी को उपवास करके हृषीकेश की पूजा करता है वह पवित्र हो जाता
और सौत्रामणि यज्ञ का फल पाता है। जो मनुष्य आश्विन की द्वादशी को उपवास करके पद्म-
नाभ की पूजा करता है उसे हज़ार गोदान का फल मिलता है। जो कार्तिक की द्वादशी को
उपवास करके दामोदर की पूजा करता है उसे गो-यज्ञ का फल मिलता है। इस प्रकार जो
मनुष्य एक वर्ष तक भगवान् पुण्डरीकाक्ष की आराधना करता है वह जातिस्मर होता, बहुत सा
सुवर्ण प्राप्त करता और शीघ्र ही विष्णु-भाव को प्राप्त होता है। वह बारह महीने की विष्णु-
पूजा समाप्त होने पर ब्राह्मणों को भोजन करावे या ब्राह्मणों को घी का दान करे। भगवान्
१७ विष्णु ने स्वयं कहा है कि इससे बढ़कर कोई उपवास नहीं है।

एक सौ दस अध्याय

सौन्दर्य आदि फल देनेवाले चान्द्र व्रत की विधि

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! रूप, सौभाग्य और प्रियता की प्राप्ति किस प्रकार होती है; धर्म, अर्थ और काम से सम्पन्न होकर मनुष्य किस तरह सुख भोग सकता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, अगहन में शुक्ल प्रतिपदा के दिन मूल नक्षत्र होने पर उस दिन से लेकर पूर्णिमा तक चान्द्र व्रत करना चाहिए। चन्द्रमा की मूर्ति में इस प्रकार नक्षत्रों का न्यास करे; पञ्जों में मूल नक्षत्र, पिंडलियों में रोहिणी, पिंडलियों के ऊपर अश्विनी, दोनों जाँघों में पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़, गुप्त स्थान में दोनों फाल्गुनी, कमर में कृत्तिका, नाभि में दोनों भाद्र-पद, आँखों की पुतलियों में रेवती, पीठ पर धनिष्ठा, पेट में अनुराधा और उत्तरा, भुजाओं में

विशाखा, हाथों में हस्त, अँगुलियों में पुनर्वसु, नखों में आश्लेषा, ग्रीवा में ज्येष्ठा, कानों में श्रवण, मुख में पुष्य, दाँतों और होठों में स्वाती, मुसकुराहट में शतभिषा, नाक में मघा, आँखों में मृगशिरा, मस्तक में चित्रा, सिर में भरणी और केशों में आर्द्रा की कल्पना करके प्रतिदिन चन्द्रमा की पूजा करे। पूजा समाप्त होने पर ब्राह्मणों को घी का दान दे। जो मनुष्य इस विधि से चान्द्र व्रत करता है वह विकलाङ्ग होने पर भी पूर्ण चन्द्रमा के समान परिपूर्णाङ्ग, स्वरूपवान्, ज्ञानवान् और सौभाग्यवान् होता है। १०

एक सौ ग्यारह अध्याय

बृहस्पति का युधिष्ठिर से प्राणियों के जन्म आदि का प्रकार और दुष्कर्मों के फल से तिर्यग्योनि में जन्म का वृत्तान्त कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, मनुष्य बार-बार जन्म क्यों लेता है? किन कर्मों के करने से मनुष्य स्वर्ग को और किन कर्मों से नरक को जाता है? काठ और मिट्टी के ढेले के समान इस शरीर को छोड़कर मनुष्य जब परलोक को जाता है तब उसके साथ क्या जाता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! वह देखो, उदारबुद्धि भगवान् बृहस्पति यहाँ आ रहे हैं। तुम उनसे यह गूढ़ विषय पूछो। ऐसे गूढ़ विषय का ठीक-ठीक समाधान वही कर सकते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महात्मा भीष्म और युधिष्ठिर इस प्रकार बातें कर रहे थे कि इसी समय बृहस्पतिजी देवलोक से उसी स्थान पर आ गये। धर्मात्मा युधिष्ठिर, महाराज धृतराष्ट्र और अन्य सभासदों ने उनका यथोचित सत्कार किया। इसके बाद धर्मराज ने विनीत भाव से उनसे पूछा—भगवन्! आप सब धर्मों के ज्ञाता और सब शास्त्रों के विद्वान् हैं; अतएव मुझे बतलाइए कि मनुष्य जब परलोक को जाता है तब पिता, माता, गुरु, पुत्र, सजातीय, सम्बन्धी और मित्रों में कौन उसका सहायक होता है और नश्वर शरीर त्यागकर परलोक जाते समय जीव के साथ कौन जाता है। १०

बृहस्पति ने कहा—धर्मराज! प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता, अकेला ही मरता, अकेला ही सङ्कटों को झेलता और अकेला ही दुर्गति भोगता है। पिता, माता, भाई, पुत्र, गुरु, जाति, सम्बन्धी और मित्र कोई भी मृत मनुष्य के साथ सुख-दुःख नहीं भोगता। मृत मनुष्य के कुटुम्बी लोग, काठ और मिट्टी के समान, लाश को फेंककर थोड़ी देर रोकर घर लौट आते हैं। उस समय धर्म ही उस प्राणी के साथ जाता है, अतएव मनुष्य हमेशा धर्म करता रहे। पुण्य करने से स्वर्ग मिलता और पाप करने से नरक भोगना पड़ता है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य न्याय से प्राप्त धन द्वारा सदा धर्म करे। परलोक में मनुष्य का एकमात्र सहायक धर्म ही होता है। अविवेकी मनुष्य दूसरे के लिए अथवा लोभ, मोह, दया या भय के वश होकर

अकार्य करने लगते हैं; किन्तु ऐसा न करना चाहिए। धर्म, अर्थ और काम, यही तीन जीवन के फल हैं। अतएव धर्म के अनुसार मनुष्य इन तीनों का उपार्जन करे।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, मैंने आपके मुँह से धर्मयुक्त हितकर बातें सुनीं। अब यह बतलाइए कि शरीर त्यागने के बाद धर्म किस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से, जीव के साथ जाता है।

बृहस्पति ने कहा—धर्मराज! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, यम, बुद्धि और आत्मा, ये सब प्रत्येक प्राणी के धर्म-अधर्म को देखते रहते हैं। त्वचा, अस्थि, मांस, शुक्र और रक्त से बने हुए शरीर को जब जीव त्याग देता है तब पृथिवी आदि भी शरीर से अलग हो जाते हैं। शरीर त्यागने के बाद धर्म अप्रत्यक्ष रूप से जीव के साथ चला जाता है। जीव परलोक में स्वर्ग या नरक का भोग करके फिर शरीर धारण करता है। तब पञ्चभूत के अधिष्ठाता देवता फिर उसके शुभाशुभ कर्मों को देखने लगते हैं। जो धर्म-परायण होता है वह दोनों लोकों में सुख भोगता है।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, धर्म जिस प्रकार जीवात्मा के साथ जाता है सो तो आपने कहा; अब यह बतलाइए कि वीर्य किस प्रकार उत्पन्न होता है।

बृहस्पति ने कहा—धर्मराज! शरीर में स्थित पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि तथा मन जब अन्न आदि भोजन द्वारा परिपुष्ट हो जाते हैं तब वीर्य उत्पन्न होता है। स्त्री और पुरुष का समागम होने पर इसी वीर्य के संयोग से गर्भ रह जाता है।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, गर्भ की उत्पत्ति का वृत्तान्त तो मालूम हुआ। अब यह बतलाइए कि सूक्ष्म जीव किस प्रकार वीर्य द्वारा स्थूल शरीर धारण करता है।

बृहस्पति ने कहा—धर्मराज, वीर्य में जीव के प्रविष्ट होते ही पृथिवी आदि पञ्चभूत उसे घेर लेते हैं। पञ्चभूतों से युक्त होते ही जीव स्थूल शरीर प्राप्त कर लेता है। जीव जब तक पञ्चभूतों के साथ रहता है तब तक इस लोक में रहता है और जब उनको त्याग देता है तब परलोक को जाता है। कर्म के प्रभाव से वह फिर इस लोक में आकर पाञ्चभौतिक शरीर धारण करता है। तब इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवतागण फिर उसके शुभाशुभ कार्य देखने लगते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्, जीवात्मा पाञ्चभौतिक शरीर त्यागने के बाद किस स्थान पर आकर सुख-दुःख भोगता है?

बृहस्पति ने कहा—युधिष्ठिर, जीवात्मा अपने कर्म के प्रभाव से पहले वीर्य का आश्रय लेकर फिर गर्भकोष में प्रवेश करके यथासमय इस लोक में आता और परलोक को जाता है। वह अपने कर्मों के प्रभाव से संसार-चक्र में भ्रमण करके यमदूतों के प्रहार और अनेक प्रकार के क्लेश सहता है। सबको जन्म से ही शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना पड़ता है। जो मनुष्य आजन्म यथाशक्ति धर्म का पालन करता है वह सदा सुखी रहता है। जो धर्म और अधर्म

दोनों करता है उसे सुख भी मिलता है और दुःख भी। और, जो व्यक्ति जन्म भर अधर्म करता
है वह मरने के बाद यमलोक में घोर कष्ट पाता और फिर तिर्यग्योनि में जन्म लेता है। इति- ४०
हासों, पुराणों और वेदों में लिखा है कि यमलोक में देवताओं के निवास करने योग्य स्थान के
समान अति पवित्र स्थान और तिर्यग्योनि के प्राणियों के रहने योग्य स्थानों से बढ़कर अपवित्र
स्थान मौजूद हैं। जो मनुष्य इस जन्म में शुभ कर्म करता है वह यमलोक में जाकर सुख
भोगता है और जो इस लोक में पाप करता है वह वहाँ घोर कष्ट पाता है।

मनुष्य जिन कर्मों के प्रभाव से जिस प्रकार की दुर्गति पाता है उसका वर्णन सुनो। जो
ब्राह्मण चारों वेद पढ़कर भी मोहवश पतित मनुष्य का दान लेता है वह मरने के बाद पहले
पन्द्रह वर्ष गधा, फिर सात वर्ष बैल, उसके बाद तीन महीना ब्रह्मराक्षस रहकर अन्त को फिर
ब्राह्मण होता है। जो ब्राह्मण पतित मनुष्य को यज्ञ कराता है वह शरीर त्यागने के बाद पहले
पन्द्रह वर्ष कृमि, फिर पाँच वर्ष गधा, उसके बाद पाँच वर्ष सुअर, फिर पाँच वर्ष मुर्ग़, पाँच
वर्ष गीदड़ और उसके बाद एक वर्ष कुत्ते की योनि में भ्रमण करके अन्त को मनुष्य का जन्म
पाता है। अध्यापक का अनिष्ट करनेवाला शिष्य मरने के बाद पहले कुत्ता, फिर राक्षस, उसके ५१
बाद गधे की योनि में भ्रमण करके फिर ब्राह्मण के घर जन्म लेता है। जो पापी गुरुपत्नी-गमन
की मन में भी इच्छा करता है वह उस पाप के कारण, मरने के बाद, पहले तीन वर्ष कुत्ता और
एक वर्ष कृमियोनि में भ्रमण करके अन्त को ब्राह्मण होता है। जो उपाध्याय पुत्र के समान
प्रिय शिष्य को बिना कारण के मारता-पीटता है उसे हिंसक योनि में जन्म लेना पड़ता है। जो
पुत्र अपने पिता-माता का अनादर करता है वह मरने के बाद दस वर्ष गधा और एक वर्ष घड़ि-
याल रहकर फिर मनुष्य होता है। जो मनुष्य पिता-माता का अनिष्ट करके उन्हें कुपित करता
है वह शरीर त्यागने के बाद पहले दस महीने गधा, फिर चौदह महीने कुत्ता, उसके बाद सात
महीने बिलार योनि में रहकर अन्त को मनुष्य का जन्म पाता है। माता-पिता का तिरस्कार ६०
करने पर मरने के बाद सारिका(मैना)योनि में जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य माता-पिता
को पीटता है वह मरने के बाद दस वर्ष कछुआ, उसके बाद तीन वर्ष शल्लकी (साही) और
फिर छः महीना सर्पयोनि में भ्रमण करके अन्त को मनुष्य का जन्म पाता है। जो मोहान्ध
मनुष्य राजा का नौकर होकर भी उसकी जड़ खोदता रहता है वह मरने के बाद पहले दस वर्ष
बन्दर, फिर पाँच वर्ष चूहा, उसके बाद छः महीना कुत्ते की योनि में भ्रमण करके तब मनुष्य
होता है। जो मनुष्य धरोहर को हज़म कर लेता है वह क्रमशः सौ योनियों में भ्रमण करता
हुआ कृमियोनि में जाता है। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष बीतने पर, पाप से छुटकारा पाकर, वह फिर
मनुष्य हो जाता है। ईर्ष्या करनेवाला मरने के बाद खञ्जन पक्षी का जन्म पाता है। विश्वास-
घातक मनुष्य शरीर त्यागने पर पहले आठ वर्ष मछली, फिर चार महीने मृग, एक वर्ष बकरा,

७० उसके बाद कुछ दिन कीटयोनि में भ्रमण करके अन्त को मनुष्ययोनि में जन्म पाता है। जो
मनुष्य धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, मूँग, गेहूँ और अलसी आदि अन्न
चुराता है वह मरने के बाद पहले चूहा होता है; फिर कुछ दिनों बाद मरकर सुअर का जन्म
पाता है। वह सुअर पैदा होते ही रोगी होकर मरता और कुत्ते की योनि में जाता है। फिर
वह पाँच वर्ष के बाद मरकर मनुष्य-जन्म पाता है। जो मनुष्य परस्त्रीगमन करता है वह
क्रमशः भेड़िया, कुत्ता, गीदड़, गिद्ध, साँप, कङ्क और बगले का जन्म पाता है। जो पापी मनुष्य
भाई की स्त्री के साथ भोग करता है वह एक वर्ष तक कोयल रहता है। जो मनुष्य मित्र, गुरु
या राजा की स्त्री पर बलात्कार करता है वह पहले पाँच वर्ष सुअर, फिर दस वर्ष भेड़िया, पाँच
वर्ष बिलार, दस वर्ष मुर्ग़, तीन महीने चिउँटी और एक महीना कीटयोनि में भ्रमण करके
कृमियोनि में जन्म पाता है। इस योनि में चौदह महीने रहकर, पाप का क्षय हो जाने पर,
८० मनुष्य होता है। जो मूर्ख विवाह, यज्ञ या दान में विघ्न डालता है वह कृमियोनि में जन्म
लेकर पन्द्रह वर्ष के बाद पाप-क्षय होने पर उस योनि से छुटकारा पाकर फिर मनुष्य-देह पाता
है। जो मनुष्य पहले एक कन्या का दान करके फिर वही कन्या दूसरे को देना चाहता है वह
तेरह वर्ष तक कृमियोनि में पाप का फल भोग करके फिर मनुष्य-शरीर पाता है। जो मनुष्य
देवकार्य और पितृकार्य किये बिना भोजन करता है वह मरकर कौआ होता और सौ वर्ष तक
जीता रहता है। फिर वह कुछ दिनों तक मुर्ग़ रहकर एक महीना सर्पयोनि में भ्रमण करके
मनुष्य का जन्म पाता है। जो मनुष्य पितृ-तुल्य बड़े भाई का अनादर करता है वह मरने के
बाद दो वर्ष तक क्रौञ्च पक्षी की योनि में रहकर फिर मनुष्य-शरीर पाता है। ब्राह्मणी के साथ
जो शूद्र भोग करता है उसे, मरने के बाद, कृमियोनि में जाना पड़ता है। कृमियोनि से छुट-
कारा पाकर वह सुअर का जन्म पाता और तुरन्त ही रोगी होकर मर जाता है। उसके बाद
कुछ दिनों तक कुत्ते की योनि में रहकर फिर मनुष्य का जन्म पाता है। जो शूद्र ब्राह्मणी के गर्भ
९१ से सन्तान उत्पन्न करता है वह मरने के बाद चूहा होता है। कृतघ्न मनुष्य यमलोक को जाता
है। वहाँ यमदूत डण्डा, मुद्गर, शूल, अग्निकुण्ड, असिपत्र वन, तपी हुई बालू और काँटों से
युक्त शाल्मली आदि कष्ट देनेवाली अनेक वस्तुओं द्वारा उसे पीड़ित करते हैं। ऐसी यातनाएँ
सहने के बाद वह पहले कृमियोनि में जाता है और पन्द्रह वर्ष के बाद उससे छुटकारा पाकर
बार-बार गर्भ में जाता और नष्ट होता रहता है। इस प्रकार अनेक बार गर्भ की यन्त्रणा भोगने
के बाद तिर्यग्योनि में जन्म लेता है। इस योनि में बहुत समय तक दुःख भोगने पर वह कछुआ
होता है। दही चुराने से बगला, कच्ची मछली चुराने से बन्दर या मेंढक, शहद चुराने से डाँस,
१०० फल मूलों या पुआ चुराने से चिउँटी, राजमाष चुराने से हलगोलक नाम का कीड़ा, खीर चुराने
से तीतर, भरा हुआ पुआ चुराने से उल्लू, लोहा चुराने से कौआ, काँसे का बर्तन चुराने से

हारीत नाम का पक्षी, चाँदी का बर्तन चुराने से कबूतर, सोने का बर्तन चुराने से कृमि, धुला हुआ रेशमी वस्त्र चुराने से कुकल पक्षी, रेशमी वस्त्र चुराने से बत्तख, बढ़िया वस्त्र चुराने से तोता, पट्टवस्त्र चुराने से हंस, सूती वस्त्र चुराने से क्रौंच, ऊनी वस्त्र चुराने से ख़रगोश, रङ्गीन वस्त्र चुराने से मोर और लाल वस्त्र चुराने से चकोर पक्षी का जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य लोभ के वश सुगन्धित वस्तुएँ चुराता है वह छछूँदर का जन्म पाता है और पन्द्रह वर्ष जीवित रहने के बाद, पाप का नाश हो जाने पर, मनुष्य होता है। दूध चुराने से बगला और तेल चुराने से
तैलपायिक योनि में जाना पड़ता है। जो नराधम शस्त्र लेकर, धन के लोभ से या बदला लेने के ११
लिए, निहत्थे मनुष्य को मारता है वह मरने के बाद गधा होता और दो वर्ष के बाद शस्त्र से मारा जाकर मृगयोनि में जन्म पाता है। मृगयोनि में उसे हमेशा प्राणों का भय बना रहता है। फिर एक वर्ष के बाद वह शस्त्र द्वारा मारा जाकर मछली का जन्म पाता और चौथे महीने मछुवे के जाल में फँस जाता है। उसके बाद उसे दस वर्ष बाघ और पाँच वर्ष तेंदुआ होकर रहना पड़ता है। इस प्रकार अनेक योनियों में भ्रमण करके पाप का क्षय होने पर वह फिर मनुष्य का जन्म पाता है। स्त्री की हत्या करनेवाला नराधम मरने के बाद यमलोक में जाकर अनेक प्रकार के क्लेश भोगकर, बीस प्रकार की निकृष्ट योनियों में भ्रमण करके, कृमियोनि में जन्म पाता है। इस योनि में बीस वर्ष तक क्लेश भोगकर, पाप का नाश होने पर, वह फिर मनुष्ययोनि प्राप्त करता है। भोज्य वस्तुएँ चुरानेवाला मनुष्य मरने के बाद मक्षिकायोनि में जन्म लेकर बहुत दिनों तक मक्खियों के साथ रहकर पाप का नाश होने पर मनुष्य-जन्म पाता है। धान
चुरानेवाले मनुष्य की देह में, दूसरे जन्म में, रोम बहुत अधिक होते हैं। जो मनुष्य तिल की १२०
खली मिला हुआ भोजन चुराता है वह उस चुराई हुई वस्तु के परिमाण के आकार का मूषक होकर प्रतिदिन मनुष्यों को काटता है और बहुत दिनों बाद, पाप का नाश होने पर, मनुष्ययोनि पाता है। घी चुराने से चातक, मछली का मांस चुराने से कौआ और नमक चुराने से चिरि-काक होता है। जो मनुष्य धरोहर हड़प लेता है वह दूसरे जन्म में मछली होता है। कुछ काल बीतने पर वह मनुष्ययोनि में जन्म पाकर अल्पायु होता है।

इस प्रकार पाप करके मनुष्य अनेक तिर्यग्योनियों में जन्म लेता है। जो मनुष्य लोभ और मोह के वश होकर पाप करके व्रत आदि द्वारा उस पाप को दूर करना चाहता है वह हमेशा सुख-दुःख भोगता हुआ रोगी होकर जीवन बिताता और मरने के बाद लोभ-मोह-परायण पापी म्लेच्छ होता है। जो पुरुष जन्म भर पाप नहीं करता वह नीरोग, धनवान् और रूपवान् होता है। स्त्रियाँ भी पाप करने पर इसी प्रकार पापों का फल पाती हैं। हे धर्मराज, यह दूसरों का धन चुराने आदि पाप-कर्मों के दोष मैंने संक्षेप में बतलाये। दूसरी कथाओं के प्रसङ्ग में और भी पापों के दोष तुम विस्तार के साथ सुनोगे। मैंने देवर्षियों के समीप ब्रह्माजी के मुँह से ये

कथाएँ सुनी थीं। इस समय तुम्हारे पूछने पर मैंने यह वर्णन किया है। इस उपदेश को
१३३ सुनकर तुम धर्म में मन लगाओ।

एक सौ बारह अध्याय

बृहस्पति का पाप को नष्ट करने का उपाय—पश्चात्ताप
और ब्राह्मणों को अन्नदान—बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आपने अधर्म का फल विस्तार के साथ कहा। अब मैं धर्म का फल सुनना चाहता हूँ। मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करने पर भी किस तरह श्रेष्ठ गति पा जाता है और किन कर्मों के करने से उसे स्वर्ग आदि श्रेष्ठ लोक मिलते हैं?

बृहस्पति ने कहा—धर्मराज, जो मनुष्य जान-बूझकर पाप करता रहता है वह अधर्म के वशीभूत हो जाता है; उसे नरक में जाना पड़ता है। और, जो भूल से पाप हो जाने पर उसके लिए पश्चात्ताप करता है उसे ऐसी सावधानी रखनी चाहिए जिसमें फिर पाप न कर बैठे। भूल से हो गये पाप के लिए जो जितना अधिक पश्चात्ताप करता है वह उतना ही उस पाप से मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति धर्मात्मा ब्राह्मणों को अपना पाप बतला देता है वह उस पाप की निन्दा से शीघ्र बच जाता है। मनुष्य अपने अधर्म को जिस परिमाण में प्रकट करता जायगा उसी परिमाण में पाप से मुक्त होता जायगा। जो मनुष्य भूल से पाप हो जाने पर ब्राह्मणों को अनेक वस्तुओं का दान करता है वह निस्सन्देह परलोक में श्रेष्ठ गति पाता है।

पाप करने पर मनुष्य जिन वस्तुओं का दान करने से पाप से मुक्त हो सकता है उनका वर्णन सुनो। अन्नदान सब दानों से श्रेष्ठ है। अतएव धर्मार्थी मनुष्य सरल हृदय से अन्न का
१० दान करे। अन्न मनुष्यों का प्राण-स्वरूप है। अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही सब प्राणियों की स्थिति है। इसलिए अन्नदान से बढ़कर दूसरा दान नहीं है। देवता, पितर और मनुष्य अन्नदान की बड़ी प्रशंसा करते हैं। महाराज रन्तिदेव अन्नदान के प्रभाव से ही स्वर्गलोक को गये हैं। अतएव न्याय से प्राप्त किया हुआ अन्न, प्रसन्नता के साथ, ब्राह्मण को दान करे। जो मनुष्य प्रसन्नता से एक हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराता है उसे तिर्यग्योनि में जन्म नहीं लेना पड़ता। दस हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराने से पापी मनुष्य भी सब पापों से मुक्त हो जाता है। वेदवेत्ता ब्राह्मण भिक्षा से प्राप्त अन्न स्वाध्याय-निरत ब्राह्मण को देने से निस्सन्देह इस लोक में सुख भोगता है। जो क्षत्रिय, ब्राह्मणों का धन न हरकर, न्याय के अनुसार प्रजा का पालन करता हुआ सावधानी से विद्वान् ब्राह्मणों को, अपने बाहुबल से उपार्जित, अन्न का दान करता है उसे पूर्वकृत दुष्कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ता। जो वैश्य खेती में पैदा हुए अन्न का छठा भाग ब्राह्मणों को दान कर देता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो शूद्र

कड़ी मेहनत करने से उपार्जित अन्न ब्राह्मणों को दान करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। २०
जो मनुष्य हिंसाहीन होकर परिश्रम द्वारा अन्न प्राप्त करके ब्राह्मणों को दान करता है वह कभी क्लेश नहीं पाता। न्याय के अनुसार अन्न पैदा करके प्रसन्नता से ब्राह्मणों को दान करनेवाला मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य अन्नदान करता रहता है वह सदाचारी, बलवान् और निष्पाप हो जाता है। बुद्धिमान् मनुष्य ही दानशील पुरुषों का अनुकरण करता है। अन्नदाता मनुष्य को प्राणदाता कहते हैं। सनातन धर्म की वृद्धि ऐसे ही लोगों से होती है। अतएव न्याय के अनुसार अन्न पैदा करके हमेशा सत्पात्र ब्राह्मणों को दान करे। अन्न ही मनुष्यों की परम गति है। अन्नदान करने से मनुष्य को कभी नरक में नहीं जाना पड़ता। गृहस्थ मनुष्य पहले ब्राह्मणों को भोजन कराकर फिर स्वयं भोजन करे। जो मनुष्य वेद, धर्म, न्याय और इतिहास के जानकार हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराता है उसे संसार की यन्त्रणा नहीं सहनी पड़ती। वह परलोक में अनन्त सुख भोगता और दूसरे जन्म में रूपवान्, यशस्वी और धनवान् होकर परम सुख से जीवन व्यतीत करता है। हे धर्मराज, यही सम्पूर्ण धर्म के और दान के मूल अन्नदान का माहात्म्य है। ३१

एक सौ तेरह अध्याय

बृहस्पति का युधिष्ठिर से अहिंसा की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! अहिंसा, वेदोक्त कर्म, ध्यान, इन्द्रिय-संयम, तपस्या और गुरु-शुश्रूषा, इनमें से कौन सा कर्म मनुष्यों का सबसे बढ़कर कल्याण कर सकता है?

बृहस्पति ने कहा—धर्मराज, ये सब कर्म कल्याण के साधन हैं; किन्तु एक अहिंसा से ही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ की सिद्धि हो जाती है। जो मनुष्य काम, क्रोध और लोभ को दोषों की खानि समझकर उनका त्याग करके अहिंसा-धर्म का पालन करता है वह निस्सन्देह सिद्धि पाता है। जो मनुष्य अपने सुख के लिए अहिंसक प्राणियों का वध करता है वह मरने के बाद कभी सुख नहीं पा सकता। सब प्राणियों को अपने समान समझकर जो किसी पर प्रहार और क्रोध नहीं करता वह मरने के बाद परम सुख पाता है। जो मनुष्य सब प्राणियों को, अपने समान सुख का अभिलाषी और दुःख का अनिच्छुक समझकर, समान दृष्टि से देखता है उस महापुरुष की गति देवता भी नहीं समझ पाते। जिस काम को मनुष्य अपने प्रतिकूल समझे वह काम किसी प्राणी के लिए न करे; यही धर्म का संक्षिप्त लक्षण है। जो मनुष्य इस मत के विरुद्ध व्यवहार करता है वह पाप का भागी होता है। तिरस्कार, दान, सुख-दुःख, प्रिय और अप्रिय, इन कामों से जिस प्रकार अपने को सन्तोष और असन्तोष होता है, उसी अनुभव के द्वारा मनुष्य इन्हें सबके लिए समझे। मनुष्य हिंसा करने से हिंसित और प्रतिपालन करने से प्रतिपालित

होता है अतएव हिंसा न करके सबकी रक्षा करनी चाहिए। जो मनुष्य किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता वह सज्जनों के बतलाये हुए धर्म के समान संसार में प्रमाण-स्वरूप होता है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, धर्मराज युधिष्ठिर को इस प्रकार उपदेश देकर सुरगुरु
११ बृहस्पति आकाश-मार्ग से चले गये।

एक सौ चौदह अध्याय

हिंसा की और मांस-भक्षण की निन्दा

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, बृहस्पति के चले जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने शर-शय्या पर पड़े हुए पितामह भीष्म से फिर पूछा—पितामह! देवता, ब्राह्मण और महर्षिगण वेद के प्रमाण के अनुसार अहिंसा-धर्म की ही विशेष प्रशंसा करते हैं। अब यह सुनने की इच्छा है कि मनुष्य मन-वचन-कर्म से हिंसा करने पर भी किस तरह दुःख से छुटकारा पा सकता है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, किसी जीव के नाश और भक्षण करने का न तो इरादा करना चाहिए और न दूसरों को ही ऐसा उपदेश देना चाहिए। इसी से ब्रह्मवादी पुरुषों ने अहिंसा-धर्म को चार प्रकार का बतलाया है। इन चारों में किसी का अभाव होने पर अहिंसा-धर्म नष्ट हो जाता है। जैसे कोई चौपाया एक पैर न रहने पर क्षण भर भी खड़ा नहीं रह सकता वैसे ही अहिंसा-धर्म एक अंश से हीन हो जाने पर स्थिर नहीं रह सकता। जिस तरह हाथी के पदचिह्न में अन्य जीवों के पदचिह्न समा जाते हैं उसी तरह अहिंसा-धर्म में दूसरे सब धर्मों का समावेश रहता है। मनुष्य मन-वचन-कर्म से किसी प्रकार की हिंसा करने पर उसके पाप का भागी होता है और जो मन-वचन-कर्म से प्राणियों की हिंसा नहीं करता और कभी मांस नहीं खाता वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। मांस खाने की इच्छा, मांस खाने के उपदेश और मांस का भक्षण करने से हिंसा का पाप लगता है। इसी कारण तपस्वी महर्षिगण मांस नहीं
१० खाते। अब मांस खाने के दोषों को सुनो। मांस तो बेटे के मांस की तरह है; उसे जो मनुष्य, अज्ञान के कारण, खाता है वह अत्यन्त नीच और अधम है। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष का संयोग सन्तान की उत्पत्ति का कारण है उसी प्रकार हिंसा अनेक पाप-योनियों में जन्म दिलाने का एक-मात्र कारण है। जैसे जीभ से रसों का स्वाद मिलता है वैसे ही मांस चखने से ही मांस खाने की लत पड़ जाती है। बनाने की प्रणाली और मसाले की न्यूनाधिकता के अनुसार मांस मनुष्य के चित्त को आकर्षित करता है। मांस खाने में जिस मनुष्य की जैसी रुचि बढ़ जाती है उसे उतना ही अधिक आनन्द आता है। ढोल, मृदङ्ग और वीणा आदि बाजे सुनने से भी उसे वैसी प्रसन्नता नहीं होती। मांस का प्रेमी जैसी प्रशंसा मांस की करता है उसकी कल्पना भी दूसरे नहीं कर पाते। वास्तव में मांस की प्रशंसा करना भी दूषित है। प्राचीन समय में अनेक

महात्माओं ने अपना मांस देकर, दूसरों के शरीर की रक्षा करके, स्वर्गलोक प्राप्त किया है। हे धर्मराज, अहिंसा-धर्म का यही वर्णन है। १९

एक सौ पन्द्रह अध्याय

मांस खाने की निन्दा और न खाने की प्रशंसा

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप अहिंसा को परम धर्म बतलाते हैं किन्तु अनेक प्रकार के पशुओं के मांस से पितरों का श्राद्ध करना भी आपने बतलाया है और हिंसा किये बिना मांस कैसे मिल सकता तथा किस तरह श्राद्ध में दिया जा सकता है ? ये दोनों बातें परस्पर-विरुद्ध हैं। आप इस विरोध को दूर कीजिए और विस्तार के साथ बतलाइए कि मांस खाने में क्या दोष है, न खाने में क्या गुण है, मांस खाने के लिए स्वयं पशु का वध करे या दूसरे के मारे हुए पशु का मांस खावे। दूसरों के खाने के लिए पशु का वध करने या मोल लेकर मांस खाने से क्या फल मिलता है ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज ! मांस न खाने से जो फल मिलता है पहले उसका वर्णन करता हूँ। जो पुरुष रूपवान्, अविकलाङ्ग, दीर्घायु, बलवान् और स्मरणशक्ति-सम्पन्न होने की इच्छा करे वह हिंसा न करे। महर्षियों का कहना है कि प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है वही फल मांस-मदिरा त्यागने से मिलता है। सप्तर्षि, वालखिल्य और मरीचिप महर्षि- १०
गण मांस न खाने की बड़ी प्रशंसा करते हैं। स्वायम्भुव मनु का वचन है कि जो मनुष्य न तो पशु-हिंसा करता-कराता और न मांस-भक्षण करता है वह सब प्राणियों का मित्र है। जो मांस नहीं खाता वह सब प्राणियों से निडर, सबका विश्वासपात्र और सज्जनों से सम्मानित होता है। देवर्षि नारद का वचन है कि जो मनुष्य दूसरों का मांस खाकर अपना मांस बढ़ाना चाहता है वह हमेशा क्लेश पाता रहता है। बृहस्पतिजी का वचन है कि मांस-मदिरा से परहेज़ रखने से मनुष्य दानी, यज्ञशील और तपस्वी हो जाता है। जो मनुष्य सौ वर्ष तक प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ करता रहता है उसके समान ही मांस न खानेवाला व्यक्ति समझा जाता है। जो मनुष्य मदिरा नहीं पीता और मांस नहीं खाता वही याज्ञिक, दानी और तपस्वी है। मांसाहारी मांस का त्याग करने से जो फल पाता है वह फल वेद पढ़ने और सब यज्ञ करने से भी नहीं मिल सकता। जो मांस का स्वाद पा चुका है उसके लिए मांस का त्याग-रूप पवित्र व्रत करना बहुत कठिन है। जो विरक्त महात्मा सब प्राणियों को अभय दान देते हैं वे प्राणदाता कहलाते हैं। विद्वान् २०
लोग इस अहिंसा-रूप परम धर्म की हमेशा प्रशंसा करते हैं। मनुष्यों को अपने प्राण के समान प्रिय दूसरे जीवों के प्राण भी समझना चाहिए। जब सिद्धि चाहनेवाले ज्ञानी पुरुषों को मृत्यु का भय बना रहता है तब मांसाहारी, दुरात्माओं से पीड़ित, ज्ञानहीन जीवों को मौत का डर

होने में क्या आश्चर्य है ? मांस न खाने से धर्म, स्वर्ग और सुख की प्राप्ति होती है अतएव अहिंसा को ही परम धर्म, श्रेष्ठ तप और सत्य स्वरूप समझे। प्राणियों की हत्या किये बिना घास, लकड़ी या पत्थर से मांस नहीं मिल सकता। इसी कारण मांस खाना अत्यन्त दूषित है। स्वधा, स्वाहा और अमृत से तृप्त होनेवाले देवता हमेशा सत्य और सरलता का आश्रय लेते हैं। वे कभी हिंसा नहीं करते। जो रसना को तृप्त करने से ही अपने को चरितार्थ समझता है वह रजोगुणी राक्षस है। जो मनुष्य मांस नहीं खाता उसे दुर्गम वन, दुर्ग, चौराहा अथवा शस्त्र ताने हुए मनुष्य और साँप आदि हिंसक जीवों से भय नहीं रहता। वह हमेशा सब प्राणियों का
३० रक्षक, विश्वासपात्र और शान्तिजनक होकर शान्ति से जीवन बिताता है। यदि इस लोक में कोई मांसभक्षी न हो तो पशुओं की हत्या होना बन्द हो जाय। वध करनेवाले तो मांसभोजी मनुष्यों के निमित्त ही पशुओं की हत्या करते हैं; यदि कोई मांस न खावे तो वे लोग हत्यारूप पाप करना छोड़ दें। हिंसा करनेवालों की आयु क्षीण हो जाती है अतएव अपना हित चाहनेवाले मनुष्यों को मांस न खाना चाहिए। हिंसक जीवों के समान उद्वेग पैदा करनेवाले मांसाहारी मनुष्यों का परलोक में किसी तरह कल्याण नहीं हो सकता। लोभ और मोह के वश बल-वीर्य की प्राप्ति के लिए अथवा पापी मनुष्यों के संसर्ग से पाप-कर्मों में प्रवृत्ति होती है। जो मनुष्य दूसरे जीवों का मांस खाकर अपना मांस बढ़ाना चाहते हैं वे किसी जन्म में शान्ति से जीवन नहीं बिता सकते। व्रतधारी महर्षियों ने मांस के त्याग करने को ही यश, आयु और स्वर्ग की प्राप्ति का प्रधान उपाय बतलाया है।

मैंने महर्षि मार्कण्डेय से मांस खाने के जो दोष सुने हैं उनको सुनो। स्वयं मरे हुए अथवा दूसरे के मारे हुए जीव का मांस खानेवाले को हत्या करनेवाले मनुष्य के समान फल भोगना पड़ता है। जो मनुष्य किसी जीव को वध करने के लिए बेचता है, जो मनुष्य उसका वध करता और जो उसका मांस खाता है उन तीनों को उसकी हत्या का महापाप लगता है।
४० पण्डितों ने इस तरह हत्या तीन प्रकार की बतलाई है। जो स्वयं तो मांस न खाता हो किन्तु दूसरों को खाने की सलाह देता हो उसे भी हत्या का पाप लगता है। सारांश यह कि जो मनुष्य मांस नहीं खाता और सब प्राणियों पर दया करता है वह दीर्घायु, रोगहीन और सब प्राणियों से निर्भय होकर सुख से जीवन बिताता है। मांस न खाने से सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान से भी बढ़कर धर्म होता है। विधिहीन, अप्रोक्षित, 'वृथा मांस' खानेवाला निस्सन्देह नरक को जाता है। जो मनुष्य ब्राह्मण की अनुमति से प्रोक्षित मांस खाता है उसे अल्प दोष लगता है। दूसरों के खाने के लिए वध करनेवाले पशुघातक को जितना घोर पाप होता है उतना खानेवाले को नहीं होता। जो मनुष्य देवपूजा अथवा यज्ञ आदि के अतिरिक्त पशु का वध करता है उसे निस्सन्देह नरक में जाना पड़ता है। मांसाहारी मनुष्य मांस खाना छोड़ देता

है तो उसे बड़ा धर्म होता है। जो मनुष्य हत्या करने के लिए पशु लाता है, जो उसके मारने की
अनुमति देता है, जो पशु का वध करता है तथा जो बेचता, मोल लेता और पकाता है वे सब
घातक के समान पापभागी होते हैं।

अब अन्य ऋषियों द्वारा सम्मानित, वेदसम्मत, प्राचीन प्रमाण का वर्णन करता हूँ। ५०
प्रवृत्ति-मार्ग का विधान गृहस्थों के ही लिए है। मोक्षार्थी पुरुषों के लिए वह धर्म नहीं है।
महात्मा मनु ने कहा है कि जो मांस मन्त्र से पवित्र और प्रोक्षित करके श्राद्ध में दिया जाता है
वह पवित्र और भक्ष्य है। उसके सिवा और सब मांस 'वृथा मांस' और अभक्ष्य हैं। राक्षसों
की तरह 'वृथा मांस' खाने से यश और स्वर्ग नहीं प्राप्त हो सकता। अतएव विधिहीन अप्रोक्षित
'वृथा मांस' खाना कदापि उचित नहीं। अपना कल्याण चाहनेवाले को मांस कभी न खाना
चाहिए। प्राचीन समय में याज्ञिक पुरुषों ने, पवित्र लोक प्राप्त करने के लिए, व्रीहि (धान)
को पशुरूप कल्पित करके उसके द्वारा यज्ञ किया था। उस समय मांस खाने के विषय में सन्देह
करके ऋषियों ने चेदिराज वसु के पास जाकर प्रश्न किया था कि 'मांस भक्ष्य है या अभक्ष्य'।
चेदिराज ने मांस को भक्ष्य बतला दिया था. इस अपराध के कारण स्वर्ग से च्युत होकर उन्हें
पृथिवी पर आना पड़ा और यहाँ भी मांस को भक्ष्य कहने से उनको पाताललोक में जाना पड़ा
था। महर्षि अगस्त्य ने, प्रजा के हित के लिए, एक बार जङ्गली पशुओं को प्रोक्षित कर दिया
था। इसलिए अब भी देवताओं और पितरों के उद्देश से जङ्गली पशुओं का मांस देने के पहले
उसे प्रोक्षित करने की आवश्यकता नहीं है। ६०

राजन्, मांस न खाने से सब प्रकार के सुख मिलते हैं। सौ वर्ष तक घोर तपस्या करने-
वाले को जो फल मिलता है, उसी के समान फल मांस न खानेवाला पाता है। कार्त्तिक के शुक्ल
पक्ष में मदिरा और मांस का त्याग करना अत्यन्त श्रेष्ठ धर्म है। जो मनुष्य वर्षाकाल में चार
महीने मांस नहीं खाता वह दीर्घायु, कीर्त्ति, बल और यश प्राप्त करता है। जो मनुष्य कार्त्तिक
के महीने भर मांस नहीं खाता उसे कभी कोई दुःख नहीं मिलता। जो मनुष्य कार्त्तिक महीने
भर या एक पक्ष में मांस नहीं खाता और हिंसा नहीं करता वह ब्रह्मलोक को जाता है। प्राचीन ६७
समय में महात्मा नाभाग, अम्बरीष, गय, आयु, अनरण्य, दिलीप, रघु, पुरु, कार्तवीर्य, अनि-
रुद्ध, नहुष, ययाति, नृग, विश्वगश्व, शशबिन्दु, युवनाश्व, शिबि, मुचुकुन्द, मान्धाता, हरिश्चन्द्र,
श्येनचित्र, सोमक, वृक, रैवत, रन्तिदेव, वसु, सृञ्जय, कृप, भरत, दुष्यन्त, करुष, राम, अलर्क,
नल, विरूपाश्व, निमि, जनक, ऐल, पृथु, वीरसेन, इक्ष्वाकु, शम्भु, श्वेत, सगर, अज, धुन्धु,
सुबाहु, हर्यश्व और क्षुप आदि राजाओं ने कार्त्तिक महीने में मांस का त्याग करके श्रेष्ठ गति
प्राप्त की थी। ये सब राजा हज़ारों स्त्रियों और गन्धर्वों के साथ परम सुख से ब्रह्मलोक में
निवास करते हैं। जो महात्मा अति श्रेष्ठ अहिंसा धर्म का पालन करता है उसे स्वर्गलोक प्राप्त

होता है। जो महात्मा जन्म भर मांस और मदिरा से परहेज़ रखते हैं वे मुनि कहलाते हैं। जो मनुष्य अहिंसा-धर्म का विषय पढ़ता, सुनता या दूसरों को सुनाता है उसे, दुराचारी होने
८० पर भी, नरक में नहीं जाना पड़ता। उसके सब पापों का नाश हो जाता है और उसके सजातीय उसका सम्मान करते हैं। विपद्ग्रस्त मनुष्य विपत्ति से, बँधुआ बन्धन से, रोगी रोग से और दुखी मनुष्य दुःख से अहिंसा-धर्म के प्रभाव से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य इस धर्म का आश्रय करता है उसे कभी तिर्यग्योनि में जन्म नहीं लेना पड़ता। वह धनवान और यशस्वी होता है।

हे धर्मराज, यह मैंने महर्षियों का कहा हुआ मांस-भक्षण और मांस-परित्याग
८५ का फल तुमसे कहा।

एक सौ सोलह अध्याय

मांस-भक्षण के गुण बतलाकर फिर उसके खाने की निन्दा तथा दया और अहिंसा की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मांस-लोलुप नृशंस राक्षस के समान मनुष्य मांस की बड़ी प्रशंसा करते हैं; उन्हें पुआ और शाक आदि अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन मांस के समान प्रिय नहीं हैं। उनका यह भाव देखकर मेरी बुद्धि मोहित हो रही है। मुझे तो जान पड़ता है कि मांस से बढ़कर स्वादिष्ट भोजन दूसरा नहीं है। आप कृपा करके मांस खाने के दोषों और न खाने के गुणों का वर्णन कीजिए।

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज, तुम्हारा कहना बिलकुल सच है। मांस से बढ़कर स्वादिष्ट भोजन दूसरा नहीं है। घायल, कमज़ोर, कामी और मार्ग से थके हुए मनुष्यों के लिए मांस पुष्टिकर है। मांस खाने से शीघ्र बल बढ़ता और शरीर पुष्ट होता है। अब मांस न खाने से
१० जो अनेक श्रेष्ठ फल मिलते हैं उनका वर्णन सुनो। जो मनुष्य दूसरे जीव का मांस खाकर अपना मांस बढ़ाना चाहता है उसके समान नीच और निठुर कोई नहीं है। संसार में जीवों को प्राण सबसे बढ़कर प्रिय हैं, अतएव मनुष्य दूसरों के प्राणों को भी अपने प्राणों के समान प्रिय समझे। शुक्र से मांस उत्पन्न होता है। मांस खाने से भारी पाप और न खाने से महान् पुण्य होता है; किन्तु यदि वेद-विधि के अनुसार मांस का भक्षण किया जाय तो कोई दोष नहीं है। वेद में बतलाया गया है कि पशुओं की उत्पत्ति यज्ञ के लिए हुई है, अतएव यज्ञ के अतिरिक्त और किसी काम के लिए पशु की हिंसा करना राक्षसों का सा आचरण करना है।

क्षत्रियों के लिए पशु-हिंसा की विधि बतलाई गई है। उनको अपने पराक्रम से उपार्जित मांस का भक्षण करने से कोई पाप नहीं लगता। प्राचीन समय में महर्षि अगस्त्य ने

जङ्गली पशुओं को प्रोक्षित किया था इसी से जङ्गली पशुओं का शिकार करना दूषित नहीं गिना
जाता। शिकार करनेवाले मनुष्य हथेली पर प्राण रखकर शिकार खेलने जाते हैं। वे यह ठान
लेते हैं कि या तो जङ्गली जीव हमें मार डालेंगे या हम उनको मारेंगे। इस कारण शिकार
करना दूषित और पापजनक नहीं माना जाता। जो हो, प्राणियों पर दया करने के समान
श्रेष्ठ काम न तो इस लोक में है और न परलोक में। दयालु मनुष्य को कहीं कोई डर नहीं
रहता। दयावान् मनुष्य इस लोक और परलोक को भी अपने अधीन कर लेता है। धर्मात्माओं २०
ने अहिंसा को ही श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। अतएव महात्माओं को हमेशा अहिंसात्मक काम करने
चाहिएँ। जो महात्मा दयालु होकर सब प्राणियों को अभय दान देता है उसे किसी प्राणी से
कहीं कोई डर नहीं रहता। अभयदाता मनुष्य दुर्बल, घायल या और जिस अवस्था में हो उसी
में सब प्राणी उसकी रक्षा करते हैं। हिंसक जीव, राक्षस और पिशाच, भी उसका नाश नहीं
करते। जो दूसरों की विपत्ति में सहायता करते हैं उनको भी, विपत्ति के समय, सहायक मिल
जाते हैं। प्राणदान से श्रेष्ठ दान न कोई हुआ है और न होगा। प्राण से बढ़कर प्रिय कुछ
नहीं है। मृत्यु का डर सबको होता है। मौत के समय सभी प्राणियों के शरीर काँप उठते
हैं। संसार में सभी प्राणी जन्म और बुढ़ापे के दुःख से दुखी रहते हैं, इसके सिवा मौत उन्हें
और भी अधिक सताती है। जो मनुष्य मांस खाता है वह मरने के बाद पहले कुम्भीपाक
नरक का भोग करके फिर बार-बार तिर्यग् जाति के गर्भ में आकर क्षार, अम्ल और कटु रस
तथा मल, मूत्र और कफ में निवास करके घोर दुःख सहता है। उसके बाद वह जन्म लेकर
दूसरे के वश में रहता, बार-बार वध किया जाता और पतित होता है। संसार में आत्मा से ३१
बढ़कर प्रिय कुछ नहीं है, अतएव सब प्राणियों पर दया करना सबका कर्तव्य है। जो जन्म
भर किसी पशु का मांस नहीं खाता उसे स्वर्गलोक में श्रेष्ठ स्थान मिलता है। अपने प्राणों
का प्रिय करनेवाले जिन पशुओं का मांस जो दुरात्मा खाता है उसका मांस वे पशु दूसरे
जन्म में खाते हैं। जो पशु का वध करता है और जो वध किये हुए उस पशु का मांस खाता है,
दूसरे जन्म में वह पशु पहले तो वध करनेवाले का और फिर मांस खानेवाले का विनाश करता
है। जो मनुष्य दूसरों के साथ बुरा बर्ताव करता है, उसके साथ भी दूसरे लोग दूसरे जन्म में
बुरा बर्ताव करते हैं और जो दूसरों के साथ शत्रुता करता है उसके साथ शत्रुता करते हैं। जो
मनुष्य जिस अवस्था में जो कर्म करता है उसे उसी अवस्था में उस कर्म का फल भोगना पड़ता
है। अहिंसा मनुष्यों का परम धर्म, परम दम, परम दान, परम तप, परम यज्ञ, परम फल,
परम मित्र, परम सुख, परम सत्य और परम ज्ञान है। अहिंसा से ही सम्पूर्ण यज्ञ, दान और
सब तीर्थों के स्नान करने के समान फल मिलता है। पृथिवी की सब वस्तुओं के दान का फल
भी अहिंसा के फल से श्रेष्ठ नहीं है। हिंसा न करनेवाला मनुष्य सब प्राणियों के पिता-माता

के समान है। हे धर्मराज! यह मैंने संक्षेप में अहिंसा का फल कहा। उसका सम्पूर्ण फल तो
४२ सौ वर्ष तक कहने पर भी समाप्त नहीं हो सकता।

एक सौ सत्रह अध्याय

व्यासदेव और एक कीड़े का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप जानते ही हैं कि संग्राम में प्राण त्यागना कैसा कठिन काम है। संसार में धनवान्, निर्धन, पुण्यवान् और पापी सभी मौत से डरते हैं, इसका क्या कारण है और युद्ध में प्राण त्यागने से किस प्रकार की गति मिलती है?

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। अब मैं इसके उत्तर में वेदव्यास और एक कीड़े का संवाद सुनाता हूँ। एक बार सब प्राणियों की भाषा और गति के जाननेवाले सर्वज्ञ वेदव्यासजी ने एक कीड़े को गाड़ी के मार्ग में दौड़ते देखकर उससे पूछा—हे कीड़े, तुम डर के मारे इतनी तेज़ी से क्यों भागे जा रहे हो?

कीड़े ने कहा—भगवन्, यह जो बहुत दूर पर गाड़ी के आने का शब्द सुनाई पड़ रहा है और गाड़ी में जुते हुए बैल कोड़ों से पीटे जाकर जो लम्बी साँस छोड़ रहे हैं उसे सुनकर मेरे समान छोटे कीड़े का चित्त स्थिर नहीं रह सकता। मैं इस शब्द को सुनकर प्राणों के भय से
१३ घबराकर भाग रहा हूँ। संसार में सभी प्राणियों का जीवन दुर्लभ है और मौत सबके लिए दुःखजनक है। यही कारण है कि मैं मरने से डरता हूँ।

यह सुनकर महर्षि वेदव्यास ने फिर पूछा—हे कीड़े, तुम तिर्यग्योनि में पैदा हुए हो इसलिए तुमको सुख मिलने की कोई आशा नहीं है। तुम रूप-रस आदि विषयों का भोग भी नहीं कर सकते हो अतएव, मेरी समझ में तो, तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है।

कीड़े ने कहा—भगवन्, सब जीव इस लोक में सुख भोग रहे हैं इसी कारण मैं इस नीच योनि में भी सुख पाने की आशा से जीवित रहना चाहता हूँ। मनुष्य और पशु-पक्षी आदि सब प्राणी जन्म से ही पृथक्-पृथक् विषयों का भोग करने के अधिकारी हैं। मैं पूर्व जन्म में एक धनवान् शूद्र था। मैंने उस जन्म में हमेशा ब्राह्मणों से द्वेष किया था। मेरे समान निठुर, लोभी, ब्याजखोर, कटुवादी, छली, हिंसक, वञ्चक और दूसरों का माल हड़प लेनेवाला मनुष्य
२० शायद ही कोई दूसरा रहा हो। मैं अपने आश्रित मनुष्यों और अतिथियों को भोजन दिये बिना स्वादिष्ट भोजन कर लेता था। धन के लोभ से देवपूजा और पितृश्राद्ध में कभी अन्नदान नहीं करता था। जो कोई डर के मारे मेरी शरण में आता था तो मैं उसकी रक्षा न करके अकारण उसे त्याग देता था। दूसरों का धन-धान्य, अच्छी स्त्री, सवारी और वस्त्र आदि ऐश्वर्य देखकर मैं कुढ़ता था। दूसरों का सुख और ऐश्वर्य देखकर मेरा चित्त चञ्चल हो उठता था।

इच्छाएँ मुझे सदा घेरे रहती थीं और दूसरों का धर्म, अर्थ, काम नष्ट कर देने को मैं उद्यत रहता था। उन सब नृशंस व्यवहारों का स्मरण करके इस समय मुझे बड़ा पश्चात्ताप होता है। पूर्व जन्म में मुझे यह न मालूम था कि शुभ कर्म करने से क्या फल मिलता है, इसी से मैंने अच्छे कर्म नहीं किये थे। मैंने बूढ़ी माता की सेवा की थी और एक दिन अपने यहाँ ठहरे हुए अतिथि का यथोचित सत्कार किया था, उसी पुण्य के प्रभाव से मुझे अपने पूर्व जन्म का सब वृत्तान्त याद है। अब मैं शुभ कर्म करके सुख पाने की इच्छा करता हूँ, अतएव आप कृपा
करके मुझे इस समय के योग्य हितकर उपदेश दीजिए। २६

एक सौ अठारह अध्याय

व्यासजी की कृपा से कीड़े का अनेक योनियों में भ्रमण करके क्षत्रिय-वंश में जन्म पाकर राजा होना

वेदव्यासजी ने कहा—हे कीड़े! तुम तिर्यग्योनि में जन्म लेने पर भी, मेरी ही बदौलत, मोहित नहीं हुए हो। मैं तपस्या के प्रभाव से दृष्टिपात करके ही तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। तपोबल के समान श्रेष्ठ बल दूसरा नहीं है। मैं तपोबल से जान गया हूँ कि तुम पूर्व जन्म के पापों से कीड़ा हुए हो। यदि इस समय धर्म में तुम्हारी श्रद्धा है तो तुम धर्म प्राप्त कर सकते हो। देवता, मनुष्य और तिर्यग्योनि के सभी प्राणी इस कर्मभूमि में किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं। मनुष्य विद्वान् हो चाहे मूर्ख, मरने के बाद कर्मों का फल किसी को नहीं छोड़ता। जो हो, अब तुम ब्राह्मण के वंश में जन्म लेकर रूप-रस आदि विषयों का भोग करोगे। तुम्हारा जन्म उस ब्राह्मण के घर होगा, जो सूर्य और चन्द्रमा की पूजा करता है। मैं तुमको ब्रह्मविद्या देता हूँ। तुम जिस लोक को जाने की इच्छा करोगे उस लोक को मैं तुम्हें ले जाऊँगा।

व्यासजी के यों कहने पर वह कीड़ा, उनकी बात मानकर, मार्ग में बैठ गया। थोड़ी देर बाद वह गाड़ी वहाँ आ गई। उसके पहिये के नीचे दबकर वह कीड़ा मर गया। तब उसने क्रमशः शल्लकी, गोह, सुअर, मृग, पक्षी, चण्डाल, शूद्र और वैश्य योनि में भ्रमण करके अन्त को क्षत्रिय-कुल में जन्म लिया। शल्लकी आदि सब योनियों में उसने वेदव्यासजी के दर्शन किये थे। क्षत्रिय-वंश में जन्म लेकर वह पहले की तरह वेदव्यासजी के पास जाकर, उनको प्रणाम
करके, कहने लगा—भगवन्, मैं अपने दोष से कीड़ा हो गया था और आपकी कृपा से अब क्रमशः ११
क्षत्रिय हुआ हूँ। अब सोने की माला पहनकर बड़े बलवान् हाथियों पर और काम्बोज देश के घोड़ों, ऊँटों और ख़च्चरों से युक्त अनेक प्रकार की सवारियों पर मैं सवार होता हूँ; प्रतिदिन बन्धु-बान्धवों और मन्त्रियों के साथ पुलाव खाता हूँ। घर में महामूल्य शय्या पर मैं बड़े सुख से सोता हूँ। जिस तरह प्रातःकाल देवता इन्द्र की स्तुति करते हैं उसी तरह सूत, मागध और

वन्दीगण मेरी स्तुति करते हैं। भगवन्, मैं आपके प्रभाव से क्षत्रिय होकर परम सुख भोग रहा हूँ। अतएव आपको प्रणाम है। आज्ञा दीजिए, मैं क्या करूँ।

वेदव्यासजी ने कहा—राजन्, आज तुमने अनेक वाक्यों से मेरी स्तुति की है। कीट-योनि में तुम्हारी स्मरणशक्ति कलुषित थी। तुमने पहले शूद्र योनि में आततायी और नृशंस
२० होकर जो पाप किया था वह तुम्हारा पाप अभी नष्ट नहीं हुआ। पूर्व जन्म में तुमने जो थोड़ा सा पुण्य किया था इसी से तुमको मेरे दर्शन हुए थे और मेरे दर्शन पाने से तुम क्षत्रिय हुए हो। अब तुम गायों और ब्राह्मणों के निमित्त युद्धभूमि में प्राण त्यागकर ब्राह्मणत्व प्राप्त करोगे और अन्त को दक्षिणा समेत सब यज्ञ करके, अक्षय ब्रह्म-स्वरूप होकर, अनन्त काल तक परम सुख भोगोगे।
२४ प्राणी तिर्यग्योनि से शूद्र, शूद्र से वैश्य, वैश्य से क्षत्रिय और क्षत्रिय से ब्राह्मण होता है।

एक सौ उन्नीस अध्याय

तपस्या के प्रभाव से उस राजा का ब्राह्मण होना और ब्रह्मलोक प्राप्त करना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इसके बाद वह राजा अपने पूर्व जन्म की बातों का स्मरण करके घोर तपस्या करने लगा। वेदव्यासजी ने उस धर्मज्ञ राजा के पास जाकर, उसकी घोर तपस्या देखकर, कहा—महाराज, प्रजा का पालन करना क्षत्रियों का श्रेष्ठ धर्म है। अतएव तुम जितेन्द्रिय, शुभाशुभ-विचारक और स्वधर्मनिरत होकर न्याय के अनुसार प्रजा का पालन करो। इसी पुण्य के प्रभाव से दूसरे जन्म में तुम ब्राह्मण हो सकोगे।

वेदव्यासजी के उपदेशानुसार वह राजा धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करने लगा और अन्त को संग्राम में शरीर त्यागकर अति पवित्र ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुआ। तब वेदव्यासजी ने उस ब्राह्मण के पास जाकर कहा—हे ब्राह्मण-कुमार, तुम अपने पूर्व जन्म का स्मरण करके दुखी न होना। इस लोक में जो मनुष्य जैसे कर्म करता है उसको वैसे ही फल मिलते हैं।
१० अतएव तुम मृत्यु का डर छोड़कर वह उपाय करते रहना जिससे धर्म का लोप न हो।

ब्राह्मण ने कहा—"भगवन्, आपकी कृपा से ही मुझे यह दुर्लभ जन्म प्राप्त हुआ है। आज मैं धर्ममूलक श्रेष्ठ वर्ण में जन्म लेकर सब पापों से मुक्त हो गया हूँ।" वह वेदव्यासजी की आज्ञा से अनेक यज्ञ करके अन्त को, प्राण त्यागकर, ब्रह्मलोक को गया।

भीष्म ने कहा कि हे धर्मराज, इस प्रकार वह कीड़ा वेदव्यासजी की कृपा से दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके ब्रह्मलोक को गया था। उसने क्षत्रिय-कुल में जन्म लेकर संग्राम में प्राणत्याग किया था, उसी पुण्य के प्रभाव से वह ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न हुआ था। अतएव जो मनुष्य युद्ध में प्राण त्यागता है वह निस्सन्देह श्रेष्ठ गति पाता है। जिन क्षत्रियों ने कुरुक्षेत्र के इस संग्राम में शरीर
१५ छोड़ा है उनको अवश्य श्रेष्ठ गति मिलेगी। इसलिए उन क्षत्रियों के निमित्त तुम शोक न करो।

एक सौ बीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से दान की प्रशंसा करते हुए
व्यास और मैत्रेय का संवाद कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह ! विद्या, तपस्या और दान, इन तीनों में कौन सा कर्म श्रेष्ठ है ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, मैं इस विषय में मैत्रेय और वेदव्यास का संवाद सुनाता हूँ। एक बार महर्षि वेदव्यास, वेश बदलकर, काशी में भ्रमण करते-करते मुनि-वंश में उत्पन्न मैत्रेय के पास गये। मुनिवर मैत्रेय ने आसन देकर पूजा करके उनको उत्तम भोजन कराया। वेदव्यासजी भोजन करके मैत्रेय से विदा होते समय बहुत प्रसन्न होकर हँसने लगे। उनको हँसते देखकर मैत्रेय ने पूछा—भगवन्, मैं विनीत भाव से आपको प्रणाम करके पूछता हूँ कि आप तपस्वी और धैर्यवान् होकर इस प्रकार प्रसन्नता से क्यों हँस रहे हैं ? आपको इस प्रकार प्रसन्न देखकर मुझे जान पड़ता है कि आपने ज्ञानचक्षु के प्रभाव से मेरी तपस्या का महाफल देख लिया है। आप जीवन्मुक्त हैं और मैं साधारण तपस्वी हूँ; किन्तु इस समय आपको इस प्रकार प्रसन्न देखकर मुझे विश्वास होता है कि आपके साथ मेरी अधिक विभिन्नता नहीं है।

व्यासजी ने कहा—महात्मन् ! वेद के प्रमाणानुसार सौ यज्ञ करने से जो गति मिलती है वही गति तुम केवल अन्नदान करने से पाओगे, यह विचार कर मैं इतना प्रसन्न हुआ हूँ। दान करना, सत्य बोलना और किसी से द्रोह न करना, ये तीन काम पुरुषों के लिए वेद में श्रेष्ठ व्रत बतलाये गये हैं। प्राचीन ऋषियों ने वेद के इसी वचन के अनुसार कर्म किये थे, वही कर्म हम लोगों को भी करने चाहिएँ। भूखे-प्यासे मनुष्य को तृप्त करने के समान महाफलप्रद काम बहुत कम हैं। तुमने निश्छल भाव से मुझे तृप्त करके, महायज्ञ करने से प्राप्त होने योग्य, लोकों पर विजय पाई है। मैं तुम्हारे इस पवित्र दान और तप से अति प्रसन्न हुआ हूँ। केवल दान के प्रभाव से ही तुम्हारा शरीर और तुम्हारे शरीर का गन्ध अत्यन्त पवित्र हो गया है। तुम्हारे दर्शन करने से भी पुण्य होता है। तीर्थस्नान और समावर्तन आदि पवित्र कामों से अधिक और शुभ फलप्रद दान है। वेद में जिन कर्मों की प्रशंसा की गई है उन सब में दान श्रेष्ठ है। विद्वान् लोग दाताओं का अनुकरण करते हैं। दाता मनुष्य ही यथार्थ प्राणदाता हैं, उन्हीं में धर्म स्थित है। वेदाध्ययन, इन्द्रिय-संयम और सर्वत्याग के समान अति श्रेष्ठ कार्य दान है। बेटा मैत्रेय, तुमने दान-धर्म का अवलम्बन करके बड़ी बुद्धिमानी की है। अब तुम परम सुख पाओगे। बुद्धिमान् मनुष्य ही दान, यज्ञ, सम्पत्ति और सुख पाने का अधिकारी है, यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है। जो मनुष्य विषय-सुख में आसक्त रहता है वह निस्सन्देह अन्त को दुःख पाता है और जो तपस्या आदि कष्टसाध्य कामों में प्रवृत्त होता है वह परिणाम में सुख भोगता है। संसार में जितने मनुष्य हैं उनमें कुछ तो पुण्यात्मा हैं, कुछ पापी हैं और कुछ पुण्य-पाप दोनों

से हीन हैं। जो मनुष्य यज्ञ, दान और तपस्या आदि शुभ कर्म करते हैं वे पुण्यात्मा हैं और
जो शत्रुता आदि दुष्कर्म करते हैं वे पापी हैं। जो यज्ञ आदि शुभ कर्मों और शत्रुता आदि
दुष्कर्मों को त्यागकर केवल ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का उद्योग करते हैं उनको पाप-पुण्य से हीन
समझना चाहिए। कुछ मनुष्य पुण्य-पाप की ओर ध्यान न देकर चोरी आदि पाप करते हैं,
उनको पुण्य-पाप से हीन नहीं कहा जा सकता। वे दुरात्मा महापापी हैं। वे मरने के बाद
घोर नरक में गिरते हैं। जो हो, तुम पुण्यवान् होने के अधिकारी हो, अतएव प्रसन्न चित्त से
२७ यज्ञ और दान आदि शुभ कर्मों द्वारा पुण्य की वृद्धि करो।

एक सौ इक्कीस अध्याय

व्यास और मैत्रेय का संवाद

महर्षि वेदव्यास के ये वचन सुनकर महामति मैत्रेय ने कहा—भगवन्, आपका कहना
बहुत ठीक है। अब यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी इस विषय में कुछ कहूँ।

व्यासजी ने कहा—मैत्रेय, तुम्हें जो कुछ कहना हो सो कहो। मैं तुम्हारी बातें सुनना चाहता हूँ।

मैत्रेय ने कहा—भगवन्, आप विद्वान् और तपस्वी हैं। दान के विषय में आपका कहना
बहुत ठीक और निर्दोष है। आप महानुभाव हैं, आपका स्वभाव पवित्र है। मेरे घर आकर,
आतिथ्य स्वीकार करके आपने मुझे कृतार्थ कर दिया है। मैं अपने बुद्धि-बल से आपको सिद्ध
तपस्वी समझ गया हूँ। आपके दर्शन से ही मेरा कल्याण हो गया। यह आपकी कृपा का
फल है। मुझ पर आपने जो यह कृपादृष्टि की है, यह मेरे सौभाग्य का कारण है। यथार्थ
ब्राह्मण वही है जो तपस्वी है, शास्त्रज्ञ है और शुद्ध ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न है। ब्राह्मण को सन्तुष्ट
करने से ही देवता और पितर तृप्त होते हैं। ब्राह्मणों के सिवा ज्ञानवान् पुरुषों का पूज्य और
कोई नहीं है। ब्राह्मण न हों तो सम्पूर्ण जगत् अन्धकारमय हो जाय और चारों वर्णों में विवेक,
धर्माधर्म, सत्य-असत्य कुछ भी न रहे। जिस तरह अच्छे खेत में बीज बोने से किसान को
१० अच्छे फल मिलते हैं उसी तरह ज्ञानवान् ब्राह्मण को दान करने से दाता श्रेष्ठ फल पाता है।
शास्त्रज्ञ, सच्चरित्र और दान लेने के योग्य सत्पात्र ब्राह्मण यदि न होते तो धनिकों का धन व्यर्थ
हो जाता। अपढ़ ब्राह्मण को अन्नदान करने से दाता को उस दान का कुछ फल नहीं मिलता,
बल्कि उससे दाता और ग्रहीता दोनों को अधर्म होता है। गृहस्थ का अन्न खाने से ब्रह्मचारी
और संन्यासी का तेज बढ़ता है, इसी से वे गृहस्थ का अन्न खाते हैं; किन्तु गृहस्थ को दूसरों का
अन्न कभी न खाना चाहिए। क्योंकि गृहस्थ जिसका अन्न खाकर सन्तान उत्पन्न करेगा वह
सन्तान उसी अन्नदाता की होगी। ग्रहीता के अन्नदान लिये बिना अन्न की वृद्धि नहीं होती
और अन्न की वृद्धि हुए बिना दान देने में दाता का उत्साह नहीं बढ़ता। इस कारण दान देने

और दान लेने से दाता तथा ग्रहीता दोनों का परस्पर उपकार होता है। विद्वान् सच्चरित्र ब्राह्मणों को अन्न आदि का दान करने से दाता को इस लोक और परलोक में पवित्र फल मिलता है। अच्छे वंश में उत्पन्न, तपस्वी, दानी और अध्ययनशील मनुष्य ही सबके पूज्य हैं। जो मनुष्य सज्जनों से निर्दिष्ट, स्वर्ग देनेवाले, इस मार्ग का अवलम्बन करते हैं वे कभी मोहित नहीं होते। १७

एक सौ बाईस अध्याय

व्यास और मैत्रेय का संवाद

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, मैत्रेय के यों कहने पर वेदव्यासजी ने कहा—मैत्रेय ! तुम बड़े भाग्यवान् हो, जो इन बातों को जानते हो और बड़े भाग्य से तुम्हें ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है। सज्जन लोग श्रेष्ठ गुणों की ही प्रशंसा करते हैं। रूप, वय और सम्पत्ति में जो तुम आसक्त नहीं हो, इसका कारण केवल दैव की कृपा है। जिसे तुम दान से बढ़कर फलप्रद समझते हो उसका भी वर्णन सुनो। शिष्टाचार और सब शास्त्र वेद से ही उत्पन्न हुए हैं। मैं वेद के प्रमाण के अनुसार ही दान की प्रशंसा करता हूँ। तुम वेद के ही आधार पर तपस्या और शास्त्रज्ञान की प्रशंसा कर रहे हो। तपस्या और शास्त्रज्ञान दान की अपेक्षा कम नहीं हैं। तपस्या परम पवित्र और वेद के जानने का साधन है। तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। तप और विद्या से ही मनुष्य का महत्त्व होता है। मनुष्य जो कुछ पाप करता है वह सब तपस्या के द्वारा नष्ट हो सकता है। जिस कार्य की सिद्धि के लिए तपस्या की जाती है उसमें सफलता अवश्य होती है। संसार में जो कुछ दुष्प्राप्य और दुरतिक्रमणीय है वह सब शास्त्रज्ञान और तप के प्रभाव से प्राप्य तथा अतिक्रमणीय हो जाता है। तपस्या का बल बड़ा अद्भुत है। मदिरा पीनेवाला, चोर, गर्भ गिरानेवाला और गुरुपत्नी से सम्भोग करनेवाला नीच मनुष्य भी तपस्या के प्रभाव से पापों से मुक्त होकर श्रेष्ठ गति पाता है। सब विद्याओं के पारदर्शी मनुष्य ही यथार्थ चक्षुष्मान् हैं और तपस्वी चाहे जिस प्रकार के हों, उन्हें भी चक्षुष्मान् समझना चाहिए। अत-
एव सर्वज्ञ और तपस्वी दोनों को नमस्कार करे। जो मनुष्य हमेशा दान करता है वह इस लोक १०
में समृद्धिशाली होता और परलोक में सुख पाता है। अपना हित चाहनेवाले महात्मा पुरुष अन्नदान करके ब्रह्मलोक आदि श्रेष्ठ लोक प्राप्त करते हैं। पूजित मनुष्य हमेशा अन्नदाता की पूजा और सम्मानित मनुष्य हमेशा उसका सम्मान करता है। दानी का सब जगह आदर होता है। जो जैसे कर्म करता है उसे वैसे ही फल मिलते हैं। जीव आकाश या पाताल में कहीं हो उसे अपने कर्म के अनुसार लोक अवश्य मिलेंगे। तुम मेधावी, कुलीन, शास्त्रज्ञ, अनृशंस, ब्रह्मचारी और व्रत-परायण हो; अतएव तुम निस्सन्देह स्वर्ग में जाकर इच्छानुसार भोजन-पान करोगे। अब मैं तुमको गृहस्थों के शुभ कर्मों का उपदेश देता हूँ। तुम उनके पालन करने का

उद्योग करो। जिस घर में पति-पत्नी परस्पर सन्तुष्ट हैं उस घर में हमेशा कल्याण होता है। जिस तरह जल से शरीर का मल धुल जाता है और अग्नि के तेज से अन्धकार दूर हो जाता है उसी तरह दान और तपस्या से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अब मैं जाता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। मैंने तुमको जो उपदेश दिया है उसे भूल न जाना। मेरे उपदेश के अनुसार काम करने से तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा। यों कहकर चलने के लिए तैयार महर्षि वेदव्यास को बुद्धिमान् मैत्रेय ने
२० हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके, स्वस्ति कहकर, उनको विदा किया।

एक सौ तेईस अध्याय

शाण्डिली और सुमना का संवाद। पातिव्रत-धर्म का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, साध्वी स्त्रियों के आचरण सुनने की मेरी बड़ी इच्छा है। आप उसका वर्णन कीजिए।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज ! सर्वज्ञा पतिव्रता शाण्डिली के स्वर्ग में आने पर देवलोक-निवासिनी सुमना ने उनसे पूछा—देवी ! तुम किस प्रकार के शील और सदाचार के प्रभाव से सब पापों से मुक्त होकर, अग्नि और चन्द्रमा के तेज के समान स्वरूप धारण करके, देवलोक को आई हो ? तुमको दिव्य वस्त्र पहने, स्वतन्त्रता से विमान पर असाधारण तेज फैलाती हुई, देखकर मालूम होता है कि तुमने तपस्या, दान या नियम के द्वारा यह लोक प्राप्त
५ किया है। अब तुम अपने शुभ कर्म बतलाकर मेरे चित्त को प्रसन्न करो।

यह सुनकर चारुहासिनी शाण्डिली ने उत्तर दिया—देवी ! मैंने सिर मुड़ाकर, जटाएँ बढ़ाकर अथवा गेरुए कपड़े या वल्कल पहनकर यह लोक नहीं प्राप्त किया है। मैंने पतिदेव को अप्रिय और कठोर वचन नहीं कहे हैं। हमेशा सावधानी और नियम के साथ देवताओं, पितरों
१० और माताओं की पूजा तथा सास-ससुर की सेवा की है। मेरे मन में कभी कुटिलता नहीं उत्पन्न हुई। न तो मैं कभी दरवाज़े के पास खड़ी हुई और न मैंने किसी के साथ बहुत देर तक बातें की हैं। मैंने न तो कभी किसी से हँसी-मज़ाक़ ही किया और न किसी का कोई अहित किया है। जब मेरे पति कहीं से घर आते थे तब मैं उनको आसन देकर उनकी यथोचित सेवा करती थी। मैं पतिदेव की रुचि का ही भोजन करती थी। पुत्र, कन्या आदि परिवार के लिए जो काम आवश्यक होते थे उन सबको प्रातःकाल उठकर मैं स्वयं करती या दूसरे से करा लेती थी। जब किसी काम से मेरे पति विदेश जाते थे तब मैं इत्र-फुलेल, माला, अञ्जन और गोरोचन आदि द्वारा शृङ्गार नहीं करती थी; नियम से रहकर उनके कल्याण के लिए मङ्गल-कार्य करती थी। जब वे सो जाते थे तब किसी विशेष काम के लिए भी मैं उनको नहीं जगाती थी। परिवार का पालन करने के लिए मैं हमेशा परिश्रम करने को उनसे नहीं कहती थी। गुप्त बातें कभी

प्रकट नहीं करती थी और हमेशा घर को साफ़ रखती थी। हे देवी! जो स्त्रियाँ सावधानी से इस प्रकार धर्म का पालन करती हैं वे, अरुन्धती की तरह, स्वर्गलोक में परम सुख भोगती हैं।

हे धर्मराज, इस प्रकार पातिव्रत-धर्म का वर्णन करके शाण्डिली अन्तर्धान हो गई। जो मनुष्य प्रत्येक पर्व के दिन यह उपाख्यान पढ़ता है वह देवलोक को जाकर नन्दन वन में सुख भोगता है। २२

एक सौ चौबीस अध्याय

सबको वश में करने के उपाय—साम गुण—की प्रशंसा में एक राक्षस और ब्राह्मण का संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! साम और दान में श्रेष्ठ कौन है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! संसार में कोई मनुष्य तो साम से और कोई दान से प्रसन्न होता है, अतएव मनुष्यों की प्रकृति देखकर उनके साथ साम या दान का प्रयोग करना चाहिए। मैं तो साम को ही श्रेष्ठ समझता हूँ। साम द्वारा बड़े-बड़े बलवान् प्राणियों को भी वश में किया जा सकता है। प्राचीन समय में एक ब्राह्मण वन में साम द्वारा जिस तरह राक्षस के हाथ से बचा था वह इतिहास मैं सुनाता हूँ। एक बार एक बुद्धिमान् सद्वक्ता ब्राह्मण किसी निर्जन वन में जा रहा था। उसी समय एक भूखा राक्षस उसके सामने आ खड़ा हुआ। राक्षस की भीषण मूर्ति देखकर ब्राह्मण रत्ती भर भी नहीं घबराया। वह धैर्य के साथ उसे शान्त करता हुआ उस विपत्ति से छुटकारा पाने का उद्योग करने लगा। राक्षस ने कहा—हे ब्राह्मण, यदि तुम मेरे इस प्रश्न का ठीक उत्तर दे सको कि मेरा शरीर इस तरह पीला और दुबला क्यों हो गया है, तो मैं तुमको छोड़ दूँ।



यह सुनकर, दम भर सोचकर, ब्राह्मण ने कहा—राक्षस! मुझे जान पड़ता है कि कोई विदेशी उदासीन व्यक्ति, तुम्हारे सामने ही, तुम्हारी सम्पत्ति का भोग कर रहा है। तुम्हारे मित्र तुम्हारे द्वारा यथोचित सम्मानित होकर भी, अपने दोष से, तुमको त्याग देते हैं इसी से तुम पीले पड़कर दुबले हो गये हो। तुम गुणवान्, विनीत और विज्ञ १०
होने पर भी सम्मानित नहीं होते और निर्गुण मूढ़ व्यक्तियों को सत्कृत होते देखते हो, इसी से तुम

पीले और दुर्बल हो रहे हो। नीच व्यक्ति ऐश्वर्य के मद से तुम्हारी अवज्ञा करते हैं। तुम गौरव के कारण प्रतिग्रह (दान लेना) आदि नीच कर्म न करके बड़े कष्ट से निर्वाह कर रहे हो। तुम अपनी महानुभावता के कारण स्वयं क्लेश उठाकर जिसके साथ उपकार करते हो वह तुमको पराजित समझता है। कामी, क्रोधी, कुमार्गगामी, मूर्ख व्यक्तियों को भी विपत्ति में देखकर तुमको बड़ा दुःख होता है। तुम ज्ञानवान् होने पर भी अज्ञानी दुराचारी व्यक्तियों द्वारा तिरस्कृत होते हो, इसी से तुम पीले पड़कर दुबले हो रहे हो। शत्रुपक्ष का कोई व्यक्ति मित्रभाव से तुम्हारे पास आकर तुमको ठगकर भाग गया है। तुम शास्त्र के विद्वान् और पुण्यात्मा होने पर भी गुणज्ञ व्यक्तियों से सम्मानित नहीं होते। तुम नीच समाज में भी अपने गुण प्रकट करके प्रतिष्ठा नहीं पाते, इसी कारण तुम पीले और दुर्बल हो रहे हो। धन, बुद्धि और वेदज्ञान से हीन होकर केवल तेजस्विता के कारण तुम महत्त्व पाने की इच्छा करते हो। तुम वन में रहकर तपस्या करना चाहते हो; किन्तु तुम्हारे भाई-बन्धु यह काम नहीं करने देते, इसी से तुम पीले पड़कर दुबले हो गये हो। एक ऐश्वर्यवान् जवान काममोहित पड़ोसी तुम्हारी स्त्री को भगा लेना चाहता है, इस आशङ्का से तुम्हारा मन चिन्तित रहता है। तुम धनवानों से उचित समय पर अच्छी बात कहते हो तो भी उस बात की कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। तुम्हारा कोई आत्मीय पुरुष मूर्खता के कारण क्रोध करता है तो वह तुम्हारे समझाने से शान्त नहीं होता, इसी से तुम पीले पड़कर दुबले हो गये हो। कोई व्यक्ति तुमको पहले तुम्हारी पसन्द के काम पर नियुक्त करके फिर दूसरे काम पर नियुक्त करना चाहता है। तुम अपने गुणों से समाज में सम्मानित होते हो तो भी तुम्हारे बन्धु-बान्धव अपने प्रभाव से तुमको सम्मानित हुआ समझते हैं और तुम लज्जा के मारे अपने मन की बात कह नहीं सकते हो, इसी से तुम पीले पड़कर दुबले हो गये हो। अनेक प्रकार की बुद्धि से सम्पन्न व्यक्तियों को तुम अपने गुण से अधीन करना चाहते हो। तुम अविद्वान् और निर्धन होने पर भी विद्या और दान के द्वारा यशस्वी होने की इच्छा रखते हो। तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हारा कोई काम सफल नहीं होता। जब तुम किसी काम को सफल करने का उद्योग करते हो तब उसमें अनेक विघ्न आ जाते हैं, इसी से तुम पीले और दुर्बल हो रहे हो। तुम किसी का कोई अपराध नहीं करते तो भी लोग तुमको कोसते रहते हैं। तुम गुणहीन और निर्धन होने के कारण अपने सुहृद्वर्ग का दुःख नहीं दूर कर सकते। तुम सज्जनों को गृहस्थ, दुर्जनों को वनवासी और मुक्त पुरुषों को गृहस्थ-धर्म में आसक्त देखते हो, इसी से तुम पीले पड़कर दुबले हो गये हो। धर्म-अर्थ-काम-सम्बन्धी तुम्हारी बातें प्रमाणित नहीं मानी जातीं। तुम बुद्धिमान् होने पर भी कृपण के दिये हुए धन से निर्वाह करते हो। पापी व्यक्तियों की उन्नति और पुण्यात्माओं की अवनति देखकर तुम्हारा मन हमेशा दुखी रहता है, इसी से तुम पीले पड़कर दुबले हो गये हो। तुम सुहृदों के अनुरोध से परस्पर-विरोधी व्यक्तियों

का प्रिय कार्य करना चाहते हो। श्रोत्रिय ब्राह्मणों को कुमार्गगामी और ज्ञानी पुरुषों को अजितेन्द्रिय देखकर तुमको बहुत सन्ताप होता है। हे राक्षस, इन्हीं कारणों से तुम्हारा शरीर इस प्रकार दुर्बल और पीला हो रहा है।

बुद्धिमान् ब्राह्मण के यों कहने पर राक्षस बहुत प्रसन्न हुआ। उसने ब्राह्मण के साथ मित्रता करके उसका यथोचित सत्कार किया और बहुत सा धन देकर उसको विदा किया। ३६

एक सौ पचीस अध्याय

श्राद्ध की विधि आदि के वर्णन में देवदूत और पितर आदि का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर अपना कल्याण चाहनेवाले दरिद्र मनुष्य को कौन-कौन कर्म करने चाहिएँ? कौन सा दान श्रेष्ठ है, किस प्रकार का दान कहाँ करना चाहिए और किन पुरुषों का सम्मान किया जाय?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, महर्षि वेदव्यास ने यह विषय मुझे जिस प्रकार बतलाया है, वही तुम्हारे सामने कहता हूँ। महात्मा यम ने, नियम का पालन और योग का अभ्यास करके, तपस्या का महाफल प्राप्त किया था। जिस कर्म के करने से देवता, पितर, ऋषि, प्रमथ और दिग्गजगण तथा लक्ष्मी और चित्रगुप्त प्रसन्न होते हैं; जिस शास्त्र में सरहस्य महाफलजनक ऋषि-धर्म, महादान और सब यज्ञों का फल लिखा है; उस कर्म और उस शास्त्र को जो मनुष्य जानता है और उसी के अनुसार कर्म करता है वह निस्सन्देह दोषहीन और गुण-सम्पन्न होता है। एक तेली दस पशुघातकों (कसाइयों) के समान, एक कलवार दस तेलियों के समान, एक वेश्या दस कलवारों के सदृश और साधारण राजा दस वेश्याओं के समान होता है। इन सबकी अपेक्षा
राजा का उत्तरदायित्व दूना है। अतएव राजाओं का दान अति निषिद्ध है। सुपात्र ब्राह्मण १०
इन लोगों का दान न लेकर त्रिवर्गशास्त्र को, धर्मशास्त्र को और जिन शास्त्रों में पितरों और देवताओं का रहस्य वर्णित है उन शास्त्रों को सुनते हैं। जिस शास्त्र में सरहस्य महाफलजनक ऋषि-धर्म, महायज्ञ-फल और सब दानों का फल लिखा है उस शास्त्र को जो पढ़ता, उत्तम रूप से धारण करता और दूसरों को पढ़ाता है वह नारायण-स्वरूप है। जो महात्मा भक्ति के साथ अतिथि-सेवा करता है वह गोदान, तीर्थयात्रा और यज्ञ करने का फल पाता है। जो सज्जन श्रद्धा के साथ धर्मशास्त्र सुनता है और जिसका मन परम पवित्र है वह पाप से मुक्त होकर मरने के बाद श्रेष्ठ लोक को जाता और अपने पुण्य से विविध सुख भोगता है।

एक बार एक देवदूत ने महर्षियों, देवताओं और पितरों के बीच बैठे हुए इन्द्र से पूछा—देवराज! मैं गुणवान् अश्विनीकुमारों की आज्ञा से महर्षियों, देवताओं और पितरों के पास आया हूँ। इस समय मुझे तीन सन्देह उत्पन्न हुए हैं; कृपा करके उनको दूर कीजिए। श्राद्धकर्ता

और श्राद्ध में भोजन करनेवाला इन दोनों के लिए, श्राद्ध के दिन, भोग करना क्यों निषिद्ध है?
२१ तीन पिण्ड अलग-अलग क्यों दिये जाते हैं और ये तीनों पिण्ड किसको दिये जाते हैं?

पितरों ने कहा—देवदूत, तुमने जो तीन बातें पूछी हैं उनका उत्तर एकाग्र होकर सुनो। जो मनुष्य श्राद्ध करके या श्राद्ध में भोजन करके मैथुन करता है उसके पितर उस दिन से लेकर एक महीने तक उसके वीर्य में सोते हैं। श्राद्ध में जो तीन पिण्ड दिये जाते हैं उनमें पहला पिण्ड तो जल में फेंक दे, दूसरा प्रधान पत्नी को खिला दे और तीसरा आग में छोड़ दे। श्राद्ध की विधि इसी प्रकार बतलाई गई है। जो मनुष्य इस नियम का पालन करता है उस पर पितृगण बहुत प्रसन्न होते हैं और उसके वंश तथा धन-सम्पत्ति की वृद्धि होती है।

देवदूत ने कहा—पितृगण! आपने जल में फेंक देने, पत्नी को खिला देने और आग में भस्म कर देने का नियम बतलाया है। मैं यह पूछता हूँ कि जो पिण्ड जल में फेंक दिया जाता है उससे कौन देवता सन्तुष्ट होता है और उस पिण्ड के द्वारा पितरों का उद्धार किस प्रकार होता है। श्राद्ध-कर्ता की आज्ञा से उसकी प्रधान स्त्री जो पिण्ड खा लेती है उसके द्वारा सन्तुष्ट होकर पितृगण श्राद्ध-
३२ कर्ता का क्या कल्याण करते हैं और जो पिण्ड आग में छोड़ा जाता है वह किसे प्राप्त होता है?

पितरों ने कहा—देवदूत, तुमने बड़ा ही जटिल प्रश्न किया है। इस प्रश्न को सुनने से हमको बड़ी प्रसन्नता हुई। देवता और महर्षिगण पितृकार्य की हमेशा प्रशंसा करते हैं; किन्तु उनमें चिरजीवी पितृभक्ति-परायण ब्रह्मा के समान लब्धवर महर्षि मार्कण्डेय के सिवा पितृकार्य की विधि और कोई नहीं जानता। जो पिण्ड जल में फेंका जाता है उससे चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। चन्द्रमा इस पिण्ड द्वारा स्वयं प्रसन्न होकर देवताओं और पितरों को प्रसन्न करते हैं। जो पिण्ड श्राद्धकर्ता की आज्ञा से उसकी स्त्री खा लेती है उससे पितृगण प्रसन्न होकर उस स्त्री के गर्भ में पुत्र उत्पन्न करते हैं। और, जो पिण्ड अग्नि में छोड़ दिया जाता है उससे पितृगण प्रसन्न होकर श्राद्धकर्ता की इच्छाएँ पूरी करते हैं। हे देवदूत, तीन पिण्डदान करने से यही फल
४० मिलता है। अब मैं बतलाता हूँ कि श्राद्ध में भोजन करनेवालों को श्राद्ध के दिन क्यों मैथुन न करना चाहिए। जो ब्राह्मण, श्राद्धकर्ता का पितृस्वरूप होकर, श्राद्ध में भोजन करता है उसे उस दिन स्त्री-सहवास न करना, स्नान करना, पवित्र और क्षमाशील रहना आवश्यक है। जो इस प्रकार के ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन कराता है उसके वंश की वृद्धि होती है।

यह कहकर पितरों के चुप हो जाने पर, सूर्य के समान तेजस्वी, विद्युत्प्रभ नाम के एक महर्षि ने कहा—देवराज! मनुष्य मोहित होकर कीट, पिपीलिका, साँप, भेड़, मृग और पक्षी आदि का नाश करके जो पाप बटोरता है उस पाप से उसका छुटकारा किस तरह हो सकता है? महर्षि विद्युत्प्रभ का यह प्रश्न सुनकर देवता, ऋषि और पितृगण बहुत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे।

इन्द्र ने कहा—तपोधन ! जो मनुष्य तीन दिन कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, प्रभास और पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता हुआ स्नान करके गाय की पीठ का स्पर्श और गाय की पूँछ को नमस्कार करता तथा निराहार रहता है वह तिर्यग्योनि के वध के पाप से उसी तरह छुटकारा पा जाता है जिस तरह चन्द्रमा राहु से मुक्त होते हैं। ५०

तब विद्युत्प्रभ ने कहा—देवराज, मैं इस विषय में अति सूक्ष्म धर्म का वर्णन करता हूँ। शरीर में बरगद की जटाओं का रङ्ग और प्रियङ्गु (सफ़ेद सरसों ?) लगाकर दूध के साथ साठी के चावल का भात खाने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। एक बार बृहस्पति ने भगवान् शङ्कर से इस विषय का वर्णन किया था, वह मैं तुमको सुनाता हूँ। मनुष्य पर्वत पर जाकर निराहार और ऊर्ध्वबाहु होकर, हाथ जोड़कर, अग्नि के दर्शन करने से सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य ग्रीष्म और शीतकाल में सूर्य की किरणों में तपता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह सूर्य-चन्द्र के समान तेजस्वी हो जाता है। महात्मा विद्युत्प्रभ के कह चुकने पर इन्द्र ने देवताओं के बीच बैठे हुए बृहस्पति से कहा—भगवन्, जो धर्म मनुष्यों के लिए सुखावह और जो उनके लिए दूषित है उसका वर्णन कीजिए।

बृहस्पति ने कहा—देवराज ! जो मनुष्य सूर्य की ओर मुँह करके पेशाब करता है, जो वायु से द्वेष रखता है, जो उस गाय का दूध दुह लेता है जिसका बछड़ा बहुत छोटा है और जो अग्नि में आहुति नहीं देता, इनसे जो दोष होते हैं उनका वर्णन सुनो। सूर्य, वायु, अग्नि और ६१
लोकमाता गायों की उत्पत्ति स्वयं ब्रह्माजी से हुई है। ये सब मनुष्यों के देवता हैं और मनुष्यों को पाप से बचाते हैं। जो स्त्री या पुरुष सूर्य की ओर मुँह करके पेशाब करते हैं वे छियासी वर्ष तक दुराचारी और कुल के कलङ्क-स्वरूप होकर जीवन बिताते हैं। जो वायु से द्वेष करता है उसकी सन्तान गर्भ में ही नष्ट हो जाती है। जो मनुष्य अग्नि में आहुति नहीं देता उसके अग्निकार्य के समय अग्निदेव हव्य नहीं ग्रहण करते और जो बालवत्सा गाय का दूध पीता है उसके वंश में पुत्र नहीं उत्पन्न होता। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने इन पापों का यह फल बतलाया है। जिन कामों के करने का निषेध है उनको कभी न करे और जो करने योग्य हैं उनके लिए प्राण पण से उद्योग करे।

महात्मा बृहस्पति के यह कह चुकने पर देवताओं और ऋषियों ने पितरों से पूछा—
हे पितृगण, अल्पबुद्धिवाले मनुष्यों के किस काम से आप सन्तुष्ट होते हैं ? मनुष्य कौन सा कर्म ७०
करके पितरों से उऋण हो सकते हैं और किस प्रकार का दान अक्षय होता है ?

पितरों ने कहा—महाशयो ! शुभ कर्म करनेवाले मनुष्यों के जिस काम से हम सन्तुष्ट होते हैं उसको सुनो। नीले रङ्ग का बैल (साँड़) छोड़ देने, वर्षाकाल में दीप दान करने और अमावास्या को तिल मिला हुआ जल देने से मनुष्य का पितरों के ऋण से उद्धार हो जाता है।

इस प्रकार का दान अक्षय और महाफलप्रद है। इस दान से हम तृप्त होते हैं। जो मनुष्य इस तरह पितरों का श्राद्ध करके सन्तान उत्पन्न करता है वह अपने पिता-पितामह आदि पूर्वजों का दुर्गम नरक से उद्धार करता है।

पितरों के यों कहने पर वृद्ध महर्षि गार्ग्य ने पूछा—हे पितृगण, नीले रङ्ग का साँड़ छोड़ने से कौन सा फल होता है और अमावास्या के दिन तिल मिला हुआ जल तथा वर्षाकाल में दीप-दान करने का क्या फल है ?

पितरों ने कहा—हे तपोधन, नीले रङ्ग का छोड़ा हुआ साँड़ अपनी पूँछ से तालाब का पानी उछालता है तो उस पानी से साँड़ छोड़नेवाले के पितर साठ हज़ार वर्ष तक तृप्त रहते हैं। और, यदि वह साँड़ सींगों से नदी-किनारे की मिट्टी उछालता है तो साँड़ छोड़नेवाले के पितर चन्द्रलोक को जाते हैं। वर्षाकाल में दीप-दान करने से मनुष्य चन्द्रमा के समान
८० सुशोभित होता है और वह कभी तमोगुण के अधीन नहीं होता। जो मनुष्य अमावास्या के दिन तांबे के बर्तन में रखकर शहद और तिल मिले हुए जल से पितरों का तर्पण करते हैं उनको श्राद्ध करने के समान फल होता है। उनकी सन्तानें सदा प्रसन्न रहती हैं और उनका वंश सन्तानों से परिपूर्ण रहता है। जो मनुष्य श्रद्धा के साथ इस प्रकार के काम करता है वह
८४ निस्सन्देह पितरों से उऋण हो जाता है।

एक सौ छब्बीस अध्याय

विष्णु का अपना प्रीतिकर धर्म बतलाना तथा बलदेव, देवता, अग्नि और विश्वामित्र आदि द्वारा पृथक्-पृथक् धर्म का वर्णन

भीष्म कहते हैं कि इन्द्र ने विष्णु से पूछा—भगवन्, आप किस काम से प्रसन्न होते हैं?

विष्णु ने कहा—देवराज, ब्राह्मणों की निन्दा मुझे बहुत असह्य है। ब्राह्मणों का सत्कार करने से मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। जो ब्राह्मणों को सदा प्रणाम करता और भोजन करके परमात्मा के पैर छूता तथा चक्र (गोबर से लिपे, सुदर्शन-मन्त्र से पूजित, गोल स्थान) की पूजा करता है, उससे मैं बहुत प्रसन्न रहता हूँ। जो मनुष्य उद्धृत मिट्टी मस्तक में लगाता और बौने ब्राह्मण तथा पानी से निकले हुए वराह को देखकर नमस्कार करता है उसका कोई अमङ्गल नहीं होता और उसके पाप का लेश नहीं रह जाता। जो मनुष्य पीपल के वृक्ष, गोरोचना और गाय की पूजा करता है उसका सम्मान सर्वत्र होता है। मैं इन सब वस्तुओं में स्थित होकर पूजा ग्रहण करता हूँ। जब तक यह संसार स्थित है तब तक मैं इसी प्रकार की पूजा से प्रसन्न होता रहूँगा। जो मनुष्य पीपल के वृक्ष, गोरोचना और गायों की पूजा न करके दूसरे प्रकार से मेरी पूजा करता है उसकी पूजा मैं कभी ग्रहण नहीं करता। उसे उस पूजा का कोई फल नहीं मिलता।

इन्द्र ने कहा—भगवन्, आप सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि और संहार करते हैं। आप सब प्राणियों के प्रकृति-स्वरूप हैं, तो फिर क्यों आपने केवल बौने ब्राह्मण, जल से निकले हुए वराह, चक्र, उद्धृत मिट्टी और चरणों की प्रशंसा की है?

विष्णु भगवान् ने मुसकुराकर कहा—मैंने चक्र द्वारा दैत्यों का संहार, पैरों से पृथिवी को व्याप्त, वराहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु का नाश और वामन (बौना) रूप धारण करके बलि को परास्त किया है, इसी कारण इन सबका सत्कार करने से मैं पूजित और परम सन्तुष्ट होता हूँ। जो मनुष्य इस प्रकार मेरी पूजा करता है उसका कहीं अनादर नहीं होता। जो मनुष्य ब्रह्मचारी ब्राह्मण को आया हुआ देखकर उसे भोजन कराके स्वयं भोजन करता है तो वह भोजन अमृत-तुल्य होता है। जो मनुष्य प्रातःसन्ध्या करके सूर्य के सम्मुख खड़ा होता है उसे सब तीर्थों के स्नान का फल मिलता है और उसके पापों का नाश हो जाता है। यह परम गुप्त विषय है। अब और जो कुछ पूछना हो वह पूछो।

इसके बाद बलदेव ने कहा—मनुष्यों का सुख-जनक एक गुप्त विषय सुनो। इस गुप्त विषय को न जानने से मूर्ख मनुष्य भारी दुःख पाते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर गाय, घी, दही, सरसों और प्रियङ्गु का स्पर्श करता है उसका सब पाप नष्ट हो जाता है।

देवताओं ने कहा—जो मनुष्य उत्तरमुख हो जल से पूर्ण ताम्रपात्र लेकर उपवास करता या व्रत का सङ्कल्प करता है, उस पर देवता प्रसन्न होते हैं और उसकी सब इच्छाएँ सफल होती हैं। अल्प बुद्धिवाले मनुष्य ही इसके विरुद्ध आचरण करते हैं। उपवास के सङ्कल्प में और बलिदान के विषय में ताम्रपात्र ही श्रेष्ठ है। ताम्रपात्र में रखकर बलि, भिक्षा, अर्घ्य और पितरों को तिल मिला हुआ जल देना चाहिए। दूसरे बर्तन में रखकर इनका दान करने से थोड़ा फल होता है। हमने बतला दिया कि देवता किस तरह सन्तुष्ट होते हैं।

धर्म ने कहा—जो ब्राह्मण राज-कर्मचारी, घण्टा बजानेवाला, सेवक, गोरक्षक, वणिक्, शिल्पी, नट, मित्रद्रोही, वेदाध्ययन-विमुख अथवा शूद्रा का पति हो उसे हव्य-कव्य न देना चाहिए। ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन कराने से श्राद्धकर्ता के पितर तृप्त नहीं होते, बल्कि उसके वंश का नाश हो जाता है। जिसके घर से अतिथि विमुख होकर चला जाता है उसके घर से अग्नि, देवता और पितर भी निराश होकर लौट जाते हैं। अतिथि का सत्कार न करनेवाले को स्त्री-हत्या, गोहत्या, ब्रह्महत्या, कृतघ्नता और गुरु की स्त्री हर लेने के समान पाप लगता है।

अग्नि ने कहा—जो मनुष्य ब्राह्मण, गाय और अग्नि को लात मारता है उसके अयश की सीमा नहीं रहती। उसके पितर डर जाते और देवता उससे रुष्ट हो जाते हैं। अग्निदेव कभी उसकी आहुति ग्रहण नहीं करते। उसे सौ जन्म तक नरक भोगना पड़ता है और किसी तरह

उससे छुटकारा नहीं मिलता। अतएव अपना कल्याण चाहनेवाला मनुष्य ब्राह्मण, गाय और अग्नि को लात न मारे।

विश्वामित्र ने कहा—जो मनुष्य भाद्र मास की कृष्ण-त्रयोदशी, मघा नक्षत्र और गजच्छाया योग में दोपहर के समय दक्षिणमुख बैठकर पितरों को पिण्डदान देता है वह तेरह वर्ष तक श्राद्ध करने का फल पाता है।

गायों ने कहा—जो मनुष्य 'हे समङ्गे, हे अकुतोभये, हे क्षेमे, हे सखि, हे भूयसि! तुमने ब्रह्मपुर में, इन्द्र के यज्ञस्थल में बछड़े समेत निवास किया था, आकाशमार्ग और अग्निमार्ग में निवास करने के कारण देवर्षि नारद ने और देवताओं ने तुम्हारा नाम सर्वसहा रक्खा है' इस प्रकार गाय की स्तुति करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वह चन्द्रमा के समान तेजस्वी होता और इन्द्रलोक तथा गोलोक को जाता है। जो मनुष्य पर्व के दिन गायों के निवास-स्थान में ये पूर्वोक्त वाक्य कहता है उसके पाप, भय और शोक नष्ट हो जाते हैं और वह इन्द्रलोक को जाता है।

भीष्म कहते हैं—उस समय वसिष्ठ आदि सप्त महर्षि ब्रह्माजी के चारों ओर हाथ जोड़े बैठे थे। उनमें से महर्षि वसिष्ठ ने ब्रह्माजी से पूछा—भगवन्, इस लोक में जो सच्चरित्र मनुष्य दरिद्र हैं उनको यज्ञ का फल कैसे प्राप्त हो सकता है?



ब्रह्माजी ने कहा—महर्षियो, तुमने मनुष्यों के लिए लाभदायक बड़ा गूढ़ विषय पूछा है। मनुष्य जिस प्रकार यज्ञ का फल पा सकता है, वह सुनो। जो मनुष्य पौष मास के शुक्लपक्ष में, रोहिणी नक्षत्र में स्नान करके पवित्र होकर केवल धोती पहनकर खुली जगह में मञ्च पर सोता और चन्द्रमा की किरणें पीता है उसे निस्सन्देह महायज्ञ का फल मिलता है। हे महर्षियो, तुमने जो गूढ़ विषय पूछा था उसका मैंने वर्णन किया।

एक सौ सत्ताईस अध्याय

अग्नि और गार्ग्य आदि का पृथक्-पृथक् धर्म-रहस्य कहना

अग्नि ने कहा—पूर्णिमा को चन्द्रमा के उदय होने पर जो मनुष्य चन्द्रमा की ओर मुँह करके एक अञ्जलि जल और घी मिले हुए अक्षत देता है वह गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों में

आहुति देने का फल पाता है। अमावास्या के दिन फला-फूला वृक्ष काटने की बात तो दूर रही, एक पत्ता तोड़ लेने से भी ब्रह्महत्या का पाप लगता है। अमावास्या के दिन दतौन करने से चन्द्रमा को कष्ट होता है और पितृगण भी व्यथित होते हैं। देवता पर्व के दिन उसकी दी हुई हवि नहीं लेते और उसका वंश क्रमशः क्षीण हो जाता है।

श्री ने कहा—जिसके घर में स्त्रियाँ पीटी जाती हैं और खाने-पीने के बर्तन तथा आसन बिखरे पड़े रहते हैं उस पापमय घर में पर्व के दिन देवता और पितर हव्य-कव्य नहीं लेते।

अङ्गिरा ने कहा—जो मनुष्य एक वर्ष तक सुवर्चला की जड़ हाथ में धारण करता और करञ्जक की जड़ में दीपदान करता है उसकी सन्तान की वृद्धि होती है।

गार्ग्य ने कहा—अतिथि का सत्कार, यज्ञशाला में दीपदान और पुष्कर तीर्थ का स्मरण करना तथा दिन में न सोना, माँस न खाना और गो-ब्राह्मण की हिंसा न करना मनुष्यों के लिए आवश्यक है। पण्डितों ने इन सब कामों को महाफलप्रद श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। सैकड़ों १०
यज्ञ करने का फल क्षीण हो जाता है, किन्तु श्रद्धा के साथ अतिथि-सत्कार आदि धर्म का पालन करने से इनका फल कभी क्षीण नहीं होता। श्राद्ध, देवकार्य, तीर्थयात्रा अथवा पर्व के दिन हवन करने की वस्तुएँ यदि रजस्वला, श्वित्र रोग (सफ़ेद कोढ़) वाली या पुत्रहीना स्त्री देख ले तो देवता उस वस्तु को ग्रहण नहीं करते और पितृगण तेरह वर्ष तक उससे असन्तुष्ट रहते हैं। धुले कपड़े पहनकर शुद्ध चित्त से ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन और भारत का पाठ कराकर यज्ञ करने से अक्षय फल प्राप्त होता है।

धौम्य ने कहा—फूटे बर्तन, टूटी खाट, मुर्ग़, कुत्ता और वृक्ष का घर में रहना अमङ्गल-जनक है। जो मनुष्य घर में फूटे बर्तन रखता है उसके यहाँ हमेशा लड़ाई-झगड़ा लगा रहता है। जिसके घर में टूटी खाट होती है उसके धन का नाश हो जाता है। जो मुर्ग़ और कुत्ता पालता है उसकी हवन की हुई वस्तु को देवता ग्रहण नहीं करते। अतएव न तो टूटे बर्तन और टूटी खाट रक्खे और न मुर्ग़ और कुत्ता पाले। वृक्ष के नीचे साँप और बिच्छू के रहने की सम्भावना रहती है, इसलिए घर के भीतर वृक्ष लगाना अनुचित है।

जमदग्नि ने कहा—जिस मनुष्य का हृदय पवित्र नहीं होता वह एक अश्वमेध, सौ वाजपेय और अनेक प्रकार के यज्ञ तथा सिर के बल खड़े होकर घोर तपस्या करने पर भी नरक को जाता है। चित्त की शुद्धि यज्ञ और सत्य के समान है। प्राचीन समय में एक उञ्छ-वृत्ति-
वाला ब्राह्मण शुद्ध चित्त से ब्राह्मण को एक सेर सत्तू देकर ब्रह्मलोक को गया है। १९

एक सौ अट्ठाईस अध्याय

वायु द्वारा धर्म का वर्णन

वायु ने कहा—अब मैं मनुष्यों के सुखावह धर्म का और दोषों का वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति के साथ वर्षा के चार महीने भर पितरों के उद्देश से दीपदान, तिल मिला हुआ जल और विद्वान् ब्राह्मण को भोजन देता है उसे सौ पशुओं के पालन करने का फल मिलता है। अब एक और गुप्त बात सुनो। यदि शूद्र से अग्नि मँगवाकर उस अग्नि में उन वस्तुओं का हवन कर दिया जाता है, जिनमें स्त्रियों ने भूल से यज्ञ की बची हुई सामग्री मिला दी है तो होम करनेवाले को निस्सन्देह पाप लगता है। तीनों अग्नि उससे क्रुद्ध हो जाते हैं; देवता और पितृगण कभी उस पर प्रसन्न नहीं होते और अन्त को उसे शूद्र योनि में जन्म लेना पड़ता है। मनुष्य जिस कर्म को करके इस पाप से मुक्त होकर सुखी होते हैं उसको सुनो। जो मनुष्य उपवास करके भक्ति के साथ तीन दिन अग्नि में गोबर, गोमूत्र, दूध और घी की आहुति देता है वह इस पाप से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य यह प्रायश्चित्त करके पाप से मुक्त हो जाता है, उस पर प्रसन्न होकर एक वर्ष के बाद देवता उसकी सामग्री ग्रहण करते हैं और उसके श्राद्ध करने पर पितर तृप्त होते हैं। यह मैंने स्वर्ग के
११ अभिलाषी मनुष्यों के धर्म और अधर्म का वर्णन किया।

एक सौ उन्तीस अध्याय

लोमश का धर्म-रहस्य कथन

लोमश ने कहा—जो मनुष्य विवाह न करके परस्त्री-गमन किया करता है, श्राद्ध में उसकी दी हुई वस्तुओं को पितृगण ग्रहण नहीं करते। परस्त्री-गमन, वन्ध्या स्त्री से प्रेम और ब्राह्मण का धन चुराना, ये तीनों काम एक समान पापजनक हैं। जो मनुष्य इनमें से कोई काम करता है उसका दिया हुआ पिण्डदान पितृगण नहीं लेते और उसके हवनीय द्रव्य से देवता सन्तुष्ट नहीं होते। अतएव परस्त्री-गमन, वन्ध्या स्त्री से प्रेम और ब्राह्मण का धन हरण करना कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को उचित नहीं है। श्रद्धा के साथ बड़े-बूढ़े गुरु आदि की आज्ञा का पालन अवश्य करे। जो मनुष्य प्रत्येक द्वादशी और पूर्णिमा को ब्राह्मणों को घी और चावल देता है वह चन्द्रमा और समुद्र की वृद्धि करता है; वह तेजस्वी और बलवान् होता है और इन्द्र उसे अश्वमेध यज्ञ के फल का एक चतुर्थांश तथा चन्द्रमा प्रसन्न होकर उसे अभीष्ट फल देते हैं। जिन धर्मों का पालन करने से मनुष्यों को कलियुग में सुख मिलता है उनका वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान करके सफ़ेद कपड़े पहनकर भक्ति के साथ ब्राह्मणों को तिल से भरा हुआ पात्र देता है और पितरों के उद्देश से शहद और तिल से मिला हुआ जल, दीपक और

तिल-चावल मिलाकर देता है उसे श्रेष्ठ फल मिलता है। इन्द्र ने कहा था कि जो मनुष्य ब्राह्मण ११
को तिल से भरा हुआ पात्र देता है उसे गोदान, भूमिदान और बहुत सी दक्षिणा देकर अग्निष्टोम
यज्ञ करने के समान फल मिलता है। तिलोदक के दान को पितृगण अक्षय दान कहते हैं। तिल-
चावल मिलाकर देने और दीपदान करने से पितर बहुत सन्तुष्ट होते हैं। यह मैंने देवताओं
और पितरों का सम्मानित, महर्षियों का प्रदर्शित, प्राचीन धर्म बतलाया। १५

एक सौ तीस अध्याय

अरुन्धती और चित्रगुप्त द्वारा वर्णित धर्म

भीष्म ने कहा कि धर्मराज! इसके बाद महर्षियों, पितरों और देवताओं ने तपस्विनी भगवती अरुन्धती से पूछा—देवी! आप महर्षि वसिष्ठ के समान व्रतधारिणी, सच्चरित्र और तपस्विनी हैं। इसलिए हम सब आपसे धर्म का गूढ़ विषय सुना चाहते हैं। धर्म का तत्त्व बतलाकर आप हम सबको प्रसन्न कीजिए।

अरुन्धती ने कहा—महानुभावो, आप लोगों ने जो मुझे स्मरण किया है इससे मेरे तप
की वृद्धि हो गई। अब मैं, आप लोगों की कृपा से, धर्म के गूढ़ तत्त्वों का वर्णन करती हूँ।
जो व्यक्ति श्रद्धावान् हैं और जिनके मन पवित्र हैं उनसे धर्म का गूढ़ विषय अवश्य कहना
चाहिए। और, जो श्रद्धाहीन, अभिमानी, ब्राह्मणघाती और गुरुतल्पगामी हैं उनसे धर्म का तत्त्व
कदापि न कहे। जो बारह वर्ष तक प्रतिदिन एक कपिला गाय का दान, प्रति महीने एक यज्ञ
और श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थ में एक लाख गोदान करता है उसे अतिथि को सन्तुष्ट करनेवाले महात्मा
के समान श्रेष्ठ फल मिलता है। अब मनुष्यों को सुख देनेवाला और एक धर्मतत्त्व सुनिए। जो
मनुष्य प्रातःकाल उठकर गाय के सींग पर कुश से जल छिड़कता है और सींग से गिरे हुए उस जल
को मस्तक में लगाकर उस दिन उपवास करता है वह सिद्ध-चारण-सेवित, तीनों लोकों के, पवित्र
तीर्थों में स्नान करने का फल पाता है। अतएव श्रद्धा के साथ यह पवित्र कार्य अवश्य करे। ११

अरुन्धती के ये वचन सुनकर देवता, पितर और सब प्राणी प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करने लगे। भगवान् प्रजापति ने अरुन्धती से कहा—कल्याणी, तुमने बड़ा अद्भुत धर्मरहस्य बतलाया है। अतएव मैं प्रसन्न होकर वर देता हूँ कि तुम्हारी तपस्या हमेशा बढ़ती रहे।

यम ने कहा—भद्रे, तुमने जिस धर्मतत्त्व का वर्णन किया है वह बहुत रमणीय है। चित्रगुप्त ने मुझे प्रसन्न करनेवाला जो गूढ़ धर्म कहा है वह मैं बतलाता हूँ। महर्षियों और अन्य मनुष्यों को श्रद्धा के साथ इसे सुनना चाहिए। संसार में मनुष्य जो पाप-पुण्य करते हैं वह रत्ती भर भी नष्ट नहीं हो सकता। वह सब पर्व के समय सूर्यमण्डल में जाकर स्थित हो जाता है। मनुष्य जब दूसरे लोक को जाता है तब सूर्यदेव उसके शुभाशुभ कर्मों की साक्षी देते

हैं। उनके साची देने पर जीव को अपने पाप-पुण्य का फल भोगना पड़ता है। अब धर्म का सञ्चय करने की विधि सुनो। मनुष्य हमेशा जल, दीपक, खड़ाऊँ और छाता देता रहे। पुष्कर तीर्थ में विद्वान् ब्राह्मण को कपिला गौ का दान और यत्न से अग्निहोत्र की रचा अवश्य करे। समय आने पर सभी प्राणी शरीर त्यागकर दूसरे लोक को जाते हैं। वहाँ अहङ्कारी अल्पबुद्धि-वाले मनुष्य, भूख-प्यास से पीड़ित होकर, घोर कष्ट पाते हैं। उस दुर्गति से छुटकारा पाने का उनके पास कोई साधन नहीं रहता। अतएव इस लोक में जिन कर्मों के करने से परलोक में उस विपत्ति से बचाव हो सके वह उपाय सुनो। जलदान करना उस विपत्ति से बचने का श्रेष्ठ उपाय है। इसमें अधिक खर्च भी नहीं है। जलदान करने से परलोक में सुख मिलता है और उसका फल अति श्रेष्ठ है। जलदान करनेवाले को परलोक में पवित्र जलवाली नदी प्राप्त होती है। उस नदी का जल अक्षय, शीतल और अमृत के समान तृप्त करनेवाला है। जलदान करनेवाला मनुष्य परलोक में उसी नदी का जल पीता है। अब दीपदान का फल सुनो। जो मनुष्य दीपदान करता है उसे अन्धकारमय लोक में नहीं जाना पड़ता। चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि उसे प्रकाश देते हैं। देवता उसके चारों ओर प्रकाश करते हैं और वह स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी होता है। अतएव सभी को दीपदान करना चाहिए। अब विद्वान् ब्राह्मण को कपिला-दान और विशेषकर पुष्कर तीर्थ में कपिला-दान करने का जो फल होता है वह बतलाता हूँ। जो मनुष्य पुष्कर तीर्थ में कपिला गाय का दान करता है उसे एक बैल समेत सौ गायों के दान करने का फल मिलता है। पुष्कर तीर्थ में केवल एक कपिला का दान करने से ब्रह्महत्या के समान घोर पाप से छुटकारा मिल जाता है। अतएव पुष्कर तीर्थ में, कार्तिक की पूर्णिमा के दिन, कपिला-दान अवश्य करे। जो मनुष्य सदाचारी ब्राह्मण को खड़ाऊँ देता है उसके कामों में न तो कोई विघ्न पड़ता और न उसे कोई दुःख मिलता है। छाता देनेवाले को परलोक में सुख देनेवाली छाया मिलती है। सारांश यह कि मनुष्य, पात्र और अपात्र का विचार करके, जो कुछ दान करता है उसका फल अवश्य पाता है।

चित्रगुप्त के कहे हुए इन वाक्यों को यम के मुँह से सुनकर सूर्यदेव ने देवताओं और पितरों से कहा—हे महानुभावो, महात्मा चित्रगुप्त के इस धर्म-रहस्य को आपने सुना। जो व्यक्ति श्रद्धा के साथ ब्राह्मणों को इन वस्तुओं का दान करता है उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। ब्राह्मणघाती, गो-घातक, परस्त्री-गामी, वेद पर श्रद्धा न रखनेवाले और धूर्तता से जीविका करनेवाले पापी मनुष्यों से बातचीत करना भी उचित नहीं। दुराचारी मनुष्य के साथ कोई सम्पर्क न रखना चाहिए। दुराचारी मनुष्य मरने के बाद पीब और रक्त पीनेवाले कीड़े की तरह नरक में पड़ता है। देवता, पितर, स्नातक ब्राह्मण और तपस्वी महर्षि उपर्युक्त पाँच प्रकार के दुराचारियों से सन्तुष्ट नहीं रहते।



एक सौ इकतीस अध्याय

प्रमथगण का ऋषियों को प्रजा की हिंसा करने और न करने के कारण बतलाना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इसके बाद देवताओं, पितरों और महर्षियों ने प्रमथगण से पूछा—उच्छिष्ट, अपवित्र और नीच प्राणियों की हिंसा तुम लोग किस प्रकार करते हो ? किन कर्मों के करने से मनुष्य तुम्हारे अत्याचार से बच सकता है और किन कर्मों के करने से तुम मनुष्यों के घरों में उपद्रव नहीं करते ?

प्रमथगण ने कहा—जो मनुष्य सम्भोग के बाद पवित्र नहीं होता और जो श्रेष्ठ पुरुषों का अनादर करता, मोह के वश होकर 'वृथामांस' खाता, वृक्ष के नीचे सोता, सिर पर मांस रखता, जल में अपवित्र वस्तुएँ फेंकता और थूकता है अथवा सिर रखने की जगह पैर और पैर रखने की जगह सिर रखकर सोता है, ऐसे दोषों से युक्त अपवित्र मनुष्यों को हम मार डालते और खा लेते हैं। ऐसे मनुष्यों को हम सताया करते हैं। किन्तु जो मनुष्य शरीर में गोरोचना लगाते, हाथ में वच रखते, मस्तक पर घी और चावल लगाते तथा मांस नहीं खाते हैं उनको हम नहीं सताते। जिन घरों में दिन-रात आग जलती रहती है, जिन घरों में बाघ का चमड़ा और दाँत, पहाड़ की खोह में रहनेवाला भारी कछुआ, यज्ञ का धुआँ, बिलाव अथवा पीला या काला बकरा रहता है, उन घरों में हमारे जैसे मांसाहारी भयंकर निशाचर नहीं जा सकते। आपके पूछने से, विस्तार के साथ, हमने यह भेद बतला दिया। १२

एक सौ बत्तीस अध्याय

रेणुक का दिग्गजों से धर्म सुनकर देवताओं के सामने उसका वर्णन करना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, इसके बाद ब्रह्माजी ने कहा—हे देवताओ ! यह जो महापराक्रमी रसातल-निवासी महानाग बैठा है, इसका नाम रेणुक है। यदि तुम धर्म का गूढ़ तत्त्व जानना चाहते हो तो, पर्वत और बन से परिपूर्ण इस पृथिवी को धारण करनेवाले, महाबली दिग्गजों के पास इस रेणुक नाग को भेजो। दिग्गजों के पास जाकर रेणुक सूक्ष्म धर्म सुन आवेगा और तुम्हारे सामने उसका वर्णन करेगा।

यह सुनकर देवताओं ने महानाग रेणुक को दिग्गजों के पास भेज दिया। दिग्गजों के पास जाकर रेणुक ने पूछा—हे दिग्गजो, मैं देवताओं और पितरों की आज्ञा से धर्म का गूढ़ विषय सुनने के लिए आपके पास आया हूँ, अतएव आप विस्तार के साथ मुझे उसका उपदेश दीजिए।

दिग्गजों ने कहा—हे महानाग ! कार्तिक की कृष्णाष्टमी को आश्लेषा नक्षत्र हो तो, द्वेष और क्रोध को त्यागकर, श्रद्धा के साथ सन्ध्या के समय 'अनन्त आदि महापराक्रमी नाग और उनके वंश में उत्पन्न सब नाग मेरे बल और तेज की वृद्धि के लिए मुझे बलिप्रदान करें और

भगवान् नारायण पृथिवी का उद्धार करने के समय जिस प्रकार बलवान् हुए थे उसी प्रकार का
बल मुझे भी प्राप्त हो' यह कहकर वल्मीक के ऊपर गजेन्द्र-पुष्प, नील वस्त्र और नील लेपन के
१२ साथ गुड़ और भात की बलि देनी चाहिए। ऐसा करने से, रसातलवासी पृथिवी के भार से
पीड़ित, हम सब बहुत प्रसन्न होते हैं और पृथिवी धारण करने की हमारी थकावट दूर हो जाती
है। हमारे मत में इस प्रकार के बलि-प्रदान के समान परम धर्म दूसरा नहीं है। ब्राह्मण,
क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, किसी वर्ण का भी जो मनुष्य एक वर्ष तक इस प्रकार बलिदान
करता है वह सौ वर्ष तक त्रिलोकवासी महापराक्रमी नागों का अतिथि रहता है और उसे
बड़ा फल मिलता है।

दिग्गजों के मुँह से धर्म का उपदेश सुनकर रेणुक ने देवताओं, पितरों और ऋषियों
के पास जाकर उसका वर्णन किया। इस धर्म को सुनकर देवता, पितर और ऋषिगण
१७ रेणुक की प्रशंसा करने लगे।

एक सौ तैंतीस अध्याय

महादेवजी का देवताओं से गायों की प्रशंसा करना

अब महेश्वर ने कहा—हे महानुभावो, आप सबने धर्म का सारांश कहा। अब मैं भी कुछ धर्म-तत्त्व कहता हूँ। धर्मात्मा और श्रद्धावान् से ही धर्म का गूढ़ विषय कहना चाहिए। जो मनुष्य महीने भर तक प्रसन्नता के साथ गायों को अच्छी तरह खिलाता है और प्रतिदिन केवल एक बार भोजन करता है उसका फल सुनो। गायों के समान परम पवित्र कोई नहीं है। देवताओं, असुरों और मनुष्यों से परिपूर्ण तीनों लोकों की रक्षा गायें करती हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन गायों को खिलाता और उनकी सेवा करता है उसे बड़ा धर्म होता है। सत्ययुग में मैंने गायों को अपने पास रहने की आज्ञा दी थी और ब्रह्माजी ने मेरा यथोचित सत्कार करके मुझे एक बैल दिया था। वह बैल आज भी मेरी ध्वजा में स्थित है। मैं हमेशा गायों के साथ क्रीड़ा करता हूँ। अतएव सदा गायों की पूजा करना मनुष्यों का कर्तव्य है। गायों की सेवा करके उनको प्रसन्न करने पर उनसे श्रेष्ठ वर मिलता है। जो मनुष्य गायों को एक दिन खिलाता
९ है उसे सम्पूर्ण शुभ कर्मों के फल का चौथाई भाग मिलता है।

एक सौ चौंतीस अध्याय

कार्त्तिकेय का देवताओं से विशेष धर्म का वर्णन करना

कार्त्तिकेय ने कहा—अब मैं धर्म के विषय में अपना मत बतलाता हूँ। जो मनुष्य नीले साँड़ के सींग में लगी हुई मिट्टी अपने शरीर में लगाकर तीन दिन स्नान करता है उसका

कोई अमङ्गल नहीं होता, वह सब जगह अपना प्रभाव जमा लेता और जब-जब वह पृथिवी में जन्म लेता है तब-तब वीर पुरुष होता है। अब एक और रहस्य सुनो। पूर्णिमा को ताँबे के बर्तन में, शहद मिला हुआ पकान्न रखकर चन्द्रमा को बलि देने से अश्विनीकुमार, साध्य, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, वायु और वसुगण बहुत प्रसन्न होते हैं तथा चन्द्रमा और समुद्र की वृद्धि होती है। यह मैंने अत्यन्त सुख देनेवाले गूढ़ धर्म का वर्णन किया।

विष्णु ने कहा—जो मनुष्य ईर्ष्या का त्याग करके प्रतिदिन भक्ति के साथ एकाग्रचित्त होकर देवताओं और ऋषियों के बतलाये हुए इस गूढ़ धर्म को पढ़ता या सुनता है उसके सब पाप, भय और विघ्न नष्ट हो जाते हैं; उसे सब श्रेष्ठ धर्मों का फल मिलता है और देवता तथा
पितर बहुत दिनों तक उसका दिया हुआ हव्य-कव्य ग्रहण करते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणों के १०
सामने इस गूढ़ धर्म का वर्णन करता है उससे ऋषि, देवता और पितर प्रसन्न होते हैं और धर्म में उसकी दृढ़ भक्ति होती है। महापातक के सिवा मनुष्य के और सब पाप इस धर्म-रहस्य के सुनने से नष्ट हो जाते हैं।

भीष्म ने कहा—धर्मराज! यह मैंने वेदव्यासजी का कहा हुआ, सब देवताओं से पूजित, देवताओं का गूढ़ धर्म तुमको बतलाया। यह धर्म रत्नपूर्ण वसुन्धरा से कम नहीं है। भक्तिहीन,
नास्तिक, धर्मभ्रष्ट, निर्दय, कुतर्की, गुरुद्रोही और हृदयहीन मनुष्य को इस धर्म का उपदेश न दे। १७

एक सौ पैंतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से भक्ष्य और अभक्ष्य अन्न का तथा जिन मनुष्यों का अन्न खाने योग्य होता है उनका वर्णन करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णों में से किन-किन का अन्न खाना चाहिए?

भीष्म कहते हैं—हे धर्मराज! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य परस्पर एक दूसरे का अन्न खा सकते हैं; किन्तु सर्वभक्षी कर्मभ्रष्ट शूद्रों का अन्न न खाना चाहिए। वैश्य यदि साग्निक और चातुर्मास्यनिरत न हो तो ब्राह्मण और क्षत्रिय उसका अन्न न खावें। शूद्र का अन्न जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य खाते हैं वे मानों पृथिवी का, जल का और मनुष्यों का मल भक्षण करते हैं। ब्राह्मण प्रभृति तीनों वर्ण सन्ध्योपासन आदि कर्म करते हुए भी यदि शूद्र के करने योग्य काम करते हैं तो शरीर त्यागने के बाद वे नरक में गिरते हैं। ब्राह्मणों का वेद पढ़कर और मनुष्यों का स्वस्त्ययन करके, क्षत्रियों का प्रजा-पालन और वैश्यों का कृषि कर्म आदि द्वारा संसार की उन्नति करना प्रधान धर्म है। यदि वैश्य कृषि, वाणिज्य और पशुओं का पालन आदि करके अपना निर्वाह करें तो उनके लिए निन्द्य नहीं है। किन्तु जो वैश्य अपना धर्म त्यागकर

१० शूद्र के कर्म करता है वह शूद्र के समान है। उसका अन्न न खाना चाहिए। जो ब्राह्मण शस्त्रजीवी, चिकित्सक, गाँव के मुखिया, ज्योतिषी, पुरोहित या वेतनभोगी अध्यापक हैं वे सब शूद्र के समान हैं। अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यदि इस प्रकार के ब्राह्मणों का अन्न खाते हैं तो निस्सन्देह अभोज्य भोजन करने के कारण घोर विपत्ति में पड़ते हैं और मरने के बाद तिर्यग्योनि में जन्म पाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए चिकित्सक का अन्न विष्ठा, पुंश्चली का अन्न मूत्र, विद्या से जीविका करनेवाले का अन्न शूद्रान्न और शिल्पजीवी तथा निन्दित मनुष्यों का अन्न रक्त के समान है। अतएव इन सबका अन्न सज्जनों को न खाना चाहिए। दुष्टों का अन्न खाने से पाप लगता है। यदि ब्राह्मण अपमान और तिरस्कार सहकर किसी का अन्न खाता है तो वह क्लेश पाता और उसके कुल का नाश हो जाता है। गाँव के मुखिया का अन्न खाने से चण्डाल के घर में; गोहत्यारे, ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाले और गुरुतल्पगामी का अन्न खाने से राक्षस के कुल में; धरोहर हड़प लेनेवाले और कृतघ्न का अन्न खाने से मध्यदेश से निकाले हुए किरात के घर में जन्म लेना पड़ता है।

हे धर्मराज, जिसका अन्न खाने योग्य है और जिसका अन्न खाने योग्य नहीं है वह सब
२१ मैंने तुमको बतला दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

एक सौ छत्तीस अध्याय

अयोग्य मनुष्यों का अन्न खाने और अभोज्य भोजन करने का प्रायश्चित्त

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह ! आपने भक्ष्य और अभक्ष्य का विषय तो बतलाया, अब मुझे एक और सन्देह हुआ है उसे दूर कीजिए। ब्राह्मणों को दूसरों का अन्न खाने और हव्य-कव्य लेने से जो पाप लगता है उसका क्या प्रायश्चित्त है ?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, अपने प्रश्न का उत्तर ध्यान देकर सुनो। ब्राह्मण घी और तिल का दान ले तो गायत्री पढ़कर अग्नि में आहुति दे। मांस, शहद और नमक का दान लेकर लेने के समय से सूर्योदय तक खड़े रहने से उस पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है। सुवर्ण-दान लेकर गायत्री का जप करने और लोहा धारण करने से उस पाप से छुटकारा मिलता है। धन, वस्त्र, स्त्री, अन्न, खीर और ऊख का रस लेने पर भी यही प्रायश्चित्त करे। ऊख और तेल लेने पर तीनों सन्ध्याओं में स्नान करना चाहिए। धान्य, फूल, फल, पुआ, जल, यावक, दही और दूध का दान लेने पर सौ बार गायत्री का जप करना चाहिए। प्रेत के उद्देश से दिये हुए
१० खड़ाऊँ और छाता लेने पर ध्यानपूर्वक सौ बार गायत्री का जप करे। जेल गये हुए का अथवा जिसको जन्म-सूतक लगा हो उसका दिया हुआ खेत लेने पर तीन रात उपवास करने से उस पाप

का प्रायश्चित्त होता है। जो ब्राह्मण कृष्ण पक्ष में श्राद्ध में भोजन करता है वह उस दिन दुबारा नहाये बिना सन्ध्योपासन और जप न करे; उस दिन फिर भोजन न करे। इसी से अपराह्न में पितरों का श्राद्ध करने का नियम है, जिसमें दुबारा रात में खाने की इच्छा न हो। जो ब्राह्मण मृत-अशौच के तीसरे दिन, जिसके घर में मृत-सूतक हुआ है उसका अन्न खावे वह बारह दिन तक प्रतिदिन त्रिकाल-स्नान करके तेरहवें दिन ब्राह्मणों को घी देने से शुद्ध होता है। जो मनुष्य मृत-सूतक का अन्न दस दिन तक खाता है वह अशौच के बाद गायत्री और अघमर्षण मन्त्र का जप, रेवती यज्ञ और कूष्माण्ड-होम करने से शुद्ध होता है। जो मनुष्य मृत-सूतक में तीन दिन अशुद्ध अन्न खाता है वह सात दिन तक त्रिकाल-स्नान करने पर पवित्र होता है और उसकी सब विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो ब्राह्मण शूद्र के साथ एक बर्तन में खा लेता है उसके
शुद्ध होने का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। जो वैश्य के साथ एक पात्र में भोजन कर ले वह तीन २०
दिन व्रत करने पर और जो क्षत्रिय के साथ एक बर्तन में भोजन कर ले वह वस्त्र समेत स्नान करने पर शुद्ध हो जाता है। जो शूद्र शूद्र के साथ एक बर्तन में खाता है उसके कुल का नाश, जो वैश्य वैश्य के साथ एक पात्र में खाता है उसके पशुओं और बान्धवों का नाश, जो क्षत्रिय क्षत्रिय के साथ एक बर्तन में खाता है उसके ऐश्वर्य का नाश और जो ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ एक बर्तन में खाता है उसके तेज का नाश हो जाता है। अतएव किसी के साथ एक पात्र में भोजन करना उचित नहीं। इस प्रकार परस्पर एक पात्र में भोजन करने से गायत्री, अघमर्षण, रैवती और कूष्माण्ड का जप तथा दूब और हल्दी आदि मङ्गल वस्तुओं का स्पर्श करना चाहिए।
यही इस पाप का प्रायश्चित्त है। २५

एक सौ सैंतीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से दृष्टान्तपूर्वक दान की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! दान और तपस्या, इन दोनों से स्वर्ग की प्राप्ति होती है; किन्तु इन दोनों में श्रेष्ठ कौन सा है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज! दान और तपस्या, इन दोनों का फल एक सा है। धर्मात्मा तपस्वी राजाओं ने दान के प्रभाव से जिन लोकों को प्राप्त किया है, उनको बतलाता हूँ। महर्षि आत्रेय अपने शिष्यों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर श्रेष्ठ लोक को गये हैं। उशीनर के पुत्र राजा शिवि ने ब्राह्मण को अपना पुत्र दान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया है। काशीनरेश प्रतर्दन ने भी ब्राह्मण को अपना पुत्र दान कर दिया था, जिससे दोनों लोकों में उनकी कीर्ति हुई थी। रन्तिदेव ने वसिष्ठजी को अर्घ्य देकर श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया था। महात्मा देवावृध ने ब्राह्मण को

सोने की शलाकाओं से युक्त सौ छाते देकर स्वर्गलोक प्राप्त किया है। तेजस्वी ब्राह्मण को अपना राज्य देकर महाराज अम्बरीष स्वर्गलोक को गये हैं। महाराज जनमेजय ने ब्राह्मण को दिव्य यान और बैल तथा महारथी कर्ण ने ब्राह्मण को अपने कुण्डल देकर श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया है। ब्राह्मण को अनेक रत्न और रमणीय वासस्थान देकर राजर्षि द्रुपदभी स्वर्ग का सुख भोग रहे हैं। विदर्भ के राजा निमि ने महात्मा अगस्त्य को अपनी कन्या और राज्य का दान करके बन्धु-बान्धवों समेत स्वर्गलोक प्राप्त किया था। जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने ब्राह्मण को सम्पूर्ण पृथिवी का दान करके अपनी इच्छा से भी अधिक श्रेष्ठ लोक प्राप्त किये हैं। अनावृष्टि के समय महर्षि वसिष्ठ ने प्राणियों की रक्षा की थी, उसी के प्रभाव से वे अक्षय सुख भोग रहे हैं। दशरथ के पुत्र रामचन्द्र ने यज्ञ में बहुत सा धन दान किया था, जिसके प्रभाव से उनको अक्षय लोक प्राप्त हुए और आज भी संसार में उनका यश फैला हुआ है। महात्मा वसिष्ठ को राजा कक्षसेन ने धन दान किया था जिससे उनको स्वर्गलोक प्राप्त हुआ है। करन्धम के पौत्र अवीक्षित् के पुत्र महात्मा मरुत्त ने महर्षि अङ्गिरा को कन्यादान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया था। पाञ्चालपुत्र परम धार्मिक राजा ब्रह्मदत्त ने निधि शंख का दान करके श्रेष्ठ लोक पाया है। राजा मित्रसह ने महात्मा वसिष्ठ को अपनी प्रिय भार्या मदयन्ती देकर स्वर्गलोक प्राप्त किया था। मनु के पुत्र महात्मा सुद्युम्न ने लिखित को, धर्म के अनुसार, चोरी का दण्ड देकर श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया था। महायशस्वी राजर्षि सहस्रचित्य ने ब्राह्मण के लिए अपने प्राण त्याग दिये थे। उस धर्म के प्रभाव से उनको श्रेष्ठ लोकों में सुख मिला था। राजा शतद्युम्न ने महात्मा मौद्गल्य को अनेक वस्तुओं से परिपूर्ण सुवर्णमय घर, महात्मा सुमन्यु ने शाण्डिल्य को पर्वत के तुल्य ऊँचे अन्न के ढेर, शाल्वराज द्युतिमान् ने ऋचीक को राज्य, राजर्षि मदिराश्व ने हिरण्यहस्त को अपनी सुमध्यमा कन्या, राजा लोमपाद ने ऋष्यशृंग को अभीष्ट धन और शान्ता नाम की कन्या तथा राजर्षि भगीरथ ने कौत्स को हंसी नाम की यशस्विनी कन्या और कोहल को एक लाख बछड़ों समेत गायें दान करके स्वर्ग प्राप्त किया है।

हे धर्मराज, इनके सिवा और भी अनेक महात्मा दान और तपस्या के प्रभाव से बार-बार स्वर्ग को जाते और फिर वहाँ से लौट आते हैं। जिन गृहस्थों ने दान और तपस्या के प्रभाव से श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त किया है उनकी कीर्ति पृथिवी पर सदा बनी रहेगी। यह मैंने शिष्ट पुरुषों का धर्म तुमको बतलाया। पूर्वोक्त राजाओं ने दान, यज्ञ और पुत्रोत्पादन करके स्वर्गलोक प्राप्त किया है। अतएव तुम भी दान और यज्ञ करते रहो। अब सन्ध्या हो गई है, तुमको और कोई सन्देह होगा तो उसे कल सवेरे दूर कर दूँगा।

एक सौ अड़तीस अध्याय

पाँच प्रकार के दान

दूसरे दिन प्रातःकाल युधिष्ठिर ने भीष्म के पास जाकर फिर पूछा—पितामह, दान के माहात्म्य से जो राजा स्वर्गलोक को गये हैं उनका वर्णन आपसे मैंने सुना। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि दान कितने प्रकार के हैं, उनका फल क्या है, दान किसे देना चाहिए और दान करने का क्या कारण है।

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, दान करने की प्रथा यथार्थ रूप से सुनो। धर्म, अर्थ, भय, काम और कारुण्य, इन पाँच कारणों से दान पाँच प्रकार के हैं। ईर्ष्याहीन होकर ब्राह्मणों को दान करने से इस लोक में कीर्ति होती और परलोक में परम सुख मिलता है। यह धार्मिक दान है। 'मुझे दान देता है, मुझे दान देगा और मुझे दान दिया था' यह विचारकर जो कोई किसी को कुछ देता है वह आर्थिक दान कहलाता है। उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, अतएव वह व्यक्ति अपमानित होकर क्रोध करके मेरा अहित करेगा, यह सोचकर किसी मूर्ख को कुछ दिया जाता है तो वह भयनिमित्तक दान कहलाता है। वह मेरा प्रिय है और मैं उसका प्रिय हूँ, यह विचारकर अपनी इच्छा से मित्र को जो दान किया जाता है उसे कामनिमित्तक दान कहते हैं। और 'यह मनुष्य ग़रीब है, माँग रहा है, थोड़ा देने से भी यह प्रसन्न हो जायगा' यह विचारकर दया भाव से जो कुछ दिया जाता है उसे कारुण्य-निमित्तक दान कहते हैं।

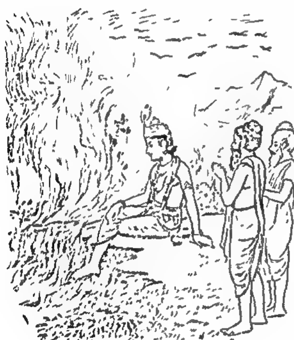
हे धर्मराज, शास्त्र में यह पाँच प्रकार का दान बतलाया गया है। इस प्रकार का दान करने से पुण्य और यश होता है। भगवान् प्रजापति ने कहा है कि सबको यथाशक्ति दान करना चाहिए। ११

एक सौ उन्तालीस अध्याय

श्रीकृष्ण का पुत्र के लिए कैलास पर्वत पर तप करना। वहाँ उनके दर्शन करने के लिए नारद आदि का आना। श्रीकृष्ण के मुँह से निकले हुए अग्नि द्वारा पर्वत का भस्म होना और श्रीकृष्ण का प्रसन्न होकर पर्वत को फिर वैसा ही कर देना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप मेरे कुल के दीपक स्वरूप हैं। आप सब शास्त्रों के जानकार हैं। मेरे सजातीयों और सम्बन्धियों के लिए यह समय दुर्लभ है; अब आपके सिवा कोई मुझे उपदेश देनेवाला नहीं है। मैं आपके मुँह से धर्मार्थयुक्त, परिणाम में सुख देनेवाला, अद्भुत विषय सुनना चाहता हूँ। यदि मुझ पर और मेरे भाइयों पर आपकी दया-दृष्टि है तो हमारे भले के लिए—सब राजाओं के पूजित, आपका सम्मान करनेवाले—महात्मा मधुसूदन और सब राजाओं के सामने उसका वर्णन कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, धर्मराज युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर महात्मा भीष्म
स्नेह के साथ कहने लगे--बेटा, मैंने महात्मा वासुदेव और भगवान् भवानीपति का जो माहात्म्य
सुना है और भगवान् शङ्कर तथा पार्वती को जिस प्रकार सन्देह उत्पन्न हुआ था वह विचित्र
उपाख्यान मैं कहता हूँ। प्राचीन समय में धर्मात्मा वासुदेव ने किसी पर्वत पर बारह वर्ष में समाप्त
१० होनेवाला कठोर व्रत किया था। उस समय नारद, पर्वत, वेदव्यास, धौम्य, देवल, काश्यप और
हस्तिकाश्यप आदि महर्षि और सिद्धगण, अपने शिष्यों समेत, इनके दर्शन करने को वहाँ गये।
इन्होंने बड़ी प्रसन्नता से उन महर्षियों का सत्कार किया। महर्षिगण हरे, सुनहरे और मोर
की पूँछ से युक्त नये आसनों पर बैठकर प्रसन्नता से धर्म-विषयक चर्चा करने लगे। उसी
समय मधुसूदन के मुँह से सहसा, व्रतचर्या
से उत्पन्न, तेज निकलकर उपस्थित राज-
र्षियों, महर्षियों और देवताओं के सामने
अनेक पशुओं, पक्षियों, हिंसक जीवों और
साँपों से भरे हुए तथा वृक्ष-लताओं से परिपूर्ण
उस पर्वत को भस्म करने लगा। पर्वत पर
रहनेवाले सब प्राणी उस तेज से जलकर
हाहाकार करने लगे। उस अग्नि ने पर्वत
के सब शिखरों को जलाकर, शिष्य की
तरह, विष्णु के पास आकर उनको प्रणाम
किया। तब भगवान् ने पर्वत को जला हुआ
देखकर दयाभाव से उसकी ओर स्नेह-दृष्टि
से देखा। विष्णु के देखते ही वह पर्वत
पुष्पित वृक्ष-लताओं और पशु, पक्षी, साँप
२१ आदि जीवों से परिपूर्ण हो गया।



उस समय महर्षिगण उस अचिन्तनीय अद्भुत घटना देखकर विस्मित और पुलकित
होकर भक्ति के साथ आँसू बहाने लगे। वासुदेव ने उनको विस्मित देखकर मधुर शब्दों
में पूछा—महर्षियो, आप लोग विषय और ममता से हीन तथा शास्त्रज्ञानी होकर भी इस
प्रकार विस्मित क्यों हो रहे हैं?

महर्षियों ने कहा—भगवन्, आप ही सब लोकों की उत्पत्ति और संहार करते हैं।
आप ही सरदी, गरमी और वर्षा-स्वरूप हैं। इस लोक में स्थावर-जङ्गम जितने प्राणी हैं उन सबके
पिता, माता, ईश्वर और उत्पत्ति के कारण आप ही हैं। इस समय आपके मुँह से अग्नि

निकलते देखकर हम लोगों को बड़ा सन्देह हुआ है। अतएव आप पहले इस अग्नि के निकलने
का कारण बतलाइए, उसके बाद और जो कुछ पूछना होगा वह पूछेंगे।
वासुदेव ने कहा—महर्षियो, प्रलय काल के अग्नि के समान जो तेज मेरे मुँह से निकल-
कर इस पर्वत को भस्म करके मेरे पास लौट आया है वह वैष्णव तेज है। आप लोग जितेन्द्रिय, ३०
जितक्रोध और देवतुल्य होने पर भी उस तेज को देखकर घबरा गये थे। मैंने ब्रह्मचर्य का पालन
किया है इसी से मेरे मुँह से यह आग उत्पन्न हुई है, अतएव आप लोग घबराइए नहीं। अपने
समान पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से मैं इस पर्वत पर आकर कठोर व्रत का पालन कर रहा हूँ।
मेरा आत्मा अग्निरूप से निकलकर ब्रह्माजी के पास गया था। वहाँ 'महादेवजी के तेज का आधा
भाग मेरे पुत्र रूप में परिणत हुआ है' यह सुनकर, मेरे पास लौटकर, शिष्य की तरह मेरे पैरों की
वन्दना करके उसने शान्त भाव धारण किया है। यह मैंने आप लोगों को अपना गूढ़ तत्त्व विस्तार
के साथ बतला दिया। अब आप लोग घबराना छोड़ दें। आप लोग ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न और
व्रतधारी हैं। आप लोगों की गति कहीं रुकती नहीं है। अतएव आप लोगों ने आकाश में या
पृथिवी पर कहीं कोई अद्भुत बात देखी हो तो बतलाइए। मैं आप लोगों के मुँह से निकली हुई
वचनरूप सुधा पीना चाहता हूँ। यद्यपि मैं अपने अप्रतिहत श्रेष्ठ प्रकृति-भाव में पृथिवी और स्वर्ग ४०
की सब अद्भुत बातें देखता हूँ तो भी अपनी प्रकृति में जो कुछ देखता हूँ उससे मुझे कोई आश्चर्य
नहीं होता। सज्जनों के मुँह से निकले हुए वचन अत्यन्त श्रद्धेय और पत्थर की लकीर के
समान होते हैं, इसलिए आप लोगों के मुँह से कुछ सुनने की मेरी इच्छा है। आप लोगों से
मनुष्यों को निर्मल बुद्धि देनेवाली बातें सुनकर मैं संसार में उनका प्रचार करूँगा।
यह सुनकर महर्षियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। कोई तो इनकी पूजा और कोई इनकी
स्तुति करते हुए इनकी ओर देखने लगे। इसके बाद सब महर्षियों ने देवर्षि नारद से कहा—
भगवन्! हम लोगों ने तीर्थयात्रा के समय हिमालय पर जो अद्भुत और अचिन्त्य घटना देखी
थी उसे आप, हम लोगों के हित के लिए, महात्मा वासुदेव से कहिए। महर्षियों के अनुरोध
करने पर देवर्षि नारद प्राचीन कथा कहने लगे। ५०

एक सौ चालीस अध्याय

नारदजी का श्रीकृष्ण से शिव-पार्वती के संवाद का और शिव के तीसरे
नेत्र की उत्पत्ति का वर्णन करना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, नारायण के सुहृद् देवर्षि नारद ने शिव-पार्वती का संवाद कहने का इरादा करके कहा—हे वासुदेव! प्राचीन समय में शङ्कर ने सिद्ध, चारण, किन्नर, यक्ष, राक्षस, अप्सरा, गन्धर्व और प्रमथगण के निवास-स्थान, अनेक ओषधियों और पुष्पों से

युक्त, अति रमणीय पवित्र आश्रम हिमालय पर्वत पर तपस्या की थी। उस समय शङ्कर के पास जितने भूत थे उनमें कोई भीषण आकार के, कोई दिव्य मूर्तिवाले, कोई कुरूप, कोई सिंह-बाघ और हाथी के आकार के और कोई गीदड़, तेंदुआ, रीछ, उलूक, भेड़िया, बाज़, मृग आदि पशु-पक्षियों के जैसे मुँहवाले थे। भगवान् शङ्कर जिस आश्रम में रहते थे वह आश्रम अनेक साँपों, दिव्य फूलों, दिव्य ज्योतियों तथा दिव्य धूप और गन्ध से परिपूर्ण था। वहाँ श्रेष्ठ मृदङ्गों, पणवों और नगाड़ों के शब्द होते थे। भगवान् शङ्कर के चारों ओर अप्सराएँ और भूतगण नाचते थे। कहीं-कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे। महात्मा मुनिगण, ऊर्ध्वरेता सिद्धगण और मरुत्, वसु, साध्य, हुताशन, वायु, विश्वेदेवा, यक्ष, नाग, पिशाच और लोकपालगण उस स्थान पर स्थित थे। वहाँ सब ऋतुएँ हमेशा रहती थीं। सब ओषधियाँ प्रज्वलित होकर एक साथ उस वन को प्रकाशित कर देती थीं। पक्षी मधुर शब्द बोलते हुए इधर-उधर उड़ रहे थे। सारांश यह कि शङ्कर की तपस्या के प्रभाव से वह पर्वत अति रमणीय हो गया था। उसी समय हम लोग तीर्थयात्रा करते हुए भगवान् भूतनाथ के दर्शन करने उस आश्रम में गये। सब प्राणियों के अभयदाता, दैत्यों के संहारक, कुछ पीले रङ्ग की दाढ़ी और जटाओं से शोभित भगवान् वृषभध्वज बाघम्बर पहने, सिंह का चमड़ा कन्धे पर रक्खे, साँप का यज्ञोपवीत पहने, लाल रङ्ग का विजायठ धारण किये, विचित्र धातुओं से शोभित पलँग सदृश उस पर्वत के ऊपर बैठे थे। उनके दर्शन करके नमस्कार करते ही हम लोगों के सब पाप छूट गये। उसी समय पार्वतीजी महादेवजी के समान वस्त्र पहने, सब तीर्थों के जल से पूर्ण सोने का कलश लिये, भूतों की स्त्रियों के साथ फूल बरसाती हुई महादेवजी के पास आ गईं। उनके साथ पहाड़ी नदियाँ भी उनके पीछे-पीछे आ रही थीं। पार्वतीजी ने महादेवजी के पास आकर हँसकर अपने हाथों से उनकी आँखें मूँद लीं। महादेवजी के दोनों नेत्र ढक जाते ही संसार भर में अँधेरा हो गया और होम तथा वषट्कार आदि का लोप हो गया। सारा संसार डर के मारे व्याकुल हो उठा। इसके बाद अकस्मात् शङ्कर के मस्तक में, प्रलयकाल के प्रचण्ड सूर्य के समान, एक नेत्र उत्पन्न हो गया। इस नेत्र से प्रदीप्त ज्योति निकलकर, क्षणभर में सब अन्धकार दूर करके, हिमालय को भस्म करने लगी। तब पर्वत पर के पशु डरकर महादेवजी की शरण में आये। बारह सूर्यों के समान, प्रलयकाल के अग्नि के समान, वह भीषण अग्नि आकाश में फैलकर अनेक धातुओं, शिखरों और ओषधियों समेत हिमालय पर्वत को भस्म करने लगा। हिमालय की यह दशा देखकर पार्वतीजी हाथ जोड़कर महादेवजी के सामने खड़ी हो गईं।

महादेवजी ने पार्वतीजी का स्त्रीस्वभावसुलभ मृदु भाव और पिता की दुरवस्था देखने के कारण उनको दुःखित देखकर, प्रसन्न होकर हिमालय की ओर देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही हिमालय, पहले की तरह, परम रमणीय हो गया।

पार्वतीजी ने अपने पिता हिमालय को पूर्ववत् देखकर शङ्करजी से कहा—भगवन्, आपके मस्तक में तीसरा नेत्र उत्पन्न होने का क्या कारण है और आपने मेरे पिता हिमालय को—वृक्ष-लताओं समेत—क्यों भस्म करके फिर पहले का सा कर दिया, यह सब देखकर मुझे बड़ा सन्देह हुआ है; सब बातें ठीक-ठीक बतलाकर आप मेरा सन्देह दूर कीजिए। ४२



महादेवजी ने कहा—देवी, तुमने अज्ञानवश अपने हाथों से मेरे दोनों नेत्र ढक दिये इससे सारा संसार प्रकाशहीन होकर विनष्टप्राय होने लगा। तब मैंने, संसार की रक्षा के लिए, तीसरा नेत्र उत्पन्न किया। इसी नेत्र के तीक्ष्ण तेज से तुम्हारे पिता हिमालय जलकर भस्म हो गये। मैंने तुमको प्रसन्न करने के लिए उनको फिर पूर्ववत् कर दिया।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्! आपके पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा के मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर और दक्षिण दिशा का मुख अति भीषण क्यों है? आपकी जटाएँ कपिल वर्ण की और ऊपर को उठी क्यों हैं? आपका कण्ठ मोर की पूँछ के समान नीला क्यों है? और आप पिनाकपाणि, जटिल तथा ब्रह्मचारी क्यों हैं? इन बातों में मुझे बड़ा सन्देह है। मैं आपकी पतिव्रता सहधर्मिणी हूँ, अतएव आप कृपा करके विस्तार के साथ यह सब मुझे बतलाइए।

नारदजी ने कहा कि हे वासुदेव, पार्वतीजी के ये वचन सुनकर और उनकी बुद्धि तथा धैर्य को देखकर शङ्करजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पार्वतीजी से कहा—देवी, जिन कारणों से मेरा स्वरूप इस प्रकार का है उनको सुनो। ५१

एक सौ इकतालीस अध्याय

महादेवजी का पार्वतीजी से अपने चतुर्मुख, नीलकण्ठ, पिनाकधारी
और वृषभवाहन होने के कारण बतलाना

भगवान् शङ्कर ने कहा—प्रिये, प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने तिल-तिल भर सब रत्नों का सारांश लेकर तिलोत्तमा नाम की एक श्रेष्ठ स्त्री उत्पन्न की। वह असाधारण रूप-लावण्यवती

स्त्री मुझे प्रलोभित करने के लिए मेरे पास आकर, मेरे चारों ओर, घूमने लगी। वह जिस ओर
जाती थी उसी ओर, उसे देखने के लिए, योग के बल से मैंने सुन्दर मुख उत्पन्न कर लिया।
इस प्रकार तिलोत्तमा को देखने के लिए मेरे चार मुख हो गये। मैं पूर्व के मुख से इन्द्र का
शासन करता, उत्तर मुख से तुम्हारे साथ क्रीड़ा करता, पश्चिम मुख से प्राणियों को सुख देता
और भयङ्कर दक्षिण मुख से प्राणियों का संहार करता हूँ। सब लोकों का हित करने के लिए
मैं जटिल और ब्रह्मचारी हूँ तथा देवताओं के कार्य सिद्ध करने के लिए पिनाकपाणि हूँ। मेरी
श्री प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्र ने मेरे ऊपर वज्र फेंका था। वज्र के तेज से मेरा कण्ठ जल
गया, इसी कारण उस समय से मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ।

पार्वतीजी ने पूछा—देवदेव! हाथी, घोड़ा आदि अनेक श्रेष्ठ वाहनों के रहते हुए
आपने बैल को अपना वाहन क्यों बनाया?

महेश्वर ने कहा—देवी, ब्रह्माजी ने पहले सुरभी की सृष्टि की थी। फिर सुरभी के वंश
१० में बहुत सी गायें उत्पन्न हुईं। उस समय उन सबका रङ्ग एक सा था। एक दिन एक बछड़े
के मुँह से दूध का फेना मेरे ऊपर गिर पड़ा, इस कारण मैं कुपित होकर गायों की ओर देखने
लगा। मेरे क्रोध की आग में जलकर गायें अनेक रङ्ग की हो गईं। मुझे कुपित देखकर ब्रह्माजी
ने मुझे शान्त करते हुए वाहनस्वरूप यह बैल दिया। इसी से मैं हाथी, घोड़ा आदि वाहनों
को त्यागकर इस बैल पर सवार होता हूँ।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्! देवलोक में परम रमणीय निवासस्थान विद्यमान रहने प
भी आप खोपड़ी, हड्डी, मांस, रक्त, चर्बी, बालों और आँतों से परिपूर्ण, गिद्ध और गीदड़ों से भ
हुए, चिता की आग से व्याप्त, अपवित्र श्मशान में क्यों रहते हैं?

महेश्वर ने कहा—देवी, मैं पवित्र स्थान की खोज में पृथिवी पर घूमता रहता हूँ; किन
श्मशान की अपेक्षा पवित्र कोई स्थान मुझे नहीं देख पड़ता। इसी से मैं श्मशान में रहता हूँ
इनके सिवा मेरे भूतगण बरगद की डालियों से ढके हुए, टूटी मालाओं से विभूषित, श्मशान
ही विहार करते हैं। उनको त्यागकर दूसरे स्थान में रहने की मेरी इच्छा नहीं होती। सारां
यह कि मेरी समझ में श्मशान से बढ़कर पवित्र स्थान संसार में दुर्लभ है। पवित्र स्थान चाहने
१९ वाले महात्मा परम पवित्र श्मशान में ही रहते हैं।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्, धर्म के क्या लक्षण हैं और धर्म का पालन किस प्रका
करना चाहिए? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है। आप मेरे और विविध वेषधारी इन ऋ
षियों के हित के लिए इसका वर्णन कीजिए।

नारदजी ने कहा कि हे वासुदेव, पार्वतीजी का यह प्रश्न सुनकर हम लोग विविध
द्वारा उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद महादेवजी ने कहा—देवी! अहिंसा, सत्य,

प्राणियों पर दया, शम और दान, ये सब गृहस्थों के प्रधान धर्म हैं। गार्हस्थ्य धर्म, परस्त्री-गमन न करना, अपनी स्त्री की रक्षा करना, बिना दी हुई वस्तु लेने की अनिच्छा और मदिरा-मांस का त्याग, ये पाँच प्रकार के धर्म सब धर्मों के मूल हैं। दूसरे सब धर्म इन पाँच प्रकार के धर्मों की शाखाएँ हैं। धर्मात्मा पुरुष बड़े यत्न से इन धर्मों का पालन करते हैं।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णों का धर्म सुनने की मेरी इच्छा है।

महादेवजी ने कहा—देवी, ब्राह्मण पृथिवी के देवता-स्वरूप हैं। उनका परम धर्म उपवास है। धर्मार्थसम्पन्न ब्राह्मण ब्रह्म-स्वरूप हैं। शास्त्र के अनुसार यज्ञोपवीत होने के बाद उन्हें ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करना चाहिए। इस प्रकार के आचरण किये बिना ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त हो सकता। अतएव धर्मपरायण ब्राह्मण इस परम धर्म का पालन करें।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्, चारों वर्णों के धर्म में मुझे बड़ा सन्देह है। आप विस्तार के साथ इसका वर्णन कीजिए।

महादेवजी ने कहा—पार्वती! धर्म का रहस्य सुनना, होम, गुरुकार्य और भिक्षावृत्ति करना, यज्ञोपवीत पहनना, वेद पढ़ना और ब्रह्मचर्य आश्रम में रहना ब्राह्मणों का परम धर्म है। ब्रह्मचर्य समाप्त होने के बाद ब्राह्मण समावर्तन करके, गुरु की आज्ञा लेकर, घर को आवे और अपने अनुरूप स्त्री के साथ विवाह करे। ब्राह्मण को शूद्र का अन्न न खाना चाहिए। सुमार्ग पर चलना, उपवास करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, साग्निक होकर अग्नि में आहुति देना, वेद पढ़ना, इन्द्रियों का निग्रह करना, विघसान्न भोजन करना, सत्य बोलना, अतिथि-सत्कार करना, गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों की रक्षा करना और विधिपूर्वक पशुबन्धन आदि यज्ञ करना ब्राह्मणों का कर्तव्य है। यज्ञ का अनुष्ठान, एक बार भोजन और अहिंसा से बढ़कर ब्राह्मण का श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है। कुटुम्बियों के भोजन कर लेने के बाद सभी ब्राह्मण, विशेषकर श्रोत्रिय ब्राह्मण, भोजन किया करें। पति और पत्नी का स्वभाव एक सा होने से ही परस्पर प्रेम होता है। गृहस्थ ब्राह्मणों को प्रतिदिन गृह-देवता की पूजा करना, गोबर से घर लीपना, उपवास और होम करना चाहिए। यह मैंने ब्राह्मणों के गार्हस्थ्य धर्म का वर्णन किया।

अब ध्यान देकर क्षत्रिय-धर्म को सुनो। प्रजा का पालन करना क्षत्रिय का परम धर्म है। प्रजा का पालन करने से क्षत्रियों को यज्ञ करने का फल मिलता है। जो राजा धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करता है वह उस पुण्य के प्रभाव से श्रेष्ठ लोक को जाता है। जितेन्द्रियता, वेदाध्ययन, अग्नि में आहुति देना, अध्ययन, यज्ञोपवीत धारण, धर्म-कर्म का अनुष्ठान, पोष्यवर्ग का भरण-पोषण, आरम्भ किये हुए काम में उद्योग, अपराध के अनुसार दण्ड-विधान, वेद के अनुसार यज्ञ, सद्विचार और दुखी मनुष्यों की सहायता करना तथा सत्य बोलना क्षत्रिय का

५१ कर्तव्य है। जो क्षत्रिय गाय और ब्राह्मण की रक्षा के लिए संग्राम में प्राण त्याग देता है वह अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता और स्वर्गलोक को जाता है।

अब वैश्यों का धर्म सुनो। पशुओं का पालन, कृषि और वाणिज्य करना, अग्नि में आहुति देना, दान करना, वेद पढ़ना, सुमार्ग पर चलना, अतिथि-सत्कार करना, जितेन्द्रिय और शान्त रहना तथा ब्राह्मणों का सम्मान करना वैश्यों का धर्म है। तिल, सुगन्धित वस्तुएँ और रस (नमक ?) बेचना वैश्यों को उचित नहीं।

अतिथि-सत्कार, धर्म अर्थ और काम का आचरण तथा ब्राह्मण आदि तीन वर्णों की सेवा शूद्र करें। जो शूद्र सत्यवादी, जितेन्द्रिय, अतिथि का सत्कार करनेवाला, सदाचारी और देवताओं तथा ब्राह्मणों का भक्त होता है वह तप का सञ्चय करता और अभीष्ट फल पाता है।
६० हे पार्वती, यह मैंने चारों वर्णों का धर्म तुमसे कहा। अब और क्या पूछना चाहती हो ?

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्, आपने चारों वर्णों का लाभदायक धर्म पृथक्-पृथक् बतलाया। अब उस धर्म का वर्णन कीजिए जो कि सबके लिए साधारण हो।

महादेवजी ने कहा—प्रिये, ब्रह्माजी ने संसार के सब प्राणियों की रक्षा के लिए ब्राह्मणों को उत्पन्न किया है। ब्राह्मण पृथिवी पर देवता-स्वरूप हैं। अतएव मैं पहले ब्राह्मणों का कुछ कर्तव्य बतलाकर फिर साधारण धर्म का वर्णन करूँगा। ब्राह्मणों का धर्म सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्माजी ने मनुष्यों के लिए वैदिक, स्मार्त और शिष्टाचार, ये तीन प्रकार के धर्म बतलाये हैं। जो ब्राह्मण वेदों के ज्ञाता होते हैं, जो हमेशा दान, अध्ययन और यज्ञ करते हैं और जो काम, क्रोध, लोभ के वशीभूत नहीं होते तथा वेतन लेकर अध्यापन नहीं करते वही सचमुच ब्राह्मण हैं। ...जी ने ब्राह्मणों की जीविका के लिए यज्ञ करना-कराना, पढ़ना-पढ़ाना, दान लेना और देना, ये छः कर्म निर्दिष्ट कर दिये हैं। ये छः कर्म करना ब्राह्मणों का सनातन धर्म है। हमेशा वेद का पाठ, यज्ञ और यथाशक्ति दान करने से समाज में प्रशंसा होती और श्रेष्ठ पुण्य का फल मिलता है।

अब साधारण धर्म सुनो। हमेशा शान्त रहने और सज्जनों की सङ्गति करने
७० से बढ़कर श्रेष्ठ धर्म गृहस्थों के लिए नहीं है। पञ्चयज्ञ करके पवित्र होना, सत्य बोलना, ईर्ष्या न करना, दान देना, ब्राह्मणों का सम्मान करना, साफ़ घर में रहना, अभिमान और कपट न करना, प्रिय वचन बोलना, अतिथि-सत्कार करना और कुटुम्बियों के भोजन कर लेने पर भोजन करना गृहस्थ का कर्तव्य है। जो मनुष्य अतिथि को पाद्य, अर्घ्य, आसन, शय्या, दीपक और आश्रय देता है वही परम धार्मिक है। प्रातःकाल उठकर मुँह-हाथ धो करके, ब्राह्मण को निमन्त्रण देकर, दो-पहर के समय उनको यथाशक्ति भोजन कराना और कुछ दूर साथ जाकर उनको विदा करना गृहस्थ का धर्म है। दिन-रात धर्म, अर्थ और काम में

तत्पर रहने से ही गृहस्थ का परम धर्म होता है। जिस धर्म के करने से स्वर्ग आदि की प्राप्ति होती है वह प्रवृत्ति-धर्म है। इस धर्म में गृहस्थों का पूर्ण अधिकार है। इस धर्म के प्रभाव से सबका उपकार होता है। प्रवृत्ति-धर्मावलम्बी गृहस्थ को यथाशक्ति दान, यज्ञ, पुष्टि-जनक कार्य और धर्म-मार्ग का अवलम्बन करके धन का उपार्जन करना चाहिए। धर्म से प्राप्त धन तीन भागों में विभक्त करके एक भाग से धर्म-कर्म करे, दूसरे भाग का उपभोग और तीसरे भाग से धन की वृद्धि करे।

अब निवृत्ति-धर्म सुनो। जिस धर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है वह निवृत्ति-लक्षण धर्म
है। निवृत्ति-धर्मावलम्बियों को एक रात से अधिक एक गाँव में न रहना चाहिए, सब जीवों पर ८०
दया करनी चाहिए और आशारूपी बन्धन से मुक्त हो जाना चाहिए। कमण्डलु, जल, पहनने के लिए वस्त्र, आसन, त्रिदण्ड, शय्या, अग्नि और घर पर ममता करना उन्हें उचित नहीं। वे निःस्पृह, स्नेह आदि बन्धनों से मुक्त और संयतचित्त होकर हमेशा वृक्ष के नीचे, सूने घर में या नदी-किनारे आदि निर्जन स्थानों में निवास करके परमात्मतत्त्व का चिन्तन करें। संन्यास धर्म का अवलम्बन करके निराहार और लकड़ी की तरह स्थिर होकर आत्मचिन्तन करने से शीघ्र मोक्ष प्राप्त होता है। एक ही गाँव में या एक ही नदी के किनारे बहुत दिनों तक रहना संन्यासी को उचित नहीं। मोक्षार्थी सज्जनों के लिए यह बहुत अच्छा वेदोक्त मार्ग है। जो मनुष्य इस मार्ग का अवलम्बन करता है वह संसार-सागर से पार हो जाता है। मोक्ष-धर्मावलम्बियों के चार भेद हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। कुटीचक की अपेक्षा बहूदक, बहूदक की अपेक्षा हंस और हंस की अपेक्षा परमहंस श्रेष्ठ होते हैं। सुख, दुःख, जरा और मृत्यु से छुटकारा
पाने का श्रेष्ठ उपाय इस निवृत्ति-धर्म से बढ़कर दूसरा नहीं है। ९०

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्! आपने मनुष्यों के लिए श्रेयस्कर मार्ग-स्वरूप गार्हस्थ्य, मोक्ष और शिष्टाचार-धर्म का विशेष रूप से वर्णन किया। अब ऋषियों का धर्म सुनने की मेरी इच्छा है। महर्षियों के यज्ञ के धुएँ की सुगन्धि से सम्पूर्ण तपोवन सुगन्धित हो जाता है, यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। अतएव आप उनका धर्म विस्तार के साथ बतलाइए।

महादेवजी ने कहा—देवी, जिस धर्म का आश्रय करके महर्षिगण सिद्धि प्राप्त करते हैं उसको सुनो। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने जिसे पिया था, जिससे यज्ञ की सिद्धि होती है और जिससे पितृगण तृप्त होते हैं, उस जल के फेन को पीकर जो ऋषि दिन व्यतीत करते हैं उन्हें फेनपायी कहते हैं। वालखिल्य महर्षियों का शरीर अँगूठे के सिरे के बराबर है। उनमें कुछ तो तपस्या द्वारा सिद्ध होकर सूर्यमण्डल में निवास करके सूर्य की किरणें पीते हैं और कुछ मृग-
छाला, चीर या वल्कल पहनकर अपने धर्म के अनुसार तपस्या करते हैं। ये सब तपस्वी महात्मा १०१
तपस्या के प्रभाव से निष्पाप होकर सब दिशाओं को प्रकाशित करते और देवताओं के कार्य की सिद्धि

के लिए देवताओं के समान रूप धारण करते हैं। दया-धर्म-परायण, विचरते रहनेवाले, सोमलोक-
चारी और पितृलोक-निवासी महर्षिगण चन्द्रमा की किरणों को पीते हैं। जितेन्द्रिय संप्रक्षाल
(दूसरे दिन के खाने-पीने के लिए कुछ न रखनेवाले), अश्मकुट्ट और दन्तोलूखलिक महर्षिगण
अपनी-अपनी पत्नी समेत उञ्छ-वृत्ति द्वारा निर्वाह करते हैं। होम करना, पितरों की पूजा और
पञ्चयज्ञ करना उनका परम धर्म है। काम और क्रोध को जीतकर आत्मा को पहचान लेना सब
महर्षियों का कर्तव्य है। उञ्छ-वृत्ति द्वारा प्राप्त धन से अग्निहोत्र-यज्ञ धर्मयज्ञ और सोमयज्ञ
करना, यज्ञ की दक्षिणा देना, नित्य यज्ञ करना, धर्माचरण करना, पितरों और देवताओं की पूजा
१० तथा अतिथियों का सत्कार करना उनका कर्तव्य है। वे सुख भोगने और गोरस पीने की
इच्छा न करें; शमसुख का अवलम्बन करें, चबूतरे पर सोवें, योग का अवलम्बन करें तथा शाक-
पात, फल-मूल, वायु, जल और सेवार खावें-पीवें। इन नियमों का पालन करने से श्रेष्ठ गति
मिलती है। जब चूल्हे की आग बुझ गई हो, धुआँ न होता हो, मूसल की आवाज़ न आती हो,
घर के सब लोग भोजन कर चुके हों और भिक्षुक भीख लेकर लौट गये हों तब सत्यधर्मनिरत
महात्मा उस घर का बचा-खुचा अन्न खावें। जो गर्व, अभिमान और सन्देह नहीं करता, जो
११५ हमेशा प्रसन्न रहता है तथा जो शत्रु और मित्र को समान समझता है वही यथार्थ धर्मवेत्ता है।

एक सौ बयालीस अध्याय

महादेवजी का पार्वतीजी से वर्णाश्रम धर्म का वर्णन करना।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्! जो वानप्रस्थी नदी के किनारे, वनों, उपवनों, पर्वतों
और फल-मूल से युक्त अति पवित्र स्थानों में रहते हैं उन स्वशरीरोपजीवी महात्माओं के
नियम सुनने की मेरी इच्छा है।

महादेवजी ने कहा—देवी, वानप्रस्थी महात्माओं के धर्म को सावधान होकर सुनो
और धर्म में मन लगाओ। वनवासी सिद्ध महात्मा दिन में तीन बार नहावें; इंगुदी और
रेंड़ी के तेल का व्यवहार, पितरों और देवताओं की पूजा, अग्निहोत्र, यज्ञ और फल-मूल तथा
नीवार (पसाई) द्वारा निर्वाह करें। वे सदा योगाभ्यास, वीरासन और मण्डूक आसन का
साधन और चबूतरे पर शयन करें; वे सरदी के दिनों में जल में खड़े रहें और गरमी में
१० पञ्चाग्नि तापें। वे जल पीकर, वायु और सेवार का भक्षण करके, अश्मकुट्ट दन्तोलूखलिक या
संप्रक्षालन होकर और वल्कल या मृगचर्म धारण करके धर्म के अनुसार जीवन बितावें। वे होम,
पञ्चयज्ञ, पोष्यवर्ग का पालन, अष्टका-श्राद्ध, चातुर्मास्य यज्ञ, अमावास्या और पूर्णिमा में यज्ञ और
नित्य यज्ञ करें। उनमें बहुतेरे तो बिना ही स्त्री के विचरते हैं। उनका परम धन स्रुक्भाण्ड

है। वे सदा तीनों अग्नियों की आराधना और अच्छे आचरण करके परम गति पाते हैं। वे ब्रह्मलोक और सोमलोक को जाते हैं। यह मैंने संक्षेप में वानप्रस्थ-धर्म का वर्णन किया।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्! वनवासी ज्ञानी महात्माओं में कुछ तो निर्द्वन्द्व और
कुछ स्त्री-संयुक्त होते हैं, अतएव आप उनका धर्म मुझे बतलाइए। २१

महादेवजी ने कहा—देवी, जो तपस्वी निर्द्वन्द्व होते हैं उनका धर्म रँगे कपड़े पहनना और सिर मुँड़ाना है। और, जो स्त्री-संयुक्त हैं उनको रात में अपने घर आकर रहना चाहिए। संन्यासियों की तरह मनमाना घूमना-फिरना उनका धर्म नहीं है। स्वेच्छाचारी (निर्द्वन्द्व) और स्त्री-संयुक्त दोनों को त्रिकाल-स्नान करना चाहिए। किन्तु होम करना, समाधि लगाना, सुमार्ग पर चलना और शास्त्रोक्त कर्म आदि करना स्त्री-संयुक्त वनवासियों का ही धर्म है। इन धर्मों का पालन करने से उन्हें निस्सन्देह इनका फल मिलता है। स्वदारनिरत, केवल ऋतुकाल में सम्भोग करनेवाले वनवासी लोग ऋषियों के आचरित धर्म का पालन करें। अपनी इच्छा से नियमों का उल्लंघन करके वे कोई कर्म न करें। जो सबको अभयदान देता है, जो हिंसा-द्वेष-हीन है और सब प्राणियों पर दया करता तथा सरलता से रहता है उसे यथार्थ धर्म प्राप्त होता है। वेदों का पढ़ना और सब प्राणियों से सरलता का बर्ताव करना, ये दोनों बराबर हैं, बल्कि वेदपाठ की अपेक्षा सरलता का फल अधिक है। सरलता ही यथार्थ धर्म है। कपट के समान अधर्मजनक काम बहुत कम हैं। जो मनुष्य सरलता का अवलम्बन करता है उसे निस्सन्देह
धर्म होता है। सरलता का व्यवहार करनेवाले महात्मा देवताओं के साथ निवास करते हैं। ३०
अतएव जो धर्मात्मा होना चाहे उसका स्वभाव सरल होना चाहिए। क्षमाशील, जितेन्द्रिय और हिंसाहीन मनुष्य अवश्य श्रेष्ठ धर्म का अधिकारी होता है। जो आलस्यहीन, सुमार्गगामी और सच्चरित्र होते हैं वे अन्त को महापद प्राप्त करते हैं।

पार्वतीजी ने पूछा—भगवन्, आश्रम-धर्म का पालन करनेवाले तपस्वी किन कर्मों द्वारा तेजस्वी होते हैं? धनवान् राजा और निर्धन लोग किस कर्म के करने से श्रेष्ठ फल पाते हैं और वनवासी तापसगण किन कर्मों के द्वारा परलोक में दिव्य स्थान पर अधिकार करके दिव्य चन्दन लगाते हैं?

महादेवजी ने कहा—देवी, जो मनुष्य उपवास करके इन्द्रियों का निग्रह करते हैं तथा जो अहिंसक और सत्यवादी होते हैं वे सिद्ध होकर शरीर त्यागने के बाद गन्धर्वों के साथ विहार करते हैं। जो मण्डूक-योग करते और विधि के अनुसार अनेक शुभ कर्म करते हैं वे शरीर त्यागकर नागों के साथ विहार करते हैं। जो मृगों के साथ रहकर उनके मुँह से गिरी हुई
हरी घास खाते हैं वे शरीर त्यागने के बाद देवलोक में परम सुख पाते हैं। जो मनुष्य सरदी के ४०
क्लेश को सहता हुआ सेवार और वृक्ष के सूखे पत्ते खाकर जीवन बिताता है उसे अन्त को परम गति मिलती है। जो वायु और फल-मूल खाकर अथवा केवल जल पीकर रहता है वह

शरीर त्यागने के बाद यक्षलोक में अप्सराओं के साथ विहार करता है। जो बारह वर्ष तक ग्रीष्म काल में विधि के अनुसार पञ्चाग्नि तापता है अथवा जो बारह वर्ष तक कुछ नहीं खाता-पीता वह दूसरे जन्म में पृथिवी का साम्राज्य पाता है। जो खुली जगह में चबूतरे के ऊपर बिना आसन के बैठकर, प्रसन्नता से द्वादशवार्षिक व्रत करके, अनशन कर, शरीर त्याग देता है वह देवलोक में जाकर विविध पेय पदार्थ, शय्या और चन्द्रमा के समान सफ़ेद घरों का उपयोग करता है। जो द्वादशवार्षिक दीक्षा के अन्त में समुद्र में शरीर का त्याग कर देता है वह वरुण-लोक को जाता है। द्वादशवार्षिक दीक्षा समाप्त करके जो पत्थर से
१० अपने पैर तोड़ लेता है वह गुह्यकों के साथ विहार करता है। जो निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर आत्मा का शान्त करता हुआ द्वादशवार्षिक व्रत करता है वह शरीर त्यागने के बाद देवलोक को जाकर देवताओं के साथ विहार करता है। द्वादशवार्षिक दीक्षा के बाद जो अग्नि में शरीर त्यागता है उसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य आत्मा में आत्मा का समाधान करके, धर्मपरायण होकर और ममता छोड़कर, द्वादशवार्षिक दीक्षा समाप्त करके वृक्ष में आग लगाकर उसी में भस्म हो जाता है वह इन्द्रलोक में जाकर दिव्य फूलों और दिव्य चन्दन का उपयोग करता हुआ देवताओं के साथ परम सुख से रहता है। जो सब कुछ त्यागकर, सत्त्व-गुणी होकर, शरीर त्याग देता है वह अक्षय लोक को जाता और कामचारी विमान पर सवार
५६ होकर देवलोक में भ्रमण करता है।

एक सौ तैंतालीस अध्याय

शूद्र आदि वर्ण जिन कर्मों के करने से दूसरे जन्म में श्रेष्ठ वर्ण के हो जाते और जिन कर्मों के फल से नीच जाति में जन्म पाते हैं उनका वर्णन

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्, आपने भग देवता के नेत्र और पूषा के दाँत नष्ट कर दिये थे तथा दक्ष का यज्ञ ध्वंस कर दिया था। हे निष्पाप, आप सब प्राणियों के ईश्वर हैं। मुझे एक सन्देह हुआ है; उसे दूर कर दीजिए। ब्रह्माजी ने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों की सृष्टि की है; किन्तु वैश्य किस दुष्कर्म के करने से शूद्र और किस शुभ कर्म के प्रभाव से क्षत्रिय हो जाता है? ब्राह्मण किस कारण से क्षत्रिय या शूद्र का जन्म पाता है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ये तीनों वर्ण किस प्रकार ब्राह्मण हो जाते हैं?

महादेवजी ने कहा—देवी, ब्राह्मण होना बहुत कठिन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चारों वर्ण प्राकृतिक हैं। ब्राह्मण अपने दुष्कर्मों के कारण ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट हो जाते हैं, अतएव सर्वश्रेष्ठ *ब्राह्मणत्व* प्राप्त करके उसकी रक्षा के लिए सावधान रहना चाहिए। यदि क्षत्रिय या वैश्य ब्राह्मण के धर्म का पालन करता रहे तो वह दूसरे जन्म में ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है।

जो ब्राह्मण अपना धर्म त्यागकर क्षत्रिय-धर्म अथवा लोभ या मोह के वश होकर वैश्य-धर्म के
अनुसार चलने लगता है वह मरने के बाद उसी वर्ण में जन्म पाता है। जो ब्राह्मण लोभ और १०
मोह के वश होकर अपना धर्म त्यागकर शूद्र के धर्म का पालन करता है वह, मरने के बाद नरक
का दुःख भोग करके अन्त को, शूद्र वंश में जन्म लेता है। यदि क्षत्रिय या वैश्य अपना धर्म त्याग-
कर शूद्र का धर्म ग्रहण करते हैं तो वे दूसरे जन्म में अपने वर्ण से भ्रष्ट होकर शूद्र का जन्म पाते
हैं। जो विज्ञान-सम्पन्न बुद्धिमान् मनुष्य अपने धर्म में स्थिर रहते हैं उन्हें निस्सन्देह श्रेष्ठ फल
मिलता है। ब्रह्माजी ने कहा है कि धर्मार्थी सज्जन आत्मतत्त्व का अन्वेषण अवश्य करें। उग्र
जाति का अन्न, बहुत से मनुष्यों के लिए तैयार किया हुआ भोजन, प्रथम श्राद्ध में भोजन, अशौच
का अन्न, दूषित अन्न और शूद्र का अन्न खाना उचित नहीं। साग्निक ब्राह्मण शूद्र का अन्न
खाकर यदि उसके पचने के पहले ही मर जाय तो उसे ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होकर शूद्र-योनि में
जन्म लेना पड़े। इस प्रकार ब्राह्मण जिस निकृष्ट वर्ण का अन्न खाकर उसके पचने के पहले मर २०
जाता है उसे उसी वर्ण में जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके, उसकी
कोई परवा न करके, अभोज्य अन्न खाता है वह निस्सन्देह ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट हो जाता है।
मद्यप, ब्रह्महत्यारे, क्षुद्राशय, चोर, नष्टव्रत, अपवित्र, वेदहीन, पापी, लोभी, शठ, शूद्रा के पति,
कुण्डाशी (जिस बर्तन में पकावे उसी में खा लेनेवाले), सोम-विक्रेता, नीच की सेवा करनेवाले,
गुरुद्रोही और गुरु की स्त्री को हरनेवाले ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है। जो वैश्य सदा-
चार से रहता है वह दूसरे जन्म में क्षत्रिय और जो शूद्र सदाचारी होकर अपने कर्तव्य का
पालन करता है वह दूसरे जन्म में ब्राह्मण होता है। सदाचारी रहकर स्थिर चित्त से अपने से
उच्च वर्ण की सेवा करना शूद्र का कर्तव्य है। शूद्र यदि देवता और ब्राह्मण की पूजा और अतिथि-
सत्कार करते, ऋतुस्नान के बाद स्त्री-प्रसङ्ग करते, नियमित भोजन करते, पवित्रता से रहते, पवित्र
मनुष्य का अन्वेषण करते, कुटुम्ब के भोजन कर चुकने पर भोजन करते और 'वृथा मांस' नहीं खाते
हैं तो वे दूसरे जन्म में वैश्य होते हैं। वैश्य यदि सत्यवादी, अहङ्काररहीन, सुख-दुःख आदि से मुक्त, ३०
शान्त, याज्ञिक, विद्वान्, पवित्र, ब्राह्मण-सत्कर्ता और सब वर्णों का पुष्टिसाधक होता है और गृहस्थ-
धर्म का अवलम्बन करके सबके भोजन कर चुकने पर भोजन करता है तथा फल की इच्छा न
रखकर अग्निहोत्र, अतिथि-सत्कार और गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों की उपासना करता है तो
वह पवित्र क्षत्रिय कुल में जन्म पाता है। क्षत्रिय-कुल में जन्म लेकर यदि वह जन्म से ही सब
संस्कारों द्वारा संस्कृत होकर व्रत, बहुत सी दक्षिणा समेत यज्ञ, दान, अध्ययन, गार्हपत्य आदि
तीनों अग्नियों की उपासना, दुखी मनुष्यों की सहायता, धर्म के अनुसार प्रजा का पालन, सत्य-
वाक्य-प्रयोग, सत्य कर्मों का अनुष्ठान और धर्म के अनुसार दण्ड-विधान करता है तथा धर्म का
उपदेश देता, शुभ कर्म करता, प्रजा के अन्न का छठा हिस्सा लेता, परस्त्री-गमन की इच्छा नहीं

करता, ऋतुकाल में सम्भोग करता, एक बार दिन में और एक बार रात में भोजन करता, वेद पढ़ता, अग्निहोत्र-गृह में कुश के ऊपर सोता, सावधानी से तीनों वर्णों की रक्षा करता, शूद्रों को भोजन देता, पितरों देवताओं और अतिथियों को सन्तुष्ट करता, अपने घर में अतिथि के समान रहता, त्रिकाल-हवन करता और गो-ब्राह्मण के जीवन की रक्षा के लिए समर-भूमि में प्राण त्याग देता है तो वह अपने कर्म के प्रभाव से दूसरे जन्म में ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर विद्वान और वेद-शास्त्र का पारदर्शी
४५ होता है। हे देवी, इस प्रकार हीन वर्ण में उत्पन्न शूद्र भी अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से विद्वान् ब्राह्मण के वंश में और ब्राह्मण नीच वर्ण के अन्न-भोजन आदि अशुभ कर्मों के प्रभाव से ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होकर शूद्र-कुल में जन्म पाता है। ब्रह्माजी का वचन है कि शूद्र भी पवित्र कार्यों द्वारा विशुद्धात्मा और जितेन्द्रिय हो तो वह ब्राह्मण के समान सम्मान करने योग्य है। मेरे मत में तो अच्छे स्वभाव और अच्छे कर्म करनेवाला शूद्र दुष्कर्मी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। केवल जन्म, संस्कार,
५० शास्त्रज्ञान और कुल ब्राह्मणत्व के कारण नहीं हैं; ब्राह्मणत्व का प्रधान कारण तो सदाचार ही है। सदाचारी शूद्र भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मज्ञान सभी के लिए एक समान है। जिसके हृदय में निर्मल निर्गुण ब्रह्म का भाव उदय हो वही ब्राह्मण है। ब्रह्माजी ने स्वयं कहा है कि ब्राह्मण आदि वर्ण-भेद विभागमात्र है। वेद-परायण ब्रह्मज्ञान-निरत ब्राह्मण जङ्गम-क्षेत्र-स्वरूप हैं। इस क्षेत्र में बीज बोने से परलोक में उसका फल अवश्य मिलता है। अपना कल्याण चाहनेवाले ब्राह्मणों को सात्त्विक, विघसाशी, सदाचारी, संहिताध्यायी और वेदाध्ययन-सम्पन्न होना चाहिए। वे अध्ययनजीवी न हों। इस प्रकार गुणवान् और सदाचारी होने पर ब्राह्मण ब्रह्म के समान होता है। दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके शुभ कर्मों द्वारा यत्न से उसकी रक्षा करनी चाहिए। शूद्र आदि नीच जातियों का संसर्ग करने और उनका दान लेने से ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है। हे देवी, जिस
५८ प्रकार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाते हैं वह गूढ़ विषय मैंने तुमको बतला दिया।

एक सौ चवालीस अध्याय

शुभ और अशुभ कर्मों का वर्णन

पार्वतीजी ने पूछा—भगवन्! मनुष्य मन, वचन और कर्म के प्रभाव से किस प्रकार बन्धन में फँसता और फिर किस उपाय से उस बन्धन से मुक्त होता है तथा किस प्रकार के आचरण, कर्म और गुणों से वह स्वर्ग का अधिकारी होता है?

महादेवजी ने कहा—देवी, तुमने सब प्राणियों का हितकर श्रेष्ठ प्रश्न किया है। उसका उत्तर सुनो। जो मनुष्य सत्य धर्म का पालन करता हुआ किसी आश्रम में न रहकर धर्म से प्राप्त धन का उपयोग करता है वह स्वर्ग का अधिकारी होता है। जो सृष्टि और प्रलय के मर्मज्ञ, सर्वदर्शी और संशयहीन होते हैं वे धर्म-अधर्म के बन्धन में नहीं फँसते। जो वीतराग होकर

मन-वचन-कर्म से हिंसा नहीं करते, जो किसी विषय में आसक्त नहीं होते और जो जितेन्द्रिय
दयावान् सच्चरित्र होकर शत्रु और मित्र को समान समझते हैं वे कर्म के बन्धन से छूट जाते हैं।
जो प्राणियों पर दयावान्, सबके विश्वासपात्र, हिंसाहीन, सदाचारी, दूसरों के धन से निःस्पृह
होकर कभी चोरी नहीं करते और परस्त्रीगामी नहीं होते वे स्वर्गलोक को जाते हैं। जो अपने १०
धन में सन्तुष्ट रहते, अपने भाग्य से अपनी जीविका करते, जितेन्द्रिय होते और वेद के विरुद्ध
सुख-सम्भोग नहीं करते; जो धर्म से प्राप्त धन द्वारा जीविका करते और ऋतुस्नान के बाद
सम्भोग करते हैं; जो परस्त्री-गमन करने की बात दूर रही, उनकी ओर काम भाव से देखते तक
नहीं, बल्कि उन्हें माता बहन और कन्या के समान समझते हैं उन्हें स्वर्गलोक प्राप्त होता है।
जीविका और धर्म के लिए इसी प्रकार के सदाचार से रहना बुद्धिमानों का कर्तव्य है। स्वर्ग
जाने की इच्छा रखनेवाले को इन नियमों के विरुद्ध कोई आचरण न करना चाहिए।

पार्वतीजी ने पूछा—भगवन्, किस प्रकार के वचनों का व्यवहार करने से मनुष्य को
नरक में जाना पड़ता है और किस प्रकार के वचन बोलने से स्वर्ग-सुख मिलता है?

महादेवजी ने कहा—देवी! जो मनुष्य अपना और दूसरों का हित करता हुआ निर्वाह
करता है तथा धर्म और काम की सिद्धि के लिए हँसी में भी झूठ नहीं बोलता वह स्वर्गलोक को
जाता है। जो निर्दोष मधुर शब्दों से मनुष्यों का स्वागत करता है और किसी से कपट नहीं २०
करता; जो किसी को कड़वी और रूखी बातें नहीं कहता तथा जो मित्रों में भेद डालनेवाली
चुग़ली नहीं करता उसे स्वर्ग का सुख मिलता है। जो किसी से शत्रुता न करके प्रिय वचन
बोलता और सब प्राणियों पर दया करता है; जो शठता और दुर्वचनों का प्रयोग न करके हमेशा
सबके साथ मीठी बातें करता है और जो क्रुद्ध होने पर भी मर्मभेदी कटु वचन नहीं कहता उसे
स्वर्ग का सुख मिलता है। अतएव मनुष्य सदा इस प्रकार के धर्म का अवलम्बन करे। बुद्धिमान्
मनुष्य को कभी झूठ न बोलना चाहिए।

पार्वतीजी ने पूछा—भगवन्, किस प्रकार की मानसिक वृत्ति और किस प्रकार के कर्मों
द्वारा मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है तथा किस तरह की मानसिक वृत्ति और कर्मों से नरक
का दुःख भोगता है?

महादेवजी ने कहा—देवी, धर्मात्मा मनुष्य जिस तरह की मानसिक वृत्ति का आश्रय
करके स्वर्गलोक को जाते हैं और कुटिल मनुष्य जैसी मनोवृत्ति होने से नरक भोगते हैं उसको
सुनो। जो मनुष्य गाँव, घर और वन में भी (मौक़ा पाकर) दूसरों का धन देखकर उसे लेने ३०
की इच्छा नहीं करते वे स्वर्ग को जाते हैं। निर्जन स्थान में भी कामातुर पर-स्त्री को देखकर
जिनका मन विचलित नहीं होता, जो शत्रु और मित्र सभी के साथ भाई का सा व्यवहार करते
हैं वे स्वर्ग को जाते हैं। जो विद्वान्, पवित्रस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ, अपने धन में सन्तुष्ट, शत्रुताहीन,

मायालशून्य, सबके हितचिन्तक, प्रसन्नचित्त, सब प्राणियों पर दयावान्, श्रद्धावान्, पवित्र, पवित्र
मनुष्यों के प्रियकर्ता, धर्म और अधर्म के ज्ञाता, शुभ और अशुभ कर्मों के परिणामदर्शी, न्याय-
परायण, गुणवान्, देवताओं और ब्राह्मणों के भक्त और शुभ कर्म करने में तत्पर होते हैं वे मनुष्य
स्वर्गलोक के अधिकारी हैं। यही स्वर्ग प्राप्त करने के मार्ग हैं। इनके विरुद्ध आचरण करने-
४० वाले मनुष्यों को नरक भोगना पड़ता है। अब और क्या पूछना है ?

पार्वतीजी ने कहा—भगवन्, मनुष्य किस प्रकार के कर्म और तपस्या के प्रभाव से दीर्घायु
और किस प्रकार के कर्म द्वारा क्षीणायु होता है ? इस लोक में कोई तो भाग्यवान्, कोई अभागा,
कोई कुलीन, कोई कुलभ्रष्ट, कोई रूपवान्, कोई कुरूप, कोई ज्ञानवान् पण्डित और कोई मूर्ख होता
है। कोई थोड़ा क्लेश और कोई घोर कष्ट भोगता हुआ जीवन बिताता है। इसका क्या कारण है ?

महादेवजी ने कहा—देवी, जिन कर्मों के करने से मनुष्य को जो फल मिलता है उसका
वर्णन करता हूँ। जो प्राणियों का हिंसक, उद्यतदण्ड, शस्त्र का प्रहार करने पर उतारू, निर्दय,
सब प्राणियों को घबराहट पैदा करनेवाला, उग्र स्वभाव का और कीट पतङ्गों को भी आश्रय न
५० देनेवाला होता है वह नरक को जाता है। और, जो इस प्रकार का दुराचरण नहीं करता वह
अच्छे कुल में जन्म लेकर रूपवान् और धार्मिक होता है। हिंसा करने से मनुष्यों को नरक
और हिंसा न करने से स्वर्ग मिलता है। कोई प्राणी पहले नरक में घोर दुःख भोगकर अन्त
को किसी तरह मनुष्य-जन्म पाता है तो उस जन्म में वह क्षीणायु होता है। जो मनुष्य हमेशा
— पापकर्म, हिंसा और सब प्राणियों का अहित करता है वह दूसरे जन्म में अल्पायु होता है और
जो सत्त्वगुणी दयावान् तथा हिंसाहीन होता, किसी की हिंसा न स्वयं करता है और न दूसरों
को हिंसा करने की सलाह देता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करके अनेक प्रकार के सुख भोगता
और अन्त को मनुष्य-जन्म पाकर दीर्घायु होता है। ब्रह्माजी ने कहा है कि सदाचारी महात्माओं
५९ के दीर्घायु होने का श्रेष्ठ उपाय प्राणियों की हिंसा न करना ही है।

एक सौ पैंतालीस अध्याय

जिन कर्मों से स्वर्ग और नरक प्राप्त होता है उनका वर्णन

पार्वतीजी ने पूछा—भगवन् ! मनुष्य किस प्रकार के स्वभाव, सदाचार, कर्म और दान से स्वर्गलोक प्राप्त करने का अधिकारी होता है ?

महादेवजी ने कहा—देवी ! जो मनुष्य ब्राह्मणों का सम्मान करता और दीन मनुष्यों पर दया करके उन्हें अन्न-वस्त्र देता है तथा जो घर, सभा, प्याऊ, कुआँ और पुष्करिणी (छोटा तालाब) बनवाता है और प्रसन्नता से आसन, शय्या, सवारी, रत्न, धन, गाय, खेत और स्त्री आदि मुँहमाँगी वस्तुएँ देता है वह मरने के बाद देवलोक में जाकर बहुत दिनों तक सब प्रकार

की भोग्य वस्तुओं का भोग करके—अप्सराओं के साथ नन्दन वन में विहार करके—अन्त को फिर संसार में धनवान् के घर जन्म पाता है। उस जन्म मे उसकी सब इच्छाएँ पूरी होती हैं और वह धनवान् होकर परम सुख पाता है। ब्रह्माजी ने दानी लोगों का ऐसा ही सौभाग्य बतलाया है। संसार में वे मनुष्य बड़े निर्बुद्धि हैं जो धनवान् होने पर भी ब्राह्मणों को, माँगने पर, धन नहीं देते। इन लालची नीच मनुष्यों से दीन, अन्धे, भिक्षुक और अतिथि आदि कृपापात्र
मनुष्य भी माँगने पर धन, वस्त्र, सोना, गाय और भोजन आदि कुछ नहीं पाते। इस प्रकार के ११
अधर्मी, दान न देनेवाले, मनुष्य मरने पर नरक को जाते हैं और वहाँ अनेक कष्ट भोगकर फिर निर्धन मनुष्य के घर में जन्म पाते हैं। इस जन्म में उन्हें संसार का कोई सुख नहीं मिलता। वे निकृष्ट जीविका से जीवन बिताते हैं। वे भूख-प्यास से व्याकुल रहते हैं। हे देवी, दान न करनेवाले कृपणों की ऐसी दुर्गति होती है। जो मनुष्य धन के गर्व से आसन, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय जल देने योग्य पुरुषों को ये वस्तुएँ नहीं देता, मार्ग देने योग्य मनुष्यों को जो मार्ग नहीं देता, अभ्यागत गुरुजनों का प्रसन्नता के साथ सम्मान नहीं करता, अभिमान और लोभ के वश
रहता तथा मान्य पुरुषों और बूढ़ों का अपमान करता है उसे अवश्य नरक में जाना पड़ता है। २१
इस प्रकार के नीच मनुष्य बहुत दिनों बाद नरक से छुटकारा पाते हैं तो उन्हें चण्डाल आदि नीच जातियों में जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य अभिमान नहीं करता और देवताओं तथा ब्राह्मणों की पूजा करता है; जो सबका आदरणीय, विनीत, मधुरभाषी, सब वर्णों का हितैषी होता है; जो कभी किसी से शत्रुता नहीं करता; विनीत होकर सबसे कुशल-प्रश्न पूछता है; जो सबका यथोचित सत्कार करता है, जो मार्ग देने योग्य मनुष्यों को मार्ग देता है, जो गुरु का यथोचित सम्मान और सदा अतिथि-सत्कार करता रहता है वह मरने के बाद स्वर्गलोक में जाकर बहुत दिनों तक सुख भोग करके अन्त को श्रेष्ठ कुल में जन्म लेता है। इस जन्म में वह धर्मपरायण, सबका पूज्य और आदरणीय होकर दान के उपयुक्त पात्र को दान करता है। इस धर्म के फल का वर्णन
स्वयं ब्रह्माजी ने किया है। जो मनुष्य सब प्राणियों को भयभीत करता है; जो नराधम हाथ, ३१
पैर, रस्सी, लाठी और ढेले से मारकर प्राणियों को सताता है और जो भयानक रूप धारण करके जीवों पर आक्रमण करता है वह पापी अवश्य नरक को जाता है। वह दुरात्मा यदि किसी तरह फिर मनुष्य-जन्म पाता है तो नीच कुल में उत्पन्न होकर अनेक प्रकार की विपत्तियाँ सहता और सबका शत्रु होता है। जो मनुष्य जितेन्द्रिय, शत्रुताहीन, सबका पितृ-स्वरूप और दयावान् होकर सबको स्नेह की दृष्टि से देखता है; जो हाथ-पैर आदि से किसी जीव को कष्ट नहीं देता और जो सबका विश्वास-पात्र होता है वह स्वर्गलोक में जाकर दिव्य भवन में
देवता की तरह सुखपूर्वक रहता और अन्त को मनुष्य-जन्म पाकर सुख भोगता है। फिर ४१
उसे कभी विपद्ग्रस्त नहीं होना पड़ता। देवी, यह मैंने सज्जनों का मार्ग तुम्हें बतला दिया।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन् ! संसार में बहुत से मनुष्य तो तर्क-वितर्क में निपुण, ज्ञान-
विज्ञानवान्, पण्डित और बहुत से बुद्धिहीन होते हैं, इसका क्या कारण है ? अनेक मनुष्य जन्म
से ही अन्धे, रोगी और नपुंसक क्यों होते हैं ?

महादेवजी ने कहा—देवी ! अपना कल्याण चाहनेवाला जो मनुष्य, विद्वान् धर्मात्मा सिद्ध
ब्राह्मणों के उपदेशानुसार, हमेशा शुभ कर्म करता है वह उन कर्मों के प्रभाव से इस लोक में सुख
भोगकर अन्त को स्वर्गलोक में जाता है। कर्मों का नाश होने पर वह फिर मनुष्य-जन्म पाकर
बुद्धिमान् होता और उसका कल्याण होता है। पर-स्त्री को कुदृष्टि से देखनेवाला दुरात्मा दूसरे
५० जन्म में जन्मान्ध होता है। जो मनुष्य नङ्गी स्त्री को कुदृष्टि से देखता है वह दूसरे जन्म में
हमेशा रोगी बना रहता है। जो दुष्ट मनुष्य पशुओं के साथ मैथुन करता है, जो व्यभिचार
किया करता है, जो गुरुपत्नी में गमन करता और पशुओं की हत्या करता है वह दूसरे
जन्म में नपुंसक होकर उत्पन्न होता है।

पार्वतीजी ने पूछा—भगवन्, मनुष्य किन कर्मों को करके अपना कल्याण कर सकता है ?

महादेवजी ने कहा—देवी ! जो मनुष्य ब्राह्मणों से अपने कल्याण का उपाय पूछा करता है
तथा जो धर्म-जिज्ञासु और गुणाकांक्षी होता है वह मरने के बाद स्वर्गलोक को जाता और बहुत
दिनों तक वहाँ सुख भोगकर अन्त को मनुष्य-जन्म पाकर बड़ा मेधावी और ज्ञानवान् होता है।
देवी, मनुष्यों के हित के लिए यह मैंने शुभ फल देनेवाला धर्म तुमको बतलाया है।

पार्वतीजी ने कहा—भगवन् ! संसार में बहुत से मनुष्य धर्म-विद्वेषी, साधारण विज्ञान-
वान्, व्रतहीन, नियमभ्रष्ट, राक्षस-सदृश, हिंसापरायण और अयाज्ञिक होते हैं। वे कभी
ब्राह्मणों के पास धर्म का विषय पूछने नहीं जाते। और, बहुत से मनुष्य धर्मात्मा व्रतधारी
६० श्रद्धावान् तथा याज्ञिक होते हैं। इसका क्या कारण है ?

महादेवजी ने कहा—देवी, वेद में सब प्रकार के मनुष्यों के धर्म की मर्यादा बतलाई गई
है। जो मनुष्य वेदोक्त धर्म का पालन करता है वह दूसरे जन्म में व्रतधारी होकर उत्पन्न होता
है। जो मोह के वश होकर अधर्म को धर्म समझता है वह महाराक्षस के समान पापी मनुष्य
मरने के बाद नरक भोग करके—किसी तरह मनुष्य-जन्म पाकर—होम, वषट्कार और व्रत से
६४ हीन होकर जीवन बिताता है।

एक सौ छियालीस अध्याय

महादेवजी के पूछने पर पार्वतीजी द्वारा स्त्री-धर्म का वर्णन

नारदजी ने कहा कि वासुदेव, शङ्करजी ने यों कहकर स्वयं कुछ सुनने की इच्छा से अपनी प्रिय भार्या पार्वती से पूछा—प्रिये ! तुम धर्म का विषय अच्छी तरह जानती हो। तपोवन तुम्हारा निवास-स्थान है। तुम साध्वी हो। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, इन्द्र की शची, मार्कण्डेय

की धूमोर्णा, कुबेर की ऋद्धि, वरुण की गौरी, सूर्य की सुवर्चला, चन्द्रमा की रोहिणी, अग्नि की स्वाहा और कश्यप की पत्नी अदिति के साथ तुम रहा करती हो। धर्म, शील, व्रत, तपस्या और बल-वीर्य में तुम मेरे समान हो। तुमने घोर तपस्या की है। तुम स्त्रियों की एकमात्र गति हो। पृथिवी पर धर्मनिष्ठ स्त्रियाँ तुम्हारे ही चरित्र का अनुसरण करती हैं। तुम्हारे आधे शरीर द्वारा मेरा आधा शरीर बना है। तुम देवताओं और मनुष्यों का कल्याण करती हो। स्त्री-जाति का सनातन धर्म तुम भली भाँति जानती हो, अतएव विस्तार के साथ स्त्रियों
का धर्म मुझसे कहो। तुम जो कुछ कहोगी वह संसार में प्रमाण माना जायगा। १२

यह सुनकर पार्वतीजी ने कहा—भगवन्, आप सब जीवों के ईश्वर हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान आपसे ही उत्पन्न हैं। आपकी ही कृपा से मुझमें बोलने की शक्ति है। यह देखिए, सरस्वती, विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, शतद्रु, देविका, सिन्धु, कौशिकी, गोमती और स्वर्ग से उतरी हुई सब तीर्था समेत देवनदी गङ्गा आपके स्नान के लिए आ रही हैं। मैं इन सबकी सम्मति लेकर आपसे स्त्री-धर्म का वर्णन करूँगी। स्त्री स्त्री से ही सलाह लेती है। इसके सिवा यदि मैं नदियों से सम्मति लूँगी तो उनका सम्मान बढ़ेगा। अतएव उनसे सलाह करना मेरा
कर्तव्य है। अब पार्वतीजी ने मुसकुराकर नदियों से कहा—हे नदियो! शङ्करजी ने मुझसे २१
स्त्रियों का धर्म पूछा है, मैं आप सबके साथ सलाह करके इन्हें इस प्रश्न का उत्तर देना चाहती हूँ। पृथिवी पर या स्वर्ग में कहीं भी कोई व्यक्ति अकेला ज्ञान की सीमा निर्धारित नहीं कर सकता। इसी से मैं आप सबसे यह विषय पूछती हूँ।

पार्वतीजी के पूछने पर, स्त्री-धर्मज्ञा, देवनदी गङ्गा ने प्रसन्नता से मुसकुराकर कहा—देवी, आप जगत् की माता हैं। आपने नदियों से जो स्त्री-धर्म का विषय पूछा है, इससे मैं अपने को धन्य समझती हूँ और आपकी अनुगृहीत हूँ। जो व्यक्ति स्वयं अभिज्ञ होकर दूसरे से कोई विषय पूछकर उसका सम्मान करता है वही यथार्थ पण्डित है। जो व्यक्ति तर्क-वितर्क-पारदर्शी ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न वक्ता से पूछता है वह कभी विपद्ग्रस्त नहीं होता और जो व्यक्ति आत्माभिमान के कारण दूसरों की सहायता की कोई परवा न करके सभा में बोलता है उसकी
बात में वज़न नहीं रहता। देवी, आप दिव्यज्ञान-सम्पन्न हैं और स्वर्ग की स्त्रियों में श्रेष्ठ ३०
हैं अतएव आप स्त्री-धर्म का वर्णन करें।

गङ्गाजी के यों कहने पर पार्वतीजी ने विस्तार के साथ स्त्री-धर्म का वर्णन करना आरम्भ कर कहा—मैं इस विषय में जो कुछ जानती हूँ उसे कहती हूँ, आप सब ध्यान देकर सुनिए। स्त्री का सबसे श्रेष्ठ धर्म यह है कि अग्नि के सामने माता-पिता जिस पुरुष के साथ विवाह कर दें उसकी वह सहधर्मिणी है। जो स्त्री सदाचारिणी, प्रियवादिनी, सुशीला, सुन्दरी और पतिव्रता होती है वही पति की सहधर्मिणी है। जो स्त्री अपने

पति को देखकर, पुत्र का मुँह देखने के समान, प्रसन्न होती है वह यथार्थ धर्मचारिणी
और पतिव्रता है। जो स्त्री दम्पति-धर्म सुनने की अनुरागिनी, पतितुल्य व्रतचारिणी और
धर्मानुरक्त होती है तथा पति को देवतुल्य समझकर देवता के समान उसकी सेवा करती है वह
४० धर्मचारिणी है। जो अनन्यचित्त होकर स्वामी के वशीभूत रहती और व्रत का पालन
करती है, जिसका मन स्वामी का चिन्तन करने के सिवा और कुछ नहीं सोचता-विचारता,
स्वामी के दुर्वचन कहने पर या क्रोध की दृष्टि से देखने पर भी जो प्रसन्नता से उसके सामने
खड़ी रहती है; दूसरे पुरुष की तो बात ही क्या, जो चन्द्रमा, सूर्य और वृक्ष को भी नहीं
देखती तथा जो दरिद्र, रोगी, दुखी और मार्ग से थके हुए अपने पति का निश्छल भाव से सत्कार
करती है वही धर्मचारिणी है। जो स्त्री गृह-कार्य में निपुण, पतिव्रता और पुत्रवती है तथा पति
को अपने प्राण के समान समझती है वही धर्मचारिणी है। जो मन लगाकर पति की सेवा
करती है, जो हमेशा पति से प्रसन्न और विनीत रहती है वही स्त्री धर्म-परायणा है। जो हमेशा
अपने कुटुम्ब को भोजन कराती है; जो विषयवासना, विषयभोग, ऐश्वर्य और सुख की इच्छा न
करके केवल पति की सेवा करती है वही स्त्री धर्मचारिणी है। जो प्रातःकाल उठकर घर में झाड़
लगाकर गोबर से लीपती और स्वामी के साथ होम और बलि प्रदान करके देवता अतिथि तथा
कुटुम्ब के लोगों को भोजन कराती है, सबके भोजन कर चुकने पर भोजन करती है, जिससे सब
मनुष्य प्रसन्न रहते हैं, जो सास-ससुर को सन्तुष्ट रखती और पिता-माता के प्रति श्रद्धा रखती है
१ वह स्त्री धर्मचारिणी है। जो स्त्री ब्राह्मण, दरिद्र, अनाथ और अन्धे मनुष्यों को भोजन देती है;
जो स्वामी पर अनन्य भाव से अनुरक्त और उसके हित में तत्पर रहती है उसे पतिव्रत धर्म का
फल मिलता है। पति की सेवा ही स्त्रियों का प्रधान धर्म है, यही स्त्रियों की तपस्या और सना-
तन स्वर्ग-स्वरूप है। पति ही स्त्रियों का परम देवता, परम मित्र और उनकी परम गति है।
स्त्रियों के लिए पति की प्रसन्नता स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। हे नाथ, आपके अप्रसन्न होने पर मैं स्वर्ग
की भी इच्छा नहीं करती। पति दरिद्र, रोगी, दुखी, शत्रु के अधीन या ब्रह्म-शापग्रस्त हो तो
भी यदि वह प्राणान्त कर देनेवाला अकार्य या अधर्म करने की आज्ञा दे तो उसे बिना विचारे
उसी दम करना स्त्री का कर्तव्य है। हे देवदेव, यह मैंने आपसे स्त्री धर्म का वर्णन किया। जो
स्त्री इस प्रकार के आचरण करती है वही पतिव्रत धर्म की अधिकारिणी होती है।

नारदजी ने कहा—हे वासुदेव, भगवती पार्वती के ये वचन सुनकर शङ्करजी उनकी प्रशंसा
करने लगे। इसके बाद उन्होंने अपने अनुचरों और अन्य सब व्यक्तियों को वहाँ से बिदा
किया। तब गन्धर्व, अप्सरा, भूत और नदियाँ सभी महादेवजी को प्रणाम करके अपने-
६१ अपने स्थान को गये।

महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥।) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) इसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक़्क़त न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने हलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

Index its may be retained ... weeks. A fine charged each ...

शुभ संवाद ! लाभ की सूचना !!

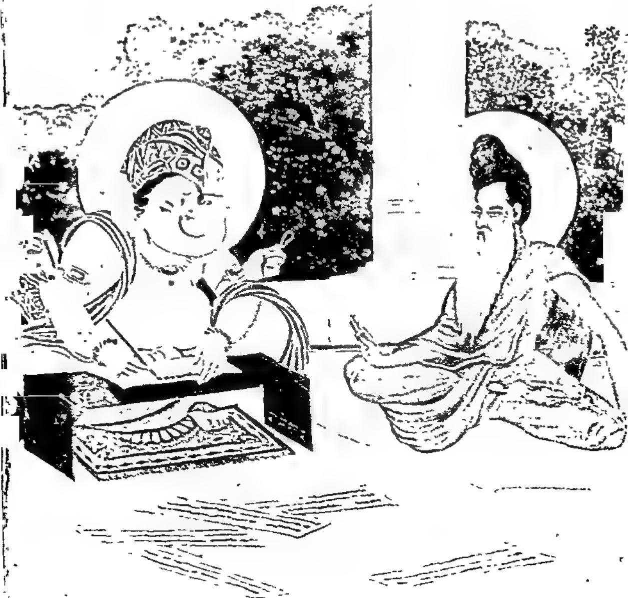
महाभारत-मीमांसा

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्त्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का काल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है ?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है ?, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् डाक्टर भगवानदासजी, एम० ए० की राय में महाभारत के पढ़ने से पहले इस मीमांसा का पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस कोटि का है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। सुन्दर जिल्द है। साथ में एक उपयोगी नक़्शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शङ्कायें पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अच्छा हो कि ऐसी शङ्काओं का समाधान जिज्ञासु पाठक, इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ की सहायता से घर बैठे कर लिया करें। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्यायें सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा लें। मूल्य ४) चार रुपये। महाभारत के स्थायी ग्राहकों से केवल २॥) ढाई रुपये।

मैनेजर बुकडिपो—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।



आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। इसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी (रामनगर), कलकत्ता, ग़ाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना ख़र्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस व्यवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जावेंगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र [redacted] अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना [redacted] करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो ख्याता ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से [redacted] यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

अनुशासनपर्व समाप्त

अश्वमेधपर्व

आश्वमेधिकपर्व

एक सौ सैंतालीस अध्याय

महादेवजी का ऋषियों से विष्णु का माहात्म्य कहना

इसके बाद ऋषियों ने सर्वलोक-पूजित शङ्करजी से कहा—भगवन्! हम लोग आपके मुँह से महात्मा वासुदेव का माहात्म्य सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके उनके माहात्म्य का वर्णन कीजिए।

महादेवजी ने कहा—हे महर्षियो! सूर्य के समान तेजस्वी, दशबाहु, दैत्यनिषूदन,
श्रीवत्साङ्क, सब देवताओं से पूजित सनातन वासुदेव ब्रह्माजी से भी श्रेष्ठ हैं। उनके मस्तक से मैं,
उदर से ब्रह्मा, केशों से ग्रह-नक्षत्रगण, रोमों से देवता और दैत्य तथा शरीर से महर्षि और
नित्यलोक उत्पन्न हुए हैं। भगवान् वासुदेव ब्रह्माजी और सब देवताओं के साक्षात् गृह-स्वरूप
हैं। वे स्थावर-जङ्गम प्राणियों समेत सम्पूर्ण पृथिवी की सृष्टि और संहार करते हैं। पण्डितों
ने उनको देवश्रेष्ठ, देवताओं के शत्रुनाशन, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वतोमुख, परमात्मा और महेश्वर
कहा है। त्रैलोक्य में उनके समान दूसरा कोई नहीं है। वे सनातन, मधुसूदन और गोविन्द
नाम से प्रसिद्ध हैं। वे देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए मनुष्य-देह धारण करके युद्ध में
असंख्य राजाओं का नाश करेंगे। उनके बिना देवता कोई काम सिद्ध नहीं कर सकते। वे सबके १०
पूज्य और सब प्राणियों के ईश्वर हैं। ब्रह्माजी, मैं और सब देवता उनके शरीर में परम सुख से
रहते हैं। वे शङ्ख-चक्र-खड्गधारी गरुड़ध्वज पुण्डरीकाक्ष हमेशा लक्ष्मी के साथ निवास करते
हैं। वे शील दम शम बल-वीर्य और रूप से युक्त, सर्वश्रेष्ठ, धैर्यवान्, सरल, अनृशंस, अलौ-
किक अस्त्रों से शोभित, योगमायायुक्त, सहस्राक्ष, अनिन्दनीय, महामना, वीर, मित्रों की प्रशंसा
करनेवाले, बन्धु-बान्धवों के प्रिय, क्षमावान्, अहङ्कारहीन, ब्राह्मणों के हितैषी, वेद के उद्धारकर्त्ता,
भयभीत के भयहर्ता, मित्रों को प्रसन्न करनेवाले, सब प्राणियों के आश्रय, दीन-रक्षक, विद्वान्,
अर्थसम्पन्न, सब प्राणियों के पूज्य, शरण में आये हुए शत्रुओं के रक्षक, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, ब्रह्मवादी
और जितेन्द्रिय हैं। वे देवताओं का कल्याण करने के लिए महात्मा मनु के शुद्ध वंश में जन्म २१
लेंगे। मनु के पुत्र अङ्ग, अङ्ग के अन्तर्धामा, अन्तर्धामा के हविर्धामा, हविर्धामा के प्राचीनबर्हि,
प्राचीनबर्हि के दस प्रचेता, प्रचेता के दक्ष प्रजापति, दक्ष प्रजापति के दाक्षायणी, दाक्षायणी के
आदित्य और आदित्य के पुत्र वैवस्वत मनु उत्पन्न होंगे। वैवस्वत मनु के वंश में इला का जन्म
होगा। इला के गर्भ और बुध के वीर्य से पुरूरवा की उत्पत्ति होगी। पुरूरवा के पुत्र आयु,
आयु के नहुष, नहुष के ययाति, ययाति के यदु, यदु के क्रोष्टा, क्रोष्टा के वृजिनीवान्, वृजिनी-
वान् के उषंगु और उषंगु के पुत्र चित्ररथ होंगे। चित्ररथ के शुद्ध वंश में शूर नाम के महा-
पराक्रमी महायशस्वी एक महापुरुष उत्पन्न होंगे। शूर से महात्मा वसुदेव और वसुदेव से ३१
वासुदेव का जन्म होगा। इस प्रकार भगवान् वासुदेव पृथिवी पर जन्म लेकर महाराज जरा-

सन्ध को परास्त करके उसके द्वारा क़ैद किये हुए राजाओं को छुड़ा देंगे। अन्त को अपने
अप्रतिहत बल-वीर्य के प्रभाव से वे सब राजाओं के शासक होकर, द्वारका में निवास करके, धर्म
के अनुसार प्रजा का पालन करेंगे। अतएव उस समय तुम लोग शास्त्र के अनुसार गन्ध-माला
आदि द्वारा, ब्रह्माजी के समान, उन सनातन वासुदेव की पूजा करके उनकी स्तुति करना। जो
मनुष्य मुझे या ब्रह्माजी को देखना चाहे वह सनातन वासुदेव के दर्शन करे। भगवान् वासुदेव
के दर्शन करना मेरे और ब्रह्माजी के दर्शन करने के समान है। भगवान् वासुदेव जिस पर
४० प्रसन्न होंगे उससे ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्न होंगे। जो मनुष्य उन मधुसूदन का आश्रय
लेगा वह कीर्ति, जय और स्वर्ग प्राप्त करेगा और धर्मोपदेशक तथा धार्मिक कहलावेगा। अतएव
सदाचारी धर्मपरायण महात्मा हमेशा उन परम पुरुष को नमस्कार करते हैं। उनकी पूजा
करने से निस्सन्देह परम धर्म होगा।

महात्मा हृषीकेश ने, प्रजा के हित के लिए, सनत्कुमार आदि जिन महर्षियों की सृष्टि की
है वे महर्षि इस समय गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं। अतएव मनुष्यों को धर्मपरायण
सनातन हृषीकेश को नमस्कार करना चाहिए। वे वन्दित होने पर वन्दना, सम्मानित होने पर
सम्मान और पूजित होने पर पूजा ग्रहण करते हैं। वे आराधना करने पर दर्शन देते और आश्रित
होने पर आश्रय देते हैं। लोक-पूजित देवता भी उनकी पूजा करते हैं। विष्णु-भक्त मनुष्य को तनिक
भी भय नहीं रह जाता, अतएव मन-वचन-कर्म से उनकी पूजा और उनके दर्शन करना सबका
५० कर्तव्य है। हे महर्षियो, वासुदेव का यही माहात्म्य है। उनके दर्शन करने से सब देवताओं के
दर्शन करने के समान फल होता है। मैं भी उन महावराहरूपधारी जगत्पति को हमेशा नमस्कार
करता हूँ। उनके दर्शन करने से ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों देवताओं के दर्शन मिलते हैं।
हम सब उनके शरीर में निवास करते हैं। इन महात्मा का अवतार होने के पहले ही अनन्तदेव,
पृथिवी पर अवतार लेकर, इनके ज्येष्ठ भ्राता बलदेव नाम से प्रसिद्ध होंगे। बलदेवजी के रथ
पर त्रिशिरा (तिकोना) सुवर्णमय तालध्वज विद्यमान रहेगा; और उनका मस्तक महानागों
से ढका रहेगा। स्मरण करते ही सब अस्त्र-शस्त्र उनके पास आ जायँगे। देवताओं ने कश्यप
के पुत्र बलवान् गरुड़ से इन महात्मा का अन्त देखने को कहा था। गरुड़ बड़ा यत्न करने पर
भी बलदेवजी का अन्त नहीं देख सके। ये अनन्तदेव सिर पर पृथिवी को धारण किये हुए
बड़ी प्रसन्नता से रसातल में निवास करते हैं। जो विष्णु हैं वही अनन्तदेव हैं और जो
बलदेव हैं वही श्रीकृष्ण हैं। अतएव सबको चक्रधर श्रीकृष्ण और हलधर बलदेव का सम्मान
और दर्शन करना चाहिए। हे महर्षियो, यह मैंने तुम लोगों को यदुवंश में उत्पन्न नारायण
६२ की पूजा करने का विषय बतलाया।

एक सौ अड़तालीस अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से नारदोक्त कृष्ण-माहात्म्य कहना तथा अर्जुन और श्रीकृष्ण को नर-नारायण बतलाकर श्रीकृष्ण की प्रशंसा करना

नारदजी ने कहा—वासुदेव ! महादेवजी के यह कथा कह चुकने पर अकस्मात् आकाश में बादल घिर आये, बिजली चमकने लगी और चारों दिशाओं मे बादलों का गर्जन होने लगा। सब दिशाओं में अँधेरा छा गया। मूसलधार पानी बरसने लगा। तब उस पर्वत पर भूतों समेत महादेवजी महर्षियों को न देख पड़े। थोड़ी देर बाद जब बादल हट गये तब उस अद्भुत कार्य के देखने और शङ्करजी के साथ पार्वतीजी की बातचीत सुनने से विस्मित महर्षिगण तीर्थ-यात्रा के लिए वहाँ से चल पड़े। हे वासुदेव, शङ्करजी ने जिनका माहात्म्य हम सबको सुनाया था वे सनातन ब्रह्म तुम्हीं हो। शङ्करजी ने हिमालय पर्वत को भस्म करके हम लोगों को विस्मित कर दिया था, इस समय तुम्हारे प्रभाव से फिर उसी तरह की अद्भुत घटना देखकर हम लोगों को वही स्मरण आ गया। यह मैंने महादेवजी का माहात्म्य तुमसे कहा। वासुदेव ने नारदजी के मुँह से यह कथा सुनकर महर्षियों का यथोचित सम्मान किया।

इसके बाद प्रसन्नचित्त महर्षियों ने वासुदेव से कहा—श्रीकृष्ण, तुम्हारे दर्शन करके हम लोगों को जैसी प्रसन्नता हुई है वैसी प्रसन्नता देवलोक में भी नहीं होती। अतएव हम लोगों को तुम बार-बार दर्शन देते रहना। महादेवजी ने तुम्हारी महिमा का जैसा वर्णन किया था वह सब
सत्य है। तुम तीनों लोकों का वृत्तान्त जानते हो, तुमसे कुछ छिपा नहीं है। हम लोगों ने तुमसे ११
जो कुछ पूछा उसका वर्णन तुमने किया, इसी कारण हम लोगों ने तुम्हारा प्रिय करने के लिए शिव-पार्वती का यह गूढ़ संवाद सुनाया है। हम लोगों का स्वभाव चपल है—हम कोई बात गुप्त नहीं रख सकते। तुम सर्वज्ञ हो तो भी हम लोगों ने अपनी लघुता के कारण तुमसे अनेक प्रकार की कथा कही। संसार का कोई आश्चर्यजनक पदार्थ तुमसे छिपा नहीं है। पृथिवी और स्वर्ग का सब हाल तुम जानते हो। हे श्रीकृष्ण, तुम्हारी बुद्धि की वृद्धि और पुष्टि हो। तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर महाप्रभावशाली, तेजस्वी और यशस्वी पुत्र तुम्हारे होगा। अब हम लोग जाते हैं।

भीष्म कहते हैं—यह कहकर महर्षियों ने वासुदेव को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके अपने स्थान को प्रस्थान किया। हे धर्मराज, इसके बाद वासुदेव प्रसन्नता से विधिपूर्वक व्रत समाप्त करके द्वारका को लौट आये। कुछ दिनों बाद रुक्मिणी ने गर्भ धारण किया और
दसवाँ महीना पूरा होने पर वंशधर पुत्र उत्पन्न किया। वह पुत्र देवता, असुर, मनुष्य और २०
पशु-पक्षी आदि सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है; उसका नाम काम है।

हे युधिष्ठिर! मेघ के समान साँवले, चार भुजावाले ये वासुदेव प्रसन्नता से तुम सब भाइयों के आश्रित रहते हैं और तुम लोग भी इनके आश्रय में हो। ये जहाँ रहें वहाँ कीर्ति, लक्ष्मी,

धैर्य और स्वर्ग-पथ विद्यमान रहता है। इन्द्र आदि तेंतीस देवताओं का स्वरूप ये वासुदेव हैं। यही
आदिदेव महादेव सब प्राणियों के आश्रय हैं। इनका न तो आदि है, न अन्त। ये अव्यक्त-
स्वरूप हैं। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए ये वासुदेव पृथिवी पर उत्पन्न हुए हैं। ये
दुर्बोध तत्त्व के वक्ता और कर्ता हैं। इन्हीं का आश्रय लेने से तुमको विजय, कीर्ति और
साम्राज्य प्राप्त हुआ है। ये तुम्हारे नाथ और तुम्हारी परम गति हैं। तुमने होता-स्वरूप
होकर, प्रलयकालीन अग्नि के समान, श्रीकृष्ण-रूप स्रुव द्वारा समराग्नि में अनेक राजाओं की
आहुति दी है। मूर्ख दुर्योधन क्रोध के वश होकर, श्रीकृष्ण और अर्जुन से युद्ध करके, अपने
पुत्रों और बन्धु-बान्धवों समेत नष्ट हो गया। जब श्रीकृष्ण के चक्र से महाबली महाकाय
दानवगण, दावानल में पतङ्गों की तरह, नष्ट हो गये हैं तब हीनबल मनुष्य किस प्रकार इनके
३१ साथ युद्ध कर सकते हैं? प्रलयकाल के अग्नि के समान तेजस्वी, विजयी, योगी अर्जुन भी
साधारण मनुष्य नहीं हैं। ये नारायण का अंश हैं। इन्होंने अपने तेज से दुर्योधन की सेना का
नाश कर दिया है। हिमालय पर्वत पर शङ्करजी ने महर्षियों से श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन
जिस प्रकार किया था वह मैं तुमसे कहता हूँ। श्रीकृष्ण का तेज, पराक्रम, प्रभाव तथा उनकी नम्रता
और पुष्टि अर्जुन से तिगुनी है। श्रीकृष्ण के साथ इन गुणों में कोई बराबरी नहीं कर सकता।
जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ श्रेष्ठ उन्नति है। हम लोगों ने, अल्प बुद्धि और पराधीनता के कारण, जान-
बूझकर मौत के मुँह में पैर रक्खा है। तुम अत्यन्त सरल हो, इसी से तुमने पहले से ही वासु-
देव की शरण ली और अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके इतने दिनों तक राज्य को ग्रहण नहीं
किया। मूर्खता-वश जो युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हुए उन सबको काल ने चबा लिया।
मैं भी काल के प्रभाव से मृत्यु के मुँह में जा रहा हूँ। काल ही सबका ईश्वर है। तुम काल
के प्रभाव को भली भाँति जानते हो। अतएव जिसका काल आ गया है उसके लिए शोक न
४० करो। ये श्रीकृष्ण ही रक्तनयन दण्डधारी काल हैं। तुम सजातीय लोगों के मरने का शोक न
करो। मैंने महर्षि वेदव्यास और देवर्षि नारद के उपदेशानुसार वासुदेव का माहात्म्य तुमसे
कहा और तुमने सुना। मैंने जितना माहात्म्य कहा है इतने से ही इनकी महिमा का पर्याप्त
परिचय मिल जाता है। इसके सिवा अनेक महर्षियों का प्रभाव और शिव-पार्वती का संवाद
भी मैंने कहा। जो मनुष्य इस पवित्र संवाद को पढ़ता, सुनता और धारण करता है उसका
अवश्य कल्याण होता है, उसकी सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं और मरने के बाद उसे स्वर्ग प्राप्त
होता है। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो उसे श्रीकृष्ण की शरण में जाना चाहिए।
वेदज्ञ ब्राह्मणों ने इनको अक्षय कहा है। हे धर्मराज, भगवान् शङ्कर ने जिस धर्म का वर्णन
किया है उसे तुम हमेशा स्मरण रक्खो। तुम धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करते हुए जीवन
व्यतीत करके अन्त को शरीर त्यागकर स्वर्गलोक प्राप्त करोगे। राजा को धर्म-मार्ग पर चलकर

प्रजा का पालन करना चाहिए। न्याय के अनुसार दण्ड का विधान करना राजा का परम धर्म
है। मैंने सज्जनों के सामने यह जो शिव-पार्वती का संवाद कहा है इसे सुनकर या सुनने की ५०
इच्छा से शुद्धचित्त होकर शङ्कर की आराधना करनी चाहिए। देवर्षि नारद ने शङ्कर की आरा-
धना करने का उपदेश दिया है। अब तुम उन्हीं देवादिदेव की पूजा करो। वासुदेव का भी
अद्भुत प्रभाव महादेवजी की तरह है। इन्होंने महावीर अर्जुन के साथ बदरिकाश्रम में दस
हज़ार वर्ष तक घोर तपस्या की है। महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन सत्य, त्रेता और द्वापर, तीनों
युगों में उत्पन्न हुए हैं। तुम देवर्षि नारद के, व्यासजी के और मेरे मुँह से इसे सुन चुके हो।
वासुदेव ने बाल्यावस्था में ही अपने सजातीयों की रक्षा करने के लिए कंस को मारा है। इन
शाश्वत पुराण पुरुष के अद्भुत कार्यों की गणना करना बहुत कठिन है। जब वासुदेव तुम्हारे
प्रिय सखा हैं तब अवश्य ही तुम्हारा कल्याण होगा। मूर्ख दुर्योधन यद्यपि अब इस लोक में
नहीं है तो भी उसके कामों से मुझे दुःख है। उसी की मूर्खता से यह घण्टाढार हुआ है।
उसी के अपराध से कर्ण, शकुनि और दुःशासन आदि कौरव युद्ध में मारे गये। ६१

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महात्मा भीष्म के मुँह से यह कथा सुनकर महात्माओं के बीच बैठे हुए धर्मराज युधिष्ठिर चुप हो गये। धृतराष्ट्र आदि सब राजा, श्रीकृष्ण की अद्भुत महिमा सुनकर, मन ही मन उनका सम्मान करके हाथ जोड़ने लगे। नारद आदि महर्षियों ने भी श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर उनका सम्मान किया। ६६

एक सौ उनचास अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से विष्णुसहस्रनाम कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, भीष्म के मुँह से इस प्रकार सब धर्मों को सुनकर युधिष्ठिर ने फिर उनसे पूछा—पितामह, इस लोक में प्रधान देवता कौन है? किस देवता की स्तुति और पूजा करने से मनुष्य शुभ फल पाते हैं? कौन सा धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है और किस मन्त्र का जप करने से मनुष्य संसार के बन्धन से मुक्त हो सकता है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, इस लोक में परम पुरुष भगवान् विष्णु ही सबसे श्रेष्ठ देवता हैं। उनके हज़ार नाम लेकर भक्ति के साथ उनकी स्तुति और पूजा करने से शुभ फल मिलता है। उन अनादि-अनन्त त्रिलोकपति नारायण का ध्यान, उनको नमस्कार और उनके उद्देश से यज्ञ करने से संसार के बन्धन से छुटकारा मिलता है। वे ब्राह्मणप्रिय, सर्वधर्मज्ञ, लोकों के कीर्तिवर्धक, लोकनाथ और सब प्राणियों की उत्पत्ति के आदि-कारण हैं। भक्ति के साथ पुण्डरीकाक्ष की स्तुति करना ही सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म है। मैं उन लोक-प्रधान विष्णु के सहस्र नाम कहता हूँ जो सब तेजों की अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ तेज हैं, जो सब तपस्याओं से बढ़-

कर तपस्या हैं, जो सब व्रतों से श्रेष्ठ व्रत हैं, जो सब पवित्र वस्तुओं से बढ़कर पवित्र हैं, जो सब
मङ्गलों के मङ्गल हैं, जो सब देवताओं के देवता हैं तथा जो सब जीवों के पिता और परब्रह्म-स्वरूप
हैं। कल्प के आदि में उनसे सब जीव उत्पन्न होते और कल्प के अन्त में उन्हीं में लीन हो जाते
१२ हैं। उन नामों के सुनने से पाप और भय का नाश हो जाता है। महर्षियों ने इन मुख्य नामों
का वर्णन किया है—विश्व, विष्णु, वषट्कार, भूतभव्यभवत्प्रभु, भूतकर्ता, भूतभर्ता, भाव,
भूतात्मा, भूतभावन, पूतात्मा, परमात्मा, मुक्त पुरुषों की परम गति, अव्यय पुरुष, साक्षी, क्षेत्रज्ञ,
अक्षर, योग, योग के विद्वानों में श्रेष्ठ, प्रधान पुरुषों के ईश्वर, नरसिंह, श्रीमान्, केशव, पुरुषोत्तम,
सर्व, शर्व, शिव, स्थाणु, भूतादि, अव्यय निधि, सम्भव, भावन, भर्ता, प्रभव, प्रभु, ईश्वर, स्वयम्भू,
शम्भु, आदित्य, पुष्कराक्ष, महास्वन, अनादिनिधन, धाता, विधाता, ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ, अप्रमेय,
हृषीकेश, पद्मनाभ, अमरप्रभु, विश्वकर्मा, मनु, त्वष्टा, स्थविष्ठ, स्थविर, ध्रुव, अग्राह्य, शाश्वत,
२० कृष्ण, लोहिताक्ष, प्रतर्दन, प्रभूत, त्रिककुद्, धाम, पवित्र, परम मङ्गल, ईशान, प्राणद, प्राण, ज्येष्ठ,
श्रेष्ठ, प्रजापति, हिरण्यगर्भ, भूगर्भ, माधव, मधुसूदन/ ईश्वर, विक्रमी, धन्वी, मेधावी, विक्रम, क्रम,
अनुत्तम, दुराधर्ष, कृतज्ञ, कृति, आत्मवान्, सुरेश, शरण, शर्म, विश्वरेता, प्रजाभव, अहः, संवत्सर,
व्याल, प्रत्यय, सर्वदर्शन, अज, सर्वेश्वर, सिद्ध, सिद्धि, सर्वादि, अच्युत, वृषाकपि, अमेयात्मा,
सर्वयोगविनिःसृत, वसु, वसुमना, सत्य, समात्मा, सम्मित, सम, अमोघ, पुण्डरीकाक्ष, वृषकर्मा,
वृषाकृति, रुद्र बहुशिरा, बभ्रु, विश्वयोनि, शुचिश्रवा, अमृत, शाश्वत, वरारोह, महातपाः, सर्वग,
सर्वज्ञ, भानु, विष्वक्सेन, जनार्दन, वेद, वेदज्ञ, अव्यङ्ग, वेदाङ्ग, कवि, लोकाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, धर्मा-
ध्यक्ष, कृताकृत, चतुरात्मा, चतुर्व्यूह, चतुर्दंष्ट्र, चतुर्भुज, भ्राजिष्णु, भोजन, भोक्ता, सहिष्णु, जगत
के आदि, अनघ, विजय, जेता, पुनर्वसु, उपेन्द्र, वामन, प्रांशु, अमोघ, शुचि, ऊर्जित, अतीन्द्र,
३० संग्रह, सर्ग, धृतात्मा, नियम, यम, वेद्य, वैद्य, सदायोगी, वीरघाती, मधु, अतीन्द्रिय, महामाय,
महोत्साह, महाबल, महाबुद्धि, महाशक्ति, महावीर्य, महाद्युति, अनिर्देश्यवपु, महापर्वतधारी, महा-
धनुर्धर, महीभर्ता, श्रीनिवास, सज्जनों की गति, अनिरुद्ध, सुरानन्द, गोविन्द, इन्द्रियतत्त्ववेत्ताओं
के पति, मरीचि, दमन, हंस, सुपर्ण, भुजगोत्तम, हिरण्यनाभ, सुतपाः, प्रजापति, अमृत्यु, सर्वदृक्,
सिंह, सन्धाता, सन्धिमान्, स्थिर, दुर्मर्षण, शास्ता, विश्रुतात्मा, दैत्यघाती, गुरु, गुरुतम, धाम,
सत्यपराक्रम, निमिष, अनिमिष, स्रग्वी, वाचस्पति, उदारधी, अग्रणी, ग्रामणी, न्याय, नेता, समीरण,
सहस्रमूर्धा, विश्वात्मा, सहस्राक्ष, सहस्रपाद, आवर्तन, निवृत्तात्मा, संवृत, सम्प्रमर्दन, संवर्तक, वह्नि,
अनिल, धरणीधर, सुप्रसाद, प्रसन्नात्मा, विश्वधारी, विश्वभोक्ता, विभु, सत्कर्ता, सत्कृत, साधु, जह्नु,
नारायण, नर, असंख्येय, अप्रमेयात्मा, विशिष्ट, शासनकर्ता, सिद्धार्थ, सिद्धसंकल्प, सिद्धिदाता, सिद्धि-
४० साधन, वृषाही, वृषभ, विष्णु, वृषपर्वा, वृषोदर, वर्धन, वर्धमान, विविक्त, श्रुतिसागर, सुभुज, दुर्धर,
वाग्मी, महेन्द्र, वसुद, बहुरूप, बृहद्रूप, शिपिविष्ट, प्रकाशन, ओज, तेज, द्युतिधर, प्रकाशात्मा, प्रतापन,

ऋद्ध, स्पष्टाक्षर, मन्त्र, चन्द्रांशु, भास्करद्युति, अमृतांशूद्भव, शशबिन्दु, सुरेश्वर, औषध, जगत्सेतु,
सत्यधर्मपराक्रम, भूतभव्यभवन्नाथ, पवन, पावन, अनल, कामघाती, कामकारी, कान्त, काम, काम-
दाता, युगादिकर्ता, युगावर्त, अनेकमाय, महाशन, अदृश्य, अव्यक्तरूप, सहस्रजित, अनन्तजित,
इष्ट, विशिष्ट, शिष्टेष्ट, शिखण्डी, नहुष, वृष, क्रोधहा, क्रोधकारी, कर्ता, विश्वबाहु, महीधर, अच्युत,
प्रथित, वासवानुज, जलनिधि, अधिष्ठान, अप्रमत्त, प्रतिष्ठित, स्कन्द, स्कन्दधर, धुर्य, वरद, वायु-
वाहन, वासुदेव, बृहद्भानु, आदिदेव, पुरन्दर, अशोक, तारण, तार, शूर, शौरि, जलेश्वर, अनु-
कूल, शतावर्त, पद्मी, पद्मनिभेक्षण, अरविन्दाक्ष, पद्मगर्भ, शरीरपोषक, महर्द्धि, ऋद्ध, वृद्धात्मा, ५०
महाक्ष, गरुड़ध्वज, अतुल, शरभ, भीम, समयज्ञ, हवि, हरि, सर्वलक्षणलक्षण्य, लक्ष्मीवान्, समिति-
ञ्जय, विक्षर, रोहित, मार्ग, हेतु, दामोदर, सह, महाभाग, वेगवान्, अमिताशन, उद्भव, क्षोभन, देव,
श्रीगर्भ, परमेश्वर, कारण, करण, कर्ता, विकर्ता, गहन, गुह, व्यवसाय, व्यवस्थान, संस्थान, स्थानदाता,
ध्रुव, परर्धि, परमस्पष्ट, तुष्ट, पुष्ट, शुभेक्षण, राम, विराम, विरज, मार्ग, नेय, नय, अनय, वीर,
बलवानों में श्रेष्ठ, धर्म, धर्मज्ञों में श्रेष्ठ, वैकुण्ठ, पुरुष, प्राण, पृथु, शत्रुघ्न, व्याप्त, वायु, अधोक्षज,
ऋतु, सुदर्शन, काल, परमेष्ठी, परिग्रह, उग्र, दक्ष, विश्राम, विश्वदक्षिण, विस्तार, स्थावर, प्रमाण, *
बीज, अर्थ, अनर्थ, महाकोश, महाभोग, महाधन, अनिर्विण्ण, स्थविष्ठ, भूः, धर्मयूप, महामख,
नक्षत्रनेमि, नक्षत्री, क्षम, क्षाम, समीहन, यज्ञ, इज्य, महेज्य, क्रतु, सत्र, सज्जनों की गति, सर्वदर्शी, ६०
विमुक्तात्मा, सर्वज्ञ, उत्तम ज्ञान, सुव्रत, सुमुख, सूक्ष्म, सुघोष, सुखदाता, सुहृद्, मनोहर, जितक्रोध,
वीरबाहु, विदारण, स्वापन, स्ववश, व्यापी, अनेकात्मा, अनेककर्मकृत्, वत्सर, वत्सल, वत्सी,
रत्नगर्भ, धनेश्वर, धर्मगोप्ता, धर्मकर्ता, धर्मी, सत्, असत्, क्षर, अक्षर, अविज्ञाता, सहस्रांशु,
विधाता, कृतलक्षण, गभस्तिनेमि, सत्त्वस्थ, सिंह, भूतमहेश्वर, आदिदेव, महादेव, देवेश,
देवपालक, गुरु, उत्तर, गोपति, गोप्ता, ज्ञानगम्य, पुरातन, शरीर में स्थित पञ्चभूतों के रक्षक,
भोक्ता, कपीन्द्र, भूरिदक्षिण, सोमप, अमृतप, सोम, पुरुजित्, पुरुसत्तम, विनय, जय, सत्यसन्ध,
दाशार्ह, सात्वतों के पति, जीव, विनयिता, साक्षी, मुकुन्द, अमितविक्रम, अम्भोनिधि, अनन्तात्मा,
महासमुद्रशायी, अन्तक, अज, महार्ह, स्वभावस्थित, शत्रुविजयी, प्रमोदन, आनन्द, नन्दन, नन्द,
सत्यधर्मा, त्रिविक्रम, महर्षि, कपिलाचार्य, कृतज्ञ, मेदिनीपति, त्रिपद, त्रिदशाध्यक्ष, महाशृङ्ग,
कृतान्तघाती, महावराह, गोविन्द, सुषेण, कनकाङ्गदी, गुह्य, गभीर, गहन, गुप्त, गदाचक्रधारी, ७०
वेधा, स्वाङ्ग, अजित, कृष्ण, दृढ़, संकर्षण, अच्युत, वरुण, वारुण, वृक्ष, पुष्कराक्ष, महामना,
भगवान्, भगघाती, नन्दी, वनमाली, हलायुध, आदित्य, ज्योतिप्रधान, सहिष्णु, गतिसत्तम,
सुधन्वा, खण्डपरशु, दारुण, द्रविणप्रद, दिवस्पर्शी, सर्वदृक्, व्यास, वाचस्पति, अयोनिज, त्रिसामा,
सामग, साम, निर्वाण, भेषज, भिषक्, संन्यासकारी, शम, शान्त, निष्ठा, शान्तिपरायण,
शुभाङ्ग, शान्तिद, स्रष्टा, कुमुद, कुवलेशय, गोहित, गोपति, गोप्ता, वृषभाक्ष, वृषप्रिय, अनिवर्ती,

निवृत्तात्मा, संक्षेप्ता, क्षेमकृत्, शिव, श्रीवत्सवक्षा, श्रीवास, श्रीपति, श्रीमान् व्यक्तियों में श्रेष्ठ,
श्रीदाता, श्रीश, श्रीनिवास, श्रीनिधि, श्रीविभावन, श्रीधर, श्रीकर, श्रेय, श्रीमान्, तीनों लोकों
के आश्रय, स्वक्ष) स्वङ्ग, शतानन्द, नन्दि, ज्योति, गणेश्वर, विजितात्मा, विधेयात्मा, सत्कीर्ति,
(छिन्नसंशय, उदीर्ण, सर्वतश्चक्षु, अनीश, शाश्वत, स्थिर, भूशायी, भूषण, भूति, विशोक,
८० शोकनाशन, अर्चिष्मान्, अर्चित, कुम्भ, विशुद्धात्मा, विशोधन, अनिरुद्ध, अप्रतिरथ, प्रद्युम्न,
अमितविक्रम, कालनेमिनिहन्ता, वीर, शौरि, शूरजनेश्वर, त्रिलोकात्मा, त्रिलोकेश, केशव,
केशिहा, हरि, कामदेव, कामपाल, कामी, कान्त, कृतागम, अनिर्देश्यवपु, विष्णु, वीर, अनन्त,
धनञ्जय, ब्रह्मण्य, ब्रह्मकृत्, ब्रह्मा, ब्रह्म, ब्रह्मविवर्धन, ब्रह्मविद्, ब्राह्मण, ब्रह्मी, ब्रह्मज्ञ, ब्राह्मणप्रिय,
महाक्रम, महाकर्मा, महातेजा, महोरग, महाक्रतु, महायज्वा, महायज्ञ, महाहवि, स्तव्य, स्तव-
प्रिय, स्तोत्र, स्तुति, स्तोता, रणप्रिय, पूर्ण, पूरयिता, पुण्य, पुण्यकीर्ति, अनामय, मनोजव, तीर्थ-
कर, वसुरेता, वसुप्रिय, वसुप्रद, वासुदेव, वसु, वसुमना, हरि, सद्गति, सत्कृति, सत्ता, सद्भूति,
सत्परायण, शूरसेन, यदुश्रेष्ठ, सन्निवास, सुयामुन, भूतावास, सर्वासुनिलय, अनल, दर्पहा, दर्पद,
दृप्त, दुर्धर, अपराजित, विश्वमूर्ति, महामूर्ति, दीप्तमूर्ति, अमूर्तिमान्, अनेकमूर्ति, अव्यक्त, शतमूर्ति,
९० शतानन, एक, अनेक, सव, क, किं, यत्तत्पद, लोकबन्धु, लोकनाथ, माधव, भक्तवत्सल, सुवर्ण-
वर्ण, हेमाङ्ग वराङ्ग, चन्दनाङ्गदी, वीरहा, विषम, शून्य, घृताशी, अचल, चल, अमानी, मानद,
मान्य, लोकस्वामी, त्रिलोकधृत, सुमेधा, मेधज, धन्य, सत्यमेधा, धराधर, तेज, वृष, द्युतिधर,
सर्वशास्त्रभृतांवर, प्रग्रह, निग्रह, अव्यग्र, अनेकशृङ्ग, गदाग्रज, चतुर्मूर्ति, चतुर्बाहु, चतुर्व्यूह,
चतुर्गति, चतुरात्मा, चतुर्भाव, चतुर्वेदविद्, एकपाद, समावर्त, निवृत्तात्मा, दुर्जय, दुरतिक्रम,
दुर्लभ, दुर्गम, दुर्ग, दुरावास, दुरारिहा, शुभाङ्ग, लोकसारङ्ग, सुतन्तु, तन्तुवर्धन, इन्द्रकर्मा,
महाकर्मा, कृतकर्मा, कृतागम, उद्भव, सुन्दर, सुन्द, रत्ननाभ, सुलोचन, अर्क, वाजसन, शृङ्गी,
जयन्त, सर्वविद्, जयी, सुवर्णबिन्दु, अक्षोभ्य, सर्ववाक्, ईश्वरेश्वर, महाह्रद, महागर्त, महाभूत,
१०० महानिधि, कुमुद, कुन्दर, कुन्द, पर्जन्य, पवन, अनिल, अमृताश, अमृतवपु, सर्वतोमुख,
सुलभ, सुव्रत, सिद्ध, शत्रुजित्, शत्रुतापन, न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, चाणूरान्ध्रनिषूदन,
सहस्रार्चि, सप्तजिह्व, सप्तैधा, सप्तवाहन, अमूर्ति, अनघ, अचिन्त्य, भयकृत्, भयनाशन, अणु,
बृहत्, कृश, स्थूल, गुणभृत, निर्गुण, महान्, अधृत, स्वधृत, स्वास्य, प्राग्वंश, वंशवर्धन, भारभृत,
योगी, योगीश, सर्वकामद, आश्रम, श्रमण, क्षाम, सुपर्ण, वायुवाहन, धनुर्धर, धनुर्वेद, दण्ड,
दमयिता, दम, अपराजित, सर्वसह, नियन्ता, नियम, यम, सत्त्ववान्, सात्त्विक, सत्य, सत्य-
धर्मपरायण, अभिप्राय, प्रियार्ह, अर्ह, प्रियकृत्, प्रीतिवर्धन, विहायसगति, ज्योति, सुरुचि,
हुतभुक्, विभु, रवि, विरोचन, सूर्य, सविता, रविलोचन, अनन्त, हुतभुक्, भोक्ता, सुखद, अनेकद,
अग्रज, अनिर्विण्ण, सदामर्षी, लोकाधिष्ठान, अद्भुत, सनत्कुमार, सनातन, कपिल, कपि, अव्यय,

स्वस्तिद, स्वस्तिकृत, स्वस्ति, स्वस्तिभुक्, स्वस्तिदक्षिण, अरौद्र, कुण्डली, चक्री, विक्रमी, ऊर्जित-
शासन, शब्दातिग, शब्दसह, शिशिर, शर्वरीकर, अक्रूर, पेशल, दक्ष, दक्षिण, क्षमावान् व्यक्तियों १०
में श्रेष्ठ, विद्वत्तम, वीतभय, पुण्यश्रवणकीर्तन, उत्तारण, दुष्कृतिहा, पुण्य, दुःस्वप्ननाशन, वीरहा,
रक्षण, शान्त, जीवन, पर्यवस्थित, अनन्तरूप, अनन्तश्री, जितमन्यु, भयापह, चतुरस्र, गभीरात्मा,
विदिश, व्यादिश, दिश, अनादि, भूलोक और भुवर्लोक के ईश्वर, सुवीर, रुचिराङ्गद,
जनन, जनजन्मादि, भीम, भीमपराक्रम, आधारनिलय, धाता, पुष्पहास, प्रजागर, ऊर्ध्वग,
सत्पथाचार, प्राणद, प्रणव, पण, प्रमाण, प्राणनिलय, प्राणभृत, प्राणजीवन, तत्त्व, तत्त्वविद्, एकात्मा,
जन्ममृत्युजरातिग, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, तरु, तार, पिता, पितामह, यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा,
यज्ञाङ्ग, यज्ञवाहन, यज्ञभृत, यज्ञकृत, यज्ञी, यज्ञभुक्, यज्ञसाधन, यज्ञान्तकृत, यज्ञगुह्य, अन्न,
अन्नाद, आत्मयोनि, स्वयंजात, वैखानस, सामगायन, देवकीनन्दन, स्रष्टा, क्षितीश, पापनाशक,
शंखभृत, नन्दकी, चक्री, शार्ङ्गधन्वा, गदाधर, रथाङ्गपाणि, अक्षोभ्य और सर्वप्रहरणायुध। १२०

यह मैंने भगवान् विष्णु के हज़ार नामों का वर्णन किया। जो मनुष्य प्रतिदिन इस 'सहस्र-
नाम' को पढ़ता या सुनता है उसका इस लोक या परलोक में कुछ अमङ्गल नहीं होता।
इसके पढ़ने या सुनने से ब्राह्मण विद्वान्, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनवान्, शूद्र सुखी, धर्मार्थी धर्मात्मा,
धनार्थी धनवान् और पुत्रार्थी पुत्रवान् होता है। जो मनुष्य प्रतिदिन पवित्र और भक्ति-परायण
होकर एकाग्र चित्त से वासुदेव के इन हज़ार नामों का पाठ करता है वह विपुल यश, जाति में
श्रेष्ठता, अटल लक्ष्मी, बल-वीर्य और कल्याण प्राप्त करता है तथा रोगहीन, तेजस्वी, रूपवान्
और गुणवान् होता है। प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस 'सहस्रनाम' का पाठ करने से रोगी रोग से,
बँधुआ बन्धन से, भीत भय से और विपद्ग्रस्त विपत्ति से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य
भक्ति के साथ वासुदेव का आश्रय लेता है वह सब पापों से मुक्त होकर सनातन ब्रह्मलोक को
जाता है। वासुदेव के भक्तों को कभी जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का भय नहीं रहता। जो ३०
मनुष्य भक्ति और श्रद्धा के साथ इस स्तोत्र का पाठ करता है वह निस्सन्देह क्षमाशील, श्रीमान्,
धैर्यवान्, मेधावी, यशस्वी और सुखी होता है। जो वासुदेव का भक्त होता है उस पुण्यवान्
मनुष्य में क्रोध, मात्सर्य, लोभ और दुर्बुद्धि का लेश नहीं रह जाता। भगवान् वासुदेव ही
अपने बल से चन्द्रमा सूर्य और नक्षत्रों से अलङ्कृत आकाश, दिशाओं, पृथिवी और समुद्र को
धारण करते हैं। देवों, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों और सर्पों समेत सम्पूर्ण जगत् भगवान्
कृष्ण के ही अधीन है। उन्हीं से इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धैर्य, देह और जीवात्मा
की उत्पत्ति हुई है। सब शास्त्रों की अपेक्षा आचार श्रेष्ठ है। आचार श्रेष्ठ धर्म है। भगवान्
वासुदेव धर्म के रक्षक हैं। महर्षि, पितर, देवता और सब महाभूत उन्हीं से उत्पन्न हैं। योग,
ज्ञान, विद्या, सांख्य, शिल्प आदि कार्य, वेद, शास्त्र और विज्ञान, सब उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं।

वे तीनों लोकों के सब प्राणियों में स्थित हैं। जो मनुष्य कल्याण और सुख की इच्छा करे उसे भगवान् वासुदेव के इस व्यासोक्त स्तोत्र का पाठ अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य
१४२ केशव की पूजा किया करता है उसका कभी पराभव नहीं होता।

एक सौ पचास अध्याय

ग्यारह रुद्रों, बारह आदित्यों, वसिष्ठ आदि महर्षियों और अनेक राजर्षियों के नाम बतलाकर उन नामों और गायत्री के जप का महाफल कहना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, आप सब शास्त्रों के विद्वान् और बुद्धिमान् हैं। मुझे बतलाइए कि किस मन्त्र का जप करने से श्रेष्ठ फल मिलता है। यात्रा, गृहप्रवेश, कार्यारम्भ और श्राद्ध में किस मन्त्र का जप करना चाहिए? किस मन्त्र के जपने से शान्ति, पुष्टि और रक्षा होती है तथा शत्रु का और भय का नाश होता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! मैं वेदव्यास का कहा हुआ मन्त्र तुमको बतलाता हूँ, एकाग्र होकर सुनो। सावित्री देवी ने इस मन्त्र की सृष्टि की है। इस मन्त्र के जपने और सुनने से पाप का नाश हो जाता है। जो मनुष्य दिन या रात में इस मन्त्र का जप करता है वह निष्पाप और जो इस मन्त्र को सुनता है वह दीर्घजीवी, कृतार्थ और दोनों लोकों में सुखी होता है। सत्य-धर्म-परायण क्षत्रियधर्म-निरत राजर्षियों को प्रतिदिन प्रातःकाल इस मन्त्र के पढ़ने से श्रेष्ठ श्री प्राप्त होती है। मन्त्र यह है—महाव्रतधारी वसिष्ठदेव, वेदनिधि पराशर, महासर्प अनन्त, अक्षय
११ सिद्धगण, ऋषिगण और देवादिदेव वरदाता सहस्रशीर्ष, सहस्रनामधारी जनार्दन को नमस्कार है।

अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, ऋत, पितृरूप, त्र्यम्बक, वृषाकपि, शम्भु, हवन और ईश्वर, ये ग्यारह रुद्र हैं; इन्हीं को शतरुद्र भी कहते हैं। अंश, भग, मित्र, जलेश्वर वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये बारह आदित्य हैं। ये सब कश्यप के पुत्र हैं। धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास, ये आठ महात्मा वसु नाम से प्रसिद्ध हैं। नासत्य और दस्र, ये दो अश्विनीकुमार हैं। ये सूर्य के वीर्य से जन्म लेकर, अश्वरूपधारिणी, सूर्य-पत्नी संज्ञा की नाक से उत्पन्न हुए हैं। ये तेंतीस देवता सब प्राणियों के अधीश्वर हैं।

अब मनुष्यों के यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मों और चोरी आदि दुष्कर्मों के साक्षी महात्माओं के नाम सुनो। ये महात्मा अदृश्य रूप से सब प्राणियों के शुभाशुभ कर्म देखते रहते हैं। मृत्यु, काल, विश्वेदेवा, पितृगण, तपोधन और सिद्ध महर्षिगण, यही कर्मों के साक्षी हैं। इनका
२१ नाम लेने से ये शुभ फल देते हैं। ये विधाता के निर्दिष्ट दिव्य लोकों में निवास करते हैं। प्रतिदिन इन महात्माओं का नाम लेने से धर्म, अर्थ, काम और पवित्र लोक प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त तेंतीस देवताओं और नन्दीश्वर, महाकाय, ग्रामणी, वृषभध्वज, गणपति, विनायकगण, सौम्यगण,

रुद्रगण, भूतगण, नक्षत्रगण, नदियाँ, आकाश, गरुड़, सर्पराज, सिद्धगण, स्थावर और जङ्गमगण, हिमालय पर्वत, चारों समुद्र, महादेव के अनुरूप पराक्रमी उनके अनुचरगण, विष्णु, जिष्णु, स्कन्द और अम्बिका, इनका नाम लेने से सब पाप नष्ट हो जाता है।

अब श्रेष्ठ ऋषियों के नाम सुनो। यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, कक्षीवान्, अङ्गिरा के पुत्र बल और मेधातिथि के पुत्र कण्व, ये सात महर्षि पूर्व दिशा में निवास करते हैं। ये सब
महातेज से युक्त, इन्द्र के गुरु और रुद्र अग्नि तथा वसु के समान तेजस्वी हैं। ये पृथिवी पर ३१
शुभ कर्म करके अब स्वर्ग में देवताओं के साथ निवास करते हैं। इन महर्षियों का नाम लेने से इन्द्रलोक में सम्मान होता है। उन्मुचु, प्रमुचु, स्वस्त्यात्रेय, दृढव्य, ऊर्ध्वबाहु, तृणसोमाङ्गिरा और मित्रावरुण के पुत्र तेजस्वी अगस्त्य, ये दक्षिण दिशा में निवास करते हैं। ये महात्मा धर्मराज के पुरोहित हैं। दृढेयु, ऋतेयु, परिव्याध, एकत, द्वित, त्रित और महर्षि अत्रि के पुत्र सारस्वत, ये पश्चिम दिशा में निवास करते हैं। ये वरुण के पुरोहित हैं। अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और जमदग्नि, ये उत्तर दिशा में निवास करते हैं। ये कुबेर के गुरु हैं। इनके सिवा सात महर्षि और हैं; उनका निवास सब दिशाओं में है। इन सब
महर्षियों का नाम लेने से मनुष्यों का कल्याण और यश होता है। धर्म, काम, काल, वसु, ४०
वासुकि, अनन्त और कपिल, ये सात महात्मा पृथिवी को धारण करते हैं। ये दिक्पाल कहलाते हैं। ये जिस दिशा में निवास करें उसी दिशा की ओर मुँह करके इनकी स्तुति करनी चाहिए। परशुराम, वेदव्यास, अश्वत्थामा, लोमश और पूर्वोक्त सब महर्षि लोकपालक हैं। ये महर्षि अपनी तपस्या के प्रभाव से सब लोकों की सृष्टि कर सकते हैं। संवर्त, मेरुसावर्ण, मार्कण्डेय, सांख्य, योग, नारद और महर्षि दुर्वासा अपने तपोबल से तीनों लोकों में विख्यात हैं। इन सब ऋषियों और ब्रह्मलोक-निवासी रुद्रतुल्य प्रभावशाली अन्य महर्षियों के नाम लेने से मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और पुत्र प्राप्त करता है।

मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और सायङ्काल पृथिवी के पिता—वेनराज के पुत्र—महाराज पृथु, इला के गर्भ और बुध के वीर्य से उत्पन्न सूर्यवंशी महात्मा पुरूरवा, त्रिलोक-प्रसिद्ध महाराज
भरत, सत्ययुग में गोमेध यज्ञ के कर्ता रन्तिदेव, विश्वजित्-यज्ञकर्ता महातपस्वी तेजस्वी राजर्षि ५०
श्वेत, सगर-वंश के उद्धारक राजर्षि भगीरथ और अग्नि के समान तेजस्वी अन्यान्य कीर्तिमान् देवताओं, ऋषियों और राजाओं के नाम का स्मरण करते रहें। सांख्य, योग, हव्य, कव्य और सब श्रुतियों का आश्रय ब्रह्म, इन शब्दों का प्रातःकाल और सायङ्काल उच्चारण करने से मनुष्य का कल्याण होता, सब रोग नष्ट हो जाते और सब कामों में उन्नति होती है। संसार की सृष्टि और पालन करनेवाले यही हैं, यही पानी बरसाते और हवा चलाते हैं। ये महात्मा कार्यदक्ष, श्रेष्ठ, क्षमाशील और जितेन्द्रिय हैं। ये मनुष्यों के अमङ्गलों को दूर कर देते हैं और

उनके पाप-पुण्य के साक्षी हैं। प्रातःकाल उठकर इनका नाम लेनेवाले का कल्याण होता है, उसे
अग्नि और चोर का भय नहीं रहता, उसके मार्ग में कोई रुकावट नहीं होती और दुःस्वप्न
६१ आदि सब अमङ्गलों से उसकी रक्षा होती है। जो ब्राह्मण यज्ञ की दीक्षा के समय इन पवित्र
नामों का पाठ करता है वह न्यायवान्, आत्मनिष्ठ, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, असूयाहीन और स्वस्ति-
मान् होता है और सब पापों से मुक्त होकर घर लौटता है। इन नामों का पाठ करने से रोगी
का रोग से छुटकारा हो जाता है। घर में इन नामों का पाठ करने से कुल का मङ्गल, खेत में
पाठ करने से धान्य की वृद्धि और विदेश-यात्रा के समय पाठ करने से मार्ग में कल्याण होता है।
अतएव स्त्री, पुत्र, धन, बीज, ओषधि और अपने हित के लिए मनुष्य इन नामों का पाठ करे।
जो क्षत्रिय, युद्ध के समय, इन नामों का जप करता है वह शत्रुओं को जीतकर सकुशल घर लौट
आता है। जो मनुष्य देवकार्य और पितृकार्य में इन नामों का पाठ करता है वह यज्ञ में हव्य-
कव्य भोजन करके सन्तुष्ट होता है। उसे कभी कोई रोग नहीं होता और हिंसक जीवों तथा
चोरों का डर नहीं रहता। वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य जहाज़,
सवारी, विदेश या राजगृह में इस सावित्री-मन्त्र का जप करता है उसे कोई विघ्न नहीं होता,
उसकी सन्तान अकाल में नहीं मर जाती और उसे राजा, पिशाच, साँप, राक्षस, अग्नि, जल,
पवन और हिंसक जीवों का भय नहीं रहता। सारांश यह कि सावित्री-मन्त्र पढ़ने से चारों
वर्णों को शान्ति मिलती है। जो मनुष्य परम पवित्र सावित्री-मन्त्र सुनता है उसके सब दुःख
दूर हो जाते और अन्त को उसे परम गति मिलती है। जो मनुष्य गायों के बीच इस मन्त्र को
पढ़ता है उसकी गायें बहुत से बछड़े देती हैं। यात्रा के समय और विदेश में, सर्वत्र सब अव-
स्थाओं में मनुष्य इस मन्त्र को पढ़ें। जप और होम करनेवाले संयमी महर्षियों के लिए यह
मन्त्र जपने योग्य और गोपनीय है। महर्षि पराशर ने यह सनातन मन्त्र इन्द्र को बतलाया था।
वही मन्त्र मैं इस समय तुमको बतलाता हूँ। यह मन्त्र सब प्राणियों का हृदय और सनातन
श्रुति-स्वरूप है। चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजाओं ने पवित्र होकर प्राणियों के परमगति-स्वरूप
इस मन्त्र का जप किया था। हमेशा देवताओं, सप्तर्षियों और महात्मा ध्रुव का नाम लेने से
मनुष्य सब विपत्तियों से छूट जाता और दूसरों का भी कल्याण कर सकता है। काश्यप,
गौतम, भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, शुक्र, अगस्त्य और बृहस्पति आदि वृद्ध महर्षिगण हमेशा सावित्री-
मन्त्र का जप करते हैं। ऋचीक के पुत्रों ने भगवान् वसिष्ठ से यह मन्त्र सीखा था। इन्द्र
आदि देवताओं ने सावित्री-मन्त्र का आश्रय लेकर दानवों को परास्त किया था। जो मनुष्य
विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मण को सोने से सींग मढ़ाकर सौ गायें देता है और जो मनुष्यों को भारत
की दिव्य कथा सुनाता है उन दोनों को एक सा फल मिलता है। महात्मा भृगु का नाम लेने
से धर्म की प्राप्ति होती, महर्षि वसिष्ठ को नमस्कार करने से सौन्दर्य की वृद्धि होती, महाराज

रघु को नमस्कार करने से संग्राम में विजय मिलती और अश्विनीकुमारों का नाम लेने से रोग
से छुटकारा मिलता है। हे धर्मराज, यह मैंने विस्तार के साथ सावित्री-मन्त्र का वर्णन किया।
अब और क्या पूछना चाहते हो? ८२

एक सौ इक्यावन अध्याय

ब्राह्मणों की महिमा बतलाकर उन्हें पूजनीय कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! संसार में कौन मनुष्य पूज्य हैं, किन मनुष्यों को नमस्कार
करना चाहिए और किसके साथ कैसा व्यवहार किया जाय?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ब्राह्मणों का अपमान करने से देवता भी असन्तुष्ट होते हैं।
अतएव संसार में ब्राह्मण पूजनीय और नमस्कार करने योग्य हैं। ब्राह्मणों का पिता के समान
सत्कार करना चाहिए। ब्राह्मण ही सब लोकों को धारण करते हैं। वे सबसे श्रेष्ठ और धर्म के
सेतु हैं। धन का त्याग करना ही उनके सुख का कारण है। वे सब प्राणियों के प्रियदर्शन,
सबके आश्रयस्वरूप, व्रतधारी, लोकस्रष्टा, शास्त्रप्रणेता और यशस्वी हैं। वे मौनव्रत धारण करके
घोर तपस्या करते हैं। तपस्या उनका परम धन है और वाक्य उनका परम बल है। वे धर्म
के उत्पत्ति-स्थान, धर्म-परायण, धर्मार्थी और सूक्ष्मदर्शी हैं। उन्हीं के आश्रय से सारी प्रजा
जीवित रहती है। वे अच्छे मार्ग के प्रदर्शक, यज्ञप्रकाशक और सनातन हैं। वे वंश-परम्परा-
गत ब्राह्मणत्व का कठिन भार लादे रहते हैं, कठिन समय आ पड़ने पर भी उसे नहीं छोड़ते। वे
हव्य-कव्य के अग्रभागभोजी और देवताओं, पितरों तथा अतिथियों के मुख-स्वरूप हैं। उनको
भोजन देकर तृप्त करने से तीनों लोकों को महाभय से बचाया जा सकता है। वे सर्वज्ञ, वेद- १०
निष्ठ, सब विषयों में निपुण, मोक्षदर्शी, सबकी गति जाननेवाले, आत्मचिन्तक, सब लोकों के
दीपक-स्वरूप और नेत्रवालों के नेत्र-स्वरूप हैं। आदि, मध्य और अन्त, कुछ भी उनसे छिपा
नहीं है। वे सन्देहहीन और उच्च-नीच सब तरह के ज्ञान में निपुण हैं। उन्हें अन्त में श्रेष्ठ
गति मिलती है। वे निष्पाप, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, सम्मान के उपयुक्त और सम्मानित हैं। वे
चन्दन और कीचड़ को तथा भोजन करने और न करने को समान समझते हैं। वे सन का
बना हुआ कपड़ा, रेशमी वस्त्र, दुपट्टा और मृगछाला, सबको एक सा समझते हैं। ब्राह्मण लोग
वेदाध्ययन और इन्द्रिय-निग्रह करके, बहुत दिनों तक निराहार रहकर, शरीर को सुखा देते हैं।
वे कुपित होकर देवता को अदेवता और जो देवता नहीं हैं उनको देवता बना देते हैं; वे नये
लोकों और लोकपालों की सृष्टि कर सकते हैं। ब्राह्मणों के शाप से ही समुद्र का जल खारा
हो गया है। उनके कोप की आग दण्डकारण्य में आज तक शान्त नहीं हुई। वे देवताओं के
देवता, कारणों के कारण और प्रमाणों के प्रमाण हैं। अतएव ब्राह्मणों का अपमान करना बुद्धि-

मान् का काम नहीं है। बूढ़े और बालक सभी ब्राह्मण सम्मान के योग्य हैं। जो ब्राह्मण तप
और विद्या में श्रेष्ठ होता है वही ब्राह्मणों में सम्मानित होता है। विद्याहीन ब्राह्मण भी
२० पवित्र है, फिर विद्वान् की पवित्रता के विषय में क्या कहना है? सारांश यह कि ब्राह्मण
पढ़े-लिखे हों या मूर्ख, उन्हें श्रेष्ठ देवता-स्वरूप समझे। अग्नि का संस्कार हुआ हो या न हुआ
हो, उसका देवत्व नष्ट नहीं हो सकता। जिस तरह तेजस्वी अग्नि श्मशान में रहने पर भी
दूषित नहीं होता, बल्कि यज्ञ में और घर में विधिपूर्वक काम में लाया जाता है उसी तरह ब्राह्मण
२३ चाहे हमेशा दुष्कर्म भी करता रहे तो भी वह श्रेष्ठ देवता के समान मान्य है।

एक सौ बावन अध्याय

ब्राह्मणों की महिमा के वर्णन में कार्त्तवीर्य की कथा

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, ब्राह्मणों का आदर करने से क्या फल मिलता है?

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, यहाँ पवन और कार्त्तवीर्य का संवाद सुनाता हूँ। हैहय-वंश में उत्पन्न सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य, समुद्र और द्वीपों समेत, सम्पूर्ण पृथिवी का शासन करते थे। माहिष्मतीपुरी में उनकी राजधानी थी। उन्होंने क्षत्रियधर्म के अनुसार बहुत दिनों तक महर्षि दत्तात्रेय की आराधना की थी और उनको बहुत सा धन दिया था। एक दिन कार्त्तवीर्य की भक्ति से प्रसन्न होकर महर्षि ने उनसे तीन वर माँग लेने को कहा। कार्त्तवीर्य ने कहा—भगवन्, यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि जब मैं युद्ध करने के लिए जाऊँ तब मेरे सहस्र बाहु उत्पन्न हो जावें। मैं अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर धर्म के अनुसार उसका शासन करूँ। इसके सिवा मेरी एक प्रार्थना यह है कि यदि मैं सत्यमार्ग से
१० विचलित हो जाऊँ तो सज्जन मुझे उपदेश करें।

यह प्रार्थना सुनकर ब्राह्मणश्रेष्ठ दत्तात्रेय ने 'तथास्तु' कहकर उनको वरदान दिया। तब महावीर कार्त्तवीर्य ने महर्षि के वर के प्रभाव से सारी पृथिवी को जीतकर, सूर्य और अग्नि के समान रथ पर सवार हो, बल के गर्व से गर्वित होकर कहा था कि धैर्य, वीर्य, यश और पराक्रम में मेरे समान कोई नहीं है। यों कहते ही महाराज कार्त्तवीर्य को यह आकाशवाणी सुन पड़ी—रे मूर्ख! ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणों की सहायता बिना क्षत्रिय शासन नहीं कर सकता।

कार्त्तवीर्य ने कहा—मैं प्रसन्न होकर सब प्राणियों की सृष्टि कर सकता हूँ और कुपित होकर सब जीवों का नाश कर सकता हूँ। अतएव ब्राह्मण मुझसे श्रेष्ठ नहीं हैं। ब्राह्मण की श्रेष्ठता बतलाते हुए तुम यह कहते हो कि ब्राह्मण की सहायता बिना क्षत्रिय प्रजा का पालन नहीं कर सकता, किन्तु मेरे मत में क्षत्रिय ब्राह्मण से श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मण अध्ययन और अध्यापन करने तथा यज्ञ कराने के बहाने क्षत्रियों का आश्रय लेकर निर्वाह करते हैं; किन्तु क्षत्रिय कभी ब्राह्मण

का आश्रय नहीं लेता। प्रजा का पालन करना क्षत्रिय का काम है। जब ब्राह्मण क्षत्रिय के आश्रित होकर निर्वाह करते हैं तब वे किस तरह क्षत्रिय से श्रेष्ठ हो सकते हैं? तुमने आकाश से जो कहा है वह झूठ है। अब मैं भीख माँगकर खानेवाले मृगचर्मधारी आत्माभिमानी ब्राह्मणों
को अवश्य पराजित और वशीभूत करूँगा। तीनों लोकों में देवता और मनुष्य कोई भी मेरा राज्य २०
नहीं छीन सकता। अतएव मैं ब्राह्मण से निकृष्ट नहीं हूँ। अब मैं इस ब्राह्मण-प्रधान जगत् को क्षत्रिय-प्रधान बनाऊँगा। युद्ध में मेरा सामना कौन कर सकता है? महावीर कार्त्तवीर्य के ये अहङ्कारपूर्ण वचन सुनकर आकाशवाणी की अधिष्ठात्री देवी सन्न हो गई।

अब आकाश से पवनदेव ने कहा—हे अर्जुन, तुम यह दूषित भाव छोड़कर ब्राह्मणों को प्रणाम करो। उनका बुरा चेतोगे तो तुम्हारे राज्य में अवश्य विप्लव हो जायगा। वे या तो तुमको नष्ट कर देंगे या राज्य से निकाल देंगे।

कार्त्तवीर्य ने पवनदेव से पूछा—महाशय, आप कौन हैं? पवन ने कहा—मैं देवदूत वायु हूँ, तुमको हितोपदेश देने आया हूँ। कार्त्तवीर्य ने कहा—वायु, आपने ब्राह्मणों के प्रति बड़ी
भक्ति दिखलाई। क्या ब्राह्मण अग्नि, सूर्य, आकाश, जल, पृथिवी या आपके समान हैं? २८

एक सौ तिरपन अध्याय

वायु का कार्त्तवीर्य से कश्यप आदि ब्राह्मणों का माहात्म्य कहना

पवन ने कहा—मूर्ख! मैं महात्मा ब्राह्मणों के कुछ गुणों का वर्णन करता हूँ, सुन। तूने अग्नि, सूर्य और आकाश आदि जिनका नाम लिया है उन सबसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। प्राचीन समय में अङ्गराज की स्पर्धा न सह सकने के कारण पृथिवी पृथिवीत्व को त्यागकर चली जा रही थी तब महर्षि कश्यप ने उसे रोक लिया था। महर्षि अङ्गिरा ने पृथिवी का सब जल पी लिया था और फिर उसे जल से पूर्ण कर दिया था। ये महात्मा एक बार मुझ पर क्रुद्ध हो गये थे, तब इनके डर के मारे मैंने पृथिवी छोड़कर अग्निहोत्र में निवास किया था। अहल्या का सतीत्व नष्ट किये जाने से क्रुद्ध हुए महर्षि गौतम ने इन्द्र को शाप दे दिया था; केवल धर्म की रक्षा के लिए उनके प्राण नहीं लिये। समुद्र अगाध जल से पूर्ण होने पर भी ब्राह्मण के शाप से खारा हो गया। अग्नि के समान तेजस्वी रूपवान् शुक्राचार्य, महर्षि अङ्गिरा के शाप से, निस्तेज हो गये। महात्मा कपिलदेव ने कुपित होकर सगर के पुत्रों को समुद्र में भस्म कर डाला। अतएव तुम अपने को ब्राह्मणों के समान न समझकर अपने कल्याण का उपाय सोचो। गर्भ में
स्थित ब्राह्मण को भी योग्य पुरुष प्रणाम करते हैं। महर्षि शुक्राचार्य ने विस्तीर्ण दण्डक राज्य को १०
और महात्मा और्व ने क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न तालजङ्घ को नष्ट कर दिया था। तुमने केवल दत्तात्रेय की कृपा से राज्य, बल, धर्म और शास्त्रज्ञान प्राप्त किया है। तुम देवताओं के हव्यवाहा

भगवान् अग्निदेव की उपासना करते हो। वे भी ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणों को सब प्राणियों का रक्षक और जीवलोक का कर्ता समझकर भी इस प्रकार की मूर्खता करना तुम्हें उचित नहीं।

सबसे पहले ब्रह्माजी ने इस लोक की सृष्टि की है। उन्हीं से पर्वतों, दिशाओं, जल, पृथिवी और आकाश की उत्पत्ति हुई है। अज्ञानी मनुष्य अण्डज शब्द का ठीक अर्थ न जान सकने के कारण ब्रह्माजी को ब्रह्माण्ड से उत्पन्न समझते हैं; किन्तु वास्तव में वे ब्रह्माण्डज नहीं हैं। जब उनका अज नाम है तब ब्रह्माण्ड से उनका जन्म होना सम्भव नहीं। ये अण्ड अर्थात् परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं, इसी से अण्डज कहलाते हैं। उन महात्मा ने सबसे पहले उत्पन्न होकर अहङ्कारात्मक देह का आश्रय करके, सृष्टि की थी। सर्वप्रथम ब्राह्मण वही हैं। अतएव उनसे
१९ समता करना तुम्हें उचित नहीं। पवनदेव के ये वचन सुनकर महाराज कार्तवीर्य चुप हो गये।

एक सौ चौवन अध्याय

वायु का कार्त्तवीर्य से कश्यप और उतथ्य आदि ब्राह्मणों का माहात्म्य कहना

वायु ने कार्त्तवीर्य से फिर कहा—राजन्, प्राचीन समय में अङ्ग नाम के एक राजा ने ब्राह्मणों को यह पृथिवी दक्षिणा में दे देने की इच्छा की थी। यह जानकर पृथिवी को बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा कि मैं ब्रह्मा की कन्या हूँ और सब प्राणियों को धारण करती हूँ; इस राजा ने मुझे ब्राह्मणों को दे देने की इच्छा क्यों की है; अतएव मैं राज्य समेत इस राजा को नष्ट कर दूँगी। अब मैं पृथिवीत्व को त्यागकर ब्रह्मलोक को चली जाऊँगी। यह निश्चय करके पृथिवी ब्रह्मलोक को चली गई। महर्षि कश्यप ने यह देखकर, योग के बल से, अपने शरीर से निकलकर पृथिवी में प्रवेश किया। उनके प्रविष्ट होने पर पृथिवी पहले की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हो गई। तृण और फल-फूल प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होने लगे। भय और अधर्म का नाश हो गया। महर्षि कश्यप तीस हज़ार दिव्य वर्ष तक इस पृथिवी में प्रविष्ट रहे थे। तब पृथिवी ने ब्रह्मलोक से आकर महर्षि कश्यप को



णाम किया। तभी से पृथिवी महर्षि कश्यप की कन्यास्वरूप हुई और उसका नाम काश्यपी ड़ा। हे अर्जुन, महर्षि कश्यप इस प्रकार के महातपस्वी ब्राह्मण हो गये हैं। अब तुम बतलाओ के महर्षि कश्यप से श्रेष्ठ कौन क्षत्रिय है।

कश्यप का यह प्रभाव सुनकर कार्त्तवीर्य कुछ न बोल सके। तब पवनदेव ने फिर कहा—ाजन्, अब अङ्गिरा के पुत्र महर्षि उतथ्य का प्रभाव सुनो। चन्द्रमा के एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या थी। न्द्रमा ने महर्षि उतथ्य को ही उस कन्या के अनुरूप वर समझा। कन्या ने भी उतथ्य को अपने नुरूप देखकर, उन्हीं के साथ अपना विवाह होने की इच्छा से, घोर तप करना आरम्भ किया। कुछ दिनों बाद (चन्द्ररूपी) महर्षि अत्रि ने उतथ्य को बुलाकर वह कन्या दे दी। उन्होंने विधिपूर्वक उससे विवाह कर लिया। जलाधिपति वरुण को पहले से ही इस कन्या के साथ विवाह रने की इच्छा थी। जब वरुण को उस कन्या के पाने की आशा न रह गई तब वे एक दिन, यमुना में स्नान कर रही, उस कन्या को हरकर अपने नगर को ले गये। उनके नगर में छः लाख तालाब हैं। वहाँ सुन्दरी अप्सराएँ और बढ़िया घर हैं। उससे बढ़कर दूसरा कोई नगर नहीं है। जलेश्वर वरुण उस स्त्री को अपने नगर में ले जाकर उसके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे।

इधर देवर्षि नारद ने यह हाल उतथ्य से कह दिया। उतथ्य ने अपनी स्त्री के हर लिये जाने का हाल सुनकर कहा—नारदजी! तुम जाकर वरुण से कहो कि हे जलेश्वर, तुम उतथ्य की स्त्री को क्यों भगा लाये हो? तुम लोकपालक हो, लोकनाशक नहीं। चन्द्रमा ने उतथ्य को यह कन्या दी थी, तुमने उसे क्यों हर लिया? अब तुम शीघ्र उतथ्य को उनकी स्त्री लौटा दो। उतथ्य की आज्ञा मानकर देवर्षि नारद ने जाकर वरुण से कहा—जलेश्वर, तुमने महर्षि उतथ्य की पत्नी क्यों हर ली है? उनकी स्त्री उन्हें दे दो। वरुण ने कहा—नारदजी, तुम उतथ्य से कह दो कि यह सुन्दरी मुझे बहुत प्रिय है; मैं इसे नहीं छोड़ सकता। यह सुनकर देवर्षि नारद ने उदास हो उतथ्य के पास आकर कहा—हे तपोधन, मैंने वरुण से आपका सन्देश कह दिया। उन्होंने गर्दनिया देकर मुझे निकाल दिया है।



वे आपकी स्त्री न देंगे। अब आप जो उचित समझें वह करें। यह सुनकर महर्षि उतथ्य ने

कुपित होकर संसार भर का जल पी लिया। उतथ्य के सारा जल पी लेने और मित्रों के समझाने पर भी वरुण ने उतथ्य को स्त्री नहीं लौटाई।

तब महर्षि उतथ्य ने क्रुद्ध होकर पृथिवी से कहा—"देवी, मुझे वह स्थान दिखलाओ जहाँ छः लाख कुण्ड हैं।" महर्षि उतथ्य के ये वचन सुनते ही समुद्र अपने स्थान से भाग गया। अब महर्षि उतथ्य ने सरस्वती नदी से कहा—"भद्रे, तुम शीघ्र इस स्थान को छोड़कर मरुदेश को चली जाओ। तुम यहाँ से चली जाओगी तो यह स्थान अपवित्र हो जायगा।" आज्ञा पाते ही उसी दम सरस्वती वहाँ से चली गई। इस प्रकार उतथ्य के सम्पूर्ण जल सोख लेने पर वरुण ने डर के मारे, शरण में आकर, उनकी स्त्री उन्हें लौटा दी। अपनी स्त्री को पाकर महर्षि उतथ्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने संसार से जल का कष्ट दूर कर दिया और वरुण को उस विपत्ति से छुड़ा दिया। अब उतथ्य ने वरुण से कहा—हे जलेश्वर, मैंने अपने तपोबल से तुमको पीड़ित करके अपनी स्त्री तुमसे वापस ले ली। अब इसके लिए तुम्हारा रोना-पीटना वृथा है। इसके बाद महर्षि उतथ्य अपनी स्त्री को लेकर अपने स्थान को चले गये। हे अर्जुन, महर्षि उतथ्य
३२ का ऐसा ही प्रभाव था। तुम बतलाओ कि उतथ्य से श्रेष्ठ कौन क्षत्रिय है।

एक सौ पचपन अध्याय

वायु का कार्त्तवीर्य से अगस्त्य और वसिष्ठ आदि महर्षियों के माहात्म्य कहना

भीष्म कहते हैं कि धर्मराज, भगवान् पवनदेव के यों कहने पर जब राजा कार्त्तवीर्य चुप हो रहे तब पवनदेव ने फिर कहा—राजन्, अब मैं महर्षि अगस्त्य का माहात्म्य सुनाता हूँ। प्राचीन समय में दानवों ने देवताओं को परास्त करके उनका यज्ञ, पितरों की स्वधा और मनुष्यों का कर्मकाण्ड लुप्त कर दिया था। इस कारण देवता ऐश्वर्यहीन होकर पृथिवी पर मारे-मारे फिरते थे। एक दिन सूर्य के समान महातेजस्वी महातपस्वी महर्षि अगस्त्य उनको देख पड़े। देवताओं ने महर्षि को प्रणाम किया। कुशल-प्रश्न के बाद देवताओं ने कहा—भगवन्, दानवों ने हमको परास्त करके हमारा ऐश्वर्य छीन लिया है। इस सङ्कट से आप हमें बचाइए। यह सुनकर महातेजस्वी महर्षि अगस्त्य को क्रोध आ गया। वे प्रलयकाल के अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे। महर्षि के उस क्रोधानल के प्रभाव से असंख्य दानव, भस्म होकर, आकाश से पृथिवी पर गिरकर मरने लगे। जो दानव पृथिवी और पाताल में थे वही उस समय जीते
१० बचे। राजा बलि उस समय पाताललोक में अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्य के प्रभाव से स्वर्गस्थित दानवों के भस्म हो जाने पर देवता अपने स्थान को चले गये। महर्षि अगस्त्य का क्रोध भी शान्त हो गया। अब देवताओं ने महर्षि से फिर कहा—भगवन्, आप पृथिवी के असुरों को भी परास्त कीजिए। महर्षि ने उत्तर

दिया—हे देवताओ, मैंने तुम्हारे कहने से स्वर्ग में स्थित दानवों का नाश कर दिया; किन्तु अब और दानवों का नाश मैं न करूँगा; क्योंकि बार-बार दानवों को नष्ट करने से मेरा तपोबल क्षीण हो जायगा।

राजन्, यह मैंने महर्षि अगस्त्य का माहात्म्य तुमसे कहा। उन्होंने अपने तेज से दानवों को भस्म कर दिया था। बतलाओ, क्या कोई क्षत्रिय अगस्त्य से श्रेष्ठ है।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, पवनदेव के ये वचन सुनकर महाबली कार्त्तवीर्य चुप हो गये। तब वायु ने फिर कहा—राजन्, अब मैं महर्षि वसिष्ठ का माहात्म्य कहता हूँ। प्राचीन समय में देवताओं ने मानस-सरोवर के किनारे यज्ञ करना आरम्भ किया था। पर्वताकार खली नामक दानव यह देखकर याज्ञिकों का विनाश करने लगे। यदि कोई दानव उस युद्ध में मर जाता था तो दूसरे दानव उसे मानस-सरोवर में फेंक देते थे। सरोवर में गिराये जाते ही, ब्रह्माजी के वरदान से, उसी दम जीवित होकर—सौ योजन विस्तृत जलराशि को कँपाता हुआ—सरोवर के बाहर निकलकर वह पहाड़ और वृक्ष लेकर देवताओं पर झपटता था। इससे पीड़ित होकर देवता इन्द्र के पास भाग गये। दानवों के डर से भागकर इन्द्र भी महर्षि वसिष्ठ की शरण में २०
गये। महर्षि ने देवताओं को दुःखित देखकर, दया करके, अभयदान दिया और अपने तेज से दानवों को अनायास भस्म कर डाला। महर्षि के तप के प्रभाव से कैलास पर्वत पर स्थित गङ्गाजी उसी समय मानस-सरोवर में आ गईं। इस कारण वह सरोवर फट गया और उससे सरयू नाम की नदी बह निकली। जिस स्थान पर खली नामक दैत्यों का नाश हुआ था वह स्थान खलिन नाम से प्रसिद्ध है।

राजन्, यह मैंने वसिष्ठ का माहात्म्य कहा। उन्होंने, ब्रह्माजी के वरदान से गर्वित, दानवों का विनाश करके इन्द्र आदि देवताओं की रक्षा की थी। बतलाओ, क्या वसिष्ठजी से श्रेष्ठ कोई क्षत्रिय है। २६

एक सौ छप्पन अध्याय

वायु का कार्त्तवीर्य से अत्रि और च्यवन आदि महर्षियों की महिमा का वर्णन करना

भीष्म कहते हैं कि हे धर्मराज, पवनदेव के ये वचन सुनकर कार्त्तवीर्य चुप हो रहे। तब पवनदेव ने फिर कहा—राजन्, अब मैं महर्षि अत्रि का माहात्म्य सुनाता हूँ। प्राचीन समय में दानवों के साथ देवताओं का युद्ध होते समय राहु ने सूर्य और चन्द्रमा को बाणों से वेध डाला था। इस कारण बेहद अँधेरा हो गया। अँधेरा हो जाने पर दानवों ने मौका पाकर देवताओं को बहुत सताया। दानवों की मार से व्याकुल होकर देवता लोग, क्रोधहीन जितेन्द्रिय, महर्षि अत्रि के पास गये। उन्होंने कहा—भगवन्! दानवों के बाणों से सूर्य और चन्द्रमा घायल हो

गये हैं, इस कारण अन्धकार हो जाने से हम लोग भी शत्रुओं द्वारा मारे जा रहे हैं; किसी तरह चैन नहीं मिलता। कृपा करके हमारी रक्षा कीजिए। अत्रि ने पूछा—मैं किस प्रकार तुम्हारी रक्षा करूँ ? देवताओं ने कहा—भगवन् ! आप चन्द्रमा और सूर्य बनकर, अन्धकार को दूर करके, हमारे शत्रुओं का नाश कीजिए।

यह प्रार्थना सुनकर महर्षि अत्रि चन्द्रमा रूप हो गये। फिर उन्होंने अपने तपोबल से चन्द्रमा और सूर्य को प्रकाशित कर दिया, तब संसार भर में उजेला हो गया। इसके बाद भगवान् अत्रि अपने तपोबल से दानवों को भस्म करने लगे। महात्मा अत्रि के तेज से दानवों को भस्म होते देखकर देवता भी अपने शत्रुओं का नाश करने लगे। राजन्, यह मैंने महर्षि अत्रि का माहात्म्य कहा। केवल अग्नि को अपने पास रखनेवाले, चर्माम्बरधारी, फल-मूलभोजी महर्षि अत्रि ने इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा को प्रकाशित करके देवताओं की रक्षा की और दानवों का संहार किया था। बतलाओ, कौन क्षत्रिय महर्षि अत्रि से श्रेष्ठ है।

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, पवनदेव के यों कहने पर महाराज कार्त्तवीर्य चुप हो गये। तब पवनदेव ने फिर कहा—राजन्, अब मैं महर्षि च्यवन का माहात्म्य सुनाता हूँ। प्राचीन समय में महात्मा च्यवन ने अश्विनीकुमारों को सोमपायी बनाने की प्रतिज्ञा करके इन्द्र से कहा—देवराज, तुम अश्विनीकुमारों को देवताओं के साथ सोमरस पिलाओ।

इन्द्र ने कहा—भगवन्, अश्विनीकुमार असम्मानित और देवताओं के त्याज्य हैं इसलिए हम उनके साथ सोमरस नहीं पी सकते। आप ऐसा न कहिए। और जिस काम के लिए आप आज्ञा देंगे उसको मैं करूँगा।

च्यवन ने कहा—देवराज, अश्विनीकुमार सूर्य के पुत्र हैं अतएव वे भी देवता हैं। उनके साथ सोमरस पीने में कुछ हानि नहीं है। मेरी आज्ञा मान लोगे तो अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा और यदि तुम मेरा कहना नहीं मानोगे तो घोर विपत्ति में पड़ोगे।

इन्द्र ने कहा—महर्षि, मैं अश्विनीकुमारों के साथ सोमरस नहीं पी सकता। जिसकी इच्छा हो वह उनके साथ सोमरस पिये।

"देवराज, यदि तुम सीधी तरह मेरा कहना नहीं मानोगे तो मैं यज्ञ में ज़बरदस्ती तुमसे अश्विनीकुमारों के साथ सोमरस पिलाऊँगा।" यह कहकर महर्षि च्यवन ने, अश्विनीकुमारों के हित के लिए, यज्ञ आरम्भ करके मन्त्र के बल से देवताओं को बेक़ाबू कर दिया। महर्षि च्यवन का यह काम देखकर इन्द्र, कुपित होकर, वज्र और भारी पर्वत लेकर उनकी ओर दौड़े। महातपस्वी च्यवन ने इस प्रकार इन्द्र को धावा करते देखकर, जल फेंककर, पर्वत और वज्र समेत उन्हें रोक दिया और मद नामक भीषण पुरुष को उत्पन्न कर दिया। इस पुरुष के दाँत सौ योजन लम्बे और दाढ़ें दो सौ योजन लम्बी थीं। मुँह इतना भारी था कि उसका नीचे का

होठ पृथिवी पर था और ऊपर का होठ आकाश को छू रहा था। जिस तरह समुद्र में तिमि नाम के मत्स्य के मुँह में सब मछलियाँ रहती हैं उसी तरह इन्द्र आदि सब देवता उस पुरुष के मुँह के भीतर आ गये। इस प्रकार विपद्ग्रस्त होने पर सब देवताओं ने इन्द्र से कहा—देवराज, हम लोग अश्विनीकुमारों के साथ बेधड़क सोमरस पियेंगे। आप विरोध न करके महर्षि च्यवन को प्रणाम कीजिए। तब इन्द्र ने महात्मा ३०
च्यवन को प्रणाम किया और उनकी बात मान ली। महर्षि च्यवन ने अश्विनीकुमारों को देवताओं के साथ सोमरस पिलाकर जुआ, शिकार, मद्य और स्त्रियों में उस भीषण आकारवाले पुरुष का निवास निर्दिष्ट कर दिया। इसी कारण जुआ आदि में आसक्त होने पर मनुष्यों को क्लेश उठाना पड़ता है। अतएव मनुष्य इन सबको छोड़ दे। राजन्, यह मैंने महात्मा च्यवन का माहात्म्य तुमसे कहा। ३५
बतलाओ, क्या कोई क्षत्रिय महर्षि च्यवन से श्रेष्ठ है।



एक सौ सत्तावन अध्याय

महर्षियों का माहात्म्य सुनकर कार्त्तवीर्य का ब्राह्मणों से द्वेष छोड़कर उनपर श्रद्धा करना

भीष्म ने कहा कि धर्मराज, पवनदेव के ये वचन सुनकर महाराज कार्त्तवीर्य चुप हो गये। तब पवनदेव ने फिर कहा—राजन्, ब्राह्मणों के और भी श्रेष्ठ कर्मों को सुनो। जिस समय इन्द्र आदि देवता च्यवन के मद नामक पुरुष के मुँह में प्रविष्ट हो गये थे उस समय महर्षि च्यवन ने उनके अधिकृत मर्त्यलोक पर और कप नाम के दानवों ने स्वर्गलोक पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार दोनों लोक छिन जाने पर देवता दुःखित होकर ब्रह्माजी की शरण में जाकर कहने लगे—पितामह, जिस समय हम सब मद के मुँह में पड़ गये थे उस समय कप दानवों ने स्वर्गलोक और महर्षि च्यवन ने हमारा अधिकृत मर्त्यलोक छीन लिया।

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवताओ, तुम ब्राह्मणों की शरण में जाकर उनको प्रसन्न करो। इसी उपाय से तुम्हारा, पहले की तरह, दोनों लोकों पर अधिकार हो जायगा। यह उपदेश

सुनकर देवता ब्राह्मणों की शरण में गये। ब्राह्मणों ने उनसे पूछा—हे देवताओ, किसे परास्त करने के लिए हम यज्ञ करें ? देवताओं ने कहा—आप लोग कप दानवों का संहार करने के लिए यज्ञ कीजिए। तब ब्राह्मणों ने कहा—हम इन दुरात्मा दानवों को मर्त्यलोक में लाकर परास्त कर देंगे।

अब ब्राह्मणों ने कप दानवों का नाश करने के लिए यज्ञ आरम्भ कर दिया। यह हाल सुनकर कप दानवों ने ब्राह्मणों के पास, धनी नाम का, दूत भेजा। वह दूत ब्राह्मणों के पास जाकर बोला—हे ब्राह्मणो, कपगण आप लोगों से किसी बात में कम नहीं हैं। आप लोग उनके विनाश के लिए वृथा यज्ञ कर रहे हैं। वे सब विद्वान्, बुद्धिमान्, याज्ञिक और सत्यव्रत-धारी हैं। लक्ष्मी हमेशा उनके पास रहती है। वे रजस्वला स्त्री का संसर्ग, असमय में सम्भोग, और 'वृथा-मांस' भक्षण नहीं करते। वे प्रतिदिन अग्नि में आहुति देते, गुरुजनों की आज्ञा का पालन करते, बालकों को उनका हिस्सा देते और शुभ कर्म करते रहते हैं। वे गर्भवती स्त्री और बूढ़ों के भोजन कर लेने पर ही भोजन करते हैं, वे प्रातःकाल जलक्रीड़ा और दिन में शयन नहीं करते। इनके सिवा और भी अनेक गुण उनमें हैं। अतएव आप लोग क्यों उनको परास्त करने के लिए उद्यत हैं ? आप लोग यह उद्योग छोड़ दीजिए; इसी में आपका भला है।

ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—हे दूत, देवताओं में और हम लोगों में कोई भेद नहीं है अतएव देवताओं के शत्रु कपों का नाश हम अवश्य करेंगे। तुम जाओ।

यह उत्तर सुनकर दूत कपों के पास जाकर कहने लगा कि महाराज, ब्राह्मण लोग आपके हित का काम नहीं करेंगे। यह सुनकर कपगण कुपित होकर अस्त्र-शस्त्र लेकर ब्राह्मणों को मारने के लिए झपटे। ब्राह्मणों ने ध्वजा फहराते हुए उनको अपनी ओर आते देखकर, उनका संहार करने के लिए, जलती हुई आग फेंकी। वह आग कपों का नाश करके बादलों की तरह आकाश में विचरने लगी। देवताओं ने भी अनेक दानवों का नाश किया; किन्तु उस समय ब्राह्मणों का यह काम देवताओं को नहीं मालूम हुआ था। इसके बाद देवर्षि नारद ने देवताओं के पास जाकर ब्राह्मणों द्वारा कपों के मारे जाने का सब वृत्तान्त उनसे कहा। यह सुनकर देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे ब्राह्मणों की तथा ब्राह्मणों की प्रशंसा करने लगे। देवताओं का बल और तेज फिर पहले की तरह बढ़ गया। वे तीनों लोकों में पूजित हुए।



हे धर्मराज, पवनदेव के ये वचन सुनकर महाराज कार्त्तवीर्य ब्राह्मणों के प्रति भक्तिपरायण होकर कहने लगे—हे पवनदेव, मैं ब्राह्मणों के ही हित के लिए जीवित हूँ। मैं हमेशा ब्राह्मणों को प्रणाम किया करूँगा। महर्षि दत्तात्रेय की कृपा से मुझे बल, यश और श्रेष्ठ धर्म प्राप्त हुआ है। आपने ब्राह्मणों का जो माहात्म्य वर्णन किया उसे मैंने अच्छी तरह सुन लिया।

पवनदेव ने कहा—महाराज, तुम जितेन्द्रिय होकर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार ब्राह्मणों का पालन करो। [तुमने पहले जो ब्राह्मणों की अवज्ञा की है, उसके कारण] तुम्हें भृगुवंशियों से घोर भय उपस्थित होगा। २७

एक सौ अट्ठावन अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण की प्रशंसा करना

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह, आपने किस प्रकार के फल और किस प्रकार की उन्नति की आशा करके ब्राह्मणों की पूजा की है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, ब्राह्मणों की पूजा करने से जो फल मिलता है और जिस प्रकार की उन्नति होती है वह सब तुमको महामति वासुदेव बतलावेंगे। देखो, आज मेरा मन और आँख, कान, वाणी आदि इन्द्रियाँ निर्बल हो गई हैं। ज्ञान भी शिथिल हो गया है। जान पड़ता है कि अब मेरी मृत्यु होने में देर नहीं है। थोड़े ही दिनों में सूर्य उत्तरायण हो जायँगे। अब अधिक बोलने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। मैंने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का सब धर्म तुमको सुना दिया है। जो कुछ बाकी रह गया हो वह तुम वासुदेव से सुनो। वासुदेव के प्रभाव को मैं भली भाँति जानता हूँ। इनका पहले का बल भी मुझे मालूम है। धर्म के विषय में तुम्हें जो कुछ सन्देह हो वह इन्हीं से पूछो। यही उस सन्देह को दूर कर सकेंगे। इन कृष्णचन्द्र ने स्वर्ग और आकाश की सृष्टि की है, इन्हीं की देह से पृथिवी उत्पन्न हुई और इन्हीं ने वराह का रूप धारण करके पृथिवी का उद्धार किया है। इनका निवासस्थान दिशाओं और आकाश के ऊपर है। आकाश, पाताल, चारों दिशाएँ और चारों विदिशाएँ, सारा संसार इन्हीं से उत्पन्न है। इनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ था। उसी कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और उन्होंने घोर अन्धकार को नष्ट किया। यही श्रीकृष्ण सत्ययुग में धर्म-स्वरूप, त्रेतायुग
में ज्ञान-स्वरूप, द्वापर में बल-स्वरूप और कलियुग में अधर्मरूप से उत्पन्न होते हैं। इन्हीं ने १०
दैत्यों का संहार किया है। बलिरूपी महादैत्य यही हैं। इन्हीं वासुदेव से सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं और होंगे। ये संसार के रक्षक हैं। जब धर्म की हानि होती है तब ये मनुष्य-योनि में उत्पन्न होकर धर्म का संस्थापन करके सब लोकों की रक्षा करते हैं। दानवों का संहार करने के लिए ये कार्य और अकार्य का कारण निर्दिष्ट करते हैं, ये उसको कर चुके हैं और करेंगे। जो

दैत्य इनकी शरण में आता है उसका ये नाश नहीं करते। ये सूर्य, चन्द्रमा, राहु और इन्द्र-स्वरूप
हैं। ये वासुदेव विश्वकर्मा, विश्वरूप, विश्वजित और विश्वसंहारक हैं। ये शूलधारी, शरीरवान्
और भीममूर्ति हैं। मनुष्य इनके अद्भुत कर्मों का प्रभाव जानकर इनकी स्तुति करते हैं।
राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा और देवता भी हमेशा इनकी स्तुति करते हैं। यही धन के रक्षक
और विजेता हैं। यज्ञ के समय ऋत्विक् लोग इनकी स्तुति करते हैं। सामवेदी इन्हीं की स्तुति
करते हैं और ब्राह्मण लोग ब्रह्ममन्त्र द्वारा इन्हीं के गुण गाते हैं। यज्ञ में इनके लिए हवि का
भाग लगाया जाता है। गोवर्धन उठाने के समय इन्द्र आदि देवताओं ने इनकी स्तुति की थी।
ये गौ आदि पशुओं के अधिपति हैं। इन्होंने ब्रह्मरूप पुरातन गुहा में प्रवेश करके पृथिवी आदि
महाभूतों का प्रलय देखा है। इन्हीं वासुदेव ने दानवों को परास्त करके पृथिवी का उद्धार किया
था। संसार इन्हीं को अनेक प्रकार के नैवेद्य लगाता और समर में विजय दिलानेवाला कहता
है। पृथिवी, आकाश और स्वर्ग इनके अधीन है। इन्होंने कुम्भ में वीर्य त्यागकर उस वीर्य से
महर्षि वसिष्ठ को उत्पन्न किया है। वायु, घोड़ा, महातेजस्वी सूर्य और आदिदेव यही हैं। इन
२० वासुदेव ने सब असुरों को जीत लिया है और इन्हीं ने पैर से तीनों लोकों को नापा था। देव-
ताओं, पितरों और मनुष्यों के आत्मा तथा याज्ञिक पुरुषों के यज्ञ यही हैं। ये आकाश-मण्डल
में सूर्यरूप से प्रतिदिन उदित होकर समय का विभाग करते हैं। यही वासुदेव दक्षिणायन और
उत्तरायण हैं। इनकी किरणें ऊपर, नीचे और तिरछी चलतीं और पृथिवी पर प्रकाश करती
हैं। वेदविद् ब्राह्मण इनकी आराधना करते हैं। सूर्य इन्हीं के तेज से संसार को प्रकाशित
करते हैं। ये प्रतिमास यज्ञ करते हैं। वेदविद् ब्राह्मण यज्ञ के समय इन्हीं का माहात्म्य पढ़ते
हैं। यही श्रीकृष्ण शीत, उष्ण और वृष्टिरूपी तीन पुट्टियों से युक्त संवत्सरात्मक कालचक्र को
वहन करके सर्दी, गर्मी और वर्षा उत्पन्न करते हैं। ये महातेजस्वी, सर्वगामी और सबसे श्रेष्ठ हैं।
ये अकेले सब लोकों को धारण करते हैं।

हे युधिष्ठिर, अब तुम इन्हीं सृष्टिकर्ता वासुदेव की शरण लो। इन्हीं वासुदेव ने एक बार अग्नि-स्वरूप होकर खाण्डव वन को भस्म किया था। यही सर्पों और राक्षसों को जीतकर अग्नि में सब वस्तुओं की आहुति देते हैं। इन्होंने अर्जुन को सफ़ेद घोड़ा दिया था। घोड़ों के सृष्टिकर्ता यही हैं। सत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण जिसके चक्र हैं; ऊर्ध्व, मध्य और अधः जिसकी गति है; काल, अदृष्ट, इच्छा और सङ्कल्प, ये चार जिसके घोड़े हैं; सफ़ेद, काले और लाल रङ्ग का वह संसार-रथ इन्हीं के अधिकार में है। सम्पूर्ण संसार की सृष्टि और संहार यही करते हैं। इन्हीं से वन और पर्वत उत्पन्न हुए हैं। इन्हीं वासुदेव ने नदी को लाँघकर, वज्र मारने को उद्यत, इन्द्र को परास्त किया था। यही इन्द्रस्वरूप हैं। ब्राह्मण यज्ञस्थल में हज़ारों ऋचाओं द्वारा इन्हीं की स्तुति करते हैं। महर्षि दुर्वासा को घर में ठहराने में इनके

सिवा कोई समर्थ नहीं हुआ। ये पुरातन ऋषि हैं। इन्हीं से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि हुई है। ये वेदज्ञ हैं। ये प्राचीन विधि का उल्लङ्घन नहीं करते। ये वैदिक और लौकिक कर्म के
फल-स्वरूप हैं। यही शुक्र, ज्योति, तीनों लोक, तीनों लोकों के रक्षक, तीन अग्नि और तीन ३०
व्याहृतियाँ हैं। संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिन-रात, कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त्त, लव और क्षण यही हैं। इन्हीं से चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, पर्व, पूर्णिमा, नक्षत्रयोग और सब ऋतुएँ उत्पन्न होती हैं। रुद्र, आदित्य, वसुगण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेवा, साध्यगण, मरुद्गण, प्रजापतिगण, अदिति, दिति और सप्तर्षि के सृष्टिकर्ता यही हैं। ये वायु का रूप धारण करके सब वस्तुओं को गति प्रदान करते, अग्नि का रूप धारण करके भस्म करते, जल का रूप धारण करके सब वस्तुओं को निमग्न करते और ब्रह्मा का रूप धारण करके सबकी सृष्टि करते हैं। ये साक्षात् वेद-स्वरूप होकर भी वेद की विधि का आश्रय लेते हैं। ये विधि-स्वरूप होकर भी धर्म, वेद और बल के विषय की सब विधि जानते और उसका अवलम्बन करते हैं। ये चराचर विश्व-स्वरूप हैं। ये ज्योति-स्वरूप होकर तेज द्वारा प्रकाशित होते हैं। इन्होंने पहले जल की सृष्टि करके उसके बाद संसार की सृष्टि की है। ऋतु, उत्पात, अनेक अद्भुत पदार्थ, बादल, बिजली, ऐरावत और स्थावर-जङ्गम सब प्राणी इन्हीं से उत्पन्न हैं। ये संसार के आधार-स्वरूप हैं। ये निर्गुण और जीव-रूप हैं। ये वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। ये सबको अपने-अपने कर्म में लगाते हैं। इन्होंने पञ्चभूतात्मक विश्व की सृष्टि करने की
इच्छा से पृथिवी आदि पाँच भूत उत्पन्न किये हैं। इन्हीं के प्रभाव से देवता, दानव, मनुष्य, ४०
ऋषि और पितृगण जीवित रहते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान यही हैं। ये प्राणियों का अन्त करनेवाले मृत्यु-रूप हैं। संसार में श्रेष्ठ, पवित्र, शुभ और अशुभ जो कुछ है वह
सब यही हैं। ये अचिन्तनीय हैं, इनके समान या इनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ४६

एक सौ उनसठ अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से दुर्वासा का माहात्म्य कहना

युधिष्ठिर ने कहा—वासुदेव, पितामह तुम्हारा माहात्म्य अच्छी तरह जानते हैं अतएव तुम ब्राह्मणों की पूजा करने का फल मुझे बतलाओ।

वासुदेव ने कहा—धर्मराज! मैं ब्राह्मणों के गुणों का वर्णन विस्तार के साथ करता हूँ, ध्यान देकर सुनिए। एक बार द्वारका में ब्राह्मणों पर क्रुद्ध होकर प्रद्युम्न ने मुझसे पूछा—पिताजी, ब्राह्मण इस लोक और परलोक के ईश्वर क्यों कहलाते हैं और उनकी पूजा करने से क्या फल होता है?

मैंने उनसे कहा—बेटा, ब्राह्मणों की पूजा करने से जो फल होता है उसको मन लगाकर सुनो। धर्म अर्थ और काम के उपयोग, मोक्ष-प्राप्ति के उद्योग, यश और श्री की प्राप्ति, रोगों

की शान्ति और देवताओं तथा पितरों की पूजा के समय ब्राह्मणों को अवश्य सन्तुष्ट करना चाहिए। ब्राह्मण दोनों लोकों में सुख-दुःख के दाता हैं। ब्राह्मणों द्वारा सब प्रकार का कल्याण हो सकता है। उनकी पूजा करने से आयु, कीर्ति, यश और बल की वृद्धि होती है। ब्राह्मण सबके आदि और ब्रह्माण्ड के ईश्वर हैं। इसलिए मैं ईश्वर होने पर भी उनका अनादर नहीं कर सकता। अतएव ब्राह्मणों पर क्रोध करना तुमको उचित नहीं। ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ हैं, उनसे कुछ छिपा नहीं है। वे कुपित होकर सब लोकों को भस्म करके दूसरे लोक और लोकपाल उत्पन्न कर सकते हैं। अतएव परम तेजस्वी ज्ञानवान् महात्मा हमेशा ब्राह्मणों की उपासना करते हैं।

एक बार चीरधारी, बिल्वदण्ड लिये, लम्बी दाढ़ीवाले, कृशाङ्ग, बहुत लम्बे महात्मा दुर्वासा मनुष्यलोक, देवलोक, चौराहों और सभाओं में यह कहते फिरते थे कि मैं दुर्वासा हूँ, वासार्थी होकर मैं अनेक स्थानों में घूम रहा हूँ, अतएव जो कोई मुझे अपने घर में वास देने (ठहराने) की इच्छा करता हो वह बतलावे। किन्तु रत्ती भर भी अपराध होने पर मुझे क्रोध आ जायगा, इसलिए जो मुझे आश्रय देना चाहे उसे हमेशा सावधान रहना होगा। महर्षि दुर्वासा इस प्रकार कहते हुए घूम रहे थे, किन्तु उन्हें अपने घर ठहराने का साहस कोई नहीं करता था। यह देखकर मैंने उन्हे बुलाकर अपने घर में ठहरा लिया। वे महात्मा किसी दिन तो हज़ारों मनुष्यों की भोजन-सामग्री खा लेते थे और किसी दिन बहुत थोड़ा सा खाते थे। किसी दिन घर से बाहर निकल जाते और फिर उस दिन नहीं लौटते थे। वे कभी तो हँसते और कभी रोने लगते थे। एक दिन अपनी कोठरी में घुस गये और शय्या, बिछौना तथा अनेक अलङ्कारों से अलङ्कृत कन्याओं को आग में जलाकर वहाँ से निकले और मुझसे बोले—वासुदेव! मैं इस समय खीर खाना चाहता हूँ, मुझे शीघ्र खिलाओ। मैंने पहले ही उनके मन का भाव समझ लिया था, इसलिए अनेक प्रकार की खाने-पीने की चीज़ें तैयार करवा रक्खी थीं। आज्ञा पाते ही



मैंने गरमा-गरम खीर लाकर उनके सामने रख दी। खीर खाकर उन्होंने मुझसे कहा—वासुदेव, तुम यह जूठी खीर अपने शरीर भर में लपेट लो। मैंने झट वैसा ही कर लिया। मस्तक में और

सब अङ्गों में वह खीर लगा ली। उस समय तुम्हारी माता रुक्मिणी भी वहाँ खड़ी मुसकुरा रही थीं। दुर्वासा ने उनकी ओर देखकर वही खीर उनके शरीर में पोत दी और उनको रथ में जेतकर उस पर सवार होकर, जिस तरह सारथी घोड़ों को चाबुक मारता है उसी तरह महर्षि मेरे सामने कोड़े से रुक्मिणी को पीटते हुए चले। रुक्मिणी की यह दशा देखकर भी मुझे रत्ती
भर दुःख नहीं हुआ। महर्षि को इस प्रकार राजमार्ग से जाते देखकर कुछ यादवों को बड़ा ३०
दुःख हुआ। वे कहने लगे—संसार में ब्राह्मण के सिवा और कोई वर्ण उत्पन्न न हो। ब्राह्मणों का प्रभाव बड़ा अद्भुत है। उनके सिवा दूसरा कौन मनुष्य रुक्मिणी को रथ में जोतकर जीवित बच सकता था? ब्राह्मण साँप के विष से भी तीक्ष्ण हैं। ब्राह्मण-रूपी साँप से पीड़ित मनुष्य की चिकित्सा कोई नहीं कर सकता। इस तरह परम दुर्धर्ष महर्षि दुर्वासा रथ पर सवार होकर राजमार्ग से चले और तुम्हारी माता बार-बार मार्ग में गिरने लगीं; किन्तु इसकी कुछ परवा न करके महर्षि उन पर कोड़े लगाते ही गये। इसके बाद जब रुक्मिणी किसी तरह रथ न खींच सकीं तब महर्षि कुपित होकर रथ से उतर पड़े और उनको बेढङ्गे मार्ग से दक्षिण की ओर ले चले। मैं भी देह भर में खीर लगाये उनके पीछे-पीछे दौड़ता जा रहा था। मैंने कहा—भगवन्, मुझ पर प्रसन्न हूजिए। तब वे महात्मा प्रसन्न होकर मेरी ओर देखकर बोले—वासुदेव, तुमने क्रोध को जीत लिया है। तुम्हारा कोई अपराध मुझे नहीं देख पड़ा। अब मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ और तुमको वर देता हूँ कि जिस तरह देवताओं और मनुष्यों को अन्न प्रिय है उसी
तरह तुम सारे संसार के प्रिय होगे। तुम्हारी पवित्र कीर्ति सब लोकों में फैलेगी। तुम सबसे ४०
श्रेष्ठ और सबके प्रियपात्र होगे। तुम्हारी जितनी वस्तुएँ मैंने जला दीं, या नष्ट कर दी हैं वे सब तुम्हें वैसी ही अथवा उससे भी श्रेष्ठ मिलेंगी। यह जूठी खीर शरीर में लगा लेने से अब तुमको मृत्यु का भय नहीं रहेगा। जब तक तुम जीवित रहना चाहोगे तब तक जी सकोगे। तुमने तलवों में खीर क्यों नहीं लगाई? यह तुम्हारा काम मुझे पसन्द नहीं आया।

महर्षि दुर्वासा के प्रसन्न होकर यों कहने पर मैंने अपने शरीर को साफ़ पाया। इसके बाद महर्षि ने रुक्मिणी से कहा—कल्याणी, तुम स्त्रियों में श्रेष्ठ यश और कीर्ति पाओगी। बुढ़ापा, रोग और नीचता तुम्हारे पास न आवेगी। तुम सुगन्ध लगाकर अपने पति कृष्णचन्द्र की सेवा करोगी और श्रीकृष्ण की सोलह हज़ार स्त्रियों में श्रेष्ठ रहोगी तथा अन्त को इनका सालोक्य प्राप्त करोगी। अग्नि के समान महातेजस्वी महात्मा दुर्वासा तुम्हारी माता से यह कहकर फिर मुझसे कहने लगे—वासुदेव, तुम ब्राह्मणों पर ऐसी ही श्रद्धा रक्खोगे और बड़े सुख से जीवन व्यतीत करोगे।

अब महर्षि दुर्वासा अन्तर्धान हो गये। 'ब्राह्मणों की आज्ञा कभी न टालूँगा' यह
प्रतिज्ञा करके, तुम्हारी माता को साथ लेकर, मैं प्रसन्नता से चुपचाप अपने घर चला आया। ५१

घर में आकर देखा कि महर्षि ने जिन वस्तुओं को जलाकर नष्ट कर दिया था वे सब पहले की तरह अपनी-अपनी जगह पर रक्खी हैं। महर्षि दुर्वासा का यह अद्भुत काम देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं हृदय से ब्राह्मणों का सम्मान करने लगा।

हे धर्मराज, मैंने इस प्रकार महात्मा दुर्वासा का माहात्म्य प्रद्युम्न से कहा था; वही इस समय आपको सुनाया। आप ब्राह्मणों के प्रति भक्ति-परायण होकर उनको गायें और धन देकर उनकी पूजा कीजिए। महात्मा भीष्म ने जो मेरा माहात्म्य आप से कहा है वह सत्य है;
५६ किन्तु मुझे ब्राह्मणों के प्रसाद से ही यह माहात्म्य प्राप्त हुआ है।

एक सौ साठ अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से त्रिपुर-नाशन रुद्र का माहात्म्य कहना

युधिष्ठिर ने कहा—वासुदेव, तुमने महर्षि दुर्वासा की कृपा से जो विज्ञान और महादेवजी का माहात्म्य प्राप्त किया है तथा उनके नाम सुने हैं, उन्हें सुनने को मैं उत्सुक हो रहा हूँ। तुम विस्तार के साथ उसका वर्णन करो।

वासुदेव ने कहा—धर्मराज! मैंने दुर्वासा की कृपा से जो प्राप्त किया है और प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर महादेवजी के जिस माहात्म्य का मैं पाठ करता हूँ वह माहात्म्य, भगवान् भूतपति को हाथ जोड़कर, कहता हूँ। ब्रह्माजी ने बहुत दिन तपस्या करके इस माहात्म्य को प्रकट किया है। भगवान् शङ्कर ने ही स्थावर-जङ्गम प्रजा की सृष्टि की है। उनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। वे इस त्रैलोक्य के आदि-कारण हैं। तीनों लोकों में कोई व्यक्ति उनके सामने नहीं ठहर सकता। ये कुपित होकर रणभूमि में आते हैं तो उनकी गन्ध से ही शत्रु भीत, कम्पित और मोहित होकर या तो भाग जाते या मर जाते हैं। बादल की गरजने का सा उनका घोर सिंहनाद सुनकर रणभूमि में देवताओं का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। ये कुपित होकर—विकट रूप धारण करके—देवताओं, दानवों, गन्धर्वों या सर्पों की ओर देखते
१० हैं तो ये गुफा में छिप रहने पर भी निश्चिन्त नहीं होते। प्रजापति दक्ष ने एक भारी यज्ञ आरम्भ करके भगवान् शङ्कर का भाग नहीं लगाया था। इस कारण कुपित होकर इन्होंने धनुष पर बाण रखकर, सिंहनाद करके, उस यज्ञ का विध्वंस कर डाला। दक्ष का यज्ञ नष्ट होने पर देवताओं के दुःख की सीमा न रही। उस समय महादेवजी की प्रत्यञ्चा के शब्द से सब लोक व्याकुल हो उठे, देवता और दैत्य दुःखी हुए, जल काँपने लगा और पृथिवी हिलने लगी। पहाड़ डगमगाने लगे और आकाश नष्ट हो गया। सूर्य और ग्रह-नक्षत्रों में तेज न रह गया और सब जगह अँधेरा छा गया। ऋषिगण डरकर, संसार के हित के लिए

स्वस्त्ययन पढ़ने लगे। इसके बाद महापराक्रमी रुद्रदेव ने देवताओं की ओर झपटकर भग
देवता की आँखें फोड़ दीं और लात मारकर पूषा के दाँत उखाड़ लिये। रुद्र का यह भीषण
काम देखकर देवता डर के मारे काँपने और उनको प्रणाम करने लगे। इतने पर भी भगवान्
शङ्कर शान्त नहीं हुए। उन्होंने फिर धनुष पर बाण रक्खा। यह देखकर देवता और २०
ऋषि अपने को घोर विपत्ति में पड़ा हुआ समझकर शतरुद्रीय मन्त्र का जप और हाथ
जोड़कर महादेवजी की स्तुति करने लगे। उनको डरा हुआ देखकर भगवान् शङ्कर प्रसन्न
हुए। देवता महादेवजी का शान्त-स्वरूप देखकर उनकी शरण में गये और उन्होंने यज्ञ में उनका
भाग लगा दिया। यह देखकर भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और यज्ञ को फिर यथास्थान
स्थापित करके उसके जो अङ्ग नष्ट हो गये थे उनकी भी पूर्ति उन्होंने कर दी।

प्राचीन समय में दानवों की लोहा, चाँदी और सुवर्ण की तीन पुरियाँ थीं। इन्द्र
अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा उनको नष्ट नहीं कर सके थे। इसके बाद सब देवता मिलकर
महादेवजी की शरण में जाकर कहने लगे—भगवन्, दुर्दान्त दानव हमारे सब कामों में विघ्न
करेंगे अतएव आप कृपा करके उनके तीनों नगरों समेत उनका विनाश करके हमारी रक्षा
कीजिए। यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्कर ने विष्णु को श्रेष्ठ बाण, अग्नि को शल्य,
यम को पुङ्ख, चारों वेदों को धनुष, सावित्री देवी को प्रत्यञ्चा और ब्रह्मा को सारथी बनाकर
तीन पर्वों से युक्त त्रिशूल द्वारा दानवों समेत उनके तीनों नगरों को नष्ट कर दिया। इसके ३०
बाद भगवान् शङ्कर पञ्चशिखायुक्त बालक का रूप धरकर पार्वतीजी की गोद में जा बैठे।
पार्वतीजी ने देवताओं से पूछा कि यह बालक कौन है। इन्द्र ने पार्वतीजी की गोद में बैठे
बालक को देखकर, ईर्ष्या-वश होकर, उसे मारने के लिए वज्र उठाया। तब भगवान् शङ्कर ने
वज्र समेत इन्द्र की, परिघ के समान, भुजा स्तम्भित कर दी। यह देखकर ब्रह्मा आदि देवता
चकित हो गये। इसके बाद प्रजापति ब्रह्मा ने योग-बल से उस बालक को पहचाना कि
ये भगवान् शङ्कर हैं। तब देवता लोग महादेव-पार्वती को प्रसन्न करने लगे। अब इन्द्र की
भुजा पहले की सी हो गई। भगवान् शङ्कर ने, महातेजस्वी दुर्वासा का रूप धारण करके, कुछ
दिनों तक द्वारका में मेरे यहाँ रहकर बहुत उपद्रव किया था। किन्तु मैंने निर्विकार चित्त से
उनके सब उपद्रवों को सह लिया था। वे रुद्र, शिव, अग्नि, सर्व, सर्वजित्, इन्द्र, वायु, अश्विनी-
कुमार, विद्युत्, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, ईशान, काल, अन्तक, मृत्यु, भव, दिन, रात, मास, पक्ष, ऋतु,
सायंकाल, प्रातःकाल, संवत्सर, धाता, विधाता, विश्वकर्मा, सर्वज्ञ, ग्रह, नक्षत्र, दिशा, विदिशा,
विश्वमूर्ति और अमेयात्मा हैं। वे कभी एक, कभी दो, कभी हज़ारों, कभी लाखों और कभी
इनसे भी अधिक हो जाते हैं। सौ वर्ष में भी कोई उनके गुणों का वर्णन नहीं कर सकता। ४४

एक सौ इकसठ अध्याय

रुद्र का माहात्म्य

वासुदेव ने कहा—धर्मराज, मैं बहुरूपी और बहुनामधारी महात्मा रुद्रदेव का और माहात्म्य बतलाता हूँ। महर्षिगण देवदेव महादेव को अग्नि, स्थाणु, महेश्वर, एकाक्ष, त्र्यम्बक, विश्वरूप और शिव कहते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मणों ने बतलाया है कि महादेवजी की मूर्ति दो प्रकार की है—एक मूर्ति अत्यन्त भयानक और दूसरी मङ्गलमय है। इन दोनों मूर्तियों से अनेक प्रकार की मूर्तियाँ विभक्त होती हैं। उनमें भयानक मूर्ति अग्नि, विद्युत् और भास्कर तथा सौम्य मूर्ति धर्म, जल और चन्द्रमा हैं। महर्षियों ने उनके शरीर के आधे भाग को अग्नि और आधे को चन्द्रमा बतलाया है। उनकी सौम्य मूर्ति ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान और उग्र मूर्ति संसार का संहार करती है। महत्त्व और ईश्वरत्व होने के कारण उनका नाम महेश्वर है। वे तीक्ष्ण, उग्र, प्रबल प्रतापी, संसार का संहार करनेवाले, रक्त मज्जा और मांस के भक्षक हैं; इसी से उनका नाम रुद्र है। वे देवताओं में महान् हैं, उनकी महती महिमा है और वे महान् विश्व के रक्षक हैं, इसलिए उनका नाम महादेव है। वे धूम्र-रूपी हैं, इसलिए उनका नाम धूर्जटि है। मनुष्यों के कल्याण के लिए वे हमेशा अनेक कर्मों द्वारा उनकी उन्नति करते हैं इसी से उनका नाम शिव है। वे स्थिर, स्थिरलिङ्ग और ऊपर स्थित रहकर प्राणियों का नाश करते हैं इसलिए उनका नाम स्थाणु है। वे स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों के अनेक रूप धारण करते हैं इसलिए उनका नाम बहुरूप है और विश्वेदेवा उनके शरीर में निवास करते हैं इस कारण उनका नाम विश्वरूप है। वे कभी सहस्राक्ष और कभी अयुताक्ष होते हैं। कभी उनके शरीर भर में नेत्र हो जाते हैं। वे पशुओं के अधिपति होकर हमेशा उनका पालन और उनके साथ विहार करते हैं इसी से उनका नाम पशुपति है। उनका लिङ्ग हमेशा ब्रह्मचर्य से रहता है इसी से उनके लिङ्ग की पूजा होती है। लिङ्ग की पूजा से वे बड़े प्रसन्न होते हैं। यदि एक मनुष्य उनकी मूर्ति की पूजा करे और दूसरा उनके लिङ्ग की, तो लिङ्ग की पूजा करनेवाले का ही अधिक कल्याण होगा। ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सरागण उनके लिङ्ग की पूजा करते हैं। महादेवजी लिङ्ग की पूजा करनेवाले पर प्रसन्न होकर उसे परम सुख देते हैं। श्मशान उनका निवासस्थान है। जो मनुष्य श्मशान में उनकी पूजा करता है उसे अन्त को वीरलोक प्राप्त होता है। शङ्करजी सब प्राणियों की मृत्यु और उनके शरीर में स्थित प्राण तथा अपान वायु-स्वरूप हैं। ब्राह्मण उनकी अनेक प्रकार की भीषण मूर्तियों की पूजा करते हैं। कर्म, महत्त्व और चरित्र के कारण वेद में उनके अनेक प्रकार के नाम बतलाये गये हैं। ब्राह्मण लोग वेदोक्त और व्यासोक्त उनके शतरुद्रीय का पाठ करते हैं। वही सब लोकों को अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं। ब्राह्मण और महर्षिगण उनको विश्वरूप, महत् और सर्वज्येष्ठ कहते हैं। वे देवताओं के आदि

हैं। उनके मुँह से अग्नि की उत्पत्ति हुई है। वे शरण में आये हुए को कभी नहीं त्यागते। वे मनुष्यों को आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और अनेक अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं और फिर वही उन सबका विनाश करते हैं। इन्द्र आदि देवताओं में जो ऐश्वर्य है वह सब उन्हीं का है। तीनों लोकों के शुभाशुभ कर्मों में वे व्याप्त रहते हैं। सब भोग्य वस्तुओं पर उनका प्रभुत्व है इसी से उनका नाम ईश्वर और सब महान् विषयों के ईश्वर होने से उनका नाम महेश्वर है। वे अपने अनेक रूपों द्वारा संसार में व्याप्त रहते हैं। समुद्र में स्थित बडवामुख उनका मुख है। २६

एक सौ बासठ अध्याय

भीष्म का धर्म के प्रमाण बतलाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के कह चुकने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म से फिर पूछा—पितामह! धर्म के विषय में सन्देह होने पर प्रत्यक्ष और आगम, इन दोनों में से किसको प्रमाण मानना चाहिए?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, मुझे तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं जान पड़ता। यदि तुमको सन्देह है तो मैं उसे दूर किये देता हूँ। प्रत्यक्ष और आगम दोनों प्रमाणों में सन्देह हो सकता है; किन्तु उस सन्देह को हटाना बहुत कठिन है। ज्ञान के अभिमानी हेतुवादी (तार्किक) मनुष्य प्रत्यक्ष कारण को देखकर अप्रत्यक्ष विषय का असद्भाव मानते अथवा उसके अस्तित्व के विषय में सन्देह करते हैं। उन पण्डिताभिमानी अल्पबुद्धि मनुष्यों का इस प्रकार का सिद्धान्त युक्ति-सङ्गत नहीं है। जब यह सिद्धान्त भ्रममूलक है तब आगम को ही प्रमाण मानना चाहिए। यदि कहो कि जगत् का कारण केवल ब्रह्म कैसे हो सकता है तो आलस्य छोड़कर बहुत दिनों तक योग का अभ्यास करके इस विषय का प्रत्यक्ष प्रमाण पा सकते हो। इसके सिवा प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने का दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए हेतुवाद को छोड़कर सब लोकों के ज्योतिः-स्वरूप आगम का अवलम्बन करने से ही श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। हेतुवाद बिलकुल निर्मूल और अग्राह्य है। उसका कभी प्रमाण नहीं माना जा सकता।

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! प्रत्यक्ष, आगम और शिष्टाचार, इन तीनों में कौन श्रेष्ठ है? १०

भीष्म ने कहा—धर्मराज, बलवानों की दुष्टता से धर्म का ह्रास हो जाता है। यद्यपि उद्योग करने पर धर्म की रक्षा हो जाती है किन्तु समय आने पर धर्म-विप्लव अवश्य होता है। जिस तरह घास-फूस द्वारा कुआँ ढक जाता है उसी तरह अधर्म की वृद्धि से धर्म दब जाता है। उस समय दुष्ट लोग शिष्टाचार को नष्ट कर देने का उद्योग करते हैं। अतएव ऐसे समय में धर्म के विषय में सन्देह होने पर उन दुश्चरित्र, वेद-विरोधी, धर्म-विद्वेषी नीच मनुष्यों की बातें प्रामाणिक और ग्राह्य नहीं होतीं। जो पुरुष वेद के अनुयायी, सन्तुष्ट और उन नीच मनुष्यों के

विरोधी हैं तथा अर्थ, काम, लोभ और मोह के वशीभूत नहीं हैं, उन धर्मात्मा महात्माओं के पास जाकर धर्म का विषय पूछना चाहिए। ऐसे महात्माओं के चरित्र कभी भ्रष्ट नहीं होते। वे वेद का अध्ययन तथा यज्ञ का अनुष्ठान करना कभी नहीं छोड़ते। सारांश यह कि प्रत्यक्ष, वेद और शिष्टाचार, तीनों को प्रमाण मानना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! मेरी बुद्धि संशयरूपी अथाह समुद्र में डूब रही है। उसका पार कहीं नहीं सूझ पड़ता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि यदि वेद, प्रत्यक्ष और शिष्टाचार, तीनों ही धर्म के प्रमाण हैं तो धर्म भी तीन प्रकार का मानना पड़ेगा।

भीष्म ने कहा—धर्मराज, धर्म केवल एक है। ये तीन तो उसके प्रमाण हैं। ये तीनों प्रमाण अलग-अलग धर्म का प्रतिपादन नहीं करते, ये सब मिलकर धर्म के विषय पर विचार करते हैं। ये तीनों जिस धर्म के प्रमाण हैं वह धर्म मैं तुमको बतला चुका हूँ। धर्म के विषय में सन्देह होने पर अब तुम किसी से कुछ न पूछना। इन तीनों प्रमाणों के अनुसार अपना सन्देह दूर कर लेना। मेरी बात में रत्ती भर भी सन्देह न करो। अन्धे और जड़ मनुष्य की तरह सन्देहहीन होकर इसी के अनुसार काम करो। अहिंसा, सत्य, अक्रोध और दान, यही चार सनातन धर्म हैं। तुम इन्हीं का पालन करो। तुम्हारे पिता और पितामह आदि पूर्व-पुरुष ब्राह्मणों के साथ जिस प्रकार का बर्ताव कर गये हैं उसी तरह तुम भी ब्राह्मणों का सम्मान किया करो। जो मनुष्य प्रमाण को अप्रमाण कहता है वह निरा मूर्ख है, उसकी बात न माननी चाहिए। इस प्रकार के मनुष्य शोचनीय हैं। अतएव ब्राह्मणों का सम्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है। ब्राह्मण ही श्रेष्ठ धर्म का उपदेश देते हैं। वे तीनों लोकों को धारण करते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, जो मनुष्य धर्म से द्वेष रखता है और जो धर्म के प्रति अनुराग करता है उन दोनों प्रकार के मनुष्यों में किसे किस तरह की गति मिलती है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज, धर्मद्वेषी पुरुष रजोगुण और तमोगुण से आच्छन्न होकर नरक को जाते हैं। और, जो हमेशा धर्म में अनुरक्त रहते हैं वे सत्य और सरलता से युक्त सज्जन स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं। वे हमेशा आचार्यों की सेवा करते और धर्म को ही एकमात्र गति समझते हैं। मनुष्य हो चाहे देवता, जो शारीरिक कष्ट सहकर धर्म उपार्जन करता है उस लोभ-मोह-शून्य महात्मा को निस्सन्देह सुख प्राप्त होता है। ब्रह्माजी के ज्येष्ठ पुत्र ब्राह्मण ही धर्म-स्वरूप हैं। धार्मिक पुरुष एकाग्रचित्त होकर उन्हीं की उपासना करते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, सज्जन और दुर्जन के क्या लक्षण हैं और इन दोनों के कार्य किस प्रकार के हैं?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! दुर्जन मनुष्य दुराचारी और दुर्मुख तथा सज्जन सुशील और सदाचारी होते हैं। सज्जन राजमार्ग, गायों के रहने के स्थान और अन्न में मल-मूत्र नहीं

त्यागते। वे देवता, पितर, भूत (प्राणी), अतिथि और कुटुम्ब को भोजन देकर भोजन करते हैं;
भोजन करते समय बातें नहीं करते और सोते समय हाथ गीले नहीं रखते। वे सूर्य, वृष, देवता,
गोशाला, चौराहा, धार्मिक ब्राह्मण और चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा करते हैं; बोझा लादे हुए, बूढ़े,
स्त्री, गाँव के मुखिया, गाय, ब्राह्मण और राजा को मार्ग देते तथा अतिथि, पोष्यवर्ग, सज्जन
और शरणागत की रक्षा करते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल भोजन करने का समय है।
उस समय भोजन न करने से उपवास होता है। होम करते समय जिस तरह आग घी के ४०
पात्र की ओर लपकती है उसी तरह स्त्रियाँ, ऋतुकाल आने पर, पुरुष के संसर्ग की इच्छा
करती हैं। अतएव ऋतुकाल में स्त्री-प्रसङ्ग अवश्य करना चाहिए। ऋतुकाल के सिवा अन्य
समय में सम्भोग से बचे रहने से ब्रह्मचर्य का फल मिलता है। सच बोलना, गाय और ब्राह्मण,
ये तीनों एक समान हैं। अतएव गो-ब्राह्मण की पूजा अवश्य करनी चाहिए। यजुर्वेद
की विधि के अनुसार जिस मांस का संस्कार किया जाय उस मांस के खाने में कोई दोष
नहीं है। निषिद्ध मांस और 'वृथा मांस' भक्षण करना पुत्र का मांस खाने के समान है।
देश में हो या विदेश में, अतिथि को भूखा न रक्खे। अध्यापक को प्रणाम करके आसन देना
और पढ़ चुकने पर उनकी प्रदक्षिणा करना शिष्य का कर्तव्य है। अध्यापक का सम्मान करने
से देह पुष्ट होती और आयु तथा तेज की वृद्धि होती है। न तो बूढ़े मनुष्यों का अपमान
करे और न उनको दूर देश में भेजे। उनके खड़े रहने पर बैठ जाना अनुचित है। ऐसा करने
से आयु क्षीण हो जाती है। नङ्गी स्त्री और नङ्गे पुरुष को न देखे। सम्भोग और भोजन गुप्त
स्थान में करे। गुरुजनों की अपेक्षा पवित्र तीर्थ, हृदय से बढ़कर पवित्र वस्तु, ज्ञान से बढ़कर श्रेष्ठ
अन्वेषण का विषय और सन्तोष की अपेक्षा श्रेष्ठ सुख नहीं है। बड़े-बूढ़ों के वचन अवश्य सुने।
बड़ों की सेवा करने से श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होता है। वेद पढ़ने और भोजन करने के समय दाहिना
हाथ उठाना चाहिए। सदा मन, वाणी और इन्द्रिय का संयम करे। खीर यवागू कृसर ५०
और हवि के द्वारा देवताओं और पितरों के उद्देश से अष्टका-श्राद्ध, ग्रहों की पूजा और क्षौरकर्म में
मङ्गलाचरण करना, छींकनेवाले को आशीर्वाद देना और रोगी से 'दीर्घायु हो' कहना चाहिए।
श्रेष्ठ पुरुष विपत्ति में पड़े हों तो भी उन्हें 'तुम' न कहे। विद्वानों के लिए 'तुम' शब्द (= अनादर) मृत्यु
के समान है। अपनी बराबरीवाले, अपने से छोटे और शिष्यों को 'तुम' कहना अनुचित नहीं है।
पापियों के हृदय में हमेशा पाप का उदय होता है। पापी मनुष्य जानबूझकर पाप करता और
सज्जनों के सामने उसे छिपाकर स्वयं नष्ट हो जाता है। दुर्जन यह समझकर अपने पाप को गुप्त
रखने का उद्योग करता है कि 'मैं जो कुकर्म करता हूँ उसे देवता या मनुष्य कोई नहीं जान
सकता;' किन्तु यह काम अच्छा नहीं है। पाप को छिपा रखने से उसकी वृद्धि होती है।
अतएव पाप करके उसे गुप्त न रखकर सज्जनों के सामने कह देना चाहिए। सज्जनों के सामने

अपना पाप प्रकट कर देने से वे किसी न किसी उपाय से उस पाप को शान्त करने का विधान करते हैं। जिस तरह नमक पर पानी छोड़ देने से वह गल जाता है उसी तरह प्रायश्चित्त करने से पाप का नाश हो जाता है। अधिक धर्म प्राप्त करने के लिए थोड़ा सा पाप करना अनुचित नहीं है। आशा करके द्रव्य का सञ्चय करने से या तो समय आने पर वह नष्ट हो जाता है या
६० सञ्चयकर्ता के मर जाने से दूसरे लोग उसका भोग करते हैं। पण्डितों का कहना है कि धर्म का पालन सबको करना चाहिए। अकेले धर्म का उपार्जन करना तो उचित है, पर धर्मध्वजी होना उचित नहीं। जो मनुष्य फल पाने की इच्छा से धर्म करता है उसे धर्म का व्यवसायी समझना चाहिए। गर्व छोड़कर देवताओं की पूजा, कपट छोड़कर गुरुजनों की
६३ सेवा और सत्पात्र को दान करके परलोक का हितसाधन अवश्य करे।

एक सौ तिरसठ अध्याय

भीष्म का शुभ कर्मों को धन आदि की प्राप्ति का कारण बतलाना

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, भाग्यहीन मनुष्य बलवान् होने पर भी धन नहीं प्राप्त कर सकता और जो भाग्यवान् है वह बालक या दुर्बल होने पर भी धनवान् हो जाता है। धन की प्राप्ति का समय न होने से, यत्न करने पर भी, धन नहीं मिलता; किन्तु जब प्राप्ति का समय आ जाता है तब बिना किसी उद्योग के ही बहुत सा धन मिल जाता है। बहुत लोग अनेक यत्न करने पर थोड़ा सा भी धन नहीं पा सकते और बहुत लोग आसानी से बड़े धनवान् हो जाते हैं। यदि उद्योग करने से धन-प्राप्ति सम्भव होती तो किसी को कुछ दुर्लभ न होता। जब मनुष्य का प्रयत्न भी निष्फल हो जाता है तब स्पष्ट है कि जिसके भाग्य में धन नहीं है वह किसी उपाय से धन नहीं प्राप्त कर सकता। लालच का मारा कोई मनुष्य, बहुत आय होने पर भी, धन की वृद्धि करने का उद्योग करके दुःख भोगता है और कोई मनुष्य धन पैदा करने का कुछ उद्योग न करने पर भी बड़े सुख से रहता है। कोई-कोई निर्धन मनुष्य दुष्कर्म करते रहने पर भी धनवान् और कोई धनाढ्य मनुष्य सुकर्म करने पर भी निर्धन हो जाते हैं। कोई मनुष्य नीतिशास्त्र पढ़कर भी नीतिज्ञ नहीं होते और कोई नीति से अनभिज्ञ होने पर भी मन्त्री के पद पर पहुँच जाते हैं। कहीं तो विद्वान् और मूर्ख दोनों धनवान् और कहीं दोनों निर्धन देखे जाते हैं। यदि विद्या पढ़कर मनुष्य सुखी हो सकता तो कोई विद्वान्, जीविका के लिए, मूर्खों का आश्रय न लेता। जिस तरह पानी पीने से प्यास बुझ जाती है उसी तरह यदि विद्या के बल से मनुष्यों के अभीष्ट कार्य सिद्ध होते तो विद्या का उपार्जन करने में कोई लापरवाही न करता। आयु हो तो सैकड़ों बाण लगने से भी मृत्यु

नहीं होती किन्तु समय आ जाने पर तिनका लग जाने से भी प्राण निकल जाते हैं। [अतएव
अपने कल्याण के लिए मनुष्य को क्या करना चाहिए ?] १०
भीष्म ने कहा—धर्मराज, जो मनुष्य बहुत उद्योग करने पर भी धन न प्राप्त कर सके
उसे तपस्या करनी चाहिए। बीज बोये बिना कोई मनुष्य फल नहीं पा सकता। पण्डितों ने
कहा है कि मनुष्य दान करने से सुख-भोगी, वृद्धों की सेवा करने से मेधावी और हिंसा न करने
से दीर्घायु होता है। अतएव मनुष्य प्रियवादी, सबका हितैषी, विशुद्ध-स्वभाव, शान्त, दानी
और हिंसाहीन होकर धार्मिक पुरुषों का आदर करे तथा किसी से कभी कुछ न माँगे।
डाँस, कीड़े और चींटी आदि क्षुद्र जीव भी अपने-अपने कर्म के अनुसार उन योनियों में जन्म
लेकर सुख-दुःख भोगते हैं। हे युधिष्ठिर, सब प्राणियों को कर्म के अधीन समझकर
तुम अपने चित्त को शान्त करो। १४

एक सौ चौंसठ अध्याय

शुभ और अशुभ कर्मों को सुख-दुःख के कारण बतलाना

भीष्म कहते हैं—धर्मराज, जो मनुष्य स्वयं शुभ कर्म करे और दूसरों से भी करावे
वही धर्म का अधिकारी हो सकता है और जो मनुष्य स्वयं दुष्कर्मा होकर दूसरों को भी वैसा
करने का उपदेश दे उसे धर्म की आशा न करनी चाहिए। काल ही दण्ड देता और अनुग्रह
करता है। काल ही प्राणियों की बुद्धि में प्रविष्ट होकर उन्हें धर्म-अधर्म में लगाता है।
मनुष्य जब धर्म के फल को प्रत्यक्ष देखकर धर्म को ही कल्याण का कारण समझ लेता है तभी
उसे धर्म में विश्वास होता है। जिसकी बुद्धि दृढ़ नहीं है वह धर्म के फल में विश्वास नहीं
करता। धर्म पर विश्वास होना ही बुद्धिमान् का लक्षण है। अतएव कर्तव्य का जानकार
बुद्धिमान् मनुष्य समय के अनुसार धर्म का पालन करे। ऐश्वर्यवान् धार्मिक पुरुष यह
सोचकर कि 'रजोगुणी होकर संसार में फिर जन्म लेना न पड़े' बुद्धि द्वारा आत्मा की उन्नति
करते हैं। काल कभी धर्म को अधर्म का और दुःख का कारण नहीं कर सकता। अतएव
धर्मात्मा पुरुष के आत्मा को विशुद्ध समझना चाहिए। प्रज्वलित अग्नि के समान प्रदीप्त,
काल द्वारा सुरक्षित, धर्म को अधर्म छू भी नहीं सकता। धर्म के प्रभाव से ही मनुष्य
विशुद्ध-चित्त और निष्पाप होता है तथा धर्म ही विजय देनेवाला और तीनों लोकों का प्रकाशक
है। कोई किसी को बलपूर्वक धर्म में नहीं लगा सकता। पण्डितों के उपदेश से और लोक-लाज
के मारे अधर्मी मनुष्य कपट-धर्म करता है। शूद्रकुल में उत्पन्न सज्जन कहता है कि 'मैं शूद्र
हूँ, किसी आश्रम-धर्म में मेरा अधिकार नहीं है' और निष्कपट भाव से अपने धर्म का पालन
करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों वर्णों का शरीर पञ्चभूतों से बना है; किन्तु १०

शास्त्र में चारों वर्णों का धर्म अलग-अलग बतलाया गया है। अपने-अपने धर्म का पालन करने से चारों वर्ण अन्त को एक हो जाते हैं। यदि कहो कि धर्म तो नित्य पदार्थ है, फिर उसका फल स्वर्ग आदि अनित्य क्यों मिलता है, इसका उत्तर यह है कि धर्म दो प्रकार का है—सकाम और निष्काम। सकाम धर्म अनित्य है, इसलिए उसका फल भी अनित्य है। निष्काम धर्म नित्य है अतएव उसका फल नित्य है। सब मनुष्यों का शरीर और आत्मा एक प्रकार का है; किन्तु पूर्व-जन्म के पुण्य से किसी-किसी के हृदय में धर्मयुक्त सङ्कल्प उदित होकर गुरु की तरह उसे शुभ कर्मों में लगाता है। सारांश यह कि पूर्व-जन्म के कर्म ही सुख-दुःख के कारण हैं,
१५ इसलिए पशु-पक्षी आदि प्राणियों का सुख-दुःख भोगना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

एक सौ पैंसठ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर से धर्म की प्रशंसा करना तथा देवता, महर्षि, पर्वत और नदी आदि के नाम बतलाकर उनका स्मरण करने से धर्म की प्राप्ति बतलाना

वैशम्पायन कहते हैं कि शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म से युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! मनुष्य का कल्याण क्या है, किन कर्मों के करने से मनुष्य को सुख मिलता है और किस प्रकार के कर्म करने से उसका पाप नष्ट होता है?

भीष्म ने कहा—धर्मराज! मैं देवताओं और ऋषियों [नदियों और पर्वतों] के नाम तुम्हें सुनाता हूँ। तीनों सन्ध्याओं में इनका पाठ करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर इन नामों का पाठ करता है उसका जानबूझकर या भ्रम से—इन्द्रियों द्वारा दिन, रात और सन्ध्याओं के समय में—किया हुआ सब पाप दूर हो जाता है। जो मनुष्य भक्ति के साथ इन नामों का पाठ करता है वह कभी अन्धा या बहरा नहीं होता और उसका सदा कल्याण होता है। वह कभी सङ्कर वर्ण, तिर्यग्योनि और नरक में नहीं जाता। उसका दुःख और भय नष्ट हो जाता है। वह मृत्यु के समय भी सावधान रहता है। अब मैं उन नामों का वर्णन करता हूँ। सर्वभूत-नमस्कृत देव-दानवों के गुरु भगवान् ब्रह्मा, ब्रह्मपत्नी सावित्री, वेदों के उत्पादक लोककर्ता विष्णु, विरूपाक्ष उमापति महादेव, सेनापति कार्त्तिकेय,
१० विशाख, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, शचीपति इन्द्र, यम और उनकी पत्नी धूमोर्णा, वरुण और उनकी स्त्री, गौरी, कुबेर और उनकी स्त्री ऋद्धि, सुशीला सुरभी, महर्षि विश्रवा, सङ्कल्प, सागर, गङ्गा, मरुद्गण, तपःसिद्ध वालखिल्यगण, वेदव्यास, नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्रसेन, देवदूत, उर्वशी, मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, विश्वाची, घृताची, पञ्चचूडा, तिलोत्तमा, बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, पितृगण, अश्विनीकुमार, धर्म, वेदाध्ययन, तपस्या, दीक्षा, व्यवसाय, पितामह, दिन-रात, मरीचितनय कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, बुध, राहु, शनैश्चर, नक्षत्र,

ऋतु, मास, पक्ष, संवत्सर, गरुड़, समुद्र, कद्रू के पुत्र सर्पगण, शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा, सरस्वती,
सिन्धु, देविका, प्रभास, पुष्कर, गङ्गा, वेणा, कावेरी, नर्मदा, कुलम्पुना, विशल्या, करतोया, २०
सरयू, गण्डकी, महानद, लोहित, ताम्रा, अरुणा, वेत्रवती, पर्णाशा, गौतमी, गोदावरी, वेण्या,
कृष्णवेणा, अद्रिजा, दृषद्वती, चक्षु, मन्दाकिनी, प्रयाग, प्रभास, नैमिष (विश्वेश्वर-स्थान), विमल
सरोवर, पवित्र तीर्थों से युक्त कुरुक्षेत्र, उत्तम (क्षीर) समुद्र, तपस्या, दान, जम्बूमार्ग, हिरण्वती,
वितस्ता, प्लक्षवती, वेदस्मृति, वेदवती, मालवा, अश्ववती, गङ्गाद्वार, ऋषिकुल्या, चर्मण्वती,
कौशिकी, यमुना, भीमरथी, बाहुदा, माहेन्द्रवाणी, त्रिदिवा, नीलिका, सरस्वती, नन्दा, अपरनन्दा,
महाह्रद, गया, फल्गु, देवताओं से युक्त धर्मारण्य, देवनदी, तीनों लोकों में प्रसिद्ध सब पापों का
विनाश करनेवाला मानस सरोवर, दिव्य ओषधियों से युक्त हिमालय, विचित्र धातुओं और ओष- ३०
धियों से युक्त विन्ध्य पर्वत, सुमेरु, महेन्द्र, मलय, रजतपूर्ण श्वेत शृङ्गवान् मन्दर, नील, निषध,
दर्दुर, चित्रकूट, अञ्जनाभ, गन्धमादन, सोमगिरि, दिशा-विदिशा, पृथिवी, वृक्ष, विश्वेदेवा, आकाश,
नक्षत्र और ग्रहगण का नाम लेना मनुष्य का अवश्य कर्त्तव्य है। मैंने इस समय जिनके नाम
लिये हैं और जिनके नाम बाकी रह गये हैं वे सब देवता मेरी रक्षा करें। जो मनुष्य देवताओं के
इन नामों का पाठ करेगा वह सब पापों से और भय से छुटकारा पा जायगा।

अब सब पापों के विनाशक तपःसिद्ध महर्षियों के नाम सुनो। महर्षि यवक्रीत, रैभ्य,
कक्षीवान्, औशिज, भृगु, अङ्गिरा, कण्व, मेधातिथि और वर्हि पूर्व दिशा में, महर्षि उन्मुचु, प्रमुचु,
मुमुचु, स्वस्त्यात्रेय, मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य, दृढायु और ऊर्ध्वबाहु दक्षिण दिशा में; रुषङ्गु और ४०
उनके सहोदरगण, परिव्याध, दीर्घतमा, गौतम, काश्यप, एकत, द्वित, त्रित, दुर्वासा और सारस्वत
पश्चिम दिशा में तथा अत्रि, वसिष्ठ, शक्ति, वेदव्यास, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, परशुराम,
उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु, कोहल, विपुल, देवल, देवशर्मा, धौम्य, हस्तिकाश्यप, लोमश, नाचि-
केत, लोमहर्षण, उग्रश्रवा और भृगु के पुत्र च्यवन उत्तर दिशा में निवास करते हैं। यह मैंने
वेदवेत्ता सर्वपाप-विनाशक महर्षियों के नाम तुमसे कहे।

अब राजर्षियों के नाम सुनाता हूँ। महाराज नृग, ययाति, नहुष, यदु, पुरु, धुन्धुमार,
दिलीप, सगर, कृशाश्व, यौवनाश्व, चित्राश्व, सत्यवान्, दुष्यन्त, भरत, पवन, जनक, धृष्टरथ, रघु, ५०
दशरथ, राम, शशबिन्दु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, मरुत्त, दृढरथ, महोदर्य, अलर्क, ऐल, करन्धम, कध्मोर,
दक्ष, अम्बरीष, कुकुर, रैवत, कुरु, संवरण, मान्धाता, मुचुकुन्द, जह्नु, पृथु, मित्रभानु, प्रियङ्कर,
त्रसद्दस्यु, श्वेत, महाभिष, निमि, अष्टक, आयु, क्षुप, कक्षेयु, प्रतर्दन, दिवोदास, सुदास, ऐल, नल,
मनु, हविध्र, पृषध्र, प्रतीप, शान्तनु, अज, प्राचीनबर्हि, इक्ष्वाकु, अनरण्य, जानुजङ्घ और कक्षसेन।
जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल पवित्र होकर इन सबके और अन्यान्य राजर्षियों के
नाम लेता है उसे निरसन्देह धर्मफल प्राप्त होता है। बुद्धिमान् मनुष्य इन सब देवताओं, मह-

र्षियों और राजर्षियों की स्तुति करके यह प्रार्थना करे कि मैं जिन महात्माओं की स्तुति करता हूँ वे मुझे पुष्टि, आयु, यश और स्वर्ग प्रदान करें। मुझे कभी शत्रुओं से परास्त न होना पड़े
६२ और मैं इस लोक में विजय और परलोक में श्रेष्ठ गति प्राप्त करूँ।

एक सौ छाछठ अध्याय

भीष्म की आज्ञा लेकर भाइयों समेत युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण आदि का हस्तिनापुर को जाना

जनमेजय ने कहा—भगवन्! मेरे पूर्वपितामह धर्मराज युधिष्ठिर ने कौरव-धुरन्धर, शरशय्या पर पड़े हुए, महावीर भीष्म के मुँह से धर्मशास्त्र और दान की विधि सुनकर अपना सन्देह दूर करके फिर क्या किया?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महावीर भीष्म इस प्रकार युधिष्ठिर को उपदेश देकर जब चुप हो गये तब उनके पास बैठे हुए सब राजा चित्र के समान निःस्तब्ध हो गये। यह देखकर महर्षि वेदव्यास ने थोड़ी देर ध्यान करके महात्मा भीष्म से कहा—भीष्म, अब धर्मराज युधिष्ठिर का सन्देह दूर हो गया है और ये अपने भाइयों, श्रीकृष्ण तथा अन्य राजाओं समेत तुम्हारे समीप बैठे हैं। तुम इनको हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दो। यह सुनकर महात्मा भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्, तुम मन्त्रियों समेत हस्तिनापुर को जाओ। तुम मन में
८ किसी प्रकार का शोक न करो। अब तुम महात्मा ययाति की तरह श्रद्धा और दमगुण से युक्त होकर बहुत सी दक्षिणा समेत अनेक यज्ञ और धर्म का पालन करके देवताओं तथा पितरों की पूजा, प्रजा का मनोरञ्जन और सुहृदों का यथोचित सम्मान करो। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा। जिस तरह पक्षी फले हुए बड़े वृक्ष पर रहकर निर्वाह करते हैं उसी तरह तुम्हारे सुहृद्गण तुम्हारे आश्रय में रहें। अब तुम प्रसन्नता से हस्तिनापुर को जाओ। जब भगवान् सूर्यदेव उत्तरायण हो जायँ तब फिर हमारे पास आ जाना।

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर उनको प्रणाम करके अपने भाइयों, महर्षियों, महात्मा वासुदेव, नगर और देश के निवासियों, मन्त्रियों और परिवार के अन्य लोगों को साथ लेकर—
१७ महाराज धृतराष्ट्र और पतिव्रता गान्धारी के पीछे-पीछे—हस्तिनापुर को गये।

एक सौ सड़सठ अध्याय

भीष्म की अन्त्येष्टि क्रिया करने की सामग्री लेकर युधिष्ठिर आदि का फिर उनके पास जाना और भीष्म का व्यास, श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र आदि से प्राण त्यागने की अनुमति लेना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, हस्तिनापुर में पहुँचकर धर्मराज युधिष्ठिर ने नगर और देश के निवासियों का यथोचित सम्मान करके उनको घर जाने की आज्ञा दी। जिन स्त्रियों

के पति- और पुत्र आदि युद्ध में मारे गये थे उनको बहुत सा धन दिया। इसके बाद युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। फिर वे ब्राह्मणों और नगर-निवासी गुणवान् श्रेष्ठ पुरुषों का आशीर्वाद लेकर प्रजा का सम्मान करते हुए हस्तिनापुर में रहने लगे। कुछ दिनों बाद जब सूर्य उत्तरायण हो गये तब धर्मराज ने भीष्म की मृत्यु का समय जानकर उनके पास चलने की तैयारी की। भीष्म का अन्त्येष्टि संस्कार करने के लिए वे माला, बहुमूल्य रत्न, घी, गन्ध द्रव्य, दुपट्टा, चन्दन, अगुरु, पीला चन्दन, और संस्कार करानेवाले पुरोहित को साथ लेकर धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और भाइयों समेत रथों पर सवार होकर चले। महात्मा वासुदेव, बुद्धिमान् विदुर, युयुत्सु और युयुधान भी उनके साथ चले। राजाओं के योग्य परिचारकगण भी साथ हो लिये और वन्दीगण स्तुति-पाठ करने लगे।

इन्द्र के समान धर्मात्मा युधिष्ठिर हस्तिनापुर से चलकर कुरुक्षेत्र में भीष्म के पास पहुँचे। १२
महात्मा भीष्म शरशय्या पर पड़े थे। महर्षि वेदव्यास, देवर्षि नारद और असित देवल उनके पास बैठे थे। युद्ध से बचे हुए राजा और रक्षकगण चारों ओर से उनकी रक्षा कर रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर ने और उनके भाइयों ने रथ से उतरकर पितामह को प्रणाम करके वेदव्यास आदि महर्षियों को प्रणाम किया। वेदव्यास आदि महर्षि भी युधिष्ठिर की प्रशंसा करने लगे। अब युधिष्ठिर ने भीष्म से कहा—पितामह, मैं युधिष्ठिर आपको प्रणाम करता हूँ। यदि आपमें सुनने की शक्ति हो, मेरी बातें सुन रहे हों, तो आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूँ। मैं आपकी मृत्यु का समय जानकर अग्नि लेकर आ गया हूँ। आचार्य, ब्राह्मण, ऋत्विक्, भीमसेन आदि मेरे भाई, कुरुजाङ्गलवासी हतावशिष्ट राजा लोग, महात्मा वासुदेव और आपके पुत्रस्वरूप राजा धृतराष्ट्र भी आये हैं। आप आँखें खोलकर हम लोगों की ओर देखिए। आपकी मृत्यु होने पर जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी वे सब मैं ले आया हूँ। २३

यह सुनकर महात्मा भीष्म ने आँखें खोलकर देखा कि आत्मीय जन उनके चारों ओर बैठे हुए हैं। तब उन्होंने युधिष्ठिर का हाथ पकड़कर, बादल के समान गम्भीर स्वर से, कहा—"बेटा, सूर्य उत्तरायण हो गये हैं। तुमको मन्त्रियों समेत आया देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। आज मुझे तीक्ष्ण बाणों पर पड़े हुए अट्ठावन दिन हो गये। ये अट्ठावन दिन मेरे लिए सौ वर्ष के समान बीते। अब भाग्य से पवित्र माघ मास और शुक्ल पक्ष आ गया है। यह शुक्ल पक्ष का अन्तिम तृतीयांश है।" युधिष्ठिर से यों कहकर वे धृतराष्ट्र से कहने लगे—महाराज, तुम धर्म और अर्थ के तत्त्व को भली भाँति जानते हो। तुमने बहुत दिनों तक विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा
की है। तुमको सम्पूर्ण धर्म का, चारों वेदों का और शास्त्र का ज्ञान है। अतएव तुम शोक न ३०
करो। जो होना होता है वह अवश्य हो जाता है, भवितव्यता को कोई नहीं मिटा सकता। तुमने वेदव्यासजी से धर्म का रहस्य सुना है। धर्म के अनुसार पाण्डव तुम्हारे पुत्र हैं। अत-

एव तुम धर्म-परायण होकर, गुरुजनों की सेवा में तत्पर, पाण्डवों का पालन करो। बड़े-बूढ़ों पर
श्रद्धा रखनेवाले, सरलस्वभाव, विशुद्धचित्त युधिष्ठिर हमेशा तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे।
तुम्हारे पुत्र बड़े क्रोधी, लोभी, ईर्ष्यालु और दुरात्मा थे। अतएव तुम उनके लिए शोक न करो।
महात्मा भीष्म ने श्रीकृष्ण से कहा—भगवन्! तुम देवदेवेश, सुरासुर-नमस्कृत, त्रिवि-
क्रम, शङ्ख-चक्र-गदाधारी, वासुदेव, हिरण्यात्मा, परम पुरुष, सविता, विराट्, जीवस्वरूप, अणु-
रूप, परमात्मा और सनातन हो। मैं एकाग्रचित्त होकर तुमको नमस्कार करता हूँ। तुम मेरी
४० और अपने अनुगत पाण्डवों की रक्षा करो। मैंने मन्दबुद्धि दुर्योधन को बहुत समझाया था
कि जहाँ कृष्ण हैं वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है वहाँ विजय है; अतएव तुम—जिनके सहायक
वासुदेव हैं उन—पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। सन्धि करने का ऐसा सुयोग फिर न
मिलेगा। हे कृष्णचन्द्र, इस प्रकार बार-बार मेरे कहने पर भी उस मूर्ख ने मेरी बात न मानी।
इसी कारण वह दुरात्मा पृथिवी को वीर-विहीन करके मर गया। मैं तुमको पुराण-पुरुष सम-
झता हूँ। मैंने तपस्वियों में श्रेष्ठ नारदजी और वेदव्यासजी के मुँह से सुना है कि प्राचीन
समय में तुम और अर्जुन नर-नारायण के रूप से बदरिकाश्रम में रहते थे। अब मेरे शरीर
त्यागने का समय आ गया है; अतएव आज्ञा दो कि मैं शरीर त्यागकर परम गति प्राप्त करूँ।
श्रीकृष्ण ने कहा—महात्मन्! मैं आपको आज्ञा देता हूँ, आप शरीर त्यागकर वसुलोक
को जाइए। इस लोक में आपने कोई पाप नहीं किया है। आप मार्कण्डेय के समान पितृ-
भक्त हैं। मौत, दासी की तरह, आपके वश में है।
इसके बाद महात्मा भीष्म ने धृतराष्ट्र, पाण्डवों और सुहृद् जनों से कहा—अब मैं प्राण
त्यागना चाहता हूँ, तुम लोग मुझे आज्ञा दो। सत्य के समान श्रेष्ठ बल नहीं है, अतएव तुम
लोग हमेशा सत्य का पालन करना। तुम लोग संयतात्मा, तपस्वी, धर्मनिष्ठ और ब्राह्मणभक्त
बने रहना। यह कहकर महात्मा भीष्म ने सुहृद् जनों को गले से लगाकर युधिष्ठिर से कहा—
५२ बेटा! तुम हमेशा ज्ञानवान् ब्राह्मण, आचार्य और ऋत्विक्गण का सम्मान करना।

एक सौ अड़सठ अध्याय

भीष्म का योगाभ्यास द्वारा ब्रह्मरन्ध्र भेदकर प्राण-त्याग करना। युधिष्ठिर आदि का चिता
तैयार करके दाह करना। फिर सब लोगों का गङ्गा-किनारे जाकर तिलाञ्जलि देना
और पुत्र-शोक से विह्वल गङ्गाजी का विलाप करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, यह कहकर महात्मा भीष्म चुप हो गये। उन्होंने योगाभ्यास द्वारा मूलाधार आदि स्थानों में मन के साथ वायु को रोककर क्रमशः ऊपर को चढ़ाना आरम्भ किया। प्राणवायु रुककर जिस अङ्ग को छोड़कर ऊपर चढ़ जाता था उस

अङ्ग के बाण निकल जाते और घाव भर जाते थे। यह देखकर वेदव्यास आदि महर्षि, भाइयों
समेत युधिष्ठिर और वासुदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ। क्षण भर में भीष्म के शरीर से सब
बाण निकल गये और प्राण ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर, उल्का की तरह, आकाश-मार्ग से चल दिये।
उस समय देवता दुन्दुभि बजाने और फूलों की वर्षा करने लगे। सिद्ध और ब्रह्मर्षिगण प्रसन्न
होकर भीष्म को साधुवाद देने लगे। थोड़ी देर बाद भीष्म के ब्रह्मरन्ध्र से आकाश को गया
हुआ तेज सबके सामने विलीन हो गया।

इस प्रकार भरत-कुल-धुरन्धर महात्मा भीष्म के शरीर त्याग देने पर विदुर और युधिष्ठिर
आदि पाण्डवों ने लकड़ियाँ और अनेक गन्ध द्रव्य लाकर चिता तैयार की। युयुत्सु आदि सब १०
लोग उनकी ओर देखने लगे। युधिष्ठिर और विदुर ने महात्मा भीष्म को बहुमूल्य वस्त्र ओढ़ा दिया। युयुत्सु छत्र लेकर और भीमसेन तथा अर्जुन चवँर लेकर उनके पास खड़े हो गये। नकुल और सहदेव ने उनके सिर में पगड़ी बाँधी। स्त्रियाँ चारों ओर खड़ी होकर उनको पङ्खे झलने लगीं। इसके बाद सब कौरवों ने मिलकर नियमानुसार तत्कालोचित श्राद्ध करके अग्नि में आहुति दी। सामवेदी लोग सामगान करने लगे। तब धृतराष्ट्र आदि ने भीष्म के शव को चिता पर रखकर—चन्दन, कालीयक और कालागुरु आदि सुगन्ध द्रव्यों से उसे ढककर—चिता में आग लगा दी।



इस प्रकार महात्मा भीष्म की अन्त्येष्टि क्रिया करके सब कौरव चिता की बाईं ओर से, ऋषियों के साथ, भागीरथी के तट पर गये। महर्षि वेदव्यास, नारद, वासुदेव, कौरववंश की स्त्रियाँ और नगर-निवासी उनके पीछे-पीछे चले।

गङ्गा-किनारे पहुँचकर कौरवगण भीष्म को जल देने लगे। उसी समय भगवती भागी- २०
रथी जल से निकलकर, शोक से व्याकुल होकर, रो-रोकर कहने लगीं—हे कौरवो! मेरे पुत्र
भीष्म में राजाओं के योग्य व्यवहार, बुद्धि और विनय आदि गुण थे। वे वृद्धों और गुरुजनों
के सेवक, पितृभक्त और महाव्रतधारी थे। जमदग्नि के पुत्र परशुराम भी अनेक दिव्य अस्त्रों
द्वारा उनको नहीं जीत सके थे। महावीर भीष्म ने काशीपुरी के स्वयंवर में अकेले ही सब

राजाओं को जीतकर कन्याएँ हर ली थीं। भूमण्डल पर उनके समान पराक्रमी दूसरा नहीं है। उन्होंने अपने बाहुबल से कुरुक्षेत्र में परशुराम को परास्त कर दिया था। वही महा-पराक्रमी मेरे पुत्र भीष्म, शिखण्डी के हाथ से, मारे गये। हाय, आज उन प्रिय पुत्र के वियोग में मेरे हृदय के सौ टुकड़े नहीं हो गये, इससे जान पड़ता है कि मेरा हृदय पत्थर का है।

इस तरह गङ्गाजी के अनेक प्रकार से विलाप करने पर महात्मा वासुदेव और वेदव्यास
३० उनको समझाने लगे—देवी, तुम शोक न करो। तुम्हारे पुत्र महात्मा भीष्म श्रेष्ठ लोक को गये
हैं। वे आठ वसुओं में से एक वसु हैं। महर्षि वसिष्ठ के शाप से उनको मृत्युलोक में जन्म लेना
पड़ा था। अतएव उनके लिए तुम शोक न करो। महावीर अर्जुन ने, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार,
उनको मारा है। शिखण्डी उनको नहीं मार सकता था। महात्मा भीष्म के अस्त्र धारण
करने पर उन्हें इन्द्र आदि देवता भी नहीं मार सकते थे। वे अपनी इच्छा से स्वर्गलोक को
जाकर फिर वसुओं में परिगणित हुए हैं।

वासुदेव और महर्षि वेदव्यास के समझाने पर भगवती भागीरथी का शोक दूर हो गया।
३७ तब सब लोग उनको प्रणाम करके, उनसे आज्ञा लेकर, वहाँ से चल दिये।





महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

अश्वमेधपर्व

आश्वमेधिकपर्व

पहला अध्याय

शोक से व्याकुल युधिष्ठिर का मूर्च्छित होकर गङ्गा-किनारे पृथिवी पर गिर पड़ना और उनको धृतराष्ट्र का समझाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय ! भीष्म को जलदान कर चुकने पर, राजा धृतराष्ट्र को आगे करके, महाबाहु युधिष्ठिर नदी से बाहर निकले । आँसू बहाते हुए शोक से व्याकुल युधिष्ठिर, व्याधविद्ध हाथी की तरह, गङ्गा-तट पर गिर पड़े । यह देखकर, श्रीकृष्ण की आज्ञा से, भीमसेन ने उन्हें उठा लिया । अब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—"महाराज, शोक न कीजिए ।" शोक से पीड़ित, पृथिवी पर पड़े हुए, लम्बी साँस ले रहे धर्मराज युधिष्ठिर को देखकर अर्जुन आदि पाण्डव और अन्य राजा लोग दुखी होकर उनके चारों ओर बैठ गये ।

युधिष्ठिर की यह दशा देखकर पुत्र-शोक से पीड़ित प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र ने कहा—धर्मराज, अब तुम शोक छोड़कर आगे का काम देखो । तुमने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार पृथिवी पर अधिकार किया है । भाइयों और सुहृदों के साथ इसको सँभालो । अब तुम्हारे शोक का कोई कारण मुझे नहीं जान पड़ता । शोक तो हमें और गान्धारी को करना चाहिए जिनके सौ

१० पुत्र, स्वप्न की सम्पत्ति की तरह, नष्ट हो गये हैं। अपनी मूर्खता के कारण, महात्मा विदुर के
हितकर वचन न सुनने से, आज मैं पुत्र शोक से दुखी हो रहा हूँ। धर्मात्मा विदुर ने, जुआ आरम्भ होने के समय, मुझसे कहा था कि महाराज, दुर्योधन के अपराध से आपके वंश का नाश हो जायगा। यदि आप वंश की रक्षा करना चाहते हों तो, मेरे कहने से, दुरात्मा दुर्योधन को क़ैद कर लीजिए और ऐसा उपाय कर दीजिए कि कर्ण और शकुनि इससे मिलने न पावें। जुए को रोकवा दीजिए और धर्मराज युधिष्ठिर को राज्यतिलक कर दीजिए। महात्मा युधिष्ठिर धर्म के अनुसार राज्य करेंगे। अथवा यदि आप धर्मराज को राज्य न देना चाहें तो आप स्वयं राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेकर सबके साथ एक सा बर्ताव कीजिए। आपके सब सजातीय आपके आश्रित रहेंगे। इस प्रकार दूरदर्शी महात्मा विदुर ने उस समय मुझे बहुत समझाया, किन्तु उनकी बात का अनादर करके मैंने दुर्योधन का पक्ष लिया। अब मुझे विदुर के उन वचनों के न मानने का पूरा फल मिल गया है। आज मैं शोक-सागर में डूब रहा हूँ। हे धर्मराज, इस बुढ़ापे में मुझे और गान्धारी को
२० यह दुःख उठाना पड़ा है। अब हम लोगों की ओर देखकर तुम शोक करना छोड़ो।



दूसरा अध्याय

श्रीकृष्ण और व्यासजी का युधिष्ठिर को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर जब युधिष्ठिर ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब श्रीकृष्ण ने कहा—धर्मराज, परलोकगत व्यक्तियों के लिए अत्यन्त शोक करना उचित नहीं। शोक करने से उनके आत्मा को दुःख होता है। अतएव अब आप शोक को छोड़कर, बहुत सी दक्षिणा देकर, विधिपूर्वक यज्ञ कीजिए। सोमरस द्वारा देवताओं को, स्वधा द्वारा पितरों को, अन्नदान द्वारा अतिथियों को और माँगने से भी अधिक धन देकर दरिद्रों को सन्तुष्ट कीजिए। जानने योग्य बातें आप जान चुके हैं और अपना कर्तव्य कर चुके हैं। महात्मा भीष्म, व्यासदेव, नारद मुनि और विदुरजी की कृपा से आपने राज-

धर्म भी अच्छी तरह सुन लिया है। अतएव अब मूर्खों का सा काम करना आपको उचित नहीं। अब आप अपने पूर्वजों की तरह उत्साह के साथ राज्य कीजिए। यशस्वी होकर स्वर्ग प्राप्त करना क्षत्रियों का कर्तव्य है। जिन्होंने संग्राम में शरीर त्याग दिया है वे सब स्वर्गलोक को गये हैं। भवितव्यता को कोई मेट नहीं सकता। अब आपका शोक करना व्यर्थ है। जो शूर-वीर युद्ध में मारे गये हैं वे अब किसी उपाय से लौट नहीं सकते।

यह सुनकर धर्मराज ने कहा—श्रीकृष्ण, तुम मुझसे जैसा स्नेह करते हो उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। कैसा अच्छा हो कि अब तुम मित्र भाव से मुझ पर कृपा करके मुझे तपोवन जाने की आज्ञा दे दो। महावीर कर्ण और पितामह भीष्म का संहार कराके अब मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिलती। तुम वही उपाय करो जिसके करने से मुझे इस घोर पाप से छुटकारा मिल सके और मेरा मन शुद्ध हो जाय।

धर्मराज के यों कहने पर महर्षि वेदव्यास उनको समझाने लगे—बेटा, तुम्हारी बुद्धि अब भी परिपक्व नहीं हुई। तुम इस समय भी बालक की तरह मोहित हो रहे हो। इस दशा में हम लोगों का बार-बार समझाना व्यर्थ हो रहा है। युद्ध ही जिनकी जीविका है उन क्षत्रियों के धर्म को तुम भली भाँति समझ गये हो। अपने धर्म में निष्ठा रखनेवाले राजा कभी शोक-सन्ताप नहीं करते। तुमने मोक्षधर्म भी मुझसे सुना है। मैं अनेक बार अनेक विषयों में तुम्हारा सन्देह दूर कर चुका हूँ। तुमको उपदेश देने से अब कोई फल नहीं देख पड़ता तब जान पड़ता है कि तुमने जो कुछ मुझसे सुना है, उस पर श्रद्धा न होने के कारण, वह सब तुम भूल गये हो। जो हो, अब तुम शोक न करो। शीघ्र मोह को छोड़ दो। तुम सब प्रकार के प्रायश्चित्त जानते हो और राजधर्म तथा दानधर्म भी भली भाँति सुन चुके हो। अतएव सब धर्मों के मर्मज्ञ और सब शास्त्रों के विद्वान् होकर भी अज्ञानी के समान तुम्हारा मोहित होना बड़ा अनुचित है।

तीसरा अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर को समझाना, और अश्वमेध यज्ञ करने का
उपदेश देकर धन-प्राप्ति का उपाय बतलाना

व्यासजी ने कहा—धर्मराज, तुमको अब भी विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। संसार में कोई भी अपने आप कोई काम नहीं कर सकता। सभी मनुष्य ईश्वर की प्रेरणा से शुभ-अशुभ कार्य करते हैं। तो फिर मनुष्यों को शोक करने की क्या आवश्यकता है? तुम अपने को पापी समझ रहे हो अतएव उन कामों का वर्णन सुनो जिनके करने से मनुष्य के पाप नष्ट होते हैं। दुष्कर्म करनेवाला मनुष्य दान, तपस्या और यज्ञ करने से सब पापों से मुक्त हो जाता

है। देवता और दानव भी, पुण्य करने के लिए, यज्ञ करते हैं। यज्ञ से श्रेष्ठ दूसरा काम नहीं है। देवता यज्ञ के प्रभाव से ही महापराक्रमी होकर दानवों को परास्त कर सके हैं। अतएव तुम—दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र और शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न अपने पूर्व पितामह महाराज भरत की तरह—विधिपूर्वक राजसूय, सर्वमेध, नरमेध और अश्वमेध आदि यज्ञ करो। अश्वमेध सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। बहुत सी दक्षिणा देकर तुम अश्वमेध यज्ञ करो।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, अश्वमेध यज्ञ करने से राजा अवश्य पवित्र हो जाते हैं; किन्तु इस समय वह यज्ञ करना मेरे लिए बहुत कठिन है। अपने सजातीयों का नाश करके मैं इस समय थोड़ा सा भी दान नहीं कर सकता; क्योंकि मेरे पास धन नहीं है। यहाँ जितने राजपुत्र मौजूद हैं वे सभी बहुत दुखी और निर्धन हैं, अतएव मैं इनसे भी धन नहीं माँग सकता। दुर्योधन के अपराध से पृथिवी भर के राजाओं का संहार हो गया और मेरी अकीर्ति हुई। उसी के धन के लोभ से पृथिवी का धन और वीर लोग सब नष्ट हो गये। दुर्योधन की दुष्टता से ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा है। इस समय अश्वमेध यज्ञ किस तरह किया जा सकता है? अश्वमेध यज्ञ में तो पृथिवी का दान करना प्रधान कल्प बतलाया गया है। दूसरे प्रकार की दक्षिणा देना उसका अनुकल्प है; किन्तु अनुकल्प का अवलम्बन करने की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। आप मुझे समयोचित उपदेश दीजिए।

यह सुनकर, थोड़ी देर सोचकर, महर्षि वेदव्यास ने कहा—बेटा, तुम चिन्ता न करो। यह ठीक है कि तुम्हारा ख़ज़ाना इस समय ख़ाली हो गया है, किन्तु वह बहुत शीघ्र भर जायगा। प्राचीन समय में महाराज मरुत्त ने हिमालय पर्वत पर यज्ञ करके ब्राह्मणों को बहुत सा सुवर्ण दिया था। उसको ब्राह्मण लोग नहीं ले जा सके और वहीं छोड़कर चले गये। वह सब सोना उसी स्थान पर पड़ा हुआ है। वह सब तुम उठा लाओ तो आसानी से
२३ तुम्हारा यज्ञ हो जाय। वह धन तुम्हारे यज्ञ के लिए पर्याप्त होगा।

चौथा अध्याय

व्यासजी का युधिष्ठिर से महाराज मरुत्त का इतिहास कहना

युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्, महाराज मरुत्त किस समय पृथिवी के अधीश्वर हुए थे और उन्होंने इतना सुवर्ण किस प्रकार एकत्र किया था?

वेदव्यास ने कहा—धर्मराज, करन्धम-वंश में उत्पन्न महात्मा मरुत्त का इतिहास सुनो। सत्ययुग में वैवस्वत मनु पृथिवी का शासन करते थे। उनके पुत्र महाराज प्रसन्धि हुए। प्रसन्धि के पुत्र महात्मा क्षुप और उनके पुत्र इक्ष्वाकु हुए। इक्ष्वाकु के सौ धर्मात्मा पुत्र थे।

इक्ष्वाकु ने उन सबको, राज्याभिषेक करके, राज्य सौंप दिया। उनमें सबसे बड़े का नाम विंश
था। विंश धनुर्विद्या में बड़े निपुण थे। उनके विविंश नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।
विविंश के पन्द्रह पुत्र हुए। वे सब धनुर्विद्या-विशारद, सत्यवादी, प्रियभाषी, दानी और परा-
क्रमी थे। उनमें सबसे बड़े भाई का नाम खनीनेत्र था। खनीनेत्र अपने छोटे भाइयों को
परास्त करके अकेला राजा बन बैठा। यद्यपि खनीनेत्र बड़ा प्रभावशाली था तो भी प्रजा उससे
सन्तुष्ट न थी। प्रजा ने उसे गद्दी से उतार दिया और उसके पुत्र सुवर्चा को राजा बनाया।
सुवर्चा ने अपने पिता की वह दशा देखी थी, इसलिए वह हमेशा शङ्कित रहता था और बड़े यत्न
से प्रजा का पालन तथा उसका हितसाधन करता था। वह ब्राह्मणप्रिय, सत्यवादी, पवित्र और १०
शम-दम आदि गुणों से युक्त था; इसी कारण प्रजा उस पर बहुत अनुरक्त थी।

धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करने पर भी कुछ दिनों बाद सुवर्चा का कोष और वाहन
आदि सब कुछ नष्ट हो गया। यह सुयोग पाकर उसके मातहत राजा लोग चारों ओर से उस
पर आक्रमण करने लगे। उस समय राजा सुवर्चा अपने कुटुम्बियों और पुरवासियों समेत बड़ी
विपत्ति में पड़ा। वह बड़ा धर्मात्मा था, इसलिए शत्रु उसको मार नहीं सके। इस प्रकार जब
सुवर्चा बहुत पीड़ित हुआ तब दुःख से व्याकुल होकर उसने अपने हाथ (कर) को मुँह में लगाकर
बजाया। हाथ को बजाते ही उसका पराक्रम बहुत बढ़ गया। तब उसने अपने सब शत्रुओं को
परास्त कर दिया। तभी से सुवर्चा का नाम करन्धम पड़ा। उसके, त्रेतायुग के आरम्भ में, इन्द्र
के समान रूपवान् और पराक्रमी अविक्षित् नाम का एक दुर्जय पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज
अविक्षित के शासनकाल में, उनके गुणों के कारण, सब प्रजा उनके वश में थी। वे बड़े धर्मात्मा,
यज्ञशील, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय, शम-दम आदि गुणों से युक्त, सूर्य के समान तेजस्वी, पृथिवी के समान
क्षमाशील, बृहस्पति के समान बुद्धिमान् और हिमालय के समान स्थिर स्वभाव के थे। उन्होंने २०
मन-वचन-कर्म से प्रजा को प्रसन्न करके विधिपूर्वक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। महात्मा अङ्गिरा
ने उनको यज्ञ कराया था। राजा अविक्षित् के पुत्र, दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले,
मूर्तिमान् विष्णु-स्वरूप महाराज मरुत्त हुए। इन्होंने यज्ञ करने की इच्छा से, हिमालय के उत्तर
में स्थित, सुमेरु पर्वत पर जाकर सोने के बहुत से बर्तन बनवाये। सुमेरु पर्वत से थोड़ी दूर पर,
एक सुवर्णमय पर्वत के निकट, यज्ञभूमि तैयार की। उस स्थान पर महाराज मरुत्त की आज्ञा
से असंख्य सुनारों ने सुवर्णमय कुण्ड, पात्र, स्थाली और आसन बनाये। इसके बाद महाराज
मरुत्त ने उस स्थान पर देश-देशान्तर के राजाओं के साथ विधि-पूर्वक यज्ञ किया। २८

पाँचवाँ अध्याय

बृहस्पति का अपने भाई संवर्त से विरोध करना और इन्द्र के पुरोहित होकर
मनुष्यों को यज्ञ न कराने की प्रतिज्ञा करना।

युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्, महाराज मरुत्त किस प्रकार के पराक्रमी थे और उनको इतना सोना किस तरह मिला था? वह सोना इस समय किस स्थान पर पड़ा है और किस उपाय से मुझे मिल सकेगा?

वेदव्यास ने कहा—धर्मराज, जिस तरह देवता और दानव प्रजापति दक्ष के नाती हैं और परस्पर शत्रुता करते हैं उसी तरह महातेजस्वी बृहस्पति और तपोधन संवर्त महर्षि अङ्गिरा के पुत्र—अर्थात् सगे भाई—होने पर भी एक दूसरे से स्पर्धा करते हैं। बृहस्पति जब अपने छोटे भाई संवर्त के साथ शत्रुता करने और उनको बार-बार सताने लगे तब संवर्त सब कुछ छोड़-छाड़कर, नङ्ग-धड़ङ्ग, वन को चले गये। इसके बाद इन्द्र ने दानवों को परास्त करके, तीनों लोकों के अधीश्वर होकर, बृहस्पति को अपना पुरोहित बना लिया।

बृहस्पति के पिता महर्षि अङ्गिरा महाराज करन्धम के पुरोहित थे। करन्धम के
समान बलवान् और सदाचारी संसार में कोई नहीं था। वे धर्मात्मा, व्रतधारी और इन्द्र के
समान पराक्रमी थे। उनके ध्यान के बल से, और मुँह से लम्बी साँस छोड़ने के प्रभाव से श्रेष्ठ
१० वाहन, योद्धा, मित्र और महामूल्य शय्या आदि सब पदार्थ उत्पन्न हो गये थे। उन्होंने अपने
गुणों से सब राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। वे अपनी इच्छा से दीर्घ काल तक
जीवित रहकर अन्त को सदेह स्वर्ग चले गये थे। उनके पुत्र अविक्षित् भी, महापराक्रमी
ययाति के समान, धार्मिक और अपने पिता के समान बलवान् तथा गुणवान् होकर सम्पूर्ण
पृथिवी के अधीश्वर हुए। इन्हीं के पुत्र महापराक्रमी राजा मरुत्त थे। महाराज मरुत्त इन्द्र
से हमेशा स्पर्धा करते थे। इन्द्र भी महाराज मरुत्त से ईर्ष्या करते थे, किन्तु उनकी पवित्रता
और गुणों के कारण इन्द्र हज़ार उद्योग करने पर भी उनसे श्रेष्ठ न हो सके। तब इन्द्र ने
बृहस्पति को बुलाकर, सब देवताओं के सामने, कहा—भगवन्, यदि आप मेरा भला चाहते हैं
तो राजा मरुत्त का पौरोहित्य स्वीकार न कीजिएगा। मैं तीनों लोकों का अधीश्वर हूँ और
मरुत्त केवल मर्त्य-लोक के राजा हैं। अतएव आप मृत्युहीन देवताओं के पुरोहित होकर
किस प्रकार मृत्यु के वशीभूत मरुत्त को यज्ञ करावेंगे? यदि आप मरुत्त का पौरोहित्य करेंगे
तो आपको मेरा पौरोहित्य छोड़ देना पड़ेगा। अतएव अब आप चाहे मरुत्त को छोड़कर
२१ मेरे, या मुझे त्यागकर मरुत्त के, पुरोहित हूजिए।

यह सुनकर, थोड़ी देर सोचकर, बृहस्पति ने उत्तर दिया—देवराज, आप सब जीवों के स्वामी हैं। सब लोक आपके अधीन हैं। आपने नमुचि, विश्वरूप और बल दानव का

संहार किया है। आपने दानवों का दर्प चूर्ण कर दिया है। आप ही स्वर्ग और मृत्युलोक का पालन करते हैं। फिर भला आपका पुरोहित होकर मैं, मृत्युलोक के निवासी, मरुत्त का यज्ञ कराने कैसे जा सकता हूँ? आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कभी मनुष्यों को यज्ञ कराने के लिए स्रुव ग्रहण न करूँगा। चाहे आग ठण्डी हो जाय, पृथिवी उलट जाय और सूर्य निस्तेज हो जायँ; किन्तु मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता।

बृहस्पति की यह प्रतिज्ञा सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करके
घर के भीतर गये। २८

छठा अध्याय

बृहस्पति की प्रतिज्ञा का हाल सुनकर, यज्ञ की तैयारी करके, मरुत्त का उनके पास जाना और उनके अस्वीकार कर देने पर नारदजी की आज्ञा से महर्षि संवर्त के पास जाना

व्यासजी ने कहा—हे धर्मराज, अब बृहस्पति और मरुत्त का संवाद सुनो। राजा मरुत्त ने जब यह सुना कि बृहस्पति ने मनुष्यों को यज्ञ न कराने की प्रतिज्ञा की है तब राजा ने, बहुत बड़ा यज्ञ करने की तैयारी करके, बृहस्पति के पास जाकर कहा—भगवन्, आपकी आज्ञा से मैंने यज्ञ करने का सङ्कल्प किया था। उस पूर्व-सङ्कल्पित यज्ञ का आरम्भ करने के लिए मैंने सब सामान इकट्ठा कर लिया है। आप चलकर यज्ञ करा दीजिए।

बृहस्पति ने कहा—राजन्, मैंने इन्द्र का पौरोहित्य स्वीकार कर लिया है और उनसे प्रतिज्ञा की है कि मैं मनुष्यों को यज्ञ नहीं कराऊँगा; अतएव मैं आपको यज्ञ नहीं करा सकता।

मरुत्त ने कहा—भगवन्, मैं आपका परम्परागत यजमान हूँ और आपका यथोचित सम्मान किया करता हूँ। अतएव आपको मेरा यज्ञ अवश्य कराना चाहिए।

बृहस्पति ने कहा—राजन्, मैं देवताओं का पुरोहित होकर मनुष्यों का पुरोहित कैसे हो सकता हूँ? मैं आपको यज्ञ नहीं करा सकता। आप किसी दूसरे को बुला लीजिए।

व्यासजी ने कहा—राजन्, बृहस्पति के इस प्रकार तिरस्कार करने पर महाराज मरुत्त
लज्जित होकर घर को लौट चले। मार्ग में उन्होंने देवर्षि नारद को देखा। महाराज मरुत्त १०
नारदजी को प्रणाम करके विनीत भाव से उनके सामने खड़े हो गये।

नारदजी ने उनको दुःखित देखकर पूछा—राजन्, आज आप इतने खिन्न क्यों हैं? कुशल तो है? आप कहाँ गये थे? कहने योग्य हो तो बतलाइए। मैं आपका दुःख दूर करने का भरसक उद्योग करूँगा।

यह सुनकर महाराज मरुत्त ने कहा—देवर्षि, मैं यज्ञ का सब सामान एकत्र करके यज्ञ कराने के लिए बृहस्पतिजी को बुलाने गया था; किन्तु उन्होंने यज्ञ कराने से इनकार कर दिया। अतएव अब मुझे जीवित रहने की इच्छा नहीं है।

महाराज मरुत्त को इस प्रकार दुःख प्रकट करते देखकर नारदजी ने कहा—राजन्, अङ्गिरा के छोटे लड़के परम धार्मिक संवर्त दिगम्बर वेष में रहते हैं। वे मनुष्यों को आश्चर्य में डालते हुए इधर-उधर घूमते रहते हैं। आप उनके पास जाइए और उन्हें राज़ी कर लीजिए। वे यज्ञ करा देंगे।

राजा मरुत्त ने कहा—भगवन्, आपने यह उपदेश देकर मुझे प्राणदान दिया है। कृपा करके यह तो बतला दीजिए कि इस समय संवर्त रहते कहाँ हैं, मैं किस तरह उनके दर्शन पाऊँगा और किस प्रकार का व्यवहार करने से वे मेरी बात मान लेंगे। यदि वे भी मुझे
२१ निराश कर देंगे तो फिर मैं कहीं का न रहूँगा।

नारदजी ने कहा—महाराज! इस समय महात्मा संवर्त विश्वेश्वर के दर्शन करने के लिए, पागल की तरह, काशी में घूम रहे हैं। आप वहाँ जाकर विश्वेश्वर के मन्दिर के द्वार पर एक मुर्दा रख दीजिएगा। प्रातःकाल जो मनुष्य विश्वेश्वर के दर्शन करने जावे और उस मुर्दे को देखकर लौट पड़े उसी को आप संवर्त मान लीजिएगा। वे महात्मा वहाँ से लौटकर जिधर जावें, उधर ही पीछे-पीछे आप भी चले जाइएगा। जब वे किसी निर्जन स्थान में पहुँचें तब आप हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो जाइएगा। यदि वे पूछें कि तुमको किसने मेरा पता बतलाया है तो कह दीजिएगा कि नारद से मुझे आपका वृत्तान्त मालूम हुआ है। यह सुनकर यदि वे मेरे पास आने की इच्छा से मेरी खोज करें तो आप निडर होकर कह दीजिएगा कि नारद अग्नि में प्रविष्ट हो गये हैं।



अब महाराज मरुत्त नारदजी को प्रणाम करके काशी को गये। वहाँ उन्होंने विश्वेश्वर के मन्दिर के द्वार पर एक मुर्दा रख दिया। महर्षि संवर्त, दर्शन के लिए, वहाँ आये और मुर्दे को

देखकर झट लौट पड़े। महाराज मरुत्त भी हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे चले। महर्षि संवर्त को निर्जन स्थान में पाकर महाराज मरुत्त जब हाथ जोड़कर उनके सामने आये तब महर्षि उन पर धूल-कीचड़ फेंकने और थूकने लगे। किन्तु महाराज मरुत्त इसकी कुछ परवा न करके उनको प्रसन्न करने के लिए उनके पीछे लगे रहे। इसके बाद महर्षि संवर्त थककर एक भारी बरगद की छाया में बैठ गये। तब महाराज मरुत्त हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये। ३३

सातवाँ अध्याय

संवर्त और मरुत्त की बातचीत। संवर्त का मरुत्त से अपने अनुकूल बने रहने का वादा कराकर यज्ञ करा देने की प्रतिज्ञा करना

महर्षि संवर्त ने महाराज मरुत्त से पूछा—राजन्, यदि आप मेरे हितैषी हैं तो बतलाइए कि आपको किसने मेरा परिचय दिया है। सच्ची बात कह देने से आपके सब मनोरथ सफल होंगे और झूठ बोलने से तो आपके सिर के सौ टुकड़े हो जायँगे।

मरुत्त ने कहा—भगवन्, मैंने मार्ग में देवर्षि नारद से आपका वृत्तान्त सुना है। आप मेरे गुरु-पुत्र हैं। आपका परिचय पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ।

संवर्त ने कहा—राजन्, आप ठीक कहते हैं। नारदजी मुझे यज्ञ कराने में निपुण समझते हैं। इस समय नारदजी हैं कहाँ?

मरुत्त ने कहा—भगवन्, देवर्षि नारद आपका पता बतलाकर और मुझे आपके पास आने की आज्ञा देकर अग्नि में प्रविष्ट हो गये।

महर्षि संवर्त ने उनको डाँटकर कहा—राजन्, मैं यज्ञ तो करा सकता हूँ; किन्तु मैं वायु-रोग से पीड़ित और विकृत-वेषधारी हूँ। इसके सिवा मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता; फिर आप मुझसे यज्ञ कराने की इच्छा क्यों करते हैं? मेरे बड़े भाई बृहस्पति इन्द्र को यज्ञ कराते हैं। वे यज्ञ कराने में बड़े चतुर हैं; अतएव आप उनसे यज्ञ करा लीजिए। वे मेरे पूज्य हैं इसलिए यदि मैं आपका यज्ञ कराने का इरादा भी करूँगा तो उनकी आज्ञा के बिना मैं यह काम नहीं कर सकता। यदि आप मुझसे ही यज्ञ कराना चाहते हैं तो बृहस्पति के पास जाकर उनकी आज्ञा ले आइए। १२

मरुत्त ने कहा—ब्रह्मन्, मैं पहले बृहस्पतिजी के ही पास गया था। इन्द्र उनके यजमान हैं, इसलिए वे मुझे यज्ञ नहीं करावेंगे। उन्होंने मुझसे कह दिया है—"मैं देवताओं का पुरोहित हूँ, मनुष्यों को यज्ञ नहीं कराऊँगा। इसके सिवा इन्द्र ने मुझे तुम्हारा यज्ञ कराने को मना कर दिया है। इन्द्र ने मुझसे कहा है कि राजा मरुत्त हमेशा मेरे साथ स्पर्धा करते हैं इसलिए आप उनको यज्ञ न कराइएगा।" ब्रह्मन्, आपके बड़े भाई बृहस्पतिजी ने इन्द्र के कहने से मुझे यज्ञ कराना स्वीकार नहीं किया। मैं बड़ी श्रद्धा के साथ उनके पास गया था, किन्तु इन्द्र के

अनुरोध से उन्होंने मुझे निराश कर दिया है। अब मैं अपना सर्वस्व दे करके भी आपसे यज्ञ कराना चाहता हूँ जिससे इन्द्र को झेंपना पड़े। बृहस्पतिजी के पास जाने की मेरी इच्छा नहीं है। उन्होंने बिना अपराध के ही मुझे निराश कर दिया है।

संवर्त ने कहा—राजन्, यदि आप मेरी इच्छा के अनुसार काम करने को राज़ी हो तो मैं आपके सब मनोरथ सफल कर दूँगा। मैं आपको यज्ञ कराऊँगा तो इन्द्र और बृहस्पति कुपित होकर मुझसे विरोध करेंगे। उस समय मेरा साथ देने का विश्वास दिलाइए। यदि आपने उस
२१ समय मेरा साथ छोड़ा तो मैं कुपित होकर आपको और आपके परिवार को चौपट कर डालूँगा।

मरुत्त ने कहा—भगवन्, यदि मैं आपका कभी त्याग करूँ तो जितने दिनों तक सूर्य तपते रहें और जब तक पर्वत मौजूद रहें तब तक मुझे नरक भोगना पड़े; मैं न तो अच्छी बुद्धि प्राप्त कर सकूँ और न विषय-वासना को छोड़ सकूँ।

संवर्त ने कहा—राजन्, आपकी बुद्धि ऐसी ही बनी रहे। अब मैं आपको यज्ञ करने के लिए कुछ उपदेश देता हूँ। मैं जैसे श्रेष्ठ और अक्षय यज्ञ के सामान का उपदेश देता हूँ वैसा सब सामान यदि आप एकत्र करेंगे तो गन्धर्वों समेत इन्द्र आदि देवताओं को अवश्य परास्त कर देंगे। मुझे धन या यज्ञ की और कोई वस्तु पाने का लोभ नहीं है; मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरे भाई
२७ बृहस्पति को और इन्द्र को नीचा देखना पड़े और आप इन्द्र के तुल्य हो जायँ।

आठवाँ अध्याय

संवर्त का मरुत्त को, मुञ्जवान् पर्वत पर जाकर महादेवजी को प्रसन्न करके सुवर्ण लाने का, उपदेश देना और यह सब हाल सुनकर इन्द्र का बृहस्पति के पास जाना

संवर्त ने कहा—राजन्, अब मैं यज्ञ का सामान एकत्र करने का उपाय बतलाता हूँ। हिमालय के समीप मुञ्जवान् नाम का एक पर्वत है। उस पर्वत पर, उसके शिखरों पर और उसकी गुफाओं में शङ्करजी पार्वती के साथ विहार करते हैं। रुद्र, साध्य, विश्वेदेवा, वसु, भूत, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, देवर्षि, आदित्य, मरुत् और राक्षसगण तथा यम, वरुण, कुबेर और अश्विनीकुमार हमेशा उनकी उपासना करते हैं। कुबेर के कुरूप अनुचरों के साथ शङ्करजी क्रीड़ा करते हैं। भगवान् शङ्कर का स्वरूप प्रातःकाल के सूर्य के रङ्ग का है। उनके रूप, आकार, तेज, तप और वीर्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता। वे मुञ्जवान् पर्वत पर निवास करते हैं, इसी कारण उस पर्वत पर सर्दी, गर्मी, आँधी, सूर्य का प्रचण्ड तेज, बुढ़ापा, भूख-प्यास, मृत्यु और भय नहीं है। उस पर्वत पर सूर्य की किरणों के सदृश चमकीली सोने
११ की ढेरी है। कुबेर के अनुचर हमेशा उसकी रक्षा करते हैं। आप उस पर्वत पर जाकर भगवान् शङ्कर की इस प्रकार स्तुति कीजिए—हे देवादिदेव! आप सर्ववेधा, रुद्र, शितिकण्ठ,

सुवर्चा, कपर्दी, कराल, हरिचक्षु, वरद, त्रिनयन, पूषा के दाँत उखाड़नेवाले, वामन, शिव, याम्य,
अव्यक्तरूप, सद्वृत्त, शङ्कर, क्षेम्य, हरिकेश, स्थाणु, पुरुष, हरिनेत्र, मुण्ड, क्रुद्ध, उत्तारण, भास्कर,
सुतीर्थ, देवदेव, वेगवान्, उष्णीषधारी, सुवक्त्र, सहस्राक्ष, कामपूरक, गिरीश, प्रशान्त, यति, चीर-
वासा, बिल्वदण्डधारी, सिद्ध, सर्वदण्डधर, मृगव्याध, महान्, धनुर्धारी, भव, वर, सोमवक्त्र, सिद्ध-
मन्त्र, चक्षुस्वरूप, हिरण्यबाहु, उग्र, दिक्पति, लेलिहान, गोष्ठ, वृष्णि, पशुपति, भूतपति, वृष, मातृ-
भक्त, सेनानी, मध्यम, स्रुवहस्त, पति, भार्गव, अज, कृष्णनेत्र, विरूपाक्ष, तीक्ष्णदंष्ट्र, तीक्ष्ण, वैश्वानर- २०
मुख, महाद्युति, अनङ्ग, सर्वस्वरूप, विशांपति, विलोहित, दीप्त, दीप्ताक्ष, महौजा, वसुरेता, सुवपु,
पृथु, कृत्तिवासा, कपालमालाधारी, सुवर्णमुकुटधारी, महादेव, कृष्ण, त्र्यम्बक, अनघ, क्रोधन, नृशंस,
मृदु, बाहुशाली, उग्र, दण्डी, तप्ततपा, अक्रूरकर्मा, सहस्रशिरा, सहस्रचरण, त्रिपुरहन्ता, सुधारूप,
बहुरूप, दंष्ट्री, पिनाकी, महायोगी, अव्यय, त्रिशूलहस्त, वरद, त्र्यम्बक, भुवनेश्वर, त्रिलोकेश, महौजा,
सब प्राणियों के सृष्टिकर्ता, धारण, धरणीधर, ईशान, शङ्कर, शिव, विश्वेश्वर, भव, उमापति, पशुपति,
विश्वरूप, महेश्वर, विरूपाक्ष, दशभुज, दिव्यवृषध्वज, उग्र, स्थाणु, रौद्र, गौरीश्वर, ईश्वर, शुक्र, पृथुहर, ३०
वर और चतुर्मुख हैं; आपको नमस्कार है। इस प्रकार उन सनातन देवादिदेव को प्रणाम करके
उनके शरणागत होने से आपको वह सुवर्ण-राशि अवश्य मिल जायगी। तब आप उस सोने से
यज्ञ के श्रेष्ठ पात्र बनवा सकेंगे। अतएव आप शीघ्र अपने सेवकों को सुवर्ण लाने के लिए मुञ्ज-
वान् पर्वत पर जाने की आज्ञा दीजिए और आप भी वहाँ जाइए।

महात्मा संवर्त का यह उपदेश सुनकर महाराज मरुत्त मुञ्जवान् पर्वत पर गये और भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करके वह सुवर्ण-राशि ले आये। फिर वे यज्ञ की तैयारी करने लगे। सुनार सुवर्णमय पात्र बनाने लगे। उधर देवताओं के पुरोहित बृहस्पति को महाराज मरुत्त के देवदुर्लभ महान् यज्ञ के आरम्भ का वृत्तान्त सुनकर बड़ा सन्ताप हुआ। उनके भाई संवर्त यह यज्ञ करावेंगे और इस यज्ञ में अतुल दान पाकर वे महासमृद्धिशाली हो जायँगे, इसकी जलन से वे दिनों दिन दुबले और पीले होने लगे। यह हाल सुनकर इन्द्र बृहस्पति के पास गये और उनके उस सन्ताप का कारण पूछने लगे। ३८

नवाँ अध्याय

इन्द्र और बृहस्पति की बातचीत। इन्द्र का बृहस्पति को अग्नि के साथ मरुत्त के पास भेजना। मरुत्त से इन्द्र का सन्देश कहकर अग्नि का फिर इन्द्र के पास आना

इन्द्र ने कहा—आचार्य, आपकी नींद में विघ्न तो नहीं पड़ता? सेवक आपकी यथोचित सेवा करते हैं न? आप सदा देवताओं का भला मनाते हैं न? और देवता आपका भली भाँति पालन करते हैं न?

बृहस्पति ने कहा—देवराज, मैं बेखटके सोता हूँ। सेवक भी मेरी यथोचित सेवा करते और मुझे प्रसन्न रखते हैं। मैं सदा देवताओं के सुख की कामना करता हूँ और देवता भी मेरा पालन करते हैं।

इन्द्र ने कहा—आचार्य, तो फिर आपका मुख पीला क्यों पड़ गया है? आपके शारीरिक और मानसिक दुःख का क्या कारण है? ठीक-ठीक बतलाइए। आपके दुःख को मैं अवश्य दूर कर दूँगा।

बृहस्पति ने कहा—देवराज, मैंने सुना है कि राजा मरुत्त ने महान् यज्ञ करने की तैयारी की है। मेरे भाई संवर्त उस यज्ञ के ऋत्विक् होंगे। मैं चाहता हूँ कि संवर्त मरुत्त को यज्ञ न करावें।

इन्द्र ने कहा—आचार्य, आप देवताओं के पुरोहित हैं। आपकी सब इच्छाएँ पूरी हो चुकी हैं। आपने अपने प्रभाव से मौत और बुढ़ापे को जीत लिया है। संवर्त आपका क्या बिगाड़ सकते हैं?

बृहस्पति ने कहा—देवराज, तुम किसी दानव की उन्नति होते देखते हो तो सब देवताओं को साथ लेकर उसका संहार कर डालते हो। अतएव शत्रु की बढ़ती देखने से जो दुःख होता है वह तुमसे छिपा नहीं है। संवर्त मेरे शत्रु हैं, इस समय उनकी उन्नति देखकर मुझे बड़ा दुःख है। मेरे पीले पड़ जाने का यही कारण है। अतएव किसी उपाय से, संवर्त और मरुत्त, दोनों में से किसी एक को क़ैद कर लो।

यह सुनकर इन्द्र ने अग्नि से कहा—अग्निदेव, आप बृहस्पति को राजा मरुत्त के पास ले जाकर उनसे कहिए कि यदि बृहस्पति आपका यज्ञ करावेंगे तो आपको अमर कर देंगे।

"देवराज, मैं दूत-वेष धारण करके आपकी आज्ञा से बृहस्पति को राजा मरुत्त के पास ले जाऊँगा।" यह कहकर अग्निदेव, ग्रीष्मकाल के प्रचण्ड वायु के समान, वन-उपवनों को
१० उजाड़ते हुए बृहस्पति को साथ लेकर मरुत्त के पास गये।

महाराज मरुत्त ने अग्नि को आया हुआ देखकर संवर्त से कहा—महर्षि, यह बड़ी अद्भुत बात है कि आज अग्निदेव अपने आप मेरे यज्ञस्थल में आ गये। आप शीघ्र इनको आसन, पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्क दीजिए।

अग्नि ने कहा—राजन्, मैं आपके कहने से ही आसन और पाद्य आदि पा चुका। मैं आपसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। मैं इन्द्र का सँदेसा लेकर आया हूँ।

मरुत्त ने पूछा—भगवन्, देवराज इन्द्र प्रसन्न हैं न? वे मुझसे सन्तुष्ट तो हैं? देवता उनकी आज्ञा का पालन करते हैं न?

अग्नि ने कहा—राजन्, इन्द्र बड़े सुख से हैं। वे आपसे पक्की मित्रता करना चाहते हैं। देवता उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करते। उन्होंने मुझे आपके पास बृहस्पति को पहुँचाने के लिए भेजा है। देवताओं के गुरु बृहस्पति आपको, यज्ञ कराकर, अमर कर देंगे।

मरुत्त ने कहा—महात्मन्, महर्षि संवर्त मुझे यज्ञ करा देंगे। मैं बृहस्पति से हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ कि वे देवराज के पुरोहित बने रहें; मृत्यु के वशीभूत मुझ मरुत्त को यज्ञ न करावें। यह इनके लिए शोभा नहीं देता।

अग्नि ने कहा—राजन्, यदि आप बृहस्पति को अपना ऋत्विक् बनाकर यज्ञ करेंगे तो निस्सन्देह यशस्वी होकर मृत्युलोक और प्रजापतिलोक को जीत लेंगे और इन्द्र की कृपा से आपको स्वर्ग में कोई लोक दुर्लभ नहीं रहेगा।

अग्निदेव मरुत्त को इस प्रकार प्रलोभन दे रहे थे, इतने में महर्षि संवर्त ने कुपित होकर उनसे कहा—देखो, तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ। यदि फिर कभी बृहस्पति को साथ लेकर मरुत्त के पास आओगे तो मैं क्रोध की दृष्टि से तुमको भस्म कर दूँगा।

महर्षि संवर्त के ये क्रोधपूर्ण वचन सुनकर अग्निदेव डर के मारे, पीपल के पत्ते की तरह,
काँपने लगे। वे बृहस्पति को साथ लेकर वहाँ से चल दिये और देवसभा में जा पहुँचे। इन्द्र २०
ने उनको देखते ही पूछा—अग्निदेव, मैंने मरुत्त के पास बृहस्पति को पहुँचा आने के लिए आपको भेजा था। फिर आप क्यों उनके साथ लौट आये? राजा मरुत्त ने आपसे क्या कहा है?

अग्नि ने कहा—राजन्, राजा मरुत्त ने मेरी बात नहीं मानी। उन्होंने, बड़ी नम्रता से, बृहस्पति को पुरोहित बनाना अस्वीकार कर दिया। मैंने बार-बार उनसे कहा कि आप बृहस्पति को ऋत्विक् बनाइए; किन्तु किसी तरह वे राज़ी न हुए। उन्होंने कहा कि 'मुझे यज्ञ संवर्त ही करावेंगे। बृहस्पति के यज्ञ कराने से चाहे मुझे श्रेष्ठ मनुष्यलोक और सम्पूर्ण प्रजापतिलोक मिलने की आशा क्यों न हो, तो भी मैं उनसे यज्ञ न कराऊँगा'।

इन्द्र ने कहा—अग्निदेव, आप एक बार फिर मरुत्त के पास जाकर मेरी ओर से प्रार्थना कीजिए। यदि वे मेरी बात भी न मानेंगे तो मैं उनको वज्र मारूँगा।

अग्नि ने कहा—देवराज, अब गन्धर्वराज धृतराष्ट्र को मरुत्त के पास भेजिए। मैं वहाँ जाते डरता हूँ। ब्रह्मचारी महर्षि संवर्त ने कुपित होकर मुझसे कहा है कि यदि तुम मरुत्त के पास बृहस्पति को लेकर फिर आओगे तो मैं तुमको क्रोध की दृष्टि से भस्म कर डालूँगा।

इन्द्र ने कहा—अग्निदेव, भस्म करने की शक्ति आपमें ही है। आपके सिवा कोई किसी को भस्म नहीं कर सकता। आपके स्पर्श से सब कोई डरता है, अतएव संवर्त के आपको भस्म कर डालने की बात पर मुझे विश्वास नहीं होता।

अग्नि ने कहा—देवराज! आप अपनी सेना लेकर पृथिवी और स्वर्गलोक को अधीन कर सकते हैं, फिर वृत्रासुर ने किस तरह आपसे स्वर्गलोक छीन लिया था?

इन्द्र ने कहा—अग्निदेव, मैं साधारण युद्ध में ऐरावत को नहीं भेजता हूँ। न तो मैं शत्रु का दिया हुआ सोमरस पीता हूँ और न दुर्बल पर वज्र का प्रहार करता हूँ। मैंने अपने

बाहुबल से, पृथिवी से कालकेयगण को, अन्तरिक्ष से दानवों को और स्वर्ग से प्रह्लाद को भगा दिया है। अतएव मृत्युलोक में कोई मनुष्य मेरे साथ शत्रुता करके मुझ
३० पर अस्त्र चलाने की शक्ति नहीं रखता।

अग्नि ने कहा—देवराज, राजा शर्याति के यज्ञ का स्मरण कीजिए। उस यज्ञ में ऋत्विक् होकर महर्षि च्यवन ने जब अश्विनीकुमारों के साथ सोमरस पिया था तब आपने उनको ऐसा करने से रोका था। किन्तु उन्होंने आपकी बात को सुना तक नहीं। उस समय महर्षि च्यवन द्वारा अपमानित होकर आप उन पर वज्र चलाने को तैयार हुए थे, किन्तु किसी तरह उन पर वज्र का प्रहार न कर सके। महर्षि च्यवन ने क्रुद्ध होकर अपने तपोबल से आपकी भुजा स्तम्भित कर मद नाम का एक भयङ्कर दानव उत्पन्न कर दिया था। उस दानव का भीषण स्वरूप देखकर आपने आँखें मूँद ली थीं। उसके सौ योजन लम्बे एक हज़ार दाँत और चाँदी के खम्भों के समान दो सौ योजन लम्बी उसकी चार दाढ़ें देखकर किसको भय नहीं हुआ था? वह दानव भारी शूल लेकर आपको मारने के लिए दौड़ा था। तब आप उस भयङ्कर दानव के डर के मारे हाथ जोड़कर महर्षि च्यवन की शरण में गये थे। मतलब यह कि क्षत्रिय-बल की अपेक्षा ब्रह्मबल श्रेष्ठ है। मैं ब्रह्मतेज को भली भाँति जानता हूँ,
३७ अतएव मैं संवर्त को जीतने की इच्छा तक नहीं करता।

दसवाँ अध्याय

इन्द्र का गन्धर्वराज को मरुत्त के पास भेजकर उनको धमकाना; फिर कुपित होकर मरुत्त पर वज्र-प्रहार करने का विचार करना। संवर्त द्वारा उनके उद्योगों का निष्फल होना

"अग्निदेव, यह तो ठीक है कि ब्रह्मबल अत्यन्त श्रेष्ठ है और ब्राह्मणों की अपेक्षा दूसरा कोई श्रेष्ठ नहीं है; किन्तु मरुत्त के पराक्रम को मैं किसी तरह नहीं सह सकता। मैं उन पर वज्र का प्रहार अवश्य करूँगा।" इन्द्र ने अग्नि से यों कहकर गन्धर्वराज धृतराष्ट्र से कहा—धृतराष्ट्र, आप मरुत्त के पास जाकर संवर्त के सामने उनसे कहिए कि महाराज! आप बृहस्पति को अपने यज्ञ का ऋत्विक् बनाइए, नहीं तो इन्द्र आपको वज्र से मार डालेंगे।

आज्ञा पाकर गन्धर्वराज धृतराष्ट्र ने महाराज मरुत्त के पास जाकर कहा—महाराज, मेरा नाम धृतराष्ट्र है। मैं गन्धर्व हूँ। लोकाधिपति इन्द्र ने जिस काम के लिए मुझे आपके पास भेजा है उसको सुनिए। उन्होंने कहा है—'यदि आप बृहस्पति को अपने यज्ञ का ऋत्विक् नहीं बनावेंगे तो मैं आपको वज्र मारूँगा'।

मरुत्त ने कहा—गन्धर्वराज, मित्रद्रोही को ब्रह्महत्या के समान घोर पाप लगता है और उस पाप से उसे कभी छुटकारा नहीं मिलता। यह बात आप, इन्द्र, विश्वेदेवा, वसुगण, अश्विनीकुमार और मरुद्गण सभी जानते हैं। अतएव मैं अपने परम मित्र संवर्त को छोड़कर बृहस्पति को अपना पुरोहित नहीं बना सकता। देवताओं के गुरु बृहस्पति वज्रधारी इन्द्र की पुरोहिती करें। महात्मा संवर्त ही मुझे यज्ञ करावेंगे।

"महाराज! यह देखिए, इन्द्र आप पर वज्र का प्रहार करने के लिए आकाश में सिंहनाद कर रहे हैं। अब आप अपनी रक्षा का उपाय कीजिए।" धृतराष्ट्र के यों कहने पर महाराज मरुत्त ने आकाश में इन्द्र का सिंहनाद सुनकर महातपस्वी श्रेष्ठ धर्मज्ञ महात्मा संवर्त से कहा—भगवन्, देवराज बहुत दूर हैं इसलिए मैं उनको नहीं देख सकता; किन्तु यदि वे वज्र का प्रहार करेंगे तो मेरी मृत्यु अवश्य हो जायगी, अतएव आप मेरी रक्षा का उपाय कीजिए। वह देखिए, देवराज वज्र धारण किये, सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए आ रहे हैं। उनके घोर नाद से यज्ञशाला के सब लोग घबरा गये हैं।

संवर्त ने कहा—महाराज, इन्द्र से आप न डरें। मैं अभी स्तम्भन-विद्या द्वारा उनके सब काम रोक करके आपका भय दूर किये देता हूँ। मैं देवताओं के अस्त्रों को नष्ट कर सकता हूँ। चाहे दसों दिशाओं में वज्र गिरे, आँधी चले, मूसलधार वृष्टि से वन डूब जायँ, समुद्र में तूफ़ान आवे और आकाश में बिजली चमके, पर आप इनसे रत्ती भर भी न डरें। अग्नि आपका कल्याण करें या न करें, इन्द्र आपकी इच्छाएँ पूरी करें अथवा वज्र का प्रहार करें, इन बातों की आप तनिक भी चिन्ता न करें।

मरुत्त ने कहा—भगवन्, वायु के भीषण शब्द के साथ इन्द्र के वज्र का शब्द सुनकर मेरा हृदय काँप रहा है। मैं किसी तरह धैर्य नहीं धर सकता।

संवर्त ने कहा—महाराज, इन्द्र के भीषण वज्र से आप न डरें। मैं वायुरूप होकर अभी इस वज्र को निष्फल किये देता हूँ। अब आप डर छोड़ दीजिए। बतलाइए, मैं अपने तपोबल से आपका क्या काम करूँ।

मरुत्त ने कहा—भगवन्, अब इन्द्र और अन्य सब देवता यज्ञभूमि में आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ जायँ और अपना-अपना यज्ञ-भाग ग्रहण करें।

यह सुनकर महर्षि संवर्त ने मन्त्र पढ़कर इन्द्र आदि देवताओं का आवाहन किया और मरुत्त से कहा—महाराज! वह देखिए, रथ पर सवार देवराज इन्द्र देवताओं समेत मन्त्र के प्रभाव से यज्ञभूमि में आ रहे हैं।

उनके यों कहते ही यज्ञ में सोमरस पीने के अभिलाषी देवराज इन्द्र, सब देवताओं के साथ, यज्ञस्थल में आ पहुँचे। देवताओं समेत इन्द्र को देखकर महाराज मरुत्त ने और पुरो-

हित महर्षि संवर्त ने खड़े होकर उनका सम्मान किया। महात्मा संवर्त ने इन्द्र का स्वागत करके कहा—देवराज, आपके आगमन से यज्ञ की शोभा बढ़ गई। अब आप सोमरस पीजिए।

महाराज मरुत्त ने इन्द्र से कहा—भगवन्, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मुझ पर दयाभाव रखिए। आज आपके आगमन से मेरा यज्ञ और जीवन सफल हो गया। बृहस्पति के छोटे भाई महर्षि संवर्त मेरा यज्ञ करा रहे हैं।

इन्द्र ने कहा—महाराज, इन महातेजस्वी भगवान् संवर्त का माहात्म्य मैं जानता हूँ। आज मैं इन्हीं के आवाहन करने से, क्रोध छोड़कर, प्रसन्नता से आपके यज्ञ में आया हूँ।



संवर्त ने कहा—देवराज, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यथायोग्य सब भागों की कल्पना कीजिए और यज्ञ में करने न करने योग्य कामों के विषय में उपदेश दीजिए।

यह सुनकर देवराज इन्द्र ने देवताओं से कहा—हे देवताओ, तुम झटपट स्वर्ग की सभा के समान अति समृद्ध विचित्र सभा तैयार करो। उस सभा में असंख्य स्तम्भ हों और अप्सराओं तथा गन्धर्वों के नाचने-गाने का भी स्थान हो। सभा तैयार हो जाने पर गन्धर्वों का गाना और अप्सराओं का नाच कराओ।

आज्ञा पाते ही देवताओं ने वैसा ही किया। इसके बाद इन्द्र ने प्रसन्न होकर मरुत्त से कहा—महाराज, आपके पितरों और सब देवताओं समेत मैं आपके यज्ञ में भाग लेने के लिए तैयार हूँ। अब ब्राह्मण लोग अग्नि की प्रसन्नता के लिए लाल बकरे का, वैश्वदेव की प्रसन्नता के लिए रङ्ग-बिरङ्गे बकरे का और अन्य
३० देवताओं के लिए नीले रङ्ग के बैल का बलिदान करें।

इन्द्र के यह कहने पर यज्ञ का उत्सव बढ़ने लगा। देवता स्वयं भोजन परोसने और इन्द्र सदस्य का काम करने लगे।

अब अग्नि के समान तेजस्वी महात्मा संवर्त, देवताओं के नाम ले-लेकर, अग्नि में आहुतियाँ देने लगे। पहले इन्द्र और उसके बाद अन्य देवताओं ने, सोमरस पी करके प्रसन्नता से अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया। तब महाराज मरुत्त यज्ञभूमि के अनेक स्थानों में सुवर्ण

के ढेर लगाकर ब्राह्मणों को दान करने लगे। उतना सुवर्ण ले जाने मे असमर्थ ब्राह्मण लाचार होकर, बहुत सा हिस्सा वहीं छोड़कर, जितना ले जा सके उतना ले गये।

इस प्रकार, महाराज मरुत्त यज्ञ समाप्त करके, ब्राह्मणों के छोड़े हुए उस सोने का एक स्थान पर ढेर लगाकर, गुरु की आज्ञा से अपनी राजधानी को चले आये और सारी पृथिवी का राज्य करने लगे।

हे धर्मराज, महाराज मरुत्त ऐसे ही प्रभावशाली थे। उनके यज्ञ में बहुत सा सोना एकत्र किया गया था। अब तुम वह सब सोना उठवा मँगाओ और अश्वमेध यज्ञ करके देव-ताओं को सन्तुष्ट करो। व्यासजी का यह उपदेश सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर, यज्ञ करने का
विचार करके, अपने मन्त्रियों के साथ सलाह करने लगे। ३७

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से अहङ्कार और जीवात्मा के युद्ध का वर्णन करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! महर्षि वेदव्यास के उपदेश दे चुकने पर, राहुग्रस्त सूर्य के समान, धुआँ निकलते हुए अग्नि के समान, बन्धु-बान्धवों का विनाश हो जाने के कारण शोक से व्याकुल धर्मराज युधिष्ठिर को श्रीकृष्णचन्द्र समझाने लगे—धर्मराज, 'कुटिलता मृत्यु का और सरलता ब्रह्म की प्राप्ति का कारण है' यह बात जिसकी समझ में आ जाय वही यथार्थ ज्ञानी है। इसके सिवा और सब बकवाद है। अभी आपका कोई काम सिद्ध नहीं हुआ। अभी तो आप अपने शत्रुओं को भी नहीं जीत सके हैं। आपके शरीर में जो आपका शत्रु अभी तक घुसा हुआ है उसे आप क्यों नहीं देखते? जीव के साथ अहङ्कार का जो युद्ध हुआ था उसका मैं वर्णन करता हूँ।

प्राचीन समय में अहङ्कार ने जीवात्मा को (पृथिवी से उत्पन्न) घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत करके सुगन्ध लेने के भोग में लगा दिया था। तब जीवात्मा ने क्रुद्ध होकर अहङ्कार को, विवेक-रूप अस्त्र का प्रहार करके, दूर भगा दिया। उसके बाद अहङ्कार ने जीवात्मा को (जल से
उत्पन्न) रसना-इन्द्रिय के वशीभूत करके रसास्वादन के लिए उत्सुक किया। यह देखकर १०
जीवात्मा ने विवेकरूप अस्त्र का प्रहार करके अहङ्कार को फिर खदेड़ दिया। तब अहङ्कार ने जीवात्मा को (तेज से उत्पन्न) नेत्र-इन्द्रिय के वशीभूत करके वस्तुओं के देखने में लगाया। जीवात्मा ने फिर विवेक-अस्त्र द्वारा उसे हटा दिया। इसके बाद अहङ्कार ने जीवात्मा को (वायु से उत्पन्न) त्वचा-इन्द्रिय के वशीभूत करके स्पर्श का अनुभव कराया। तब जीवात्मा ने विवेक-अस्त्र द्वारा उसे भी दूर कर दिया। फिर अहङ्कार ने (आकाश से उत्पन्न) कर्णेन्द्रिय के

वशीभूत करके जीव को शब्द सुनने में लगाया। जीवात्मा ने उसे भी विवेक-अस्त्र द्वारा भगा दिया। अन्त को अहङ्कार और कोई उपाय न देखकर जीवात्मा में प्रविष्ट हो गया। अहङ्कार के प्रविष्ट होते ही जीवात्मा मोह के वश हो गया। तब गुरु ने तत्त्वज्ञान के प्रभाव से जीवात्मा को बोध कराया। ज्ञान होने पर जीवात्मा ने विवेकरूपी वज्र द्वारा अहङ्कार को नष्ट कर दिया। हे धर्मराज, यह गुप्त विषय पहले इन्द्र ने ऋषियों को और
२० ऋषियों ने मुझे सुनाया है।

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को शारीरिक और मानसिक व्याधि का भेद बतलाकर उनसे छुटकारा पाने का उपाय बतलाना

श्रीकृष्ण ने कहा—धर्मराज, व्याधि दो प्रकार की है—शारीरिक और मानसिक। ये दोनों ही एक-दूसरे की सहायता से उत्पन्न होती हैं। शरीर में जो व्याधि होती है वह शारीरिक और मन में जो पीड़ा उत्पन्न होती है वह मानसिक व्याधि है। वात, पित्त, कफ ये तीनों शरीर के गुण (धातु) हैं। जब ये तीनों गुण सम भाव में रहते हैं तब शरीर चङ्गा रहता और जब इन गुणों में विषमता हो जाती है तब शरीर रुग्ण हो जाता है। पित्त की अधिकता से कफ और कफ की अधिकता से पित्त कम हो जाता है। शरीर की तरह आत्मा में भी तीन गुण हैं। उन गुणों का नाम है—सत्त्व, तम और रज।* इन तीनों गुणों के सम रहने पर आत्मा का स्वास्थ्य ठीक रहता है। और यदि इन तीनों में से किसी की कमी होती है तो दूसरे की अधिकता हो जाती है। हर्ष आने पर शोक और शोक आने पर हर्ष नष्ट हो जाता है। दुःख के समय क्या कोई सुख का अनुभव करता है और सुख के समय क्या किसी को दुःख का अनुभव हो सकता है? जो हो, अब सुख-दुःख दोनों का स्मरण करना आपको उचित नहीं। सुख-दुःख के परे परब्रह्म का स्मरण करना ही आपका कर्त्तव्य है। अथवा यदि सुख-दुःख को जीव का स्वभावसिद्ध कार्य समझकर आप उसका त्याग न कर सकें तो सभा के बीच रजस्वला द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचे जाने, मृगछाला पहनकर भाइयों समेत नगर से निकाले जाने, वनवास के क्लेश भोगने, जटासुर द्वारा द्रौपदी के हरण होने, चित्रसेन के साथ युद्ध, जयद्रथ द्वारा द्रौपदी के अपमान, अज्ञातवास और द्रौपदी को कीचक के
११ लात मारने का भी आपको स्मरण न करना चाहिए। भीष्म और द्रोण आदि के साथ आपका जो घोर संग्राम हो चुका है उससे भी बढ़कर युद्ध अब अहङ्कार के साथ आपको करना पड़ेगा। योग और उसके उपयोगी कार्यों के करने से आप इस युद्ध में विजय पावेंगे। इस युद्ध में न अस्त्र-शस्त्र काम आवेंगे, न सेना और भाइयों से ही सहायता मिलेगी। केवल मन की

सहायता से यह युद्ध करना होगा। इस युद्ध में पराजित होने से असीम दुःख भोगने पड़ेंगे। अतएव आप मेरे इस उपदेश के अनुसार अहङ्कार को जीतकर, शोक का त्याग करके, शान्त-चित्त होकर पैतृक राज्य का पालन कीजिए। १६

तेरहवाँ अध्याय

कामना को दुर्जय बतलाकर उसके जीतने का उपाय कहना

श्रीकृष्ण ने कहा—हे धर्मराज, केवल राज्य आदि का त्याग कर देने से सिद्धि नहीं मिल सकती। इन्द्रियों को जीत लेने पर भी सिद्धि के मिलने में सन्देह रहता है। जो मनुष्य राज्य आदि को त्यागकर भी मन ही मन विषय-भोग की इच्छा करते हैं उनका धर्म और सुख आपके शत्रुओं को प्राप्त हो। ममता संसार की प्राप्ति का और निर्ममता ब्रह्म की प्राप्ति का कारण है। यह विरुद्धधर्मावलम्बिनी ममता और निर्ममता सबके चित्त में गुप्त रूप से रह-कर एक-दूसरी को परास्त करने के लिए आक्रमण करती है। जो लोग जगत् की सत्ता को नित्य मान लेते हैं वे यदि किसी को प्राणों से विमुक्त कर दें तो उन्हें हिंसा का पाप नहीं लगता। जो मनुष्य सम्पूर्ण संसार का अधीश्वर होकर भी ममता का त्याग कर देता है वह संसार के बन्धन में नहीं रहता। और जो मनुष्य वन में फल-मूल खाकर निर्वाह तो कर लेता है, किन्तु विषय-वासना का त्याग नहीं कर सकता वह निस्सन्देह संसार के बन्धन में जकड़ा रहता है। अतएव आप इन्द्रियों और विषयों को मायामय समझ लें। जो मनुष्य इन सबसे ममता नहीं करता वह निस्सन्देह संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है। काम के वशी-भूत मूढ़ मनुष्य प्रशंसा के पात्र नहीं हो सकते। कामना मन से उत्पन्न होती है, वही प्रवृत्ति का मूल कारण है। जो महात्मा अनेक जन्मों के अभ्यास से कामना को अधर्मरूप समझकर फल पाने की इच्छा से दान, वेदाध्ययन, तपस्या, व्रत, यज्ञ, विविध नियम, ध्यानमार्ग और योगमार्ग का आश्रय नहीं करते वही कामना को जीत सकते हैं। इच्छाओं का जीत लेना ही यथार्थ धर्म और मोक्ष का बीजस्वरूप है। ११

प्राचीन पण्डितों ने जो 'कामगीता' का वर्णन किया है वह आपसे कहता हूँ। कामना ने स्वयं कहा है कि निर्ममता और योगाभ्यास के सिवा मेरे जीतने का दूसरा उपाय नहीं है। जो मनुष्य जप आदि के द्वारा मुझे जीतने का उद्योग करता है उसके मन में अभिमान के साथ उत्पन्न होकर मैं उसके कर्मों को विफल कर देती हूँ। जो मनुष्य यज्ञ करके मुझे पराजित करना चाहता है उसके मन में मैं उसी तरह उत्पन्न होती हूँ जिस तरह शरीर में जीवात्मा प्रविष्ट रहता है। वेद-वेदान्त का मनन करके मुझे जो मनुष्य अपने वश में रखना चाहता है उसके मन में, स्थावर प्राणियों में जीवात्मा की तरह, मैं गुप्त रूप से निवास करती हूँ। जो

मनुष्य मुझे धैर्य द्वारा जीतना चाहता है उसके मन से मैं कभी नहीं हटती। जो मनुष्य तपस्या करके मुझे परास्त करने का यत्न करता है उसकी तपस्या में ही मैं उत्पन्न हो जाती हूँ और जो मनुष्य मोक्षार्थी होकर मुझे जीतना चाहता है उसे देखकर मुझे हँसी आती है और मैं नाचने लगती हूँ। बुद्धिमान् पुरुष मुझे अविनाशी कहते हैं।

हे धर्मराज, यह मैंने आपसे कामगीता का वर्णन किया। इच्छाओं को जीत लेना बहुत कठिन है, अतएव आप विधिपूर्वक अश्वमेध और अन्यान्य यज्ञ करके इच्छाओं को धार्मिक कामों में लगाइए। बार-बार भाई-बन्धुओं को याद करके दुखी होना ठीक नहीं। युद्ध में मरे हुए लोगों से आप शोक करके भेंट नहीं कर सकते, अतएव अब समारोह के साथ
२२ सब यज्ञ कीजिए। इसी से इस लोक में कीर्ति होगी और परलोक में श्रेष्ठ गति मिलेगी।

चौदहवाँ अध्याय

व्यास आदि महर्षियों का युधिष्ठिर को समझाकर अन्तर्धान हो जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! श्रीकृष्ण, वेदव्यास, देवस्थान, नारद, भीमसेन, द्रौपदी, नकुल, सहदेव, अर्जुन और अन्यान्य शास्त्र-ज्ञान-सम्पन्न मनुष्यों के समझाने से धर्मराज युधिष्ठिर का शोक दूर हो गया। वे फिर आत्मीय जनों की और्ध्वदैहिक क्रिया तथा देवताओं और ब्राह्मणों का यथोचित सम्मान करके शान्त चित्त से राज्य करने लगे। एक दिन महर्षि वेदव्यास, नारद और अन्यान्य ऋषियों से फिर उन्होंने कहा—हे महर्षियो! आप लोगों के उपदेश से मेरा शोक दूर हो गया है, अब मुझे रत्ती भर भी दुःख नहीं है। हे पितामह वेदव्यासजी, आपने मुझे बहुत सा धन प्राप्त होने का उपाय बतलाया था। मैं उस धन को लाकर यज्ञ करना चाहता हूँ। अब मैं आपके प्रभाव से सुरक्षित रहकर, अनेक अद्भुत पदार्थों से परिपूर्ण, हिमालय पर्वत पर जाने का विचार करता हूँ। देवर्षि नारद, देवस्थान और आपने मुझे अनेक
१० प्रकार के सदुपदेश दिये हैं। दूसरे किसी अभागे को इस प्रकार के दुःख में डूबने पर कभी आप लोगों के समान उपदेष्टा नहीं मिल सकते।

अब वेदव्यास आदि महर्षि—युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुन से बिदा माँगकर—सबके सामने ही अन्तर्धान हो गये। इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म और कर्ण आदि के पारलौकिक कल्याण के लिए ब्राह्मणों को बहुत दान देकर, क्रिया-कर्म से निवृत्त होकर, धृतराष्ट्र के साथ हस्तिनापुर में प्रवेश किया। फिर वे प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र को दिलासा देकर
१७ भाइयों के साथ राज्य करने लगे।



पन्द्रहवाँ अध्याय

हस्तिनापुर में श्रीकृष्ण का अर्जुन से द्वारका को जाने की अनुमति माँगना

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन्, पाण्डवों के विजयी होने और राज्य में शान्ति स्थापित हो जाने पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने क्या किया ?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, संग्राम में विजय पाने पर श्रीकृष्ण और अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। जिस तरह अश्विनीकुमार प्रसन्नता से नन्दन वन में विचरते हैं उसी तरह श्रीकृष्ण और अर्जुन विचित्र वन, पर्वत की चोटी, तीर्थ, तालाब और नद-नदी आदि रमणीय स्थानों में घूमने लगे। फिर इन्द्रप्रस्थ को लौट आये और सभा में बैठकर, कथा के प्रसङ्ग से, युद्ध के वृत्तान्त तथा ऋषियों और देवताओं के वंश का वर्णन करने लगे। उसी समय श्रीकृष्ण
ने युद्ध में हज़ारों आत्मीय जनों और पुत्र के मरने का शोक दूर करने के लिए अर्जुन से कहा— ११
धनञ्जय! धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हारे बाहुबल और भीमसेन, नकुल तथा सहदेव के पराक्रम से ही इस घोर संग्राम में विजयी हुए हैं। धर्म के अनुसार चलने से ही यह अकण्टक राज्य प्राप्त हुआ और धर्म के ही बल से दुर्योधन मारा गया है। धृतराष्ट्र के सब पुत्र राज्य के लोभी, अधर्मी, दुष्ट और अप्रियवादी थे; वे सब मारे गये। अब राजा युधिष्ठिर तुम्हारे द्वारा सुरक्षित रहकर अकण्टक साम्राज्य का सुख भोग रहे हैं। तुम्हारे साथ घर में रहने की कौन कहे, वन में रहने पर भी मैं बहुत प्रसन्न रहता हूँ। धर्मराज युधिष्ठिर, महावीर भीमसेन, नकुल और सहदेव जहाँ रहते हैं वहीं रहने में मुझे भी प्रसन्नता है। मैं तुम्हारे साथ इस स्वर्गतुल्य परम पवित्र रमणीय सभा में बहुत दिन रह चुका। बहुत दिन से मैंने बलदेवजी,
अपने पुत्रों और अन्य वृष्णिवंशियों को नहीं देखा है। अतएव अब द्वारका को जाना २०
चाहता हूँ। कहो तो अब मैं द्वारका को जाऊँ। धर्मराज युधिष्ठिर यद्यपि मुझसे बड़े हैं, इसलिए वे मेरे उपदेष्टा हैं, किन्तु जिस समय भीष्मदेव उनको उपदेश दे रहे थे उस समय मैंने भी उनको अनेक उपदेश दिये थे। उन्होंने बड़ी गम्भीरता से मेरा उपदेश सुन लिया। वे धार्मिक, कृतज्ञ, सत्यवादी, बुद्धिमान् और गम्भीर हैं। उचित समझो तो तुम धर्मराज के पास जाकर उनसे मेरे द्वारका जाने का प्रस्ताव करो। द्वारका जाने की तो बात ही क्या, मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिए भी उनका अप्रिय नहीं कर सकता। हे अर्जुन! मैं सच कहता हूँ कि तुम्हारे ही हित के लिए मैंने युद्ध आदि ये सब काम किये हैं। अब यहाँ मेरे रहने का प्रयोजन पूरा हो गया। सेना और साथियों समेत दुर्योधन मारा गया और सारी पृथिवी धर्मराज के अधीन हो गई। अब वे सिद्ध मुनियों द्वारा सम्मानित होकर और बन्दीजनों से स्तुति सुनते
हुए धर्म के अनुसार राज्य करें। तुम उनके पास जाकर मेरे द्वारका जाने की बात कहो। मैंने ३१
अपना धन और प्राण आदि सब कुछ धर्मराज के अर्पण कर दिया है। वे मेरे परम प्रिय और

मान्य हैं। अब तुम्हारे साथ रहकर मनोरञ्जन करने के सिवा और कोई प्रयोजन यहाँ मेरे रहने का नहीं है। अतएव अब मुझे द्वारका जाने की अनुमति दो। महाराज, महात्मा
३५ वासुदेव के यों कहने पर अर्जुन ने बड़े कष्ट से उनकी बात मानी।

अनुगीतापर्व

सोलहवाँ अध्याय

अर्जुन का श्रीकृष्ण से पूर्वोक्त गीता का विषय फिर पूछना। श्रीकृष्ण का अर्जुन से एक महर्षि और काश्यप का संवाद कहना

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, युद्ध में अपने शत्रुओं का नाश करके महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन ने सभा में बैठकर और क्या-क्या बातें की थीं?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महावीर अर्जुन अपना पैतृक राज्य प्राप्त करके श्रीकृष्ण के साथ सभा में बैठकर बातचीत करने लगे। एक दिन अनेक सभासदों के साथ, स्वर्ग के समान रमणीय, सभा में सब लोग बैठे थे उसी समय अर्जुन ने पूछा—श्रीकृष्ण, युद्ध के समय मैंने आपका माहात्म्य देखा है और आपकी विराट् मूर्ति के दर्शन भी किये हैं। आपने मेरा प्रिय करके मुझे जो उपदेश दिया था उसे मैं, बुद्धि के दोष से, भूल गया हूँ। वह सब मैं फिर सुनना चाहता हूँ। अब आप द्वारका जाने को तैयार हैं, इसलिए मुझे फिर वह सब सुना दीजिए।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गले से लगाकर कहा—अर्जुन, मैंने उस समय अत्यन्त गूढ़ विषय और नित्य लोकों का वर्णन तुमसे किया था। तुमने उसे स्मरण नहीं रक्खा, यह जानकर मुझे
१० बड़ा खेद हुआ। उस समय मैंने जो उपदेश दिया था उसकी इस समय याद नहीं है। तुम बड़े भुलक्कड़ और श्रद्धाहीन जान पड़ते हो। अब मैं ज्यों का त्यों वह उपदेश तुमको नहीं दे सकता। उस धर्म के प्रभाव से ब्रह्मपद प्राप्त होता है। मैंने उस समय योग का अभ्यास करके परब्रह्म की प्राप्ति करानेवाले उस विषय का वर्णन किया था। अब ब्रह्मज्ञान प्राप्त करानेवाला एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। इस उपदेश को सुनकर तुम श्रेष्ठ बुद्धि और श्रेष्ठ गति प्राप्त करोगे। एक बार एक ब्राह्मण देवता स्वर्ग और ब्रह्मलोक में घूमकर मेरे पास आये। मैंने उनका यथोचित सम्मान करके उनसे मोक्षधर्म का विषय पूछा। उन्होंने कहा—वासुदेव, तुमने सब प्राणियों के हित के लिए मुझसे जो मोक्षधर्म पूछा है उसे जो कोई सुनेगा उसका मोह दूर हो जायगा। अब मैं उसका वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो।

प्राचीन समय में काश्यप नाम के धर्मात्मा ब्राह्मण एक सिद्ध महर्षि के पास गये। वे महर्षि लोक-तत्त्वार्थ-कुशल, सुख-दुःख जन्म-मृत्यु और पाप-पुण्य के ज्ञाता, सर्वगामी, शास्त्र-मर्मज्ञ,

जीवन्मुक्त, प्रशान्तचित्त, जितेन्द्रिय और ब्रह्मतेज से युक्त थे। अन्तर्धान होने की शक्ति भी उनमें २०
थी। अपने-अपने कर्मानुसार सब प्राणी जिस प्रकार की गति पाते हैं वह सब वे अच्छी तरह
जानते थे। वे चक्रधारी सिद्धों के साथ चलते-फिरते, बैठते और निर्जन स्थान में बातचीत करते
थे। वायु की तरह वे सर्वत्र जा सकते थे। उनके इन गुणों को देखकर बुद्धिमान् काश्यप बड़े
विस्मित हुए और उनके पास रहकर, शिष्य की तरह, उनकी सेवा करने लगे। महर्षि ने काश्यप
की यह दृढ़ भक्ति देखकर, प्रसन्न होकर, कहा—काश्यप! मैं सिद्धि प्राप्त करने की रीति बतलाता
हूँ, मन लगाकर सुनो। शुभ कर्मों के प्रभाव से मनुष्य श्रेष्ठ गति पाता और देवलोक को
जाता है। कोई मनुष्य सर्वदा सुखी नहीं रह सकता। एक स्थान में कोई निरन्तर नहीं
रह सकता और श्रेष्ठ लोक प्राप्त होने पर भी जीवात्मा का वहाँ से पतन होता है। मैंने काम, ३०
क्रोध, तृष्णा और मोह के प्रभाव से पाप कर्म करके घोर कष्ट देनेवाली अशुभ गति भोगी है।
मैंने अनेक बार जन्म-मृत्यु का दुःख उठाया है। मुझे अनेक प्रकार के पदार्थ खाने पड़े हैं और
अनेक स्तनों का दूध पीना पड़ा है। मैंने बहुत से पिता और बहुत सी माताएँ देखी हैं तथा
अनेक प्रकार के सुख-दुःख का अनुभव किया है। कितनी ही बार मुझसे प्रिय मनुष्यों का
वियोग और अप्रिय व्यक्तियों का संयोग हुआ है। मैं बड़े यत्न से धन-सञ्चय करके भी
उसका उपभोग नहीं कर सका हूँ। मेरे आत्मीयों और राजाओं ने बार-बार मेरा अनादर
किया है। मुझे शारीरिक और मानसिक सब दुःख सहने पड़े हैं। मैं अनेक बार मारा
गया हूँ और कितनी ही बार मैं बन्धन में पड़ चुका हूँ। कितनी ही बार मुझे नरक का दुःख,
यम की यातनाएँ और जरा-व्याधि से उत्पन्न दुःख भोगना पड़ा है। मुझे अनेक बार सांसारिक
विपत्तियाँ मिल चुकी हैं। इस प्रकार बार-बार अनेक दुःख भोग करके अन्त को सब सांसा-
रिक विषयों को त्यागकर मैं इस मार्ग पर आया हूँ। अब मन के शान्त होने से मुझे सिद्धि
मिली है। इस सिद्धि के प्रभाव से मुझे संसार में न आना पड़ेगा। जब तक मेरी मुक्ति न
होगी और संसार का प्रलय न हो जायगा तब तक मैं अपनी और अन्य प्राणियों की गति
देखूँगा। मैं इस शरीर को त्यागकर सत्यलोक को जाऊँगा और वहाँ से मुक्त होकर ब्रह्मत्व ४०
प्राप्त करूँगा। मेरी इन बातों पर तुम सन्देह न करो। अब मैं इस लोक को कभी न लौटूँगा।
मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, बतलाओ मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ। तुम जिस इच्छा से मेरे पास
आये हो उसके पूर्ण होने का समय आ गया है। बतलाओ, तुम क्या चाहते हो। मैं शीघ्र
इस संसार से चला जाऊँगा, इसी लिए तुमसे शीघ्रता करने को कह रहा हूँ। तुम्हारे आचरण
देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम मुझसे जो बात पूछोगे उसे मैं ठीक-ठीक बतला दूँगा।
तुमने मुझे पहचान लिया है, इससे निस्सन्देह तुम बड़े बुद्धिमान् हो। ४६

सत्रहवाँ अध्याय

काश्यप का श्रीकृष्ण से जन्म-मरण का विषय कहना

सिद्ध महर्षि के यों कहने पर धर्मात्मा काश्यप ने प्रणाम करके कहा—भगवन्, जीवात्मा किस प्रकार एक शरीर का त्याग करके दूसरे शरीर में जाता है तथा किस तरह स्थूल और सूक्ष्म शरीर को त्यागकर इस दुःखमय संसार से मुक्त होता है? उसे शुभ-अशुभ कर्मों का फल किस प्रकार भोगना पड़ता है और शरीर त्यागने के बाद उसके शुभ-अशुभ कर्म कहाँ ठहरते हैं?

महर्षि काश्यप के यह प्रश्न करने पर सिद्ध महर्षि कहने लगे—ब्राह्मण! जीवात्मा शरीर का आश्रय करके आयु और कीर्ति के बढ़ानेवाले जिन कर्मों को करता है उन कर्मों के नष्ट हो जाने पर उसकी आयु क्षीण हो जाती है। तब उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह दुष्कर्म करने लगता है। अपने शरीर की दशा, बल और काल को जानता हुआ भी वह अधिक भोजन करता और हानि पहुँचानेवाली वस्तुएँ खाता है। किसी दिन कई बार भोजन कर लेता और किसी दिन एक बार भी नहीं खाता है। कभी ऐसी चीज़ पी लेता जो न पीनी चाहिए और अपरिमित भोजन करता, कभी मांस और कभी गरिष्ठ भोजन करता है। किसी दिन अन्न पचने नहीं पाता कि फिर भोजन कर लेता है। किसी दिन दिन में सो रहता है और किसी दिन कठिन परिश्रम तथा कई बार सम्भोग करता है। किसी दिन काम में ऐसा जुटा रहता है कि मल-मूत्र तक के वेग को रोक लेता है और किसी दिन कुसमय में भोजन करके शरीर में स्थित वात-पित्त आदि को विकृत कर लेता है। जब वह इस तरह के ऊट-पटाँग काम करने लगता है तब उसके शरीर पर प्राणनाशक रोग धावा करते हैं। कोई प्राणी तो कुपथ्य न करने पर भी, आयु क्षीण होने के कारण, मूर्खतावश फाँसी आदि द्वारा शरीर त्याग देता है।

जीवात्मा जिस तरह शरीर का त्याग करता है वह मैंने बतला दिया। अब जीवात्मा जिस तरह शरीर से बाहर निकलता है उसको सुनो। शरीर त्यागते समय, शरीर के भीतर की, आग वायु के वेग से कुपित होकर सारे शरीर को तपाने लगती है और प्राणवायु को रोककर मर्मस्थानों में घोर पीड़ा पहुँचाती है। तब उस मर्मभेदी यन्त्रणा से व्याकुल होकर जीवात्मा शरीर से निकल जाता है।

जीवात्मा बार-बार जन्म लेता और मरता है। मृत्यु के समय उसको जैसा कष्ट होता
२० है वैसा ही जन्म लेने में, गर्भ से बाहर निकलते समय, मिलता है। उस समय वह तीव्र वायु के प्रभाव से काँपता और कफ-मूत्र आदि से लथपथ रहता है। शरीर त्यागते समय शरीर में

स्थित पञ्चभूत जब अलग होने लगते हैं तब प्राण और अपान वायु ऊपर को चढ़कर निकल जाते हैं। तब शरीर निस्तेज, अचेतन, ठण्डा और श्वासहीन हो जाता है। जीव के निकल जाने पर शरीर मृतक हो जाता है। जीवात्मा इन्द्रियों द्वारा रूप-रस आदि विषयों का भोग करता है; किन्तु वह उनके द्वारा प्राण को नहीं जान सकता। सनातन जीवात्मा ही शरीर में निवास करके सब काम करता है। शरीर में जितने जोड़ (सन्धियाँ) हैं वे मर्मस्थान कहलाते हैं। इन मर्मस्थलों के विदीर्ण हो जाने पर जीवात्मा इनको त्यागकर बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। बुद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर जीवात्मा, चेतन होने पर भी, किसी विषय का अनुभव नहीं कर सकता। उस समय निराधार जीव को वायु बड़े वेग से उड़ा ले जाता है। तब जीवात्मा लम्बी साँस छोड़कर शरीर को कँपाकर बाहर निकल जाता है।

इस प्रकार शरीर त्याग देने पर भी जीवात्मा, उस शरीर द्वारा किये हुए, कर्मों को नहीं
त्याग सकता। उन कर्मों के कारण उसे फिर जन्म लेना पड़ता है। तब ज्ञानवान् विद्वान् ३०
ब्राह्मण, लक्षणों द्वारा, उसके पुण्यात्मा या पापी होने की बात समझ लेते हैं। जिस तरह मनुष्य अँधेरे में उड़ रहे खद्योत को देखता है उसी तरह ज्ञानवान् सिद्ध महात्मा ज्ञानदृष्टि द्वारा जीव के जन्म, मरण और गर्भप्रवेश आदि सब कामों को देखते रहते हैं। शास्त्र में जीवात्मा के स्वर्ग, मृत्युलोक और नरक, ये तीन स्थान बतलाये गये हैं। कोई इस कर्मभूमि में शुभ और अशुभ दोनों तरह के कर्म करके उनका फल भोगता है; कोई केवल शुभ कर्म करके स्वर्गलोक को जाता है और कोई पाप करके अनन्त काल तक नरक भोगता है। नरक में गिरने पर फिर उससे छुटकारा पाना बहुत कठिन हो जाता है। अतएव सदा उस उपाय का ध्यान रखना चाहिए जिससे नरक में न गिरना पड़े।

जीवात्मा स्वर्गलोक को जाकर वहाँ जिन स्थानों में निवास करता है, उनको सुनो। उसे सुनने से तुम्हारी समझ में कर्म की गति आ जायगी। जो मनुष्य इस लोक में शुभ कर्म करता है वह मरने के बाद ऊर्ध्वगामी होकर चन्द्र, सूर्य अथवा नक्षत्रों के लोक को जाता है। शुभ कर्मों के नष्ट होने पर उसे फिर पृथिवी पर आना पड़ता है। पुण्यवान् मनुष्य इसी तरह बार-बार श्रेष्ठ लोकों को जाते और वहाँ से लौटकर पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। स्वर्ग में भी उत्तम, मध्यम और नीच स्थान हैं, इसलिए जो लोग स्वर्ग को जाते हैं वे भी दूसरे को अपने से बढ़कर ऐश्वर्यवान् देखकर उससे ईर्ष्या करते हैं। यह मैंने जीवों की गति तुमको बतला दी। अब
जीवात्मा के जन्म लेने का विषय ध्यान देकर सुनो। ४२

अठारहवाँ अध्याय

जीवात्मा के गर्भ-प्रवेश आदि का वर्णन

सिद्ध महर्षि ने कहा—हे विप्र, इस लोक में फल भोगे बिना शुभ और अशुभ कर्मों का
नाश नहीं होता। जो मनुष्य जैसे कर्म करता है उसे दूसरे जन्म में उन्हीं कर्मों के अनुसार
फल भोगना पड़ता है। जिस तरह वृक्ष के फलने के समय उसमें फल लगते हैं उसी तरह शुद्ध
हृदय से शुभ कर्म करने पर उन कर्मों के प्रभाव से शुभ फल और कलुषित हृदय से दुष्कर्म करने
के परिणाम में उन कर्मों का अशुभ फल मिलता है। आत्मा मन की सहायता से सब काम
करता है। मनुष्य जिस प्रकार काम, क्रोध द्वारा खिचकर गर्भ में प्रवेश करता है उसका वर्णन
सुनो। वीर्य स्त्री के रक्त से मिलकर उसके गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाता है और जीव के शुभ-
अशुभ कर्मों के अनुसार शरीर तैयार हो जाता है। फिर जीव उस शरीर में प्रविष्ट हो जाता
है। अत्यन्त सूक्ष्म और अलक्ष्य होने के कारण जीव कहीं लिप्त नहीं हो सकता। जीवात्मा ही
शाश्वत ब्रह्म है। जीवात्मा ही सब प्राणियों का बीजस्वरूप है। उसी के प्रभाव से सब प्राणी
जीवित रहते हैं। जिस प्रकार ताँबा आदि धातुओं पर सोने का पानी चढ़ा देने से वे सुवर्णमय
देख पड़ती हैं और जैसे लोहा आग में रखने से तपकर अग्निमय हो जाता है उसी प्रकार
१० शरीर में जीव के प्रविष्ट होने से सारा शरीर जीवमय और चेतन जान पड़ता है। जिस
तरह अन्धकार के समय दीपक घर की वस्तुओं को प्रकाशित कर देता है उसी तरह जीव
सब अङ्गों का सञ्चालन करता है। सब जीव शरीर का आश्रय लेकर जन्म लेते और शुभ-
अशुभ कर्म करके दूसरे जन्म में उन कर्मों का फल भोगते हैं। जीव जब तक मोक्ष-धर्म को
नहीं जानता तब तक इसी तरह बार-बार जन्म लेकर शुभ-अशुभ कर्म करता और दूसरे जन्म
में उनका फल भोगता रहता है।

हे ब्राह्मण, अब उन कर्मों का वर्णन सुनो जिनके करने से मनुष्य सुख पाता है। दान,
व्रत, ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, शान्ति, इन्द्रियसंयम, सब प्राणियों पर दया, सरलता, दूसरों का धन
हरने की अनिच्छा, सब प्राणियों के अहित का त्याग, पिता-माता की सेवा, दया, शुद्धता और
गुरु देवता तथा अतिथि की पूजा प्रभृति शुभ कर्मों का करना सज्जनों का स्वाभाविक व्यवहार
है। इस प्रकार के काम करने से धर्म होता है। धर्म के प्रभाव से ही प्रजा की रक्षा होती है।
दान आदि सदाचार का पालन सज्जन सदा करते हैं। सदाचार का ही नाम सनातन धर्म है।
जो मनुष्य सदाचार का पालन करता है उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। कोई मनुष्य धर्म-मार्ग
से भ्रष्ट हो जाय तो सदाचार के ही उपदेश से उसे सुमार्ग पर लाया जा सकता है। अतएव
२१ सबको सदाचारी होना चाहिए।

योगी और मुक्त पुरुष सदाचारियों की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि वे योग के बल से शीघ्र संसार के बन्धन से छूट जाते हैं; किन्तु दान आदि धर्मों का पालन करनेवाला सदाचारी मनुष्य बहुत दिनों में संसार से मुक्त हो सकता है। जीव सब जन्मों में अपने पूर्व-जन्म के कर्मों का फल भोगता है। कर्म से ही ब्रह्मस्वरूप परमात्मा जीवरूप में परिणत होता है।

हे ब्राह्मण, सबसे पहले आत्मा के शरीर धारण करने की प्रथा किसने प्रचलित की है, इस विषय में मनुष्यों को बड़ा सन्देह है। मैं उस संशय को दूर करता हूँ। ब्रह्माजी ने सबसे पहले स्वयं शरीर धारण करके, फिर अन्य आत्माओं के शरीर की कल्पना करके चराचर विश्व की सृष्टि की है। उन्होंने शरीर को अनित्य बनाया है और जीव के अनेक शरीर धारण करने के नियम बनाये हैं। शरीर को क्षर और जीवात्मा तथा परमात्मा को अक्षर
कहते हैं। प्रत्येक का शरीर और जीवात्मा भिन्न-भिन्न है। ३०

जो मनुष्य सुख-दुःख को अनित्य, शरीर को अपवित्र वस्तुओं का संग्रह, मृत्यु को कर्म का फल और सुख को दुःख समझते हैं वे संसार-सागर से पार हो जाते हैं। जो मनुष्य जरा, मृत्यु और रोग के अधीन अनित्य शरीर धारण करके सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं वे ब्रह्म का अनुसन्धान करते हैं तो शीघ्र उसको पहचान लेते हैं। उस शाश्वत
अव्यय परमपुरुष का ज्ञान जिस प्रकार होता है उसका विस्तार के साथ वर्णन सुनो। ३५

उन्नीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का मोक्ष-साधन के उपाय बतलाते हुए अनुगीता का वर्णन करना

सिद्ध महर्षि ने कहा—ब्रह्मन्! जो मनुष्य स्थूल और सूक्ष्म शरीर का अभिमान त्यागकर चिन्ताशून्य होकर ब्रह्म में लीन होते हैं और जो सबके मित्र, सहिष्णु, शान्ति-प्रिय, वीतराग, जितेन्द्रिय हैं तथा जो भय और क्रोध से हीन हैं वे ही शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध और परिग्रह से हीन, अज्ञेय, अहङ्कारहीन, स्वयम्भू, निर्गुण और गुणभोक्ता परमात्मा के दर्शन पा सकते और संसार के बन्धन से छुटकारा पाते हैं। जो अभिमानहीन होकर सबको अपने आत्मा के समान समझते हैं; जो जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, प्रिय और अप्रिय को समान समझते हैं; जो किसी के द्रव्य का लोभ और किसी का अपमान नहीं करते तथा जिनका कोई शत्रु या मित्र नहीं है वही निर्गुण और गुणभोक्ता परमात्मा के दर्शन पा सकते और संसार के बन्धन से छुटकारा पा जाते हैं; जो धर्म, अर्थ और काम का त्याग कर देते हैं; जिनको पुत्रस्नेह नहीं है; जो न तो धार्मिक हैं न अधार्मिक, जिनके पूर्व-जन्म के कर्म नष्ट हो गये हैं, पुनरागमन का भय न रहने से जिनका चित्त शान्त हो गया है, जो काम्य कर्म से हीन हैं, जो जन्म मृत्यु और जरा से युक्त संसार को अनित्य समझ

लेते हैं, जिनके हृदय में हमेशा वैराग्य रहता है और जो सदा अपने दोष देखते रहते हैं वही निर्गुण और गुणभोक्ता परमात्मा के दर्शन पा सकते और संसार के बन्धन से छुटकारा पा
११ जाते हैं; जो लोग बुद्धि के बल से शारीरिक और मानसिक इच्छाओं का त्याग कर देते हैं वे बिना ईंधन की आग के समान निर्वाण-पद प्राप्त कर सकते हैं। जो सब कर्मों का त्याग करके, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर, तपोबल से इन्द्रियों का संयम कर सकते हैं वही मुक्त होकर सनातन शान्तस्वरूप नित्य परब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

हे विप्र, योगी पुरुष योग करके जिस प्रकार विशुद्ध चेतन के दर्शन करते हैं और जिन उपायों द्वारा चित्त को विषयों से हटाते हैं उनका वर्णन सुनो। तपस्या के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेना और मन को स्थिर करके आत्मा में धारण करना चाहिए। तपस्वी पुरुष योग के बल से, मन के द्वारा, हृदय में आत्मा के दर्शन करते हैं। जब वे एकाग्रचित्त होकर आत्मा में मन का योग कर देते हैं तब उनको हृदय में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता
२० है। जिस प्रकार स्वप्न में कोई वस्तु देखने से जागने पर उस वस्तु का बोध होता है उसी प्रकार योग के प्रभाव से हृदय में परमात्मा का साक्षात्कार होने पर ध्यान छूटने के बाद परमात्मा का ज्ञान होता है। जिस तरह कोई मनुष्य मूँज से सिरकी (सींक) अलग करके उसे दिखा दे उसी तरह योगी महात्मा शरीर से आत्मा को अलग करके देख सकते हैं। शरीर ही है मूँज और आत्मा है सिरकी (सींक); योगियों ने शरीर और आत्मा की पहचान के लिए यह दृष्टान्त दिया है। योगी जब योग के बल से आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है तब उस पर तीनों लोकों के अधीश्वर का भी आधिपत्य नहीं रहता। योगी अपनी इच्छा के अनुसार देवता और गन्धर्व आदि का रूप धारण कर लेता है। बुढ़ापा, मौत, शोक और हर्ष, उसके पास नहीं फटकते। वह देवताओं का भी देवता हो सकता है और अनित्य शरीर को त्यागकर अक्षय ब्रह्म को प्राप्त करता है। प्रलय के समय भी वह रत्ती भर नहीं डरता। किसी के सुख-दुःख का योगी पर कुछ असर नहीं पड़ता। शान्तचित्त निःस्पृह योगी संसर्ग और स्नेह से उत्पन्न भयङ्कर दुःख और शोक से कभी विचलित नहीं होता। शस्त्र उसका संहार नहीं कर सकते और मृत्यु उस पर आक्रमण नहीं करती। संसार में योगी से बढ़कर सुखी कोई प्राणी नहीं है। योगी पुरुष निरुपाधिक आत्मा में मन को लगाकर, बुढ़ापे के क्लेशों से मुक्त होकर,
३० निर्विघ्न निर्वाण-सुख का अनुभव करता है। योग का अभ्यास करके उसके ऐश्वर्य का उपभोग करना और योगाभ्यास को शिथिल कर देना योगी को उचित नहीं। उसको जब आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है तब उसे इन्द्र से भी कुछ लेने की इच्छा नहीं रहती।

अब ध्यान करने से मिलनेवाली गति का वर्णन सुनो। शरीर के मूलाधार आदि जिन-जिन चक्रों में जीवात्मा निवास करता है उन चक्रों में मन को स्थिर करना चाहिए। मन को

शरीर के बाहर न जाने दे। जिस समय मूलाधार आदि चक्रों में परमात्मा का साक्षात्कार हो उस समय मन बाहरी विषयों में न जाने पावे। पहले इन्द्रियों का निग्रह करके निःशब्द निर्जन वन में एकाग्रचित्त होकर हृदय में परब्रह्म का ध्यान करे। सनातन ब्रह्म शरीर भर में व्याप्त है,
अतएव सब अङ्गों में उसका ध्यान करना चाहिए। घर में रक्खा हुआ रत्न जिस तरह घर के ४०
भीतर ही ढूँढ़ा जाता है उसी तरह इन्द्रियों को जीतकर मन को शरीर के भीतर प्रविष्ट करके सावधानी से, शरीर में स्थित, आत्मा का अनुसन्धान करना चाहिए। प्रसन्नचित्त होकर तत्परता के साथ परमात्मा का अनुसन्धान करने से थोड़े ही दिनों में ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। परमात्मा का साक्षात्कार होते ही जीवात्मा सूक्ष्मदर्शी हो जाता है। परमात्मा अन्य इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है। मन-स्वरूप दीपक को जलाने पर परमात्मा का साक्षात्कार होता है। परमात्मा के हाथ, पैर, आँखें, मुख, मस्तक और कान सर्वत्र व्याप्त हैं। सर्वशक्तिमान् परमात्मा विश्वस्वरूप है। योगी लोग सबसे पहले शरीर से भिन्न आत्मा के दर्शन करते हैं फिर आत्मा को ब्रह्म में लीन करके, एकाग्रचित्त होकर, निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। निर्गुण ब्रह्म
का आश्रय करने पर मोक्षपद प्राप्त होता है। ब्रह्मन्, यह मैंने सब रहस्य तुमको बतला दिया। ५१
अब मैं जाता हूँ, जहाँ जाना चाहो वहाँ तुम भी जाओ। सिद्ध महर्षि का उपदेश सुनकर और उनकी आज्ञा पाकर वह ब्राह्मण प्रसन्नता से अपने अभीष्ट स्थान को चला गया।

वासुदेव ने कहा—अर्जुन, वही ब्राह्मण द्वारका में आया और मुझे मोक्षधर्म का उपदेश देकर सबके सामने अन्तर्धान हो गया। मैंने तुमको जो यह उपदेश दिया है, इसे तुमने एकाग्रचित्त होकर सुना है न? मैंने यही उपदेश तुमको युद्ध के समय दिया था। जिसका मन चञ्चल है और जिसकी बुद्धि परिपक्व नहीं है वह इस विषय को नहीं समझ सकता। यह उपदेश देवताओं से भी गोपनीय है। तुम्हारे सिवा और कोई मनुष्य इसके सुनने का अधिकारी नहीं है। यज्ञ आदि कर्म करने से देवलोक प्राप्त होता है। यज्ञ आदि कर्मों को त्यागकर ज्ञानमार्ग का अवलम्बन करके मोक्ष प्राप्त करना देवताओं को पसन्द नहीं है। सनातन ब्रह्म ही जीव की परम गति है। जीव ज्ञानमार्ग का अवलम्बन करके, शरीर
त्यागकर, ब्रह्म में लीन होने से ही मुक्त होता है। अपने धर्म पर चलनेवाले ब्राह्मण और ६०
क्षत्रिय की तो बात ही क्या, स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परमात्मा का साक्षात्कार करके परम गति पा सकते हैं। यह मैंने धर्म-साधन का युक्ति-युक्त उपाय और सिद्धि का विषय तुमसे कहा। इस धर्म से बढ़कर सुख देनेवाला दूसरा धर्म नहीं है। जो बुद्धिमान् मनुष्य विषय-भोग का त्याग कर सकता है वह इस उपाय के द्वारा मोक्षपद प्राप्त करता है। छः महीने
तक नित्य योग का अभ्यास करने से उसका फल अवश्य मिलता है। ६६

बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का अर्जुन से प्राणियों की उत्पत्ति आदि का विषय कहते हुए एक
ब्राह्मण और उसकी स्त्री का संवाद कहना।

श्रीकृष्ण ने कहा कि अर्जुन, अब एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी का संवाद सुनाता हूँ। प्राचीन
समय में ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न एक ब्राह्मण निर्जन स्थान में योग का अभ्यास करता था। एक
दिन उसकी स्त्री उसके पास जाकर कहने लगी—नाथ, सुनती हूँ कि पति के कर्म के अनुसार
गति स्त्रियों को मिलती है ; किन्तु आप धर्म को त्यागकर अनजान की तरह समय नष्ट कर
रहे हैं, अतएव आपके इस कर्म-त्याग के कारण अन्त में मेरी न जाने क्या दुर्गति होगी।

यह सुनकर शान्तस्वरूप ब्राह्मण ने मुसकुराकर कहा—प्रिये, संसार में जितने कर्म किये
जाते हैं उनमें से अनेक कर्मों को कर्मनिष्ठ मनुष्य दुष्कर्म कहते हैं। अविवेकी मनुष्य कर्म के
द्वारा मनुष्यों को भ्रम में डाल देते हैं। वे घड़ी भर भी ख़ाली नहीं बैठते। कुछ न कुछ करते
ही रहते हैं। प्राणी जब तक मोक्ष नहीं प्राप्त कर लेता तब तक अनेक योनियों में जन्म लेकर,
मन-वचन-शरीर से शुभ या अशुभ, कर्म करता रहता है। विशेषकर धार्मिक पुरुष यज्ञ आदि
करने लगते हैं तो दुष्ट लोग उसमें विघ्न डालते हैं। इसी से मैं विरक्त होकर, यज्ञ आदि कर्मों
को त्यागकर, ज्ञानचक्षु द्वारा हृदय में स्थित आत्मा के दर्शन करता हूँ। हृदय में निर्द्वन्द्व
परब्रह्म, चन्द्रमा और अग्नि विद्यमान हैं। जीवात्मा उसी स्थान पर स्थित रहकर पञ्चभूतों
१० को धारण करता और उनका संहार करता है। ब्रह्मा आदि देवता और व्रतधारी शान्तमूर्ति
जितेन्द्रिय महात्मा हृदय में स्थित उस अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं जो रूप-रस आदि
विषयों से परे है और जो आँख, कान और मन से अगोचर है। उसी परब्रह्म से सब पदार्थ
उत्पन्न होकर उसी का आश्रय करते हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पाँच
प्रकार के वायु उसी से उत्पन्न होते और उसी में लीन हो जाते हैं। समान और व्यान वायु
में प्राण और अपान वायु विचरते हैं, इसलिए प्राण और अपान वायु के रुक जाने पर समान
और व्यान वायु भी रुक जाते हैं। किन्तु उदान वायु किसी वायु के अधीन नहीं है। वह
वायु प्राण वायु को घेरे रहता है। इसी कारण प्राण और अपान वायु प्राणी को, निद्रित
अवस्था में भी, नहीं त्यागते। सारांश यह कि उदान वायु प्राण आदि सब वायुओं को अपने
अधीन रखता है। इसी से ब्रह्मवादी महात्मा इस वायु को संयत करके प्राणायाम करते हैं।
शरीर के भीतर सब वायुओं के अन्तर्गत समान वायु में जठरानल सात प्रकार से प्रदीप्त रहता
१९ है। आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, मन और बुद्धि, इन सातों को उनकी शिखा समझो।
रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संशय और निश्चय, ये सात समिधा तथा घ्राता, भक्षयिता, द्रष्टा,
स्प्रष्टा, श्रोता, मन्ता और बोद्धा, ये सात ऋत्विक् शरीर में स्थित सात अग्नियों में रूप-रस

आदि सात विषयों की आहुति देकर ब्रह्म का स्वरूप प्राप्त करते हैं। निद्रा के समय गन्ध आदि गुण अन्य मनुष्यों के मन में वासना-रूप से स्थित रहते हैं और जागने पर नाक आदि इन्द्रियों में उत्पन्न हो जाते हैं; किन्तु योगियों को ऐसा नहीं होता। योगियों में ये सब गुण स्वाभाविक उत्पन्न हो जाते हैं। परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर रूप-रस आदि सब विषय अपने-आप में बने रहते हैं। प्राचीन महर्षियों ने योगियों के लिए ये नियम बना दिये हैं। २८

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी स्त्री से दस इन्द्रियों के विषयों का वर्णन करना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, अब दस होताओं के अन्तर्याग का विषय सुनो। कान, त्वचा, आँख, जीभ, नाक, मुख, पैर, हाथ, लिङ्ग और गुदा, ये दस प्रकार के होता हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्य, क्रिया, गति, मूत्र-शुक्र और विष्ठा का परित्याग, ये दस हवनीय द्रव्य हैं। दिशा, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और मित्र, ये दस प्रकार के अग्नि हैं। कान आदि दस होता, दिशा आदि दस अग्नियों में, शब्द आदि दस प्रकार की हवनीय सामग्री की आहुति देते हैं। मन उस यज्ञ का स्रुव और पाप-पुण्य उसकी दक्षिणा हैं। इस यज्ञ के समाप्त होने पर अति श्रेष्ठ शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान संसार से भिन्न है। ज्ञातव्य वस्तु को ज्ञेय, सब वस्तुओं के प्रकाशक को ज्ञान और स्थूल-सूक्ष्म-शरीराभिमानी जीव को ज्ञाता कहते हैं। यह ज्ञाता जीवात्मा गार्हपत्य अग्नि-स्वरूप है। जीवात्मा शरीर में भिन्न भाव से रहता है। मुख आहवनीय अग्निस्वरूप है। इस अग्नि में अन्न आदि वस्तुएँ छोड़ने से ही वाणी-रूप में परिणत हो जाती हैं। मन, प्राण वायु की सहायता से, उस वाणी पर विचार करता है।

ब्राह्मणी ने कहा—भगवन्, जब मन में वाणी का विचार हुए बिना उसकी उत्पत्ति नहीं होती तब वाणी मन के ही अधीन है। किन्तु आपके कहने से मालूम होता है कि मन वाणी के वशीभूत है। तो मन वाणी के अधीन है या वाणी मन के वश में है और निद्रा के समय प्राण मन के साथ रहने पर भी, मन की तरह, लय को क्यों नहीं प्राप्त होता? उस समय उसे कौन रोक रखता है? ११

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, निद्रा के समय अपान वायु प्राण को अपने अधीन करके रोक रखता है। मन प्राण की गति के अधीन है, किन्तु प्राण मन की गति के अधीन नहीं है। इसी कारण मन का लय होने पर भी प्राण का लय नहीं होता। तुमने वाणी और मन का जो विषय पूछा है उसका उत्तर सुनो। एक बार वाणी और मन ने जीवात्मा से पूछा कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है। जीवात्मा ने उत्तर दिया कि मेरे मन से तो मन श्रेष्ठ है। यह उत्तर

सुनकर वाणी ने कहा कि मेरे प्रभाव को तो आप अच्छी तरह जान चुके हैं; फिर आप मन को मुझसे श्रेष्ठ क्यों बतला रहे हैं? जीवात्मा ने इसका कुछ उत्तर न दिया। तब जीवात्मा का अभिप्राय जानकर मन ने वाणी से कहा—संसार में जितने पदार्थ देख पड़ते हैं वे, और पारलौकिक स्वर्ग आदि सब, मेरे अधिकार में हैं। उनमें सांसारिक पदार्थों पर तो मेरा स्वतन्त्र अधिकार है; किन्तु पारलौकिक स्वर्ग आदि तुम्हारी सहायता से मेरे अधिकार में हैं। यदि तुम मन्त्र आदि रूप से स्वर्ग आदि पारलौकिक विषयों का प्रकाश न करो तो मैं उन पर अधिकार न कर सकूँ। अतएव सांसारिक विषयों पर मेरी और पारलौकिक विषयों पर तुम्हारी प्रधानता है। तुम हमेशा अपनी प्रधानता के लिए चेष्टा करती रहती हो, इसी से मैंने यह कहा है।

ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को इस प्रकार मन और वाणी की प्रधानता का विषय बतलाकर कहा—कल्याणी, वाणी को मन से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। प्राण और अपान मन की विशेष वृत्तियाँ हैं। प्राण और अपान के प्रभाव से वाणी उत्पन्न होती है। पहले प्राण की वृत्ति न होने के कारण वाणी बहुत दुखी होकर प्रजापति की शरण में गई थी। तब प्रजापति ने प्राण को हमेशा वाणी की सहायता करने की आज्ञा दी थी। उसी समय से प्राण हमेशा वाणी की सहायता करके स्पष्ट रूप से उसे प्रकाशित कर देता है। प्राण की सहायता के बिना वाणी का उच्चारण नहीं हो सकता। इसी कारण कुम्भक के समय वाणी नहीं निकल सकती।

वाणी दो प्रकार की है—व्यक्त और अव्यक्त। व्यक्त वाणी ही प्राण के अधीन है। अव्यक्त वाणी जाग्रत् और स्वप्न आदि सभी अवस्थाओं में, मनुष्यों के हृदय में, हंस-मन्त्र-रूप
२१ से मौजूद रहती है। इसी से अव्यक्त वाणी को व्यक्त वाणी की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। किन्तु व्यक्त वाणी से मनुष्यों के अनेक शुभ काम होते हैं। जिस तरह गाय दूध देकर मनुष्यों का हित करती है उसी तरह शास्त्र रूप व्यक्त वाणी स्वर्ग आदि फल देकर उनका विशेष उपकार करती है। ब्रह्म-प्रकाशक उपनिषद्-रूप महावाक्य मनुष्यों को मोक्षपद देते हैं।

ब्राह्मणी ने पूछा—नाथ, वाणी का उच्चारण किस उपाय से होता है और वह कैसे सुनी जाती है?

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये! पहले आत्मा मन को, उच्चारण करने के लिए, प्रेरित करता है तब मन जठराग्नि को प्रज्वलित करता है। जठराग्नि के प्रज्वलित होने पर उसके प्रभाव से प्राण वायु अपान वायु से जा मिलता है। उसके बाद वह वायु उदान वायु के प्रभाव से ऊपर चढ़कर मस्तक में टकराता है और फिर व्यान वायु के प्रभाव से कण्ठ-तालु आदि स्थानों में होकर वेग से वर्ण उत्पन्न करता हुआ, वैखरी रूप से, मनुष्यों के कान में प्रविष्ट होता है। जब
२६ प्राण वायु का वेग निवृत्त हो जाता है तब वह फिर समान भाव से चलने लगता है।

बाईसवाँ अध्याय

मन और नासिका आदि इन्द्रियों का संवाद

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, अब अन्तर्यज्ञ करनेवाले सात होताओं का विषय सुनो। नाक, आँख, जीभ, त्वचा, कान, मन और बुद्धि, ये सात अन्तर्यज्ञ करनेवाले होता हैं। ये सूक्ष्म शरीर में निवास करते हैं और एक-दूसरे के गुण को नहीं समझ सकते।

ब्राह्मणी ने पूछा—नाथ, ये सात होता मनुष्यों के सूक्ष्म शरीर में एक-दूसरे से अनजान रहकर किस तरह रहते हैं और उनका स्वभाव किस प्रकार का है?

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, परमात्मा सर्वज्ञ है इसलिए वह सबके गुणों को जानता है। इन्द्रियाँ सर्वज्ञ नहीं हैं, इसी से वे एक-दूसरे के गुण को नहीं जान सकतीं। देखो, जीभ, आँख, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये इन्द्रियाँ गन्ध को नहीं सूँघ सकतीं; केवल नासिका ही सूँघ सकती है। नाक, आँख, कान, त्वचा, मन और बुद्धि रस का स्वाद नहीं ले सकतीं; केवल जिह्वा रस का स्वाद लेती है। नाक, जीभ, कान, त्वचा, मन और बुद्धि रूप को नहीं देख सकतीं; केवल आँख ही रूप को देखती है। नाक, जीभ, आँख, कान, मन और बुद्धि स्पर्श का ज्ञान नहीं कर सकतीं; यह काम केवल त्वचा का है। नाक, जीभ, आँख, त्वचा,
मन और बुद्धि शब्द नहीं सुन सकतीं; कान ही शब्द को सुन सकता है। नाक, जीभ, आँख, १०
त्वचा, कान और बुद्धि कभी सन्देह नहीं कर सकतीं; यह काम केवल मन कर सकता है। नाक, जीभ, आँख, त्वचा, कान और मन के द्वारा निश्चय नहीं किया जा सकता; निश्चय करना तो बुद्धि का काम है।

अब मैं इन्द्रियों का और मन का संवाद कहता हूँ। एक बार मन ने इन्द्रियों से कहा—हे इन्द्रियो, मेरे बिना तुम कोई काम नहीं कर सकतीं। मैं न रहूँ तो नाक सूँघ न सके, जीभ रस का स्वाद न ले सके, आँखें रूप न देख सकें, न त्वचा स्पर्श कर सके और न कान ही शब्द सुन सकें। मेरे बिना तुम सब जन-शून्य घर की तरह और लौ न उठती हुई आग की तरह शून्य हो जाओ। मेरे बिना जीव, केवल तुम्हारी सहायता से, विषयों का ज्ञान नहीं कर सकता। अतएव मैं तुम सबसे श्रेष्ठ हूँ।

गर्व के साथ मन के यों कहने पर इन्द्रियों ने उत्तर दिया—महाशय, यदि आप हमारी सहायता के बिना सब विषयों का भोग कर सकते तो आप जो कह रहे हैं उसे हम सच मान
लेवें। यदि हम सब पर आपका प्रभुत्व है तो आप नाक से रूप देखने, आँखों से रस का २०
स्वाद लेने, कानों से सूँघने, जीभ से स्पर्श का अनुभव करने, त्वचा से सुनने और बुद्धि द्वारा स्पर्श का अनुभव करने का उद्योग कीजिए। बलवान् व्यक्ति नियम के पीछे नहीं चलता, नियम तो दुर्बलों के लिए है। यदि आप अपने को बलवान् समझते हैं तो अब लकीर के फ़क़ीर न

रहकर नये ढङ्ग से विषयों का भोग कीजिए। हम सब को तुच्छ समझना आपको उचित नहीं।
जैसे शिष्य गुरु के बतलाये हुए वेद के अर्थ का ही अनुगमन करता है वैसे ही आप, चाहे निद्रा-
अवस्था हो या जाग्रत्, हमारे ही दिये हुए भूत और भविष्य सब विषयों का भोग करते हैं।
शिथिल और साधारण बुद्धिवाले जीव हमारे ही प्रभाव से प्राण धारण करते हैं। मनुष्य सङ्कल्पों
से उत्पन्न और स्वप्नजनित विषयों का भोग करके भी भूख से व्याकुल होकर हमारी सहायता
लेते हैं। देखिए, हमारे विषय-भोग से निवृत्त होने पर भी जीव केवल आपके ही द्वारा,
इच्छा से उत्पन्न, विषय-भोग में फँसा रहने के कारण मुक्ति नहीं पाता। जीव जब आपको
अपने में लीन कर लेता है तब, बिना धुएँ की आग के समान, निर्वाणपद प्राप्त करता है।
जी हाँ, हम सब एक-दूसरे के गुण को नहीं जानतीं, हमेशा अपने-अपने विषय में ही लगी
रहती हैं, किन्तु हमारी सहायता के बिना आप किसी विषय को नहीं जान सकते। हम
२९ सबको तो आपके न होने से केवल हर्ष की हानि होती है।

तेईसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का ब्राह्मणी से प्राण आदि वायुओं का संवाद कहना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, अब अन्तर्यत करनेवाले प्राण आदि पाँच होताओं का विषय सुनो। प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान, ये पाँच होता सबसे श्रेष्ठ हैं।

ब्राह्मणी ने कहा—नाथ, अपने-अपने विषयों में स्थित आँख और कान आदि सात होताओं का विषय मैं आपके मुँह से सुन चुकी हूँ। अब सबसे श्रेष्ठ प्राण आदि पाँच होताओं का विषय विस्तार के साथ कहिए।

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये! वायु प्राण के द्वारा पुष्ट होकर अपान-रूप, अपान द्वारा पुष्ट होकर व्यान-रूप, व्यान द्वारा पुष्ट होकर उदान रूप और उदान द्वारा पुष्ट होकर समान-रूप होता है। ये सब वायु अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं। किसी समय प्राण आदि वायु ब्रह्माजी के पास जाकर कहने लगे—भगवन्, हम सबमें कौन श्रेष्ठ है? आप जिसको श्रेष्ठ बतलावेंगे उसका हम सम्मान करेंगे।

ब्रह्माजी ने कहा—हे वायुगण, तुम पाँचों में से जिसका लय हो जाने से अन्य चारों का भी लय हो जाय और जिसका सञ्चार होने से अन्य चार भी सञ्चरित होने लगें वही तुम सबमें श्रेष्ठ है।

यह सुनकर प्राण वायु ने अपान आदि चारों से कहा—देखो, मैं तुम सबसे श्रेष्ठ हूँ। जब मेरा लय हो जाता है तब तुम सभी लीन हो जाते हो और मेरा सञ्चार होने पर तुम सब का सञ्चरण होता है। यह देखो, मैं विलीन होता हूँ, तुम सबको भी लीन होना पड़ेगा।

अब प्राण वायु थोड़ी देर के लिए गुप्त हो गया और उसके बाद फिर चलने लगा।
तब समान और उदान ने प्राण से कहा—प्राण, तुम हमारी तरह अपान आदि सब वायुओं में
व्याप्त नहीं रहते। केवल अपान वायु तुम्हारे अधीन है। तुम्हारा लय होने से हमारी
कुछ हानि नहीं होती। इसलिए तुम हमसे श्रेष्ठ नहीं हो। समान और उदान की यह
बात सुनकर प्राण वायु को कोई उत्तर नहीं सूझा। वह चुपचाप अपना काम करता रहा। १०
अपान वायु ने कहा—हे वायुगण, मेरा लय होने से तुम सब लीन हो जाते हो और
मेरा सञ्चार होने से तुम सबका सञ्चार होता है, अतएव मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। यह देखो, मैं
विलीन होता हूँ, तुम सबको भी लीन होना पड़ेगा।
तब व्यान और उदान ने उत्तर दिया—अपान, केवल प्राण वायु तुम्हारे अधीन है अत-
एव तुम हमसे श्रेष्ठ नहीं हो। इसका कुछ उत्तर अपान न दे सका और पहले की तरह अपना
काम करने लगा। तब व्यान वायु ने अन्य चारों से कहा—हे वायुगण, मेरा लय होने पर
तुम सबको लीन होना पड़ेगा और मेरे चलने पर ही तुम सबका सञ्चार होगा अतएव मैं
तुम सबसे श्रेष्ठ हूँ। देखो, मैं अभी लुप्त होता हूँ, तुम सबको भी लीन होना पड़ेगा।
अब व्यान वायु थोड़ी देर के लिए लीन हो गया, उसके बाद फिर चलने लगा।
तब प्राण आदि ने कहा—व्यान, केवल समान वायु तुम्हारे अधीन है इसलिए तुम हम
सबसे श्रेष्ठ नहीं हो। प्राण आदि की यह बात सुनकर व्यान कुछ उत्तर न दे सका, चुपचाप
पहले की तरह चलने लगा।
अब समान वायु ने अन्य चारों से कहा—हे वायुगण, मेरा लय होने पर तुम सबके
सब लीन हो जाओगे और मेरा सञ्चरण होने पर तुम सबका भी सञ्चार होगा, इसलिए मैं
सबसे श्रेष्ठ हूँ। देखो, मैं विलीन होता हूँ, तुम सब भी मेरे साथ ही विलीन हो जाओगे।
यह कहकर समान वायु थोड़ी देर के लिए विलीन हो गया, उसके बाद फिर चलने
लगा। किन्तु इससे अन्य चारों की कुछ हानि नहीं हुई। तब उदान वायु ने कहा कि
मेरे लीन हो जाने पर तुम सबका लय हो जायगा और मेरे चलने पर ही तुम सब चल
सकोगे, अतएव मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। देखो, मैं अभी विलीन होता हूँ, तुम सब का भी मेरे
साथ ही लय हो जायगा।
उदान वायु यों कहकर थोड़ी देर के लिए लीन हो गया और उसके बाद फिर चलने
लगा। तब प्राण आदि ने उससे कहा—उदान, केवल व्यान तुम्हारे अधीन है, अतएव तुम
हम सबसे श्रेष्ठ नहीं हो। २०
इस प्रकार प्राण आदि पाँचों वायु सर्वश्रेष्ठ होने का उद्योग करके जब निराश हो गये
तब ब्रह्माजी ने उन सबसे कहा—हे वायुगण, तुम सब अपने-अपने स्थान में श्रेष्ठ हो। तुम

में एक का लय होने पर सबका लय नहीं हो जाता, इसी से मैं तुम सबको श्रेष्ठ कहता हूँ; किन्तु तुममें से कोई स्वाधीन भी नहीं है इसलिए तुम सबको निकृष्ट भी कहा जा सकता है। तुम मेरे आत्मा हो। तुम एक होकर भी स्थान और कार्य के भेद से पाँच नामों से प्रसिद्ध हो। अब तुम सब एक-दूसरे का आश्रय लेकर परस्पर सहायता करते हुए
२४ सुख से रहो। तुम्हारा कल्याण हो।

चौबीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी स्त्री से देवमत और नारदजी का संवाद कहना

ब्राह्मण ने कहा कि प्रिये, अब देवमत और नारदजी का संवाद सुनो। एक बार महर्षि देवमत ने देवर्षि नारद के पास जाकर पूछा—भगवन्, प्राणी के जन्म लेते समय प्राण आदि पञ्चवायु में से कौन सा वायु सबसे पहले उसके शरीर में प्रविष्ट होता है?

नारदजी ने कहा—ब्रह्मन्, प्राणी किसी कारण पहले जड़-रूप उत्पन्न होता है फिर अन्य कारण-वश उसमें प्राण और अपान वायु चलने लगते हैं। ये दोनों वायु देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि सब प्राणियों के शरीर में रहते हैं।

देवमत ने पूछा—भगवन्, शरीर जड़ क्यों उत्पन्न होता है और शरीर बन जाने पर दूसरा कौन कारण पैदा हो जाता है तथा प्राण और अपान वायु किस प्रकार जड़ शरीर में चलने लगते हैं?

नारदजी ने कहा—ब्रह्मन्, देह धारण करने के लिए परमात्मा पहले अपनी इच्छा के प्रभाव से पञ्चभूत द्वारा शुक्र-शोणितरूप शरीर उत्पन्न करके जीवरूप से उसमें प्रविष्ट होता है। गर्भ में शुक्र के जाते ही पहले उसमें प्राण वायु चलकर उसे विकृत करता है। प्राण वायु द्वारा विकृत होने पर उसमें अपान वायु का सञ्चार हो जाता है। इस प्रकार जड़ शरीर बन जाने पर परमात्मा उस शरीर और उसके कारणों में निर्लिप्त होकर उसमें साक्षी-रूप से निवास करता है। समान और व्यान वायु के प्रभाव से शुक्र और शोणित की उत्पत्ति होती है और काम के प्रभाव से इन दोनों का उद्रेक होता है। इन दोनों के संयोग से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। स्थूल शरीर उत्पन्न होने पर उसमें प्राण-अपान वायु की क्रिया द्वारा जीव की ऊर्ध्वगति और अधोगति तथा व्यान और समान वायु के प्रभाव से उसकी तिर्यग्गति और भेद-बुद्धि उत्पन्न होती है। परमात्मा अग्नि स्वरूप है, उसमें सब देवता स्थित हैं और वेद उसकी आज्ञा है। वेद के प्रभाव
१० से ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। तमोगुण और रजोगुण अग्निरूपी परमात्मा के धुआँ और भस्मस्वरूप हैं। जीव उसी अग्निरूपी परमात्मा में आहुतिरूप अन्न आदि भोजन प्रदान करता है। प्राण और अपान वायु अग्निरूपी परमात्मा के आज्य (घी) भाग-स्वरूप हैं। परमात्मा ज्ञान, अज्ञान, उत्पत्ति, प्रलय और कार्य-कारण आदि सब विषयों से निर्लिप्त रहकर

शरीर में निवास करता है। आत्मा जिस सङ्कल्प द्वारा कार्य और कारण रूप से प्रकाशित होता है उसी सङ्कल्प के द्वारा सब कर्मों का विस्तार होता है। अतएव उस सङ्कल्प को समझ जाने पर परमात्मा का यथार्थ भाव हृदय में प्रकाशित हो जाता है। कार्य, कारण और शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान
का ही नाम शान्ति है। इसी शान्ति का उदय होने से सनातन ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है। १७

पचीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी स्त्री से मानसिक यज्ञ का वर्णन करना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, अब चार होताओं का वर्णन करता हूँ। करण, कर्म, कर्ता, और मोक्ष, ये चार होता कहलाते हैं। नाक, जीभ, आँख, त्वचा, कान, मन और बुद्धि, इन सातों का नाम करण है; ये गुणहेतु (करण) अविद्या से उत्पन्न होते हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, संशय और निश्चय, ये सात कर्महेतु हैं। ये पाप और पुण्य से उत्पन्न होते हैं। सूँघनेवाला, खानेवाला, देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला तथा संशय और निश्चय करनेवाला, ये सात कर्तृहेतु हैं; ये सातों पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार शब्द आदि की उत्पत्ति करनेवाले जीव से उत्पन्न होते हैं। ये सातों जब भेदज्ञानशून्य होकर चिन्मात्ररूप में स्थिर हो जाते हैं तब इनको मोक्ष कहते हैं। सूँघने आदि सब क्रियाओं का अभिमान त्याग देना ही चिन्मात्ररूप में स्थिर होने का कारण है।

तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुष घ्राण आदि के विषयों को विशेष रूप से जानते हैं। नाक आदि इन्द्रियाँ गन्ध-ग्राण आदि क्रियाएँ करती हैं, जीवात्मा उनमें लिप्त नहीं है। किन्तु अज्ञानी मनुष्य शब्द आदि सुनते समय या सुनने के लिए तैयार होने पर यह अभिमान करता है कि मैं गन्ध आदि का भोग करता हूँ, मेरे लिए गन्ध आदि वस्तुएँ तैयार की गई हैं, इस विचार के कारण वह ममता में फँसता है और मृत्यु के मुख में चला जाता है। इस प्रकार का अभिमान करनेवाले मनुष्य अभक्ष्य-भक्षण और अपेय-पान करके नरक को जाते हैं। वे विषयभोग के कारण बार-बार मरते और जन्म लेते रहते हैं। किन्तु जो पुरुष तत्त्वज्ञान के प्रभाव से संसार के सब पदार्थों का मर्म भली भाँति समझकर निर्लिप्त भाव से विषय भोगते हैं उनको जन्म-मृत्यु के वशीभूत नहीं रहना पड़ता। वे अपनी शक्ति के प्रभाव से सब विषयों की सृष्टि कर सकते
हैं। विषयभोग के कारण उनका कुछ अपकार नहीं होता। अतएव मन आदि इन्द्रियों का ११
संयम करके देखने, सुनने और स्पर्श करने आदि विषयों को, ब्रह्मरूप अग्नि में, आहुति दे देना ही सबसे श्रेष्ठ काम है। मेरे हृदय में सदा योगरूप यज्ञ होता रहता है। परब्रह्म इस यज्ञ का अग्नि, प्राण वायु इसके स्तोत्र, अपान वायु इसके शस्त्र-मन्त्र, सर्वत्याग इसकी दक्षिणा, सत्य बोलना प्रशान्ता के वचन और अपवर्ग उत्तराङ्ग -कर्मरूप हैं। अहङ्कार, मन और बुद्धि इसके होता

अध्वर्यु और उद्गाता-स्वरूप होकर इस यज्ञ में स्तोत्र-पाठ करते हैं। प्रिये, मैंने इस यज्ञ की
जो विधि बतलाई है उसका वर्णन ऋग्वेद में है। अन्तर्याग करके नारायण के उद्देश से पशु-स्वरूप
१७ शत्रुओं का वध करने का विधान सामवेद में भी है। नारायण ही सबसे श्रेष्ठ और सर्वमय हैं।

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी पत्नी से देवता और ऋषि आदि के मनमाने
अर्थ करने का विषय कहना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, नारायण ही सब प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं। वही
सबके शासक हैं। उन्होंने मुझे जो आज्ञा दी है उसी के अनुसार मैं काम कर रहा हूँ।
परमात्मा ही परम गुरु है, वही शिष्य है और वही सबमें शत्रुता उत्पन्न करानेवाला है। उसी
के प्रभाव से असुरों में दर्प उत्पन्न हुआ था, उसी के प्रभाव से सप्तर्षिगण दमगुण से युक्त होकर
शोभायमान हुए हैं। इन्द्र उसी को सर्वश्रेष्ठ समझकर उसकी शरण में जाने से अमर हुए हैं
और उसी के प्रभाव से सर्पगण सब प्राणियों से द्वेष करते हैं।

अब मैं बतलाता हूँ कि सर्पों, देवताओं, ऋषियों और दानवों में किस प्रकार परस्पर द्वेष
उत्पन्न हुआ था। प्राचीन समय में देवता, ऋषि, सर्प और दानवगण ब्रह्माजी के पास जाकर
विनीत भाव से कहने लगे—भगवन्, आप हमको वह उपदेश दीजिए जिससे हमारा कल्याण
हो। यह सुनकर प्रजापति ब्रह्मा ने उनके सामने एकाक्षर शब्द 'ओम्' का उच्चारण किया। तब
देवता, ऋषि, सर्प और दानव लोग इस एकाक्षर शब्द का अर्थ सोचने लगे। इस शब्द का अर्थ
सोचते-सोचते सांपों के मन में काट खाने की प्रवृत्ति हुई, दानवों में गर्व उत्पन्न हुआ, देवताओं के
१० चित्त में दान की प्रवृत्ति हुई और ऋषियों के हृदय में दम गुण उत्पन्न हो गया। इस प्रकार
प्राचीन समय में उपदेष्टा के मुँह से एकाक्षर शब्द सुनकर सर्पों, देवताओं, ऋषियों और दानवों
के मन में पृथक्-पृथक् भाव उत्पन्न हो गये। अन्तर्यामी सर्वमय नारायण सर्वत्र व्याप्त हैं। वे
स्वयं अपने गुरु हैं। वे शिष्य-रूप से प्रश्न करके गुरु-रूप से उसे सुनते और उस पर विचार करके
उसका उत्तर देते हैं। उन्हीं की इच्छा से सब काम होते हैं। वही गुरु, वही योद्धा, वही श्रोता
और वही द्वेष्टा हैं। वे सब प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं। वही पाप कर्म करके पापी,
पुण्य करके पुण्यात्मा, इन्द्रियों का सुख भोग करके कामचारी और इन्द्रियों को जीतकर व्रत आदि
सब कर्मों का त्याग करके ब्रह्म में स्थित तथा ब्रह्मभूत होकर ब्रह्मचारी नाम से प्रसिद्ध होते हैं।
वही ब्रह्मरूप ऋत्विक् की सहायता से ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप समिधा देकर ब्रह्मरूप जल छिड़कते
१८ हैं। ज्ञानवान् पुरुष उन्हीं के उपदेशानुसार सूक्ष्म ब्रह्मचर्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी स्त्री से ब्रह्मरूप महावन का विषय कहना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! अब मैं सङ्कल्परूप दंश-मशक (डाँस-मच्छर)-सम्पन्न, शोक-हर्षरूप शीतातप (सर्दी-गर्मी) से युक्त, मोहरूप अन्धकार से परिपूर्ण और लोभ तथा व्याधिरूप सर्पों से युक्त संसाररूप वन को अतिक्रम करके ब्रह्मरूप महावन में प्रवेश करता हूँ। इस संसार-रूप वन के मार्ग में काम और क्रोधरूप दो शत्रु हमेशा रहते हैं और उसमें होकर अकेले ही आना-जाना पड़ता है।

ब्राह्मणी ने पूछा—नाथ, आपने जिस महावन का नाम लिया है वह कहाँ है ? उस वन में किस प्रकार के वृक्ष, नदी और पर्वत हैं तथा वह वन कितनी दूर है ?

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! उस वन में स्वतन्त्र और परतन्त्र, छोटा और बड़ा तथा सुख और दुःख देनेवाला कोई पदार्थ नहीं है। उस वन में प्रविष्ट हो जाने पर ब्राह्मणों को हर्ष और शोक का लेश नहीं रह जाता। फिर न तो उन्हें किसी का डर रहता और न उनसे किसी को डर रहता है। उस वन में अहङ्कार आदि सात महावृक्ष हैं। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संशय और निश्चय, ये सात इन वृक्षों के फल हैं। इन्द्रियों के अधिष्ठाता सात देवता इन फलों के भक्षक अतिथि हैं। मन, बुद्धि और कान-नाक आदि पाँच इन्द्रियाँ इन अतिथियों के आश्रम हैं और सात प्रकार के फल-भोग से उत्पन्न दुःख सात प्रकार की दीक्षा के समान हैं। उस वन में और भी बहुत से वृक्ष हैं। उनमें मनोरूप वृक्ष से शब्द आदि के अनुभवरूप पाँच प्रकार के फूल और उनसे उत्पन्न प्रीतिरूप पाँच प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं; चक्षुरूप वृक्ष से श्वेत-पीत आदि वर्णरूप पुष्प और उनको देखने से उत्पन्न सुख-दुःखरूप फल उत्पन्न होते हैं; विहित-निषिद्ध-कार्यरूप वृक्ष से पुण्य-पापरूप फूल और स्वर्ग-नरकरूप फल उत्पन्न होते हैं; ध्यान-रूप वृक्ष से सुखरूप फूल और फल तथा मन और बुद्धिरूप दो वृक्षों से मन्तव्य और बोधव्य-रूप बहुत से फूल और फल उत्पन्न होते हैं। उस वन में जीवात्मारूप ब्राह्मण, मन और १२
बुद्धिरूप स्रुक् और स्रुव लेकर, पञ्च-इन्द्रियरूप समिधाओं की आहुति देते हैं। आहुति देकर इन्द्रियों को लीन कर लेने पर मोक्ष प्राप्त होता है। इस यज्ञ को करते समय जीवात्मारूप ब्राह्मण जो दीक्षा लेता है वह निष्फल नहीं होती। इस दीक्षा का फल पुण्य है, किन्तु उस पुण्य का भोग यज्ञकर्ता जीवात्मा को नहीं करना पड़ता; उसका भोग तो इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता अथवा इस यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति के आत्मीयगण ही करते हैं। इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता इसी दीक्षा का फलरूप पुण्य भोग करके लय को प्राप्त हो जाते हैं। अन्त को निरुपाधि ब्रह्मरूप महावन प्रकाशित होता है। उस वन में आत्म-साक्षात्कार रूप वृक्ष, मोक्षरूप फल

और शान्तिरूप छाया की उत्पत्ति होती है। शास्त्रज्ञान उस वन का आश्रयस्थान है और
तृप्ति उसका जलपूर्ण जलाशय है। आत्मा, सूर्यरूप से, हमेशा उस वन को प्रकाशित करता है।
उस वन में भय रत्ती भर भी नहीं है। वह वन सर्वव्यापी है, उसका अन्त नहीं है। प्राण
आदि वृत्तिरूप सात स्त्रियाँ जीवों को अपने वश में कर लेती हैं; किन्तु जो मनुष्य उस वन में
प्रविष्ट हो जाते हैं उनका कुछ नहीं कर सकतीं। वे उन महात्माओं के पास जाती तो हैं किन्तु
कृतकार्य न होने पर लज्जित हो जाती हैं। उन महात्माओं की इच्छा से प्राण आदि पाँच
इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि, भूत भविष्य और वर्तमान पदार्थों के साथ उदित और लीन होती हैं।
वे महात्मा यशस्वी, तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, विजयी और सिद्ध हो जाते हैं। उनके अत्यन्त शुद्ध
२० हृदयाकाश में उपदेशरूप पर्वत से ज्ञानरूप नदी का प्रवाह बहकर परब्रह्म में जा मिलता है।
वे उस प्रवाह का अवलम्बन करके साक्षात् ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। सारांश यह कि जिसकी
विषय-वासना नष्ट हो जाती है, जो तपस्या के प्रभाव से पाप को भस्म कर देता है और
जो हमेशा शान्त रहता है वही मनुष्य ज्ञान के बल से जीवात्मा को परमात्मा में लीन करके
परब्रह्म की उपासना करता है। हे प्रिये, शास्त्र में महावन का वर्णन ऐसा ही है। ज्ञानी पुरुष
शास्त्र में इस विषय पर विशेष रूप से विचार करके, तत्त्वदर्शी महात्मा के उपदेशानुसार,
२४ उस महावन में प्रवेश करते हैं।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

यज्ञ में हिंसा की अधार्मिकता बतलाते हुए एक संन्यासी
और याजक का संवाद कहना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये! मैं स्वयं न गन्ध सूँघता हूँ, न रस का स्वाद लेता हूँ, न रूप देखता हूँ, न स्पर्श का अनुभव करता हूँ, न शब्द सुनता हूँ और न किसी विषय की कामना करता हूँ। प्राण और अपान वायु जिस तरह प्राणियों के सोते समय, राग-द्वेष आदि के उत्पन्न न होने के समय भी, स्वभावतः उनके शरीर में रहकर भोजन पचाना आदि काम करते रहते हैं उसी तरह मेरी इन्द्रियाँ पूर्व-संस्कार के वश सूँघना आदि काम करती हैं। योगी अपने शरीर में जिस—बाह्य विषयों से मुक्त—जीवात्मा के दर्शन करते हैं उसी जीवात्मा के साथ मैं भी निवास कर रहा हूँ; इसी से काम, क्रोध, बुढ़ापा और मृत्यु मेरा स्पर्श नहीं कर सकती। कमल के पत्ते पर जैसे पानी की बूँद लिप्त नहीं होती वैसे ही मैं राग और द्वेष से शून्य होने के कारण विषयों में लिप्त नहीं होता। जीवात्मा शरीर में निर्लिप्त भाव से निवास करके सब विषयों को देखता रहता है; उसके सिवा और कोई पदार्थ नित्य नहीं है। जिस तरह सूर्य की किरणें आकाश में लिप्त नहीं होतीं उसी तरह जीवात्मा कर्मों के फल में कभी लिप्त नहीं होता।

अब मैं इस विषय में अध्वर्यु और यति का संवाद सुनाता हूँ। एक संन्यासी ने किसी
याज्ञिक ब्राह्मण को यज्ञ में पशु-प्रोक्षण करते देखकर उससे कहा कि ब्रह्मन्, हिंसा करना आपको
उचित नहीं। यह सुनकर ब्राह्मण ने उत्तर दिया—भगवन्, मैं यज्ञ में इस बकरे का वध करके
इसका अपकार नहीं कर रहा हूँ; मैं तो इसका बड़ा उपकार करता हूँ। यह पशु यज्ञ में बलि
होकर श्रेष्ठ गति पावेगा। यदि शास्त्र सत्य है तो शास्त्र के अनुसार प्रोक्षण करने से इसका
पार्थिव भाग पृथिवी में, जल का भाग जल में, आँखें सूर्य में, कान दिशाओं में और प्राण आकाश-
मार्ग में चले जायँगे। जब मैं शास्त्र के अनुसार यह काम करता हूँ तब इस विषय में मुझे
अपराधी नहीं होना पड़ेगा। १०

संन्यासी ने कहा—ब्रह्मन्! यदि इस यज्ञ में बकरे का वध करने से केवल इसी का
कल्याण है तो यज्ञ करने का, आपका, प्रयोजन ही क्या है? इसके सिवा यह पशु पराधीन है।
इसके माता-पिता, भाई और कुटुम्बियों की आज्ञा लिये बिना इसका वध करना आपको उचित
नहीं। यदि आप मन्त्र के द्वारा इस पशु के प्राण आदि सब तत्त्वों को यथास्थान पहुँचा देंगे तो
इसका केवल निश्चेष्ट शरीर रह जायगा। उस समय इसमें और काठ में कोई भेद न रहेगा।
अतएव इसके बदले काठ से ही यज्ञ कर लेने में आपकी क्या हानि है? प्राचीन विद्वानों ने
अहिंसा को ही सब धर्मों में श्रेष्ठ बतलाया है। अतएव हिंसा-विहीन काम करना सबके लिए
अच्छा है। यदि मैं कभी हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करूँ तो आप मेरे कामों में अनेक दोष निका-
लेंगे, किन्तु मैं वैसी कठिन प्रतिज्ञा नहीं करता हूँ। मेरे मत में तो, जहाँ तक हो सके, प्राणियों
की हिंसा न करना ही श्रेष्ठ धर्म है। मैं केवल प्रत्यक्ष हिंसा को ही दूषित बतला रहा हूँ।

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—भगवन्, इस पृथिवी पर सभी पदार्थों में प्राण हैं। अतएव जब
आप गन्ध सूँघते, रस का स्वाद लेते, रूप देखते, वायु का सेवन करते, शब्द सुनते और करने न
करने योग्य कामों का विचार करते हैं तब आपको किस तरह हिंसा-विहीन माना जा सकता
है? हिंसा किये बिना इनमें से कोई काम नहीं हो सकता। संसार में हिंसा किये बिना किसी
का कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता। बतलाइए, आप अहिंसा किसे मानते हैं। २१

संन्यासी ने कहा—ब्रह्मन्, आत्मा दो प्रकार का है [—क्षर और अक्षर]। विद्वानों ने
उपाधियुक्त आत्मा को क्षर और उपाधिहीन सनातन आत्मा को अक्षर बतलाया है। जिसका
आत्मा माया के साथ मिलकर प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिरूप में व्यवहृत होता है उसी को हिंसा
का भय रहता है। जिसका आत्मा, प्राण आदि से अलग रहकर, निर्द्वन्द्व और समदर्शी होता है
वह हिंसा से नहीं डरता। अतएव, मेरे मत में तो, प्राण आदि से अलग रहना ही अहिंसा है।

ब्राह्मण ने कहा—भगवन्, आपके वचन सुनकर यह विश्वास होता है कि संसार में
ज्ञानवान् पुरुषों की संगति से बढ़कर दूसरा काम नहीं है। इस समय आपके उपदेश से

मेरी बुद्धि निर्मल हो गई है। मैं समझ गया हूँ कि मेरा आत्मा किसी में लिप्त नहीं है। अतएव वेद में बतलाये हुए यज्ञ करने से मैं अपराधी नहीं हूँगा।

ब्राह्मण की यह युक्ति देखकर संन्यासी को कुछ उत्तर न सूझा, वह मौन हो गया। तब ब्राह्मण मोहहीन होकर यज्ञ करने लगा। हे प्रिये, यह मैंने याज्ञिक ब्राह्मण और संन्यासी का संवाद तुमको सुना दिया। महात्मा ब्राह्मण, शास्त्रों का मनन करके, उपर्युक्त रूप से आत्मा को प्राण आदि से अलग करना ही मोक्ष प्राप्त करने का उपाय समझते हैं और
२८ तत्त्वदर्शी पुरुषों के उपदेशानुसार वैसा अनुष्ठान करते हैं।

उन्तीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी स्त्री से परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियों के विनष्ट होने का वृत्तान्त कहना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, अब मैं इस विषय में कार्त्तवीर्य और समुद्र का संवाद सुनाता हूँ। सहस्रबाहु राजा कार्त्तवीर्य ने धनुष-बाण की सहायता से सारी पृथिवी पर अधिकार कर लिया था। वे एक बार समुद्र-किनारे घूमते-घूमते, समुद्र की ओर देखकर, सैकड़ों बाण फेंकने लगे। बाणों के लगने से व्याकुल समुद्र, मनुष्य का रूप धारण करके, राजा के पास आया और हाथ जोड़कर कहने लगा—हे वीरवर, अब आप मुझ पर बाण न चलाइए। बतलाइए, मैं आपका कौन सा काम करूँ। मेरे आश्रित जीव-जन्तु आपके भीषण बाणों से मर रहे हैं। अब आप उन्हें अभयदान दीजिए।

कार्त्तवीर्य ने कहा—हे समुद्र! पृथिवी पर मेरे समान योद्धा कोई नहीं देख पड़ता, इसी से मैं तुम्हारे ऊपर बाण फेंकता हूँ। यदि संसार में मेरे समान कोई धनुर्धर वीर हो तो तुम शीघ्र मुझे उसका नाम बतलाओ, मैं उसके साथ युद्ध करूँगा।

"महाराज, आपने महर्षि जमदग्नि का नाम तो सुना होगा। उनके पुत्र परशुराम ही आपके समान हैं।" समुद्र की यह बात सुनते ही कार्त्तवीर्य क्रोध के मारे अधीर हो गये। वे अपने भाई-बन्धुओं को लेकर शीघ्र परशुरामजी के आश्रम पर जा धमके। उनका अनिष्ट करके राजा ने उनको कुपित कर दिया। परशुरामजी के कोपानल में कार्त्तवीर्य के सब सैनिक भस्म
१० होने लगे। उन्होंने परशु लेकर सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य की सब भुजाएँ वैसे ही काट डालीं जैसे अनेक शाखाओं से युक्त वृक्ष काट डाला जाय। महावीर कार्त्तवीर्य के मारे जाते ही उनके बन्धु-बान्धव, खड्ग और शक्ति लेकर, परशुरामजी की ओर झपटे। तब महाबली परशुरामजी भी धनुष लेकर, रथ पर सवार हो, अकेले ही उन सबको मार गिराने लगे। पराक्रमी परशुरामजी के बाणों से पीड़ित होकर युद्ध में बचे हुए क्षत्रिय, सिंह से पीड़ित मृग की तरह, डरकर

पहाड़ की कन्दराओं में छिपने लगे। उस समय जो क्षत्रिय गाँवों और नगरों में रहते थे वे भी, परशुरामजी के डर के मारे, अपने कर्तव्य का पालन न कर सके। इस कारण उस समय वेदों का लोप सा हो गया और सारी प्रजा शूद्र का सा व्यवहार करने लगी। उस समय क्षत्रिय धर्म का लोप हो जाने से द्रविड़, आभीर, पुण्ड्र और शबर देश के सब मनुष्य शूद्रत्व को प्राप्त हो गये।

परशुरामजी के हाथ से क्षत्रियों के मारे जाने पर जब पृथिवी क्षत्रिय-विहीन हो गई तब ब्राह्मण लोग विधवा क्षत्राणियों के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने लगे। किन्तु महावीर परशुराम को यह काम सह्य न हुआ। उन्होंने ब्राह्मणों के वीर्य और विधवा क्षत्राणियों के गर्भ से उत्पन्न क्षत्रियों को भी मार डाला। इस प्रकार इक्कीस बार क्षत्रिय-कुल का नाश करने पर एक दिन परशुरामजी को यह आकाशवाणी सुन पड़ी—"बेटा परशुराम, बार-बार क्षत्रिय-कुल का नाश करने से तुम्हारा कुछ लाभ नहीं है। अब तुम यह काम न करो।" उस समय परशुरामजी के पूर्व-पुरुष ऋचीक आदि महात्मा भी आकाश से बार-बार उनको समझाकर कहने लगे कि बेटा, अब तुम क्षत्रियों का विनाश करने की प्रतिज्ञा छोड़ दो।

परशुरामजी अपने पूर्वजों के समझाने पर भी, पिता की मृत्यु से उत्पन्न, क्रोध को न त्याग सके। उन्होंने ऋषियों से कहा—हे पितृगण, मैंने क्षत्रियों का संहार करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है। अतएव आप इस काम से मुझे न रोकिए। २२

तीसवाँ अध्याय

पितरों के समझाने पर परशुरामजी के क्रोध का शान्त होना और फिर तपस्या के लिए चला जाना

ऋचीक आदि महात्माओं ने परशुरामजी से फिर कहा—बेटा, ब्राह्मण होकर क्षत्रियों का नाश करना तुमको उचित नहीं। अब हम एक प्राचीन इतिहास कहते हैं। उसे सुनकर तुम उसी के अनुसार काम करो। प्राचीन समय में अलर्क नाम के एक महातपस्वी परम धार्मिक सत्यपरायण राजर्षि थे। उन्होंने पहले अपने बाहुबल से सारी पृथिवी को जीत लिया था। उसके बाद वे वृक्ष के नीचे बैठकर, अति सूक्ष्म परब्रह्म में मन लगाने की इच्छा से, सोचने लगे कि इन्द्रियरूप शत्रु मुझे घेरे हुए हैं अतएव बाहरी शत्रुओं को छोड़कर उन्हीं पर बाण चलाना चाहिए। मन चञ्चलता के कारण मनुष्यों को अनेक कामों में लगाता है। यही दुरात्मा सबसे प्रबल है, अतएव इसी को जीत लेने से सब इन्द्रियाँ वश में हो जायँगी। अब मैं मन के ऊपर तीक्ष्ण बाण चलाऊँगा।

अलर्क के यह निश्चय करने पर मन कहने लगा—अलर्क, आप मनुष्यों के शरीर को काटनेवाले इन बाणों से मुझे परास्त नहीं कर सकते। यदि आप मुझ पर ये बाण चलावेंगे तो इनके द्वारा आपकी ही मृत्यु होगी। यदि आप मुझे जीतना चाहते हैं तो किसी अलौकिक बाण की खोज कीजिए।

अलर्क ने तनिक सोचकर नासिका को जीतने की इच्छा की। यह नासिका अनेक प्रकार के उत्तम गन्ध सूँघकर फिर मुझे उन्हीं गन्धों में प्रलोभित करती है, अतएव मैं ये तीक्ष्ण बाण नासिका पर चलाऊँगा।

नासिका ने कहा—अलर्क, ये बाण मनुष्यों के ही शरीर को नष्ट कर सकते हैं। इन बाणों से आप मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। यदि आप मुझ पर ये बाण चलावेंगे तो इनके द्वारा आपकी ही मृत्यु होगी। यदि आप मुझे परास्त करना चाहते हैं तो किसी अलौकिक बाण का अनुसन्धान कीजिए।

अलर्क थोड़ी देर सोचकर रसना को जीतने की इच्छा करने लगे। यह रसना (जीभ) स्वादिष्ट वस्तुओं का स्वाद लेकर फिर मुझे उन वस्तुओं में प्रलोभित करती है, अतएव मैं इन तीक्ष्ण बाणों से इसे मारूँगा।

रसना ने कहा—अलर्क, आप इन बाणों से मुझे वश में नहीं कर सकते। यदि आप मुझ पर ये बाण चलावेंगे तो आपकी ही मृत्यु होगी। आप मुझे जीतना चाहते हैं तो किसी अलौकिक बाण की तलाश कीजिए।

यह सुनकर, तनिक सोचकर, महाराज अलर्क ने स्पर्श-इन्द्रिय को उन बाणों से परास्त करने का निश्चय किया। क्योंकि त्वचा ही अनेक प्रकार के स्पर्श-सुख का अनुभव करके फिर उन सुखों में प्रलोभित कर देती है। अतएव आज मैं इन कङ्कपत्रभूषित तीक्ष्ण बाणों से त्वचा को पीड़ित करूँगा।

स्पर्श-इन्द्रिय ने कहा—अलर्क, आप मुझ पर चाहे जितने बाण चलावें; किन्तु बाणों द्वारा मुझे परास्त नहीं कर सकते। यदि मुझ पर बाण चलाइएगा तो उन बाणों से आपकी ही मृत्यु होगी। यदि मुझे जीतना हो तो किसी अलौकिक बाण की तलाश कीजिए।

यह सुनकर, तनिक सोचकर, अलर्क ने कानों को जीतने का निश्चय किया। ये कान अनेक शब्द सुनकर बार-बार मुझे उस विषय का प्रलोभन देते हैं, अतएव आज मैं इन तीक्ष्ण बाणों से कानों को अपने अधीन करूँगा।

कानों ने कहा—अलर्क, ये बाण मनुष्यों का वध करने के लिए हैं। इनके द्वारा आप हमें अपने अधीन नहीं कर सकते। यदि हम पर ये बाण चलाइएगा तो आपकी ही मृत्यु होगी। यदि आप हमें अपने वश में करना चाहते हैं तो किसी अलौकिक बाण की खोज कीजिए।

यह सुनकर अलर्क ने थोड़ी देर सोचकर आँखों को परास्त करने का इरादा करके मन में कहा कि आँखें अनेक प्रकार के रूप देखकर बार-बार मुझे उस विषय में लगाती हैं। अतएव आज इन बाणों के द्वारा मैं आँखों को पीड़ित करूँगा।

आँखों ने कहा—अलर्क, मनुष्यों का वध करनेवाले इन बाणों से आप मुझे परास्त नहीं कर सकते। यदि मुझ पर ये बाण चलाइएगा तो आपकी ही मृत्यु होगी। मुझे जीतना हो तो किसी अलौकिक बाण की खोज कीजिए।

आँखों के यों कहने पर महाराज अलर्क ने थोड़ी देर सोचकर बुद्धि को जीतने का इरादा किया। बुद्धि अपनी ज्ञानशक्ति द्वारा अनेक कामों का निश्चय कर लेती है, अतएव मैं बुद्धि पर ये तीक्ष्ण बाण चलाऊँगा।

बुद्धि ने कहा—अलर्क, इन साधारण बाणों से मुझे न जीत सकिएगा, बल्कि उलटे इन बाणों से आपकी ही मृत्यु हो जायगी। मुझे जीतना हो तो कोई अलौकिक बाण ढूँढ़िए।

मन, बुद्धि और नासिका आदि पाँच इन्द्रियों की ये बातें सुनकर महाराज अलर्क, उनको परास्त करने की इच्छा से, अलौकिक बाण प्राप्त करने का निश्चय करके उसी पेड़ के नीचे बैठकर घोर तपस्या करने लगे; किन्तु किसी तरह इन्द्रियों को पीड़ित करने योग्य अलौकिक बाण का पता न लगा सके। अन्त को बहुत दिन सोचने के बाद योग को ही सर्वश्रेष्ठ समझकर एकाग्र चित्त से वे योग का अभ्यास करने लगे। योग के बल से उनकी सब इन्द्रियाँ वशीभूत हो गईं और उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। तब उन्होंने बड़े आश्चर्य के साथ कहा—इतने समय तक वृथा विषय-भोग में आसक्त रहकर मैंने राज्य का शासन किया और बहुत से बाहरी आडम्बर किये। अब मेरी समझ में आया है कि योग से बढ़कर सुख देनेवाला कोई पदार्थ नहीं है।

ऋचीक आदि महर्षियों ने अलर्क का इतिहास समाप्त करके परशुरामजी से कहा—बेटा, अब तुम इस विषय में भली भाँति विचार करके क्षत्रियों का संहार करना छोड़ दो और योगमार्ग का अवलम्बन करो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।

यह उपदेश देकर ऋचीक आदि महात्माओं के अन्तर्धान हो जाने पर महात्मा परशुराम ने योगमार्ग का अवलम्बन करके परम सिद्धि प्राप्त की थी। ३३

इकतीसवाँ अध्याय

काम-क्रोध आदि का त्याग करके ज्ञान प्राप्त करने को ही मोक्ष का साधन बतलाना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण मनुष्यों के शत्रु हैं। व्यवहार-भेद से ये तीन गुण नव प्रकार के हैं। हर्ष, प्रीति और आनन्द, ये तीन सत्त्वगुण के काम

हैं। विषय-वासना, क्रोध और द्वेष, ये तीन रजोगुण के तथा श्रम, आलस्य और मोह, ये तीन तमोगुण के काम हैं। शान्तस्वभाव जितेन्द्रिय मनुष्य धैर्य के साथ शम आदि बाणों के द्वारा इन भीतरी शत्रुओं का विनाश करके उसके बाद बाणी आदि बाहरी शत्रुओं के नाश करने का यत्न करे। शान्तिगुणावलम्बी महाराज अम्बरीष ने इस विषय में जो काम किया था और जो मत प्रकट किया था उसको सुनो।

महात्मा अम्बरीष के चित्त में राग आदि दोषों की अधिकता हो गई थी और शम-दम आदि नष्ट से हो गये थे। तब उन्होंने ज्ञान के बल से राग आदि दोषों पर अपना अधिकार जमा लिया था। दोषों को दबा देने और शम-दम आदि गुणों की वृद्धि करने से थोड़े ही दिनों में उनको सिद्धि मिली थी। सिद्धि प्राप्त करके उन्होंने कहा था कि मैंने और तो सब दोषों को परास्त कर दिया है; किन्तु सबसे प्रबल जो एक दोष है उसे, वध के योग्य समझकर भी, मैं नहीं मार सका हूँ। उस दोष के प्रभाव से मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती। मनुष्य उसके वश में रहकर हमेशा नीच कामों में लगा रहता है; किन्तु उसका पता नहीं लगा सकता। उसी के प्रभाव से मनुष्य अनेक प्रकार के दुष्कर्म करता है। उस दोष का नाम है लोभ। उसे ज्ञानरूपी तलवार से अवश्य नष्ट कर देना चाहिए। उसी लोभ से विषय-तृष्णा उत्पन्न होती है और विषय-तृष्णा के प्रभाव से चिन्ता पैदा होती है। लोभी मनुष्य सबसे पहले रजोगुण के
१० वशीभूत होकर फिर तमोगुण के अधीन हो जाता है। इन गुणों के प्रभाव से वह बार-बार
जन्म लेता और अनेक कर्म करता रहता है। अतएव इसको अच्छी तरह सोच-समझकर, धैर्य
के साथ लोभ को क़ाबू में करके, देहरूप राज्य पर अधिकार करने का उद्योग करे। इसी राज्य
१३ पर अधिकार करना सच्चा राज्य प्राप्त करना है और उस राज्य का राजा स्वयं आत्मा है।

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी स्त्री से राजा जनक और एक ब्राह्मण का संवाद कहना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, अब मैं राजा जनक और एक ब्राह्मण का संवाद सुनाता हूँ। महाराज जनक ने एक ब्राह्मण को उसके किसी भारी अपराध का दण्ड देते हुए कहा था "ब्रह्मन्, अब आप हमारे राज्य से चले जाइए।" यह आज्ञा सुनकर ब्राह्मण ने पूछा—महाराज, आप मुझे यह बतला दीजिए कि आपका राज्य कहाँ तक है; तब मैं शीघ्र आपके राज्य से निकलकर किसी दूसरे के राज्य में जा बसूँगा।

यह सुनकर महाराज जनक लम्बी साँस छोड़कर चुप हो रहे और सोचते-सोचते राहुग्रस्त सूर्य की तरह मोहित हो गये। थोड़ी देर में जब उनका मोह जाता रहा तब उन्होंने ब्राह्मण से कहा—भगवन्, यद्यपि यह परम्परागत राज्य मेरे अधिकार में है किन्तु मैं विशेष

से विचार करके देखता हूँ तो संसार की किसी वस्तु पर मुझे अपना पूर्ण अधिकार नहीं देख
पड़ता। मैंने पहले सम्पूर्ण पृथिवी पर, फिर केवल मिथिला नगरी पर, उसके बाद अपनी प्रजा
पर अपने अधिकार का पता लगाया; किन्तु कहीं मुझे अपने अधिकार का विश्वास न हुआ।
इस तरह किसी वस्तु पर अपना अधिकार न देखकर मुझे मोह हो गया। अब मेरा मोह दूर
हो गया है और मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि किसी वस्तु पर मेरा अधिकार नहीं है;
अथवा सब कुछ मेरे अधिकार में है। या तो आत्मा भी मेरा नहीं है, अथवा सारा संसार १०
मेरा है। सारांश यह कि इस लोक में सब वस्तुओं पर सबका समान अधिकार है अतएव
अब आपकी जहाँ रहने की इच्छा हो वहाँ रहिए और जो इच्छा हो वह भोजन कीजिए।

ब्राह्मण ने पूछा—महाराज, इस परम्परागत विशाल राज्य को अपने अधिकार में रखते
हुए भी आप किस तरह सब वस्तुओं से निर्मम हो गये हैं और क्या समझकर न केवल अपने
राज्य पर प्रत्युत संसार के सभी पदार्थों पर अपना अधिकार बतला रहे हैं?

जनक ने कहा—भगवन्, संसार के सब पदार्थ नश्वर हैं और शास्त्र के अनुसार किसी
पदार्थ पर किसी का अधिकार नहीं है। इसी से मैं किसी वस्तु को अपनी नहीं समझता।
अब जिस बुद्धि से सब पदार्थों पर मैं अपना अधिकार समझता हूँ उसको सुनिए। मैं अपनी १७
तृप्ति के लिए गन्ध नहीं सूँघता, रस का स्वाद नहीं लेता, रूप का दर्शन नहीं करता, स्पर्श का
अनुभव नहीं करता, शब्द नहीं सुनता और किसी विषय का निश्चय नहीं करता। इसी से
पृथिवी, तेज, जल, वायु, आकाश और मन मेरे वश में हैं और इन सब विषयों पर मेरा अधिकार
है। सारांश यह कि मैं अपने सन्तोष के लिए कोई काम नहीं करता। संसार की सब वस्तुएँ
देवताओं, पितरों, भूतों और अतिथियों के लिए उत्पन्न की गई हैं।

महाराज जनक के ये वचन सुनकर ब्राह्मण ने कहा—महाराज, मैं धर्म हूँ। आपकी
परीक्षा लेने के लिए, ब्राह्मण का वेष धारण करके, आया हूँ। मैं भली भाँति समझ गया हूँ कि
संसार में आप ही सत्त्वगुणरूप-नेमि-युक्त ब्रह्मप्राप्तिरूप चक्र के सञ्चालक हैं। २६

तेंतीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण का अपनी स्त्री से अपना माहात्म्य कहना

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, तुम अपने मन से मुझे देहाभिमानी साधारण मनुष्य के समान
समझती हो; किन्तु मैं वैसा नहीं हूँ। तुम मुझे ब्राह्मण, जीवन्मुक्त, संन्यासी, गृहस्थ या ब्रह्म-
चारी, चाहे जो समझो; किन्तु मैं साधारण मनुष्य की तरह पुण्य-पाप में आसक्त नहीं हूँ।
संसार में जितने पदार्थ देखती हो, उन सबमें मैं विद्यमान हूँ। जिस तरह आग लकड़ी का
नाश कर देती है उसी तरह मैं संसार के स्थावर-जङ्गम सब प्राणियों का संहारक हूँ। स्वर्ग

और मृत्युलोक में सर्वत्र मैं अपना राज्य समझता हूँ। ज्ञान ही मेरा धन है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, भिक्षु, चाहे जिस आश्रम में रहें; ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग एक ही प्रकार का है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष चाहे जिस वेष और आश्रम में रहें; वे केवल ज्ञान का ही आश्रय लेते हैं। उनकी बुद्धि शान्तिगुणयुक्त होती है। जिस प्रकार नदियाँ अनेक दिशाओं में बहकर समुद्र में ही जा मिलती हैं उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी पुरुष चाहे जिस वेष और आश्रम में रहे वह अन्त को ज्ञान-मार्ग में ही पहुँचेगा। बुद्धि ही मनुष्य को उस मार्ग में ले जाती है। शरीर द्वारा उस मार्ग में प्रवेश नहीं हो सकता। शरीर तो केवल नश्वर कर्मों का फल है। मेरे इस उपदेश को स्मरण रक्खोगी तो तुमको कभी परलोक का भय न होगा। तुम अन्त को मेरे आत्मा में लीन होकर मुक्त हो जाओगी।

चौंतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का ब्राह्मण को अपना मन और ब्राह्मणी को अपनी बुद्धि बतलाना।

ब्राह्मणी ने कहा—नाथ, आपने संक्षेप में जिस अगाध ज्ञान का उपदेश दिया है उसको हृदय में धारण करना अल्पबुद्धि अकृतात्मा मनुष्य के लिए बहुत कठिन है। मेरी बुद्धि भी उसके मर्म को ग्रहण नहीं कर सकती। आपकी जैसी ज्ञानात्मिका बुद्धि किस उपाय से और किस कारण उत्पन्न होती है?

ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, बुद्धि प्रथम अरणी काष्ठ और गुरु द्वितीय अरणी काष्ठ-स्वरूप है। वेदान्त के श्रवण और मनन द्वारा उन दोनों काष्ठों को मथने से उनसे ज्ञानरूप आग उत्पन्न होती है।

ब्राह्मणी ने कहा कि नाथ, जीव यदि ब्रह्म के अधीन है तो किस तरह मनुष्य जीव को ब्रह्म कहते हैं? ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, जीव निर्गुण और देहहीन है। अविवेकी मनुष्य भ्रमवश उसे सगुण और देहयुक्त समझता है। जिस उपाय से भ्रम दूर होता है और जीव को ब्रह्म समझा जा सकता है वह उपाय सुनो। कर्मनिरत मनुष्य भ्रमवश आत्मा को देहवान् समझता है; किन्तु भ्रमर जिस तरह फूल के ऊपर घूमते-घूमते उसके बीच में मधु देखता है उसी तरह योगी श्रवण और मनन आदि उपाय द्वारा शरीर में स्थित आत्मा को पृथक् भाव से देखते हैं। जो महात्मा मोक्षधर्म में प्रवृत्त होते हैं उनके लिए, कर्मनिष्ठ मनुष्यों की तरह, किसी विषय की विधि या निषेध की व्यवस्था नहीं है। इस लोक में पृथिवी आदि जितने प्रकार के व्यक्त और अव्यक्त पदार्थ हैं उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। पृथिवी आदि पदार्थों को उत्तम रूप से जान लेने पर अन्त में उन सबसे श्रेष्ठ पदार्थ परब्रह्म का साक्षात्कार, शम-दम आदि गुणों का अभ्यास करने से, होता है।

वासुदेव ने कहा—अर्जुन, ब्राह्मण के इस प्रकार तत्त्वज्ञान का उपदेश देने पर ब्राह्मणी के हृदय में ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हुआ और उसका जीवोपाधि-ज्ञान दूर हो गया।

अर्जुन ने पूछा—वासुदेव, जिस ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त की थी वे दोनों अब कहाँ रहते हैं ?

वासुदेव ने कहा—अर्जुन ! मेरा मन ब्राह्मण और बुद्धि ब्राह्मणी है। क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ। १२

पैंतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का अर्जुन से मोक्षधर्म-विषयक गुरु और शिष्य का संवाद कहना

अर्जुन ने कहा—वासुदेव, इस समय आपकी कृपा से सूक्ष्म विषय सुनने की मेरी बड़ी इच्छा है। आप परब्रह्म का स्वरूप मुझे बतलाइए।

वासुदेव ने कहा कि हे अर्जुन, मैं इस विषय में गुरु और शिष्य का संवाद सुनाता हूँ। एक बार एक शिष्य ने आसन पर बैठे हुए अपने गुरु से पूछा—भगवन्, मोक्षार्थी होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ अतएव जिन विषयों को मैं जानना चाहता हूँ और जिनसे मेरा कल्याण हो सके वे सब कृपा करके मुझे बतला दीजिए। पूछे जाने पर गुरु ने कहा—बेटा, जिन विषयों में तुमको सन्देह हो वे सब पूछो। मैं क्रमशः तुम्हारे सब सन्देह दूर कर दूँगा। शिष्य ने कहा—भगवन् ! मैं जानना चाहता हूँ कि आपकी, मेरी और स्थावर-जङ्गम सब जीवों की उत्पत्ति का कारण क्या है। जीव किसके प्रभाव से जीवित रहते हैं ? प्राणियों की दीर्घायु, सत्य और तप क्या है ? सज्जन किन गुणों की प्रशंसा करते हैं ? कल्याण करनेवाला मार्ग कौन है ? पाप और पुण्य किसे कहते हैं ? आप कृपा करके मेरे सब प्रश्नों
का उत्तर दीजिए। आपके सिवा कोई इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता। सब लोग आपको १०
मोक्षधर्म का पारदर्शी कहते हैं। मैं भी मोक्षधर्म सुनने की इच्छा से आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरे सन्देहों को दूर कर दीजिए।

शान्तिगुणावलम्बी, दमगुणसम्पन्न, छाया के समान गुरु के अनुगत, ब्रह्मचारी शिष्य के यों पूछने पर व्रतधारी ज्ञानवान् गुरु ने कहा—बेटा, तुमने वेद-विद्या के अनुसार जो प्रश्न किये हैं उनका उत्तर सुनो। ज्ञान ही परब्रह्म है और वैराग्य ही श्रेष्ठ तप है। जो मनुष्य ज्ञान के तत्त्व को समझ लेता है उसकी सब इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। जो मनुष्य देह के साथ आत्मा की भिन्नता और अभिन्नता तथा जीव के साथ परमात्मा की भिन्नता और अभिन्नता समझ जाता है उसके सब दुःख छूट जाते हैं। जो मनुष्य अहङ्कार और ममता को छोड़कर माया, सत्त्व आदि गुणों और सब प्राणियों के कारण को जान लेता है वही जीवन्मुक्त है। देहरूप वृक्ष ब्रह्मरूप बीज के प्रभाव से प्रकृति द्वारा उत्पन्न है; उसके बुद्धिरूप स्कन्ध, अहङ्काररूप पल्लव,

इन्द्रियरूप कोटर, महाभूतरूप शाखा, कर्मरूप प्रशाखा, आशारूप पत्ते, सङ्कल्परूप फूल और शुभा-
शुभरूप फल हैं; जो मनुष्य उस देहरूप वृक्ष को विशेष रूप से पहचानकर उसे ज्ञानरूप कुल्हाड़े
२२ से काट डालता है उसे फिर जन्म-मरण के दुःख नहीं भोगने पड़ते। ज्ञानी पुरुष जिसका ज्ञान
प्राप्त करके सिद्ध होते हैं उस भूत भविष्य और वर्तमान के आदि, धर्म अर्थ और काम के
निश्चयज्ञ, सिद्धों से परिज्ञात, नित्य, सर्वोत्कृष्ट ईश्वर का विषय बतलाता हूँ। एक बार प्रजापति
दक्ष, भरद्वाज, गौतम, भार्गव, वसिष्ठ, कश्यप, विश्वामित्र और अत्रि कर्ममार्ग में भटकते-भटकते
उससे ऊबकर बृहस्पति के साथ ब्रह्माजी के पास गये और उनको प्रणाम करके विनीत भाव से
कहने लगे—भगवन्, शुभ कर्म किस प्रकार करने चाहिएँ? पाप से बचने का क्या उपाय है?
हम लोगों के लिए कौन सा मार्ग हितकर है? सत्य और पाप के क्या लक्षण हैं? मोक्ष और
३१ जन्म-मृत्यु में क्या भेद है तथा प्राणियों की उत्पत्ति और मृत्यु किस प्रकार होती है?

ब्रह्माजी ने कहा—महर्षियो, स्थावर-जङ्गम सब प्राणी सत्यरूप ईश्वर से उत्पन्न होते और
अपने-अपने कर्म के प्रभाव से जीवित रहते हैं। वे कर्म के द्वारा अपना नित्य स्वभाव त्यागकर
जन्म-मरण के चक्कर में आ फँसते हैं। सत्यरूप ब्रह्म स्वाभाविक निर्गुण है। सगुण होने पर
उसे ईश्वर, धर्म, जीव, आकाश आदि भूत और जरायुज आदि प्राणी कहते हैं। इसी से ब्राह्मण
लोग नित्य योग-परायण, क्रोधहीन, शान्त और धर्मसेवी होकर सत्य का आश्रय करते हैं।
जो लोग धर्म का उल्लङ्घन नहीं करते उन ज्ञानी धर्म-प्रवर्तक ब्राह्मणों के कल्याण के लिए—चारों
वर्णों और आश्रमों के नित्य चतुष्पाद धर्म के तथा धर्म-अर्थ आदि चतुर्वर्ग के ज्ञाताओं ने—ब्रह्म
प्राप्त करने के जिस मार्ग का अवलम्बन किया था उस मङ्गलजनक मार्ग को सुनो। चारों
४० आश्रमों में पहला ब्रह्मचर्य, दूसरा गृहस्थ, तीसरा वानप्रस्थ और चौथा संन्यास है। योगियों
को जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक वे ज्योति, आकाश, सूर्य, वायु, इन्द्र और प्रजापति
आदि अनेक रूप देखते हैं; किन्तु आत्मज्ञान होने पर परमात्मा के सिवा और कुछ नहीं रह
जाता। तब उनके हृदय में एक मात्र ब्रह्म का उदय होता है। अब मोक्ष का उपाय सुनो।
ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास, यही तीन आश्रम मोक्ष के साधक प्रधान धर्म हैं। ब्राह्मण,
क्षत्रिय और वैश्य का इस धर्म में अधिकार है। गृहस्थ-धर्म सब वर्णों के लिए है। पण्डितों
ने श्रद्धा को ही इन धर्मों का प्रधान लक्षण बतलाया है। यह मैंने ब्रह्मज्ञान का उपाय और
मार्ग तुमसे कहा। सज्जन, शुभ कर्म करते हुए, इन मार्गों में पदार्पण करते हैं। जो मनुष्य
व्रत-परायण होकर ब्रह्मचर्य आदि धर्मों में से किसी धर्म का आश्रय करता है वह मुक्त होकर
प्राणियों के जन्म-मरण देखता है। अब सब तत्त्वों का वर्णन सुनो। महत्तत्त्व, अहङ्कार,
प्रकृति, ग्यारह इन्द्रियाँ, पृथिवी आदि पञ्चभूत, गन्ध आदि पाँच विषय और जीवात्मा, ये
पचीस तत्त्व कहलाते हैं। जो मनुष्य इन पचीस तत्त्वों की उत्पत्ति और विनाश को समझ

लेता है वह भ्रम में नहीं पड़ता। सारांश यह कि इन तत्त्वों, सत्त्व आदि गुणों और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं का ज्ञान हो जाने पर पाप का लेश नहीं रह जाता। पूर्वोक्त व्यक्ति सब बन्धनों से मुक्त होकर सब लोकों को जा सकता है। ५०

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का तमोगुण के काम बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, सत्त्व आदि तीनों गुण जब स्थिर भाव से रहते हैं तब वे अव्यक्त कहलाते हैं। ये तीनों गुण सर्वव्यापी, अविनाशी और स्थिर हैं। जब ये गुण चञ्चल होते हैं तब पञ्चभूतात्मक नवद्वार-युक्त पुर स्वरूप बन जाते हैं। उस नगर में रहनेवाली इन्द्रियाँ जीवात्मा को विषय-वासना में लगाती हैं। मन उस नगर में निवास करके विषयों का परिचय देता है। बुद्धि उस नगर की कर्त्री है। मनुष्य भ्रम के वश होकर उस नगर को जीवात्मा समझने लगता है; किन्तु वास्तव में वह जीवात्मा नहीं है। उस नगर में निवास करके जीव सुख-दुःख भोगता है। सत्त्व, रज और तम, ये त्रिगुणात्मक तीन प्रणालियाँ अपने-अपने विषय में लगाकर उस नगर में जीवात्मा को तृप्त करती हैं। ये तीनों गुण परस्पर आश्रित रहते हैं। जब इन तीनों में से किसी एक की अधिकता होती है तब दूसरे की कमी हो जाती है। पृथिवी आदि पञ्चभूत इन गुणों की अपेक्षा हीन नहीं हैं। जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है तब रज और तम की तथा जब रज और तम की अधिकता होती है तब सत्त्वगुण की कमी देख पड़ती है। तमोगुण का ह्रास होते ही रजोगुण प्रकाशित होता है और रजोगुण की कमी होने पर सत्त्वगुण बढ़ जाता है। तमोगुण अन्धकार स्वरूप है, उसे मोह कहते हैं। उसी के प्रभाव से मनुष्य अधर्म करता है। रजोगुण सृष्टि का कारण है। वह पहले आकाश आदि सूक्ष्म भूतों को उत्पन्न करके फिर उन्हीं से पृथिवी आदि स्थूल भूतों की उत्पत्ति करता है। रजोगुण सब भूतों में रहता है। संसार में जितने पदार्थ देख पड़ते हैं वे सब इसी गुण से उत्पन्न हुए और होते हैं। सत्त्वगुण प्रकाश-स्वरूप है। उसके प्रभाव से जीव गर्वहीन और श्रद्धावान् होता है। १०
अब इन तीनों गुणों के काम सुनो। मोह, अज्ञान, त्याग का न होना, अनिश्चितता, निद्रा, गर्व, भय, लोभ, शुभ कर्मों में दोष ढूँढ़ना, स्मरण न रखना, असफलता, नास्तिकता, दुश्चरित्रता, अविवेक, इन्द्रियों की शिथिलता, अधर्म में प्रवृत्ति, अकार्य को कार्य समझना, अज्ञान में ज्ञान का अभिमान, शत्रुता, कार्य में मन न लगना, अश्रद्धा, वृथा चिन्ता, कुटिलता, कुबुद्धि, सहनशीलता का न होना, इन्द्रियों के अधीन रहना, देवताओं की और ब्राह्मणों की निन्दा करना, अभिमान, क्रोध, मत्सर, नीच कर्म में अनुराग, दुःख देनेवाले काम करना, अपात्र को दान देना और अतिथि आदि का सत्कार न करना, ये सब तमोगुण के काम हैं। जो पापी मनुष्य इन कामों

२१ को करके शास्त्र की मर्यादा का उल्लङ्घन करते हैं वे तमोगुणी हैं। ऐसे मनुष्य दूसरे जन्म में
स्थावर (वृक्ष आदि), राक्षस, सर्प, कृमि, कीट पक्षी, चतुष्पद जीव अथवा उन्मत्त, बहरे, गूँगे
या रोगी होते हैं। जिनकी मानसिक वृत्ति बहुत ही नीच है वही मनुष्य तामसी प्रकृति के हैं।
अब वह उपाय बतलाता हूँ जिससे उनकी उन्नति होती है और वे पुण्यवान् हो सकते हैं। कर्म-
निष्ठ शुभार्थी ब्राह्मण, गूँगे-बहरे आदि तामसी मनुष्यों का वैदिक संस्कार करके, उनको स्वर्गलोक
प्राप्त करा देते हैं। जो मनुष्य, तामसी होने के कारण, पशु-पक्षी आदि का जन्म पाते हैं वे
यज्ञ आदि में निहत होकर पहले चण्डाल आदि मनुष्य-योनि में और फिर क्रमशः श्रेष्ठ कुल में
३० जन्म पाते हैं। मनुष्य श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर भी यदि दुष्कर्म करता है तो वह दूसरे जन्म में
नीच योनि में जन्म पाता है। शास्त्र में तामस प्रकृति पाँच प्रकार की बतलाई गई है—अवि-
वेकरूप तम, चित्त-विभ्रमरूप मोह, विषयासक्तिरूप महामोह, क्रोधरूप तामिस्र और मृत्युसंज्ञक
अन्धतामिस्र। यह मैंने स्वरूप, गुण और योनि के अनुसार तुमसे तमोगुण का वर्णन किया।
भ्रान्तचित्त मनुष्य इसे नहीं समझ सकते। जो मनुष्य इस विषय को अच्छी तरह समझ लेता
३६ है वह कभी तमोगुण से अभिभूत नहीं होता।

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का रजोगुण के कार्य बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, अब रजोगुण का यथार्थ वर्णन करता हूँ। सन्ताप,
रूपदर्शन, प्रयत्न, सुख-दुःख, सरदी-गरमी का अनुभव, ऐश्वर्य, विग्रह, सन्धि, हेतुवाद, मन का
उचाट रहना, क्षमा, बल, शूरता, मद, क्रोध, व्यायाम, कलह, ईर्ष्या, इच्छा और पिशुनता (चुगल-
ख़ोरी) रजोगुण से उत्पन्न होती है; ममता, परिवार का पालन, वध, बन्धन, क्लेश, क्रय, विक्रय,
छेदन भेदन और विदारण की चेष्टा, धर्मपीड़न, निठुरता, हिंसा, चिल्लाना या गाली-गलौज, दूसरों
के दोष ढूँढ़ना और इस लोक और परलोक की चिन्ता रजोगुण से उत्पन्न होती है; दूसरों का
बुरा चेतना, झूठ बोलना, लाभ की इच्छा से दान करना, विषयानुराग, निन्दा, प्रशंसा, प्रताप,
आक्रमण, सेवा, आज्ञा का पालन, विषयतृष्णा, दूसरों के आश्रित रहना, व्यवहार की कुशलता,
नीति, असावधानी, निन्दा, स्वीकार (पराई वस्तु ले लेना ?), स्त्री पुरुष द्रव्य और घर आदि
का सञ्चय रजोगुण से उत्पन्न होता है; अविश्वास, व्रत, नियम, जलाशय की प्रतिष्ठा आदि
फलजनक कर्म, स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधाकार, वषट्कार, याजन, अध्यापन, यजन,
१८ अध्ययन, दान, प्रतिग्रह और प्रायश्चित्त रजोगुण से उत्पन्न होता है; मङ्गलजनक कर्म,
विषयाभिलाषा, अनिष्ट आचरण, माया, ठगी, चोरी, गौरव, हिंसा, जागरण, दम्भ, दर्प, अनुराग,
भक्ति, प्रीति, हर्ष, अक्षक्रीड़ा, स्त्री की आज्ञा में चलना और नाचने-गाने में आसक्त रहना, ये

सब काम रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्य धर्म, अर्थ और काम में अनुरक्त होकर सदा भूत, भविष्य और वर्तमान विषय की चिन्ता करता है और जो हमेशा कामनायुक्त रहकर अनेक विषयों का भोग करके इन्द्रियों को चरितार्थ करता है उसी को रजोगुणी कहते हैं। वह बार-बार इस लोक में जन्म लेकर इस लोक और परलोक में अपने कल्याण की इच्छा से दान, प्रतिग्रह, तर्पण और होम आदि करता है। ये मैंने रजोगुण के सब काम तुमको विस्तार के साथ बतलाये। इनको अच्छी तरह जान लेने पर फिर इनमें लिप्त नहीं होना पड़ता। १८

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का सत्त्वगुण के काम बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, अब मैं सब प्राणियों के हितकारी परमपवित्र सत्त्वगुण के काम बतलाता हूँ। आनन्द, प्रीति, उन्नति, प्रकाश, सुख, दानशीलता, अभय, सन्तोष, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, पवित्रता, दक्षता, उत्साह, विश्वास, लज्जा, त्यागने की इच्छा, त्याग, आलस्यहीनता, निठुरता और मोह का न होना, सत्त्वगुण का कार्य है; सब प्राणियों पर दया, अक्रूरता, हर्ष, सन्तोष, विस्मय, विनय, सज्जनता, शान्ति, सरलता, विशुद्ध बुद्धि, पाप कर्मों से निवृत्ति, उदासीनता, ब्रह्मचर्य, आसक्ति का न होना, निर्ममत्व, फल की कामना न करना और नित्य धर्म का पालन करना, ये सब काम सत्त्वगुण के हैं। जो ब्राह्मण इन आचरणों को करता हुआ शास्त्रीय ज्ञान, सद्व्यवहार, सेवा, आश्रय, दान, यज्ञ, अध्ययन, व्रत, परिग्रह, धर्म और तपस्या में अश्रद्धा (उदासीनता) करके परब्रह्म में श्रद्धा करता है वही यथार्थ ज्ञानी है। सत्त्वगुणी महात्मा लोग राजस और तामस कामों को त्यागकर, योग के १०
बल से स्वर्गलोक में जाकर, देवताओं की तरह इच्छानुसार (अणिमा आदि) ऐश्वर्यवान्, स्वाधीन, सूक्ष्म शरीरधारी हो सकते हैं। वे देवता के समान हो जाते हैं और देवलोक में जाकर इच्छा के अनुसार सब वस्तुएँ और सुख प्राप्त करते हैं। यह मैंने सत्त्वगुण का विषय विस्तार के साथ कहा। जो मनुष्य सत्त्वगुण को अच्छी तरह समझ जाता है वह अभीष्ट विषयों को प्राप्त करता और सब विषयों से बेलाग रहता है। १५

उन्तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का सत्त्व आदि गुणों का निरूपण करना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो! सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण हमेशा अविच्छिन्न रूप से प्राणियों में रहते हैं, इसलिए इनको शरीर से अलग न समझना चाहिए। ये तीनों गुण अन्योन्याश्रित हैं। ये तीनों ही साथ रहते हैं; ये गुण परस्पर मिलकर सारे सांसारिक कार्य

करते हैं। पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के कारण प्राणियों में इनकी न्यूनाधिकता देख पड़ती है। तिर्यग्योनि के प्राणियों में तमोगुण अधिक होता है इसलिए उनमें रजोगुण और सत्त्वगुण की न्यूनता होती है, मनुष्यों में रजोगुण की अधिकता होती है, इसलिए उनमें तमोगुण और सत्त्वगुण की न्यूनता होती है, देवताओं में सत्त्वगुण अधिक होता है इसलिए उनमें तमोगुण और रजोगुण की न्यूनता होती है। सत्त्वगुण से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियों से शब्द आदि विषय उत्पन्न होते हैं। सत्त्वगुण के समान श्रेष्ठ धर्म का साधन दूसरा नहीं है। सात्त्विक मनुष्यों को श्रेष्ठ गति, रजोगुणी मनुष्यों को मध्यम गति और तमोगुणी मनुष्यों को अधोगति मिलती है। तमोगुण शूद्रों में, रजोगुण क्षत्रियों में और सत्त्वगुण ब्राह्मणों में होता है। किन्तु इनका परस्पर मेल रहने के कारण कभी-कभी इसके विपरीत हो जाता है। सूर्य में सत्त्वगुण की अधिकता, चोरों में तमोगुण की अधिकता और धूप से व्याकुल यात्रियों में रजोगुण की अधिकता होती है। इसी से सूर्योदय होने पर चोरों को दुःख होता है। सूर्य का प्रकाश सत्त्वगुण, ताप रजोगुण और राहु का ग्रास होना तमोगुण है। इसी प्रकार सब ज्योतियों में, प्रकाश और अप्रकाश के कारण, क्रमशः तीनों गुण देख पड़ते हैं। स्थावर प्राणियों में तमोगुण की अधिकता होती है, किन्तु उनमें रजोगुण और सत्त्वगुण का अभाव नहीं है। मधुर आदि रस उनका रजोगुण है और द्रव पदार्थ उनका सत्त्वगुण है। दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, संवत् आदि काल और दान, यज्ञ, स्वर्ग आदि लोक, देवता, विद्या, गति, त्रैकालिक विषय, धर्म, अर्थ, काम और प्राण अपान उदान आदि वायु, ये सब त्रिगुणात्मक हैं। सारांश यह कि संसार के सभी पदार्थों में तीनों गुण हैं। ये तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। आत्मज्ञानी विद्वान् पुरुष प्रकृति को तम, अव्यक्त, शिव, धाम, रज, योनि, सनातन, विकार, प्रलय, प्रधान, जन्म, मृत्यु, अवनति, अन्यून, अकम्प, अचल, ध्रुव, सत्, असत् और त्रिगुणात्मक कहते हैं। जो मनुष्य प्रकृति के इन नामों को, सत्त्व आदि गुणों को और गतियों को भली भाँति समझ लेता है वह सब गुणों से मुक्त होकर, शरीर त्यागकर, मोक्षपद प्राप्त करता है।

चालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का महत्तत्त्व का विषय कहना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, सबसे पहले प्रकृति द्वारा महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इस महत्तत्त्व को आदिसृष्टि समझना चाहिए। उसके मति, विष्णु, जिष्णु, शम्भु, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, ख्याति, धृति और स्मृति आदि नाम हैं। जो मनुष्य महत्तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे कभी मोहित नहीं होना पड़ता। महत्तत्त्व के हाथ, पैर, मस्तक, मुख, आँखें और कान सर्वत्र विद्यमान हैं और वह सब स्थानों में व्याप्त है। यह महाप्रभावशाली महत्तत्त्व

सबके हृदय में विद्यमान है। महत्तत्त्व अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, ईशान, अव्यय और ज्योति का स्वरूप है। संसार में जो मनुष्य बुद्धिमान्, सदाचारी, ध्यानी, योगी, दृढ़प्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, विवेकी, लोभहीन, क्रोधहीन, प्रसन्नचित्त और धैर्यवान् हैं तथा जिसमें न तो ममता है और न अहङ्कार वही महत्तत्त्व में विलीन हो सकता है। गुहाशायी, विश्वरूपी, ज्ञानी पुरुषों की एक-मात्र गति, पुरातन, परम पुरुष महत्तत्त्व की गति को जो महात्मा पुरुष विशेष रूप से समझ जाते हैं वही यथार्थ विवेकी हैं। वे कभी मोहित नहीं होते। वे बुद्धितत्त्व को अतिक्रम कर लेते हैं और सृष्टि के समय विष्णु के समान होते हैं। १३

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा अहङ्कार का वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, महत्तत्त्व से अहङ्कार की उत्पत्ति होती है। वह द्वितीय सृष्टि है। अहङ्कार (सात्त्विक, राजस और तामस) तीन प्रकार का होता है। वह चेतना-युक्त होने पर प्रजा की सृष्टि करता है; तब उसका नाम प्रजापति होता है। अहङ्कार से ही इन्द्रिय, मन, और तीनों लोकों की सृष्टि होती है। 'अहम्' (मैं) इसी अभिमान का नाम अहङ्कार है। अध्यात्मज्ञानी विद्वान् यज्ञशील मुनिगण इसी अहङ्कार में लीन हो जाते हैं। जीव जब विषय-वासना की ओर प्रवृत्त होता है तब तामस अहङ्कार, पाँच ज्ञानेन्द्रियों की सृष्टि करके, जीव को देखने आदि कामों में लगाता और राजस अहङ्कार पाँच कर्मेन्द्रियों तथा पाँचों प्राणों की सृष्टि करके उसे प्रसन्न करता है। ५

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का अहङ्कार तत्त्व द्वारा पञ्चमहाभूत आदि की सृष्टि होने का वर्णन करना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो! अहङ्कार से पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, ये पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं। इन्हीं पाँच महाभूतों के शब्द आदि विषयों में प्राणी मोहित रहते हैं। इन महाभूतों का नाश होने पर प्रलय हो जाता है। प्रलय के समय सब प्राणियों को महाभय उपस्थित होता है। जो महाभूत जिससे उत्पन्न हुआ है वह, प्रलय के समय, उसी में लीन हो जाता है। इस प्रकार स्थावर-जङ्गमरूप सब प्राणियों का नाश हो जाने पर भी स्मरणज्ञानयुक्त योगी पुरुष लीन नहीं होते। वे सूक्ष्म शरीर धारण करके महर्लोक में निवास करते हैं। शब्द आदि विषय भी सूक्ष्म हैं, इस कारण प्रलय के समय उनका भी नाश नहीं होता। अतएव उनको नित्य और सब स्थूल पदार्थों को अनित्य माना जाता है। कर्म द्वारा उत्पन्न, रक्त-मांस से युक्त, तुच्छ बाह्य शरीर स्थूल पदार्थ है और प्राण,

अपान, समान, उदान, व्यान, ये पञ्चवायु तथा वाणी, मन और बुद्धि, ये सब सूक्ष्म
पदार्थ हैं। जो मनुष्य नासिका आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों, वाणी, मन और बुद्धि को अपने वश
११ में कर सकता है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

अब अहङ्कार से उत्पन्न ग्यारह इन्द्रियों का वर्णन सुनो। आँख, कान, नाक, जीभ,
त्वचा, पैर, गुदा, लिङ्ग, हाथ, वाणी और मन, ये ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। जो मनुष्य इनको अपने
अधीन कर लेता है उसके हृदय में परमप्रकाश स्वरूप परब्रह्म प्रकाशित हो जाता है। इनमें
आँख-कान आदि पाँच को ज्ञानेन्द्रिय, पैर आदि पाँच को कर्मेन्द्रिय और मन को ज्ञान-कर्मेन्द्रिय
कहते हैं। इन्द्रियों के तत्त्व को भली भाँति समझ लेनेवाला बुद्धिमान् कृतार्थ हो जाता है।

अब ज्ञानेन्द्रियों का वर्णन विशेष रूप से सुनो। आकाश प्रथम भूत है। कान उसके
अध्यात्म (इन्द्रिय), शब्द उसका अधिभूत (विषय) और दिशाएँ उसकी अधिदैवत (अधि-
ष्ठाता) हैं। वायु द्वितीय भूत है। त्वचा उसका अध्यात्म, स्पर्श उसका अधिभूत और विद्युत्
२० उसका अधिदैवत है। तेज तृतीय भूत है। आँख उसका अध्यात्म, रूप उसका अधिभूत और
सूर्य उसके अधिष्ठाता हैं। जल चतुर्थ भूत है। जीभ उसका अध्यात्म, रस उसका अधिभूत
और चन्द्रमा उसके अधिष्ठाता हैं। पृथिवी पञ्चम भूत है। नाक उसका अध्यात्म, गन्ध
उसका अधिभूत और वायु उसका अधिष्ठाता है।

अब कर्मेन्द्रियों का विषय विशेष रूप से कहता हूँ। पैर अध्यात्म, गन्तव्य स्थान उसका
अधिभूत, और विष्णु उसके अधिष्ठाता हैं। गुदा अध्यात्म, मल-परित्याग उसका अधिभूत
और मित्र उसके अधिदेवता हैं। लिङ्ग अध्यात्म, वीर्य उसका अधिभूत और इन्द्रिय उसका
अधिदेवता हैं। वाणी अध्यात्म, वक्तव्य उसका अधिभूत और अग्नि उसका अधिष्ठाता हैं।
३० मन अध्यात्म, सङ्कल्प उसका अधिभूत और चन्द्रमा उसके अधिष्ठाता हैं। अहङ्कार अध्यात्म,
अभिमान उसका अधिभूत और रुद्र उसके अधिष्ठाता हैं। बुद्धि अध्यात्म, मन्तव्य उसका
अधिभूत और ब्रह्मा उसके अधिष्ठाता हैं।

जल, स्थल और आकाश, यही तीन स्थान प्राणियों के निवास-स्थान हैं। जीव चार
प्रकार के हैं—अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज। पक्षी और साँप आदि अण्डज हैं, कृमि-
गण स्वेदज हैं, वृक्ष-लता आदि उद्भिज्ज हैं और मनुष्य तथा पशु जरायुज हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण
दो प्रकार के हैं—तपस्वी और याज्ञिक। वृद्ध पुरुषों का कहना है कि ब्राह्मण के कुल में जन्म
लेकर वेद पढ़े तथा यज्ञ और दान करे। जो मनुष्य वृद्धों की इस आज्ञा पर विशेष रूप से
४० ध्यान देता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।

हे ऋषियो, मैंने तुम लोगों से अध्यात्म का विषय विस्तार के साथ कहा। ज्ञानी पुरुष
इस विषय को विशेष रूप से जानते हैं। इन्द्रिय और गन्ध आदि विषय तथा पञ्चमहाभूतों के

विषय को अच्छी तरह समझकर मन में धारण कर लेना चाहिए। मन के क्षीण होने पर
जन्म का सुख नहीं मिलता। ज्ञानी पुरुष ही जन्म का सुख पाते हैं।

हे महर्षियो, अब मैं निवृत्ति के विषय में उपदेश देता हूँ। गुणहीन अभिमानशून्य
अभेददर्शी ब्राह्मणों के सुख को ज्ञानी पुरुष सब सुखों का आधार समझते हैं। जिस तरह
कछुआ अपने अङ्गों को समेट लेता है उसी तरह जो महात्मा रजोगुण को त्यागकर, अपनी
कामनाओं को संकुचित करके, विषय-वासना का त्याग कर देता है वही यथार्थ सुखी है। ५०
जो मनुष्य विषय-तृष्णाहीन, शान्तचित्त और सब जीवों का मित्र होकर सब इच्छाओं
को त्याग देता है वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इन्द्रियों का निरोध कर लेने पर महात्माओं
का ज्ञान जागरित होता है। जैसे ईंधन के द्वारा अग्नि का तेज स्पष्ट देख पड़ता है वैसे ही
इन्द्रिय-निरोध द्वारा परमात्मा का प्रकाश हो जाता है। योगी महात्मा जब चित्त को निर्मल
करके हृदय में सब प्राणियों को देखने लगते हैं तब वे स्वयं ज्योतिरूप होकर सूक्ष्म से भी
सूक्ष्म परब्रह्म को प्राप्त करते हैं। प्राणियों के पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर में वर्णरूप से अग्नि, रुधिर-
रूप से जल, त्वचारूप से वायु, हड्डी और मांस आदि रूप से पृथिवी और कानरूप से आकाश
विद्यमान हैं। शरीर में रोग, शोक, पाँचों इन्द्रियों के स्रोत, नवद्वार, तीन धातु और तीन गुण
हमेशा मौजूद रहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा शरीर के अधिष्ठाता हैं। नश्वर शरीर
बुद्धि के अधीन है और रोगग्रस्त तथा मलिन है। देवताओं समेत सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति
विनाश और बोध का कारण-स्वरूप कालचक्र शरीर के उद्देश से ही घूमता रहता है। इन्द्रियों
का निरोध कर लेने पर ही मनुष्य काम, क्रोध, भय, लोभ, द्रोह और मिथ्या का त्याग कर
सकता है। जो मनुष्य इस पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर का अभिमान त्याग देता है वही हृदया- ६०
काश में परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। पञ्च-इन्द्रियरूप बड़े कगारोंवाली, मनोवेगरूप
जलराशि से परिपूर्ण, मोहरूप कुण्ड से युक्त भयङ्कर देहनदी को पार करके जो मनुष्य
काम-क्रोध को जीत लेता है वही सब दोषों से मुक्त होकर परब्रह्म का साक्षात्कार कर
सकता है। योगी पुरुष मन को स्थिर करके अपने हृदय में परमात्मा के दर्शन करते
हैं। जैसे एक दीपक से सैकड़ों दीपक जला दिये जाते हैं वैसे ही केवल एक ब्रह्म के प्रभाव
से योगियों के हृदय में अनेक प्रकार के रूप प्रकाशित होते हैं। योगी महात्मा विष्णु, मित्र,
वरुण, अग्नि, प्रजापति, धाता, विधाता, प्रभु, सर्वव्यापी और सब प्राणियों के हृदय तथा
आत्मास्वरूप हैं। ब्राह्मण, देवता, असुर, यक्ष, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत और महर्षि
लोग हमेशा योगी की स्तुति करते हैं। ६७

तेंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का मनुष्य आदि प्राणियों में जाति-विशेष की प्रधानता और अहिंसा आदि धर्म के लक्षण बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो ! रजोगुण-युक्त क्षत्रिय मनुष्यों के, हाथी सब वाहनों के, सिंह जङ्गली जीवों के, भेड़ा ग्राम्य पशुओं के, साँप बिल में रहनेवाले जीवों के, और साँड़ गायों के अधिपति हैं; पुरुष स्त्रियों के, बरगद जामुन पीपल सेमर शीशम मेषशृंग और कीचक (पोला बाँस) सब वृक्षों के, हिमालय पारियात्र सह्य विन्ध्य त्रिकूट श्वेत नील भास कोष्ठवान् गुरुस्कन्ध महेन्द्र और माल्यवान् सब पर्वतों के अधिपति हैं; सूर्य तेजस्वी ग्रहों के, चन्द्रमा ओषधियों ब्राह्मणों और नक्षत्रों के, यम पितरों के, समुद्र नदियों के, वरुण जल के, इन्द्र मरुद्गण के, अग्नि पृथिवी आदि सब भूतों के और बृहस्पति वेदज्ञ-ब्राह्मणों के अधिपति हैं; विष्णु बलवान् पुरुषों के, त्वष्टा रूपों के, शिव सब प्राणियों के, यज्ञ दीक्षित व्यक्तियों के, उत्तर दिशा सब दिशाओं की, कुबेर सब रत्नों
११ के और प्रजापति प्रजा के अधीश्वर हैं। भगवती पार्वती सब स्त्रियों में और अप्सराएँ वेश्याओं में श्रेष्ठ हैं। मैं सब प्राणियों का अधीश्वर और ब्रह्ममय हूँ। ब्रह्माण्ड में मुझसे और विष्णु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्रह्ममय विष्णु देवता, मनुष्य, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, राक्षस और दानव आदि सब प्राणियों के ईश्वर और नारद आदि योगियों के परम ऐश्वर्य-स्वरूप हैं। ब्राह्मण लोग हृदय में सदा परम सुख से उनके दर्शन करते हैं।

भूपतिगण हमेशा धर्म को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं अतएव उन्हें धर्म के प्रतिष्ठाता ब्राह्मणों के धर्म की रक्षा करनी चाहिए। जिस राजा के राज्य में सदाचारी ब्राह्मण दुःख पाते हैं वह इस लोक में निन्दनीय होकर परलोक में नीच गति पाता है। जिन राजाओं के
२० राज्य में सदाचारी ब्राह्मण सुरक्षित रहते हैं वे राजा दोनों लोकों में परम सुख भोगते हैं।

अब मैं सब पदार्थों के असाधारण धर्म बतलाता हूँ। अहिंसा परम धर्म है; हिंसा अधर्म का, प्रकाश देवताओं का, यज्ञ आदि कर्म मनुष्यों का, शब्द आकाश का, स्पर्श वायु का, रूप तेज का, रस जल का और गन्ध पृथिवी का लक्षण है; वर्णस्वरूप शब्द वाक्य का, संशय मन का, निश्चय बुद्धि का, ध्यान चित्त का, स्वप्रकाशत्व जीव का, प्रवृत्ति काम्य कर्म का और संन्यास ज्ञान का लक्षण है। बुद्धिमान् मनुष्य ज्ञान का आश्रय करके संन्यास धर्म का अवलम्बन करते हैं। जो मनुष्य संन्यास धर्म का पालन करता है वह मोह, बुढ़ापा, मौत और सुख-दुःख आदि से मुक्त होकर परम गति पाता है।

यह मैंने सब पदार्थों के असाधारण धर्म तुमको बतलाये। अब जिन देवताओं की सहायता से, जिन इन्द्रियों के द्वारा, जो गुण ग्रहण किये जाते हैं उनका वर्णन करता हूँ। गन्ध पृथिवी का गुण है, वह नासिका में स्थित वायु की सहायता से नासिका द्वारा सूँघा

जाता है। रस जल का गुण है, वह जिह्वा पर स्थित चन्द्रमा की सहायता से जिह्वा द्वारा
आस्वादित होता है। रूप तेज का गुण है, वह नेत्र में स्थित सूर्य की सहायता से नेत्र द्वारा ३०
देखा जाता है। स्पर्श वायु का गुण है, वह त्वचा में स्थित वायु की सहायता से त्वचा द्वारा
अनुभूत होता है। शब्द आकाश का गुण है, वह कान में स्थित दिशाओं की सहायता से
कान द्वारा सुना जाता है। चिन्ता मन का गुण है, वह हृदय में स्थित जीव की सहायता
से बुद्धि द्वारा की जाती है।

बुद्धि का निश्चय ज्ञान द्वारा और महत्तत्त्व का अनुभव चैतन्य प्रतिबिम्ब द्वारा किया
जाता है। आत्मा का ज्ञापक कोई नहीं है। वह निर्गुण और एकमात्र अनुभव-स्वरूप है।
प्रकृति, महत्तत्त्व और अहङ्कार आदि से उत्पन्न पदार्थों को क्षेत्र कहते हैं। अब मैं इस क्षेत्र
को पुरुष से अभिन्न बतलाता हूँ। पुरुष क्षेत्र को विशेष रूप से जानता है, इसी से उसका
नाम क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्रज्ञ आदि, मध्य और अन्त से युक्त अचेतन होने पर भी सब गुणों को
देखता है; किन्तु गुण बार-बार उत्पन्न होकर भी क्षेत्रज्ञ को नहीं जान सकते। प्रकृति आदि
सब तत्त्वों से परे क्षेत्रज्ञ है। उसे कोई नहीं जान सकता। क्षेत्रज्ञ स्वयं अपने रूप को
देखता है इसी से धर्मतत्त्व के ज्ञाता ज्ञानवान् पुरुष, बुद्धि और गुणों को त्यागकर, क्षेत्रज्ञ-
स्वरूप होकर निर्द्वन्द्व परब्रह्म में लीन होते हैं। ४२

चवालीसवाँ अध्याय

ज्ञान को अविनाशी बतलाकर उसी को कल्याण का साधन बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, जो पदार्थ जिन पदार्थों का आदि और जो पदार्थ जिन पदार्थों का अन्त है उनका वर्णन मैं विस्तार के साथ करता हूँ। दिन रात का, शुक्लपक्ष महीने का, श्रवण सब नक्षत्रों का, शिशिर सब ऋतुओं का, पृथ्वी गन्ध का, जल रस का, तेज रूप का, वायु स्पर्श का, आकाश शब्द का, सूर्य सब ग्रहों और नक्षत्रों के और (जाठर) अग्नि प्राणधारियों (जरायुज, अण्डज प्रभृति) के आदि हैं; सावित्री सब विद्याओं की, प्रजापति देवताओं के, ओंकार वेदों का, प्राण वायु वाणी का, गायत्री छन्दों का, सृष्टि का पूर्वकाल प्रजा का, गायें सब चौपायों की, ब्राह्मण सब मनुष्यों के, बाज़ सब चिड़ियों का, आहुति सब यज्ञों का, साँप रेंगनेवाले जीवों का, सत्ययुग सब युगों का और सुवर्ण सब रत्नों का आदि है; जौ सब ओषधियों का, अन्न भक्ष्य पदार्थों का, जल द्रव और पीने योग्य सब पदार्थों का, मैं सब प्रजापतियों का, अचिन्त्यात्मा स्वयम्भू भगवान् विष्णु मेरे, सुमेरु पर्वतों का, पूर्वदिशा सब दिशाओं की, गङ्गा सब नदियों की, समुद्र सब जलाशयों का, गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों का और भगवान् विष्णु देवता दानव भूत पिशाच सर्प राक्षस नर किन्नर और यक्षों समेत सम्पूर्ण

१५ जगत् के आदि हैं। प्रकृति सब लोकों की आदि-अन्त-स्वरूप है। सूर्यास्त दिन का,
सूर्योदय रात का, सुख दुःख का, दुःख सुख का, विनाश सञ्चित वस्तु का, पतन उन्नत
वस्तु का, वियोग संयोग का और मरण जीवन का अन्त है। इस लोक में क्या स्थावर और
क्या जङ्गम, कोई भी वस्तु चिरस्थायी नहीं है। दान, यज्ञ, तपस्या, व्रत और सब नियमों का
फल भी अपने समय पर नष्ट हो जाता है। किन्तु ज्ञान का कभी नाश नहीं होता। शान्तचित्त
२२ जितेन्द्रिय अहङ्काररहित महात्मा ज्ञान के प्रभाव से ही सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का शरीर को नश्वर बतलाकर गृहस्थ धर्म की प्रशंसा करना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो! बाह्य सुख में आसक्त, चौबीस तत्त्वों से बने हुए, संसार
के कारण पाञ्चभौतिक जड़ शरीर को विवेकी पुरुष कालचक्र-स्वरूप कहते हैं। वह चक्र जरा-
शोक से और व्याधिरूप व्यसन से युक्त है, उसका स्थायित्व अनियमित है, उसका आकार
अनेक प्रकार का है; वह सब पापों का कारण, रजोगुण का प्रवर्तक, दर्प का आधार,
त्रिगुणात्मक, मृत्यु के वशीभूत, क्रिया और कारण से युक्त, मायामय, भय और मोह से युक्त
तथा काम-क्रोध से परिपूर्ण है। वह चक्र मन के समान बड़े वेग से सब प्राणियों में घूमता
रहता है। बुद्धि उसका सार, मन उसका स्तम्भ, इन्द्रियाँ उसका बन्धन, स्त्री उसकी नेमि,
श्रम और व्यायाम उसके शब्द, दिन और रात उसके सञ्चालक, सरदी और गरमी उसका
मण्डल, सुख-दुःख उसके अरे, भूख-प्यास कीलक, धूप और छाया उसकी रेखा, परिताप
उसकी बन्धन-पट्टिका और लोभ से उत्पन्न इच्छाएँ उसके नीचे-ऊँचे स्थानों में गिरने के कारण
१० हैं। यही कालचक्र सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार का कारण है। जो मनुष्य
देहरूप कालचक्र की प्रवृत्ति और निवृत्ति के कारण को भली भाँति समझ लेता है वह सुख,
दुःख, पाप और सब संस्कारों से मुक्त होकर परम गति प्राप्त करता है।

शास्त्र में गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम बतलाये गये हैं।
गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों का मूल है। प्राचीन विद्वानों ने कहा है कि गृहस्थ ब्राह्मणों को
सब शास्त्र पढ़ने चाहिएँ। श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न ब्राह्मण सब संस्कार हो जाने पर गुरु के आश्रम
में जाकर, ब्रह्मचर्य का पालन करके, वेद पढ़े; वेद पढ़ चुकने पर घर को लौटकर गृहस्थाश्रम
में रहे; अपनी स्त्री के साथ सम्भोग, सदाचार का पालन और इन्द्रिय-संयम करता हुआ
श्रद्धा के साथ पञ्चयज्ञ करे। वह देवता और अतिथि का सत्कार करके भोजन करे और, जहाँ
तक हो सके, वेद-विहित कर्म तथा दान करता रहे; न तो निषिद्ध वस्तु ले, न निषिद्ध वस्तु
देवे और न अनुचित बात कहे। वह यज्ञोपवीत और साफ़ कपड़ा पहने, पवित्र रहे तथा दान

श्रौर तप करता हुआ सज्जनों की सङ्गति करे। गृहस्थ मनुष्य सदाचारी, जितेन्द्रिय और
ब्रह्मनिष्ठ रहे तथा बाँस की लाठी और जल से पूर्ण कमण्डलु धारण करे। पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ २०
करना, यज्ञ कराना, दान लेना और देना, यही छः कर्म गृहस्थ ब्राह्मणों के हैं। इनमें पढ़ाना, यज्ञ
कराना और सज्जनों का दान लेना, ये तीन प्रकार के काम उनकी जीविका के लिए तथा दान
देना, पढ़ना और यज्ञ करना, ये तीन काम धर्मोपार्जन के लिए हैं। जितेन्द्रिय क्षमावान् सब
प्राणियों पर समदर्शी और धर्म-परायण होने, पढ़ने, यज्ञ करने और ब्राह्मणों को दान देने में
असावधानी न करे। नियम का पालन करनेवाले पवित्र स्वभाव के गृहस्थ ब्राह्मण ऐसे आचरण
करने से स्वर्गलोक को जीत लेते हैं। २५

छियालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी आदि के धर्म की प्रशंसा

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, अब मैं ब्रह्मचारियों का धर्म बतलाता हूँ। अपने धर्म
में स्थिर, जितेन्द्रिय, सत्यधर्मपरायण, गुरुहितैषी, परम पवित्र ब्रह्मचारी गुरु के घर में वेद पढ़ता
हुआ गुरु की आज्ञा का पालन और प्रसन्नता से भीख माँगकर भोजन करे। हमेशा पवित्र और
आलस्यहीन रहे। प्रातः और सन्ध्याकाल होम करे। बेल या पलाश का दण्ड धारण करे।
क्षौम (रेशम या सन का बना हुआ) वस्त्र, सूती कपड़ा, मृगछाला या रँगे कपड़े पहनना ब्रह्म-
चारियों का धर्म है। वे यज्ञोपवीत पहनें, वेद पढ़ें, नित्य स्नान करें तथा लोभहीन और व्रतधारी
रहें। कमर में मूँज की मेखला और सिर पर जटा धारण करें तथा हमेशा पवित्र जल से देव-
ताओं का तर्पण करें। इस प्रकार के ब्रह्मचारियों की सब जगह प्रशंसा होती है।

ब्राह्मण इस प्रकार के धर्म का पालन करके, ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर, वानप्रस्थ धर्म का अव-
लम्बन करने से सब लोकों को जीतकर परम गति पाते हैं। फिर उनको संसार में नहीं आना पड़ता।

निष्ठावान् ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य समाप्त करने के बाद, विवाह न करके वानप्रस्थ धर्म का
अवलम्बन करते हैं। वे वन में रहकर जटा और वल्कल धारण करते तथा प्रातः और
सन्ध्याकाल में स्नान करते हैं। फिर उनको वन से लौटकर गाँव में निवास न करना
चाहिए। वे जङ्गली फल, मूल, पत्ते और श्यामाक (साँवाँ अथवा उसी प्रकार के दूसरे धान) १०
से अपना निर्वाह करें। यदि उनके आश्रम पर अतिथि आ जाय तो उसका सत्कार करें।
शहर के जल-वायु से बचे रहें। भिखारियों को भीख दें और फल-मूल आदि से देवताओं
की पूजा और अतिथियों का सत्कार करके मौन होकर भोजन करें। ईर्ष्याहीन, यज्ञशील,
पवित्र, कार्य-निपुण, जितेन्द्रिय, दयावान्, क्षमावान् वानप्रस्थी होम और वेदाध्ययन करता हुआ
तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग को जीत लेता है।

हे महर्षियो, अब मैं संन्यास धर्म का वर्णन करता हूँ। गृहस्थ, ब्रह्मचारी या वानप्रस्थी कोई मनुष्य मोक्ष प्राप्त करना चाहे तो उसे संन्यास धर्म का पालन करना चाहिए। संन्यासी महात्मा दयावान्, जितेन्द्रिय और कर्मत्यागी होते हैं। भोजन के लिए उनको किसी से कुछ न माँगना चाहिए। तीसरे पहर जो कुछ भोजन मिल जाय उसी में वे सन्तोष करें। जब गृहस्थों के घर में धुआँ न देख पड़े, परिवार के सब लोग खा-पी चुकें तब उनके द्वार पर जाकर भिक्षा माँगें। मिलने पर हर्ष और न मिलने पर विषाद न करें। केवल निर्वाह के लिए इस प्रकार भिक्षा माँग लेना उनका धर्म है। साधारण मनुष्यों की तरह लाभ की इच्छा करना उन्हें उचित नहीं। वे निमन्त्रित होकर किसी के घर भोजन करने न जायँ। निमन्त्रित होकर भोजन के लिए आनेवाले संन्यासी निन्दनीय हैं। वे कड़वी-मीठी आदि कोई वस्तु खाते समय मन लगाकर उसका स्वाद न लें; केवल प्राण धारण करने के लिए परिमित आहार करें। अपने भोजन के लिए किसी को कष्ट न दें। नीच मनुष्यों से भिक्षा न लें। धर्मध्वजी न बनकर निर्जन स्थान में विचरते रहें। सूने घर में, वन में, वृक्ष के नीचे, नदी-किनारे अथवा गुफा में निवास करें। गर्मी के दिनों में एक रात से अधिक किसी गाँव में न रहें; किन्तु वर्षाकाल में किसी गृहस्थ के यहाँ रहकर बरसात बिता दें। सब प्राणियों पर दयावान् होकर दिन को इधर-उधर घूमते रहें। रात में घूमने से पैरों के नीचे दबकर कीड़े मर जाते हैं, इसलिए रात में भ्रमण करना उन्हें उचित नहीं। वे किसी वस्तु का सञ्चय न करें और स्नेह के वश होकर कहीं निवास न करें। पवित्र जल से नहावें। वे हिंसा, क्रोध और ईर्ष्या को त्यागकर—हमेशा शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, सरल और सत्यवादी होकर—निष्पाप कर्म करें। लोभ न कर, केवल प्राण धारण करने के लिए, जो कुछ मिल जाय वही भोजन करें। वे धर्म से प्राप्त अन्न ही खावें; कभी किसी विषय की इच्छा न करें। वे भोजन और वस्त्र की ही इच्छा करें; जितना भोजन कर सकें उतना ही अन्न प्रतिदिन ग्रहण करें। दूसरे के लिए भिक्षा न माँगें। यदि कोई भूखा-प्यासा आ जाय तो अपने ही भोजन में से उसे भी दे दें। बिना माँगे किसी की कोई वस्तु न लें। किसी अच्छी वस्तु को खाकर फिर उसके खाने की इच्छा न करें। किसी के अधिकार में जो मिट्टी, जल, पत्ते, फूल और फल-मूल आदि हों उन्हें बिना माँगे न लें। शिल्प का काम करके जीविका न करें। सुवर्ण प्राप्त करने की इच्छा न करें। सदा निर्विकार रहें; न किसी से द्वेष करें और न किसी को उपदेश दें। सब प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करें; न तो किसी से कुछ माँगें और न अच्छा भोजन करने की इच्छा करें। हिंसायुक्त काम्य-कर्म और लौकिक धर्म न तो स्वयं करें और न इनके करने का किसी को उपदेश दें। सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखें और बाह्य आडम्बर छोड़कर, थोड़ा वस्त्र पहनकर, इधर-उधर भ्रमण करते रहें। न तो स्वयं घबरावें और

न किसी को घबराहट पैदा करावें। सब प्राणियों के विश्वासपात्र और सावधान रहकर—भूत, भविष्य और वर्तमान बातों की चिन्ता न करके—मृत्युकाल की प्रतीक्षा करें। किसी वस्तु को मन, वाणी या आँखों से दूषित न करें। सामने या पीठ-पीछे किसी का बुरा न चेते। निश्चेष्ट, सर्व-तत्त्वज्ञ, निर्द्वन्द्व, समदर्शी, कर्मत्यागी, ममताहीन, निरहङ्कार, योग-क्षेम (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा) से हीन, निर्गुण, शान्तस्वभाव, सन्देहहीन, निराश्रय और निःशङ्क होकर इन्द्रियों को रोकने से निस्सन्देह मोक्ष प्राप्त होता है। जो मनुष्य रूप-रस आदि विषयों से अतीत, निराकार, निर्गुण, सब प्राणियों में स्थित, निर्लिप्त परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है उसे फिर कभी जन्म-मरण का क्लेश नहीं भोगना पड़ता। बुद्धि, इन्द्रिय, देवता, वेद, यज्ञ, लोक, तप और सम्पूर्ण व्रतों द्वारा परमात्मा नहीं प्राप्त किया जा सकता। केवल ज्ञानवान् महात्मा, समाधि के बल से, उसका साक्षात्कार करते हैं। अतएव समाधि के
विषय को भली भाँति जानकर परमात्मा का आश्रय लेना ज्ञानवान् पुरुषों का कर्त्तव्य है। जो ५१
ज्ञानवान् व्यक्ति घर में रहें वे वहाँ रहकर भी ज्ञानियों के से आचरण करें। तत्त्वदर्शी महात्मा विवेकी होकर भी मूढ़ की तरह व्यवहार करे। जिस काम के करने से समाज में निरादर हो वही काम करते हुए वे अपने धर्म का पालन करें जिससे जनता उन्हें हैरान न करे; परन्तु सज्जनों के आचरित धर्म की वे निन्दा न करें। जो महात्मा इस प्रकार के धर्म-परायण होते हैं वही श्रेष्ठ हैं। जो मनुष्य इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय, पृथिवी आदि महाभूत, मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति और पुरुष, इन सबको विशेष रूप से जानकर स्थिर चित्त से परमात्मा का ध्यान करते हैं वे सब बन्धनों
से छूटकर, वायु के समान निस्सङ्ग और शङ्काहीन होकर, परब्रह्म को प्राप्त करते हैं। ५८

सैंतालीसवाँ अध्याय

संन्यास धर्म को मोक्ष का साधन बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो! ज्ञानवृद्ध, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण संन्यास को श्रेष्ठ तप और ज्ञान को परब्रह्म कहते हैं। वेद-प्रतिपाद्य परब्रह्म निर्द्वन्द्व, निर्गुण, नित्य, अचिन्त्य और सर्वश्रेष्ठ है। परमात्मा को प्राप्त करना बहुत कठिन है। ज्ञानी पुरुष रजोगुण को त्यागकर, शुद्ध हृदय से संन्यास धर्म का अवलम्बन करके, ज्ञान द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। वे संन्यासरूप श्रेष्ठ तप को मोक्ष-मार्ग का प्रदीप, सदाचार को धर्म का साधन और ज्ञान को परब्रह्मस्वरूप कहते हैं। जो व्यक्ति सर्वव्यापक ज्ञानमय परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं उनकी गति सर्वत्र हो जाती है। शरीर के साथ जीव का भेद और अभेद तथा परमात्मा के साथ जीव का भेद और अभेद विशेष रूप से अवगत हो जाने पर सब दुःखों से छुटकारा मिल जाता है। जो महात्मा न किसी विषय की इच्छा करते हैं और न किसी विषय का अनादर करते हैं वे

संसार में रहते हुए भी ब्रह्म के समान हैं। जो मनुष्य प्रकृति के गुणों को विशेष रूप से जान-
कर—ममता, अहङ्कार और सुख-दुःख आदि से हीन होकर—शुभ और अशुभ कर्मों को त्याग
देता है वह शान्तिगुण के प्रभाव से नित्य निर्गुण परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता और मुक्त हो
१० जाता है। जो मनुष्य ममताहीन होकर शुभ-अशुभ घटनारूप फल से युक्त देहरूप वृक्ष को, तत्त्व-
ज्ञानरूप महाखड्ग से, काट डालता है वह निस्सन्देह मोक्ष प्राप्त करता है। वह देहरूप वृक्ष ब्रह्मरूप
बीज से प्रकृति द्वारा उत्पन्न है, बुद्धि ही उसका स्कन्ध है, अहङ्काररूप उसमें पल्लव हैं, इन्द्रिय-
रूप उसमें कोटर हैं, महाभूत उसकी शाखाएँ और कार्य उसकी प्रशाखाएँ हैं। आशा उसके पत्ते
और सङ्कल्प पुष्प हैं। इस वृक्ष पर जीव और ईश्वररूप दो पक्षी रहते हैं। जीव और ईश्वर
का प्रतिबिम्ब बुद्धि और माया में देख पड़ता है इसी से वे चेतन-स्वरूप समझे जाते हैं। इन
दोनों में जो श्रेष्ठ है वही परमात्मा चेतनामय है। जीवात्मा लिङ्ग-शरीर से मुक्त होने पर,
१७ दोषहीन और निर्गुण होकर, बुद्धि आदि का चेतनकर्ता परमात्म-स्वरूप हो जाता है।

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का महर्षियों से योग का माहात्म्य कहना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, कोई महात्मा ब्रह्म को जगत्-स्वरूप बतलाते हैं और कोई निर्विकार कहते हैं। मनुष्य यदि मृत्यु के समय दमभर भी परमात्मा के साथ जीवात्मा की अभिन्नता समझ जाय तो वह निस्सन्देह मोक्षपद प्राप्त कर ले। जितने समय में आँख की पलक लगती है उतनी देर भी स्थिरचित्त होकर जीवात्मा को परमात्मा में लगा देने से मुक्ति मिलती है। जो मनुष्य मन, बुद्धि और इन्द्रियों का निग्रह करके प्राणायाम, ध्यान और समाधि आदि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है वह चौबीस तत्त्वों से परे परमात्मा को प्राप्त करता है। उसका चित्त शुद्ध हो जाता है और वह जो इच्छा करता है वही पूरी होती है। अव्यक्त पर-मात्मा को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होते ही जीवात्मा मुक्त हो जाता है। सत्त्वगुण के मर्मज्ञ महात्मा सत्त्वगुण की ही प्रशंसा करते हैं। अनुमान से जान पड़ता है कि आत्मा सत्त्वगुणी है। क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समदर्शिता, सत्य, सरलता, ज्ञान और संन्यास, ये गुण सात्त्विक वृत्ति के परिचायक हैं। कुछ लोगों का कहना है कि सत्त्वगुण आत्मा से भिन्न नहीं है; क्योंकि क्षमा, धैर्य आदि गुण आत्मा के नित्यसिद्ध गुण हैं। इसलिए आत्मा के साथ सत्त्व की एकता सिद्ध करना युक्ति-सङ्गत है। यह मत ठीक नहीं है; क्योंकि क्षमा और धैर्य आदि यदि आत्मा के नित्यसिद्ध गुण होते तो आत्मा के रहते हुए उनका नाश क्यों हो जाता? सत्त्वगुण आत्मा से भिन्न तो है; किन्तु आत्मा के साथ उसका विशेष सम्बन्ध होने से वह आत्मा से भिन्न

नहीं मालूम होता। जिस प्रकार गूलर के फल और कीड़ों की, पानी और मछली की तथा कमल के पत्ते और पानी की बूँद की एकता और भिन्नता दोनों देख पड़ती हैं उसी तरह सत्त्व-
गुण और आत्मा की भी एकता और भिन्नता प्रतीत होती है। १३

उनचासवाँ अध्याय

महर्षियों का ब्रह्माजी से धर्म के विषय में अनेक मत कहकर
सन्देह दूर कर देने की प्रार्थना करना

ब्रह्माजी के यों कहने पर महर्षियों ने फिर उनसे पूछा—भगवन्! धर्म की अनेक प्रकार की गति देखकर हम लोग भ्रम में पड़ जाते हैं, अतएव किसी तरह यह निश्चय नहीं कर पाते कि किस धर्म का पालन करना चाहिए। संसार में कोई-कोई (आस्तिक) तो शरीर का नाश होने पर आत्मा का अस्तित्व मानते हैं और कोई (नास्तिक) कहते हैं कि शरीर के नष्ट होने पर आत्मा भी नष्ट हो जाता है। शास्त्रज्ञ तत्त्वदर्शी पुरुषों में कोई आत्मा को अनित्य, कोई नित्य, कोई क्षणभङ्गुर, कोई एकमात्र, कोई प्रकृति और पुरुष दो प्रकार का, कोई प्रकृति के साथ सम्मिलित, कोई पाँच प्रकार का और कोई अनेक प्रकार का कहते हैं। ज्योतिर्विद् पण्डित देश और काल को चिरस्थायी कहते हैं और किसी की राय में यह मत बिलकुल तुच्छ है। कोई जटा-वल्कल-धारी, कोई मुण्डित और कोई दिगम्बर होकर विचरते हैं। तत्त्वदर्शी ब्राह्मणों में कोई नैष्ठिक ब्रह्मचर्य रखते हैं और कोई ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ धर्म का आश्रय लेते हैं। कोई भोजन में आसक्त रहते और कोई भोजन त्याग देते हैं। कोई कर्म करने की, कोई कर्म त्यागने की, कोई मोक्ष की और कोई भोग की प्रशंसा करते हैं। कोई-कोई बहुत सा धन पाने की इच्छा करते हैं और कोई धन का त्याग कर देते हैं। कोई हमेशा ध्यान आदि करते हैं और कोई इसे व्यर्थ समझते हैं। कोई अहिंसा धर्म का पालन करते और कोई हमेशा हिंसा करते रहते हैं। कोई पुण्यवान् और कोई यशस्वी होते हैं और कोई पुण्य को व्यर्थ समझते हैं। कोई मनुष्य अच्छे स्वभाव के होते और कोई हमेशा सन्देह में पड़े रहते हैं। कोई दुःख से छुटकारा पाने और
कोई सुख पाने की इच्छा करते हैं। कोई यज्ञ की, कोई दान की, कोई तप की, कोई वेदाध्ययन १०
की, कोई संन्यास के द्वारा प्राप्त ज्ञान की और कोई सद्भाव की प्रशंसा करते हैं। कोई मनुष्य तो इन सब बातों की प्रशंसा करते हैं और कोई इनमें से एक की भी प्रशंसा नहीं करते। हे पितामह, इस प्रकार धर्म के अनेक रूप देखकर हम लोग भ्रम में पड़ जाते हैं और यथार्थ सनातन धर्म को नहीं समझ पाते। संसार में मनुष्य अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ बतलाते हैं। जिसकी जिस धर्म में श्रद्धा होती है वह हमेशा उसी का पालन करता रहता है। इन्हीं

कारणों से अनेक धर्मों की ओर हमारे मन और बुद्धि का झुकाव रहता है। हम लोग अपना धर्म और सत्त्वगुण के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध किसी तरह समझ नहीं सकते, अतएव आप
१७ विस्तार के साथ इसका वर्णन कीजिए।

पचासवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का महर्षियों से श्रेष्ठ धर्म का वर्णन करना तथा पृथिवी आदि भूतों के गुण बतलाना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, मैं एक ऐसे गुरु-शिष्य-संवाद का वर्णन करता हूँ जिसका इस विषय से सम्बन्ध है। किसी प्राणी की हिंसा न करना ही श्रेष्ठ धर्म और कर्म है। इस धर्म में तनिक सी भी उद्विग्नता नहीं है। तत्त्वदर्शी लोग ज्ञान को मोक्ष का साधन कहते हैं। शुद्ध ज्ञान प्राप्त होने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो हिंसापरायण, नास्तिक और लोभ-मोह के वशीभूत हैं वे निस्सन्देह नरक को जाते हैं। जो मनुष्य आलस्य छोड़कर फल की इच्छा से कर्म करते हैं वे इस लोक में बार-बार जन्म लेकर सुख भोगते हैं और जो निष्काम कर्म किया करते हैं उन सज्जनों को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

अब सत्त्वगुण और आत्मा के संयोग-वियोग का वर्णन सुनो। सत्त्वगुण और आत्मा, इन दोनों में सत्त्वगुण विषय और आत्मा विषयी है। गूलर के फल में जिस तरह कीड़े भिन्न रूप से रहते हैं उसी तरह आत्मा सत्त्वगुण में निर्लिप्त भाव से रहता है। सत्त्वगुण जड़ पदार्थ है, उसमें ज्ञान नहीं है। आत्मा इस गुण का हमेशा भोग करता है; यह गुण उसे नहीं जानता, किन्तु आत्मा इस गुण को अच्छी तरह जानता है। पण्डितों ने सत्त्वगुण
१० को दुःख आदि से युक्त और आत्मा को सुख-दुःख आदि से हीन तथा निर्गुण बतलाया है। जिस तरह कमल का पत्ता जल में बेलाग रहता है उसी तरह आत्मा सत्त्वगुण के साथ अलिप्त रहता है। आत्मा सब गुणों के साथ रहने पर भी कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद की तरह निर्लिप्त रहता है। स्थूल शरीर और आत्मा जिस प्रकार भिन्न होने पर भी अभिन्न प्रतीत होते हैं उसी तरह सत्त्वगुण और आत्मा परस्पर भिन्न होने पर भी अभिन्न जान पड़ते हैं। अँधेरे में रक्खी हुई वस्तु जिस प्रकार दीपक की सहायता से देख पड़ती है उसी तरह सत्त्वगुण की सहायता से संसार में आत्मा के दर्शन होते हैं। जिस तरह तेल आदि के रहने पर ही दीपक सब वस्तुओं को प्रकाशित कर सकता है और तेल आदि के न रहने से बुझ जाता है उसी तरह सत्त्वगुण कर्म में संयुक्त होने पर आत्मा को प्रकाशित कर देता है और कर्म से विमुक्त होने पर नष्ट हो जाता है। दीपक के बुझ जाने पर भी जिस प्रकार सब वस्तुएँ मौजूद रहती हैं उसी प्रकार सत्त्वगुण के नष्ट हो जाने पर आत्मा का विनाश नहीं होता।

जैसे हज़ार उपदेश देने पर भी अज्ञानी मनुष्य की समझ में कुछ नहीं आता, किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य थोड़े उपदेश से ही विषय को समझ लेते हैं वैसे ही बुद्धिमान् लोग आसानी से धर्म-मार्ग को समझ लेते हैं, किन्तु अल्प बुद्धिवालों के लिए धर्म-मार्ग का समझना बहुत कठिन है। पाथेय (मार्ग के भोजन) के बिना मनुष्य जिस तरह मार्ग में कष्ट पाते हैं उसी तरह प्राक्तन कर्म-हीन जो मनुष्य योगमार्ग का अवलम्बन करते हैं वे योग की सिद्धि होने से पहले ही परलोक को चले जाते हैं। सारांश यह कि पूर्व जन्म के पुण्य के बिना किसी प्रकार
योग का अभ्यास नहीं हो सकता। जिस प्रकार नासमझ मनुष्य पैदल चलकर अपरिचित २०
लम्बे रास्ते को तय करना चाहता है उसी प्रकार अदूरदर्शी मनुष्य शास्त्रज्ञान की सहायता के बिना संसार-मार्ग को अतिक्रम करने की चेष्टा करता है। और, जिस तरह बुद्धिमान् मनुष्य तेज़ सवारी पर सवार होकर उसी मार्ग को शीघ्र तय कर लेता है उसी तरह बुद्धिमान् मनुष्य शास्त्र-ज्ञान द्वारा संसार-मार्ग को अतिक्रम करते हैं। जिस प्रकार पर्वत के शिखर पर चढ़ा हुआ मनुष्य, पृथिवी पर स्थित रथ पर सवार मनुष्य को रथ द्वारा पहाड़ पर चढ़ने में असमर्थ देखकर, रथ पर सवार होने की इच्छा नहीं करता उसी प्रकार ब्रह्मपद को प्राप्त करने के अधिकारी महात्मा शास्त्र की सहायता से इस पद को प्राप्त करना दुस्साध्य समझकर शास्त्र का त्याग देते हैं। रथ पर सवार मनुष्य जिस तरह रथ जाने के अयोग्य मार्ग में रथ छोड़कर पैदल चलता है उसी तरह बुद्धिमान् मनुष्य चित्त शुद्ध होने तक शास्त्र-मार्ग में भ्रमण करके, योग के मर्म का ज्ञान हो जाने पर, उसे त्याग देते हैं और क्रमशः हंस-परमहंस आदि पदों को जाते हैं। अज्ञानी मनुष्य जिस तरह नाव पर सवार न होकर मूर्खता-वश समुद्र को तैरकर पार करना चाहते हैं उसी तरह अनभिज्ञ मनुष्य, गुरु के बिना, संसार-सागर से उत्तीर्ण होने की इच्छा करके मौत के मुँह में चले जाते हैं। और, बुद्धिमान् जिस प्रकार भारी जहाज़ पर सवार होकर उसे चलाते हुए समुद्र के पार पहुँच जाते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य, गुरु की सहायता से दिन-रात परि-श्रम करके, संसार से मुक्त हो जाते हैं। जैसे समुद्र के पार पहुँचकर स्थल पर चलते समय जहाज़ छोड़ देना पड़ता है वैसे ही संसार से मुक्त होकर परमपद प्राप्त करते समय गुरु का त्याग कर देना चाहिए। जिस तरह केवट हमेशा नाव पर घूमा करता है उसी तरह अविवेकी मनुष्य मोह में पड़कर संसार में ही भ्रमता रहता है। जिस प्रकार नाव पर चढ़कर स्थल-मार्ग में और रथ पर सवार होकर जल-मार्ग में चलना असम्भव है उसी प्रकार अनेक कर्मों में लिप्त रहने से न तो मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है और न कर्मों को त्यागकर संसार में भ्रमण किया
जा सकता है। संसार में जो जैसे कर्म करता है उसे उन्हीं के अनुसार फल मिलता है। ३१

जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द, इन पाँच विषयों से परे है उसी को मुनियों ने प्रधान कहा है। प्रधान का ही दूसरा नाम प्रकृति है। प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से

अहङ्कार और अहङ्कार से पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। शब्द आदि पाँच विषय इन पञ्चमहा-
भूतों के गुण हैं। प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चमहाभूत, यही सब कार्यों के कारण हैं।
४० मन इनमें से किसी को नहीं जानता। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पृथ्वी के गुण हैं।
उनमें गन्ध के दस भेद हैं—सुखकर, दुःखजनक, मधुर, अम्ल, कटु, दूरगामी, मिश्रित, स्निग्ध,
रूक्ष और विशद। शब्द, स्पर्श, रूप और रस, ये चार जल के गुण हैं। रस मीठा, खट्टा,
कड़ुवा, तीता, कसैला और खारा छः प्रकार का है। शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीन तेज
के गुण हैं। रूप शुक्ल, कृष्ण, रक्त, नील, पीत, अरुण, ह्रस्व, दीर्घ, कृश, स्थूल, चतुष्कोण
और वर्त्तुल (गोल), बारह प्रकार का होता है। शब्द और स्पर्श, ये दो गुण वायु के हैं।
उनमें स्पर्श रूक्ष, शीतल, उष्ण, स्निग्ध, विशद, कठिन, चिकना, सूक्ष्म, पिच्छिल, दारुण और
५० मृदु है। आकाश में केवल शब्द गुण है। शब्द षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम,
निषाद, धैवत, सुखकर, असुखकर और दृढ़, दस प्रकार का है। आकाश सब भूतों में श्रेष्ठ है।
आकाश से अहङ्कार, अहङ्कार से बुद्धि, बुद्धि से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से प्रकृति और प्रकृति से
सनातन पुरुष श्रेष्ठ है। जो मनुष्य सब कर्मों की विधि का जानकार, अध्यात्म-कुशल और
५६ समदर्शी होता है वही सनातन पुरुष को प्राप्त कर सकता है।

इक्यावनवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का अर्जुन से ब्रह्मा और महर्षियों के तथा गुरु और शिष्य के संवाद-स्वरूप मोक्षधर्म का वर्णन करके द्वारका जाने का प्रस्ताव करना

ब्रह्माजी ने कहा—हे महर्षियो, प्राणियों की उत्पत्ति और मृत्यु का कारण आत्मा ही है। विवेक से उत्पन्न बुद्धि आत्मा को व्यक्त कर देती है। आत्मा ही क्षेत्रज्ञ कहलाता है। सारथी जिस तरह घोड़ों को हाँकता है उसी तरह मन सब इन्द्रियों को उनके कामों में लगाता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि, ये सब आत्मा के सहायक हैं। देहाभिमानी जीव इन्द्रियरूप घोड़ों, बुद्धिरूप चाबुक और मनरूप सारथी से युक्त देहरूप रथ पर सवार होकर सर्वत्र विचरता रहता है। जब वह इन्द्रियरूप घोड़ों को, मनरूप सारथी द्वारा, बुद्धिरूप चाबुक से वश में कर लेता है तब वह देहरूप रथ, जीव के ब्रह्मस्वरूप होने के कारण, ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है। जो मनुष्य इस ब्रह्ममय रथ को ठीक-ठीक जान लेता है उसको कभी भ्रम नहीं होता। पृथिवी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, नदी, पर्वत आदि स्थूल पदार्थ और प्रकृति आदि सूक्ष्म पदार्थ, सब परब्रह्म-स्वरूप हैं। परब्रह्म ही सबकी एकमात्र गति है। उसी परब्रह्म को प्रा-

करके जीवात्मा सुखी होता है। प्रलयकाल में पहले स्थावर आदि बाह्य पदार्थों का लय
हो जाता है, उसके बाद महाभूतों के गुण—शब्द आदि—विलीन होते हैं, फिर अन्त को पञ्च-
महाभूतों का नाश होता है। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पिशाच और राक्षस, स्वभाव (परमात्मा १०
की इच्छा) से ही उत्पन्न होते हैं। यज्ञ प्रभृति अथवा ब्रह्मा आदि उनकी उत्पत्ति के मूल कारण
नहीं हैं। मरीचि आदि प्रजापति बार-बार महाभूतों से उत्पन्न होते और, समुद्र में उठी हुई
तरङ्गों के समान, उन्हीं में लीन हो जाते हैं। मुक्त जीवात्मा सूक्ष्म भूतों से भी श्रेष्ठ गति पाता
है। प्रजापति ने तपस्या के बल से, मन के द्वारा, स्थावर-जङ्गम-रूप विश्व की सृष्टि की है।
फल-मूलाहारी तपःसिद्ध महात्मा सङ्कल्प द्वारा समाधि लगाकर क्रमशः तीनों लोकों को देख
सकते हैं। आरोग्य, औषध और अनेक विद्याएँ तपस्या के प्रभाव से ही सिद्ध होती हैं।
सारांश यह कि सिद्धि तपस्या के ही अधीन है। जो विषय दुष्प्राप्य, दुर्बोध और दुर्द्धर्ष हैं
वे सब तपस्या से सिद्ध हो सकते हैं। तपोबल को अतिक्रम करना बहुत कठिन है। मदिरा
पीनेवाले, ब्रह्महत्यारे, सोना चुरानेवाले, गर्भ गिरानेवाले और गुरुपत्नी से भोग करनेवाले नीच
मनुष्य तपस्या के प्रभाव से ही इन पापों से छुटकारा पा सकते हैं। मनुष्य, पितर, देवता,
पशु-पक्षी और स्थावर-जङ्गम सब प्राणी तपस्या से ही सिद्धि पा सकते हैं। देवताओं ने
तपस्या के ही प्रभाव से स्वर्गलोक प्राप्त किया है। जो अहङ्कार के वश होकर सकाम कर्म २०
करता है वह प्रजापतिलोक को जाता है। जो अहङ्कार त्यागकर विशुद्ध ध्यानयोग द्वारा
ममता को त्याग देता है वह महत्तत्त्व प्राप्त करता है और जो आत्मज्ञान प्राप्त करके ध्यान
लगाकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है वही पूर्णानन्द-स्वरूप परब्रह्म में प्रविष्ट हो सकता
है। जो मनुष्य ध्यानयोग में प्रवृत्त होकर उसका पूरा अभ्यास करने के पहले ही शरीर त्याग
देता है वह प्रकृति में प्रवेश करता है। वह फिर प्रकृति से उत्पन्न होकर पहले तो अज्ञान से
ढका रहता है, उसके बाद रजोगुण और तमोगुण से मुक्त होकर, विशुद्ध सत्त्वगुण का अवलम्बन
करके, सब विषयों का अभिमान त्यागकर परब्रह्म-स्वरूप हो जाता है। जो सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म का
ज्ञान प्राप्त कर लेता है वही यथार्थ वेदवेत्ता है। ज्ञानी पुरुष, ज्ञान प्राप्त करके, स्थिरचित्त होकर
मौनव्रत धारण कर लेता है। चित्त का ही दूसरा नाम मन है। मन परम रहस्य है।
प्रकृति से लेकर पृथिवी तक सब पदार्थ जड़ हैं। गुणों के अनुसार इन सबके लक्षण पहचाने
जाते हैं। ममता ही मृत्यु और निर्ममता शाश्वत ब्रह्म है। ज्ञानी पुरुष कर्म की प्रशंसा नहीं
करते, अविवेकी मनुष्य ही कर्म की प्रशंसा करते हैं। कर्म करने से ही जीवात्मा, पञ्चभूत- ३०
स्वरूप और ग्यारह इन्द्रियों से युक्त, लिङ्ग-शरीर धारण करता है। विद्याशक्ति और षोडशात्मक
लिङ्ग-शरीर को नष्ट करके तत्त्वज्ञ महात्मा एकमात्र पुरुष का दर्शन और आश्रय करते हैं।
इसी कारण तत्त्वज्ञानी महात्मा कर्मों को त्याग देते हैं। पुरुष विद्यामय है। उसे कर्मस्वरूप

न समझना चाहिए। जो मनुष्य इन्द्रियों को जीतकर अक्षय सनातन पुरुष का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह मृत्यु को जीत लेता है। सारांश यह कि वृत्तियों का निग्रह करके सर्वश्रेष्ठ परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने से मोक्ष मिल सकता है। जो मनुष्य मैत्री आदि संस्कारों को दृढ़ करके हृदय में उनका निरोध कर सकता है वही अलौकिक परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है। सत्त्वगुण का उदय होने से ही मनुष्य को शान्ति प्राप्त होती है। जिस प्रकार स्वप्न में अनेक विषयों का भोग करके जागने पर वे सब असत्य जान पड़ते हैं उसी प्रकार सत्त्वगुण का उदय होने पर संसार के सब पदार्थ तुच्छ जँचने लगते हैं। शान्ति की प्राप्ति ही जीवन्मुक्त महात्माओं की परम गति है। योगी महात्मा शान्ति के प्रभाव से ही भूत और भविष्य सब कर्मों को देखते हैं। सारांश यह कि निवृत्ति-मार्ग ही ज्ञानवान् महात्माओं की परम गति, परम धर्म, परम प्राप्ति और श्रेष्ठ कर्म है। जो मनुष्य समदर्शी और निःस्पृह हो सकता है वही इस सनातन धर्म को प्राप्त करता है।

हे महर्षियो, यह मैंने विस्तार के साथ निवृत्तिधर्म का वर्णन किया। अब तुम लोग इस
४० सनातन धर्म का आश्रय करो, इसी से सिद्धि प्राप्त कर सकोगे।

गुरु ने इस प्रकार ब्रह्माजी और महर्षियों का संवाद सुनाकर शिष्य से कहा—बेटा, ब्रह्माजी का यह उपदेश सुनकर महर्षियों ने इसी के अनुसार धर्म का पालन करके अभीष्ट लोक प्राप्त किये थे। तुम भी उन्हीं के समान धर्म का आचरण करोगे तो अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी।

वासुदेव ने कहा—अर्जुन! गुरु की आज्ञा से मेधावी शिष्य ने, उन्हीं के कथनानुसार, धर्म का पालन करके मोक्ष प्राप्त किया था।

वासुदेव से यह संवाद सुनकर अर्जुन ने कहा—मित्र, तुमने जिन गुरु और शिष्य का संवाद कहा है वे कौन हैं? यदि मुझे बतलाने योग्य हो तो बतलाओ।

वासुदेव ने कहा—अर्जुन, मैं ही गुरु हूँ और मेरा मन ही शिष्य है। तुम पर कृपा होने से ही मैंने यह रहस्य प्रकट कर दिया है। मैंने युद्ध के समय इसी प्रकार का उपदेश तुमको दिया था, अब यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो इसी उपदेश के अनुसार धर्म का पालन करो। शीघ्र सब पापों से छूटकर मोक्ष प्राप्त करोगे। मुझे पिताजी के दर्शन किये बहुत दिन हो गये। तुम्हारी सलाह हो तो अब मैं द्वारका को जाऊँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, श्रीकृष्ण के यों कहने पर अर्जुन ने उनसे कहा—
मित्र! चलो, आज हस्तिनापुर चलें। वहाँ धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर
५२ तुम द्वारका को जाना।



बावनवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का अर्जुन के साथ हस्तिनापुर को जाना और युधिष्ठिर की अनुमति से सुभद्रा को साथ लेकर द्वारका को प्रस्थान करना

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, अर्जुन के यों कहने पर श्रीकृष्ण ने दारुक को रथ जोतने की आज्ञा दी। दारुक शीघ्र रथ जोतकर ले आया। महावीर अर्जुन ने भी अपने अनुचरों को हस्तिनापुर चलने के लिए तैयारी करने की आज्ञा दी। वे शीघ्र चलने को तैयार होकर अर्जुन से कहने लगे कि महाराज, हम लोग तैयार हैं। तब श्रीकृष्ण और अर्जुन रथ पर सवार होकर प्रसन्नता से बातें करते हुए चले। कुछ दूर चलकर मार्ग में अर्जुन ने कहा—श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर ने तुम्हारी ही कृपा से विजय पाई है। तुम्हारी ही कृपा से हमारे शत्रु मारे गये और निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ। तुम्हीं हमारे परम सहायक हो। हम लोग, नाव की तरह, तुम्हारा अवलम्बन करके इस दुस्तर कौरव-सागर के पार पहुँचे हैं। हे विश्व-कर्मन्, हे विश्वमय! मैं तुम्हारे महत्त्व को जानता हूँ। तुम्हारे प्रभाव से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार तुम्हारे खेल हैं तथा स्वर्ग और मृत्युलोक तुम्हारी माया है। यह चराचर जगत् तुम्हीं में स्थित है। जरायुज आदि चार प्रकार के प्राणी तुम्हीं से उत्पन्न
होते हैं। तुम स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और अन्तरिक्ष के सृष्टिकर्ता हो। तुम्हारी हँसी निर्मल १०
ज्योत्स्ना (चाँदनी) है। तुम्हारी इन्द्रियाँ ऋतु, तुम्हारा क्रोध मृत्यु और तुम्हारी प्रसन्नता लक्ष्मी-स्वरूप है। अनुराग, सन्तोष, धैर्य, क्षमा, बुद्धि, कान्ति और चराचर जगत् तुम्हीं में स्थित है। कल्पान्त के समय तुम्हीं कालरूप हो। मैं बहुत दिनों में भी तुम्हारे गुणों की गिनती नहीं कर सकता। तुम्हीं आत्मा हो और तुम्हीं परमात्मा हो, तुमको नमस्कार है। मैंने देवर्षि नारद, असित देवल, महर्षि कृष्ण द्वैपायन और पितामह भीष्म से तुम्हारा माहात्म्य सुना है। तुम्हीं अद्वितीय ईश्वर हो। तुमने कृपा करके मुझे जो उपदेश दिया है, उसी के अनुसार मैं धर्म का पालन करूँगा।

तुम हम लोगों का प्रिय करना चाहते थे, इसी से दुरात्मा दुर्योधन मारा गया। कौरवों के सैनिक तुम्हारे क्रोधानल में भस्म हो गये थे इसी से हम उनका संहार कर सके हैं। तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारे बल से ही हम लोग समर में विजयी हुए हैं। तुमने दुरात्मा दुर्योधन, महावीर कर्ण,
सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा के वध का उपाय बतलाया था। अब तुम द्वारका को जाना चाहते २०
हो तो जाओ। मैं धर्मात्मा युधिष्ठिर के पास चलकर ऐसा उपाय करूँगा जिससे तुम द्वारका को जा सको। तुम जल्दी मामा वसुदेवजी और बलदेव आदि वृष्णि-वंशियों के दर्शन करोगे।

महावीर अर्जुन और श्रीकृष्ण इस प्रकार बातें करते-करते हस्तिनापुर में पहुँचे। उन्होंने महाराज धृतराष्ट्र के इन्द्रभवन-तुल्य मनोहर महल में जाकर महाराज धृतराष्ट्र, महामति विदुर,

वीर युयुत्सु, धर्मराज युधिष्ठिर, महापराक्रमी भीमसेन, नकुल और सहदेव तथा दासियों समेत
पतिव्रता गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि कौरव-स्त्रियों को देखा। इसके बाद धृत-
३० राष्ट्र और गान्धारी के पास जाकर उनको प्रणाम किया और अपना नाम बतलाया। फिर
कुन्ती, युधिष्ठिर और भीमसेन को प्रणाम किया और विदुर को गले से लगाकर उनसे कुशल-
प्रश्न किया। इसके बाद रात होने पर धृतराष्ट्र ने सबको घर जाने की आज्ञा दी।

सब लोग जब अपने-अपने घर को चले गये तब महात्मा वासुदेव अर्जुन के साथ उनके
घर गये। बड़े आदर के साथ खा-पीकर श्रीकृष्ण और अर्जुन सो गये। प्रातःकाल उठकर,
प्रातःकालीन क्रियाएँ करके, वे धर्मराज युधिष्ठिर के पास गये। धर्मराज, देवताओं समेत
देवराज की तरह, मन्त्रियों सहित बैठे हुए थे। उन्होंने श्रीकृष्ण और अर्जुन को बड़े आदर
से बैठाकर कहा—हे श्रीकृष्ण और अर्जुन, मुझे मालूम होता है कि तुम दोनों किसी विशेष
काम के लिए मेरे पास आये हो। अतएव अब शीघ्र अपना अभिप्राय कहो। तुम मुझसे
४० जो कुछ कहोगे उसे मैं अवश्य करूँगा।

यह सुनकर बोलने में चतुर महाबली अर्जुन ने नम्रता के साथ कहा—महाराज!
हमारे परम मित्र वासुदेव को द्वारका से आये बहुत दिन हो गये। अब ये अपने पिताजी के
दर्शन करने जाना चाहते हैं। आपकी आज्ञा हो तो ये अब अपने घर को जावें।

यह सुनकर धर्मराज ने कहा—श्रीकृष्ण, तुम अपने पिताजी के दर्शन करने के लिए द्वारका
को जाओ। मामा वसुदेव, मामी देवकी और महावीर बलदेव को मैंने बहुत दिनों से नहीं
देखा है। तुम द्वारका जाकर, उनको प्रणाम करके, उनसे मेरा, भीमसेन का, अर्जुन का
और नकुल-सहदेव का प्रणाम कहना। मुझे और मेरे भाइयों को भूल न जाना। जब मैं
अश्वमेध यज्ञ करूँ तब अवश्य आ जाना। अब तुम अनेक रत्न और अपनी पसन्द की वस्तुएँ
५० लेकर द्वारका को जाओ। तुम्हारी कृपा से ही मेरे शत्रु मारे गये हैं और मुझे राज्य मिला है।

श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—महाराज, आज मैं आपको पृथिवी का अधीश्वर देखकर बहुत
प्रसन्न हूँ। आप मेरे घर की सब वस्तुएँ भी अपनी ही समझें।

ये नम्रतापूर्ण वचन सुनकर धर्मराज ने श्रीकृष्ण का यथोचित सत्कार करके उनको विदा
किया। तब श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ कुन्ती और विदुर आदि से विदा होकर, कुन्ती और युधि-
ष्ठिर की आज्ञा से, सुभद्रा को भी साथ ले लिया। इसके बाद वे रथ पर सवार होकर द्वारका
को चले। अर्जुन, सात्यकि, भीमसेन, विदुर, नकुल, सहदेव और नगर के लोग उनके साथ
हस्तिनापुर के बाहर तक गये। तब श्रीकृष्ण ने मधुर वचनों में सबसे लौट जाने को कहा और
५६ सात्यकि तथा दारुक को रथ हाँकने की आज्ञा दी।

तिरपनवाँ अध्याय

मार्ग में श्रीकृष्ण और उत्तङ्क की बातचीत। श्रीकृष्ण को कौरवों के विनाश का कारण बतलाकर महर्षि का कुपित होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, सब लोग श्रीकृष्ण से गले मिलकर लौट पड़े।
अर्जुन ने बार-बार उनको गले से लगाया और जब तक श्रीकृष्ण का रथ देख पड़ा तब तक
वे उन्हीं की ओर एकटक दृष्टि लगाये खड़े रहे। श्रीकृष्ण भी बार-बार अपने प्रिय मित्र
अर्जुन की ओर देखते जाते थे। जब श्रीकृष्ण का रथ आँखों से ओझल हो गया तब अर्जुन
बड़े दुःख के साथ वहाँ से लौटे। महामति वासुदेव भी मित्र के वियोग से उदास हो रहे थे।
उनको मार्ग में शकुन होने लगे। पवनदेव वेग से चलकर श्रीकृष्ण के रथ के आगे की धूल,
कङ्कड़ और काँटे आदि मार्ग से उड़ाकर अलग फेंक देने लगे। इन्द्र सुगन्धित जल का छिड़काव
और दिव्य पुष्पों की वर्षा करने लगे। चलते-चलते श्रीकृष्ण मरुधन्व प्रदेश में पहुँचे।
वहाँ उन्होंने महर्षि उत्तङ्क को देखा। श्रीकृष्ण ने रथ से उतरकर उनको प्रणाम किया।
महर्षि उत्तङ्क ने बड़े आदर से पूछा—वासुदेव, क्या तुम कौरवों और पाण्डवों के पास जाकर
उनमें सन्धि करा आये हो? क्या कौरवों और पाण्डवों में अब भ्रातृभाव स्थापित हो गया है? १०
तुम्हारे प्रिय सम्बन्धी कौरव और पाण्डव अब शान्तिपूर्वक तुम्हारे साथ रहेंगे न? सब राजा
सुखपूर्वक अपना-अपना राज्य करते हैं न? मैं जिस आशा में था वह सफल हो गई?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे महर्षि, मैंने कौरवों और पाण्डवों में मेल कराने के लिए बड़ी
कोशिश की; किन्तु कौरव किसी तरह सन्धि करने को राज़ी नहीं हुए। इस कारण वे लोग
बान्धवों समेत युद्ध में मारे गये। बुद्धि और बल से कोई होनहार को नहीं मेट सकता।
पाण्डवों के अज्ञातवास के बाद महावीर भीष्म, विदुर और मैं, सब लोगों ने बार-बार कौरवों
को सन्धि कर लेने की सलाह दी; किन्तु किसी की बात न मानकर वे लड़ मरे। युद्ध में
पाण्डवों के पुत्र भी मारे गये। अब केवल युधिष्ठिर आदि पाँच भाई जीवित हैं।

यह सुनकर महर्षि उत्तङ्क क्रोध से अधीर होकर कहने लगे—केशव, तुम कौरवों को
युद्ध करने से बलपूर्वक रोककर उनकी रक्षा कर सकते थे। किन्तु तुमने ऐसा नहीं किया
और जब कौरवों का विनाश होने लगा था तब भी तुमने कुछ परवा नहीं की। तुम्हारी
चालाकी से ही कौरव-कुल का नाश हुआ है। अतएव मैं तुमको शाप दूँगा। २२

श्रीकृष्ण ने कहा—महर्षि, मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे शाप न दीजिए। मैं
विस्तार के साथ अध्यात्म का विषय कहता हूँ, उसे सुनकर आप क्रोध को शान्त कीजिए।
साधारण तप के प्रभाव से कोई मुझे शाप नहीं दे सकता। आपने जो बाल्यावस्था से
ब्रह्मचर्य का पालन करके कठोर तपस्या की है और बड़ी भक्ति से गुरु को सन्तुष्ट किया है उसे

मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यदि आप मुझे शाप देंगे तो बड़े परिश्रम से की हुई आपकी तपस्या नष्ट हो जायगी। अतएव आप अपना क्रोध शान्त कीजिए। मैं आपकी तपस्या
२६ नष्ट कराना नहीं चाहता।

चौवनवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का उत्तङ्क से अध्यात्म-तत्त्व का वर्णन करना और दुर्योधन के अपराध को कौरवों के विनाश का कारण बतलाना

उत्तङ्क ने कहा—वासुदेव! अच्छा, अब तुम अध्यात्म-तत्त्व का वर्णन करो। उसे सुनकर मैं या तो तुम्हारा कल्याण करूँगा या तुम्हें शाप दूँगा।

श्रीकृष्ण ने कहा—महर्षि! सत्त्व, रज और तम, ये तीनों भिन्न रूप से मेरे आश्रित हैं। रुद्र, वसु, अप्सरा, दानव, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस और सर्प मुझसे उत्पन्न हुए हैं। सब प्राणी मेरे आश्रित हैं और मैं सब प्राणियों में निवास करता हूँ। मैं ही सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त, क्षर, अक्षर और चारों आश्रमों का धर्म तथा वैदिक कर्म हूँ। मैं देवताओं का देवता और नित्य हूँ। मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ओंकार, वेद, यूप, सोम, चरु, देवताओं को सन्तुष्ट करनेवाला होम, होता, हव्य, अध्वर्यु और सदस्य मैं ही हूँ। यज्ञ के समय उद्गाता सामगान करके मेरी स्तुति करते हैं। शान्ति और स्वस्त्ययन-पाठ करनेवाले
१० महात्मा, प्रायश्चित्त के समय, मेरी ही स्तुति करते हैं। सब प्राणियों पर दयारूप प्रधान धर्म मेरा मानस पुत्र है। वह सबसे बड़ा है और मुझे प्रिय है। मैं उसी धर्म की रक्षा के लिए तीनों लोकों में महात्माओं के साथ अनेक रूप धारण कर चुका हूँ और करूँगा। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र हूँ। सब प्राणियों की सृष्टि और संहार मैं ही करता हूँ। मैं प्रत्येक युग में अनेक प्रकार के शरीर धारण करके धर्म की स्थापना और अधर्मियों का विनाश किया करता हूँ। मैं जब देव-योनि में रहता हूँ तब देवता के समान, जब गन्धर्व-योनि में रहता हूँ तब गन्धर्व के समान, जब नाग-योनि में रहता हूँ तब नाग के समान और जब यक्ष या राक्षस की योनि में रहता हूँ तब उनका सा व्यवहार करता हूँ। कुरुक्षेत्र में युद्ध होने से पहले मैंने कौरवों के पास जाकर सन्धि करने के लिए प्रार्थना की थी, किन्तु मोह के वश होकर उन्होंने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। फिर क्रुद्ध होकर मैंने अनेक प्रकार से भय दिखलाया, तब भी वे अधर्मी सन्धि करने को राज़ी न हुए। अब वे धर्मयुद्ध में शरीर त्यागकर स्वर्ग को चले गये हैं और पाण्डव, धर्मात्मा होने के कारण, विजयी होकर तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुए हैं। हे
२३ तपोधन, मैंने यह सब वृत्तान्त आपको सुना दिया।

पचपनवाँ अध्याय

उत्तङ्क को श्रीकृष्ण के विश्वरूप के दर्शन होना और श्रीकृष्ण द्वारा मरुदेश में जल प्राप्त होने का वर पाना

उत्तङ्क ने कहा—वासुदेव, तुम सम्पूर्ण जगत् के सृष्टि-कर्ता हो। तुम्हारी कृपा से अब मुझे दिव्य ज्ञान हो गया है। अब मैं तुमको शाप न दूँगा। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कृपा कर मुझे अपना विश्वरूप दिखा दो।

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने उत्तङ्क को भी वही रूप दिखा दिया जो अर्जुन को दिखाया था। महात्मा उत्तङ्क ने वासुदेव का हज़ार सूर्यों और प्रज्वलित अग्नि के समान महातेजस्वी सर्वव्यापी विश्वरूप देखकर, विस्मित होकर, कहा—भगवन्, आपको नमस्कार है। पृथ्वी आपके पैर-स्वरूप, आकाश मस्तक-स्वरूप तथा मृत्यु और स्वर्गलोक आपका मध्य भाग है। आपकी भुजाएँ सब दिशाओं में व्याप्त हैं। अब आप इस भीषण विश्वरूप को अदृश्य करके पहले का स्वरूप धारण कर लीजिए।

श्रीकृष्ण ने कहा—महर्षि, मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूँ। अतएव जो इच्छा हो वह वर मुझसे माँग लीजिए।

"भगवन्! मैं आपके विश्वरूप के दर्शन करके कृतार्थ हो गया हूँ, अब मुझे कोई वर न चाहिए।" यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा कि महर्षि, मेरे विश्वरूप के दर्शन निष्फल नहीं हो सकते। आप कोई वर अवश्य माँग लीजिए।

तब महात्मा उत्तङ्क ने कहा—मधुसूदन, इस मरुभूमि में जल बड़ी कठिनता से मिलता है। यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिए कि मैं जिस समय इच्छा करूँ उसी समय इस मरुभूमि में मुझे जल मिल जावे। तब वासुदेव ने उसी दम अपना विश्वरूप अदृश्य करके उत्तङ्क से कहा—महर्षि, आपको जब जल की आवश्यकता हो तब आप मेरा स्मरण कीजिएगा। यह कहकर श्रीकृष्ण द्वारका को चले गये।

एक दिन महर्षि उत्तङ्क को प्यास लगी और उन्होंने जल प्राप्त करने के लिए वासुदेव का स्मरण किया। उसी समय बहुत से कुत्तों से घिरा हुआ, हाथ में धनुष-बाण लिये, भीषण आकार का, नङ्ग-धड़ङ्ग एक चाण्डाल उनको देख पड़ा। वह लगातार मूतता चला आ रहा था। महर्षि उत्तङ्क को प्यासा देखकर उसने कहा—महर्षि, आपको प्यास से व्याकुल देखकर मुझे बड़ी दया आई है। आप जल्दी मेरे पास आकर मेरा मूत्र पी लीजिए।

यह सुनकर महात्मा उत्तङ्क ने मूत्र पीने से तो अनिच्छा प्रकट की ही, साथ ही वर देनेवाले श्रीकृष्ण को भी बुरा-भला कहा। महर्षि से मूत्र पीने के लिए चाण्डाल बार-बार कहने लगा; किन्तु उत्तङ्क राज़ी नहीं हुए, बल्कि कुपित होकर उसे डाँटने लगे।

चाण्डाल ने जब देखा कि किसी तरह महर्षि उत्तङ्क मूत्र पीने को तैयार नहीं होते तब वह उन्हीं के सामने कुत्तों समेत अन्तर्धान हो गया। यह देखकर महात्मा उत्तङ्क समझ गये कि वासुदेव ने ही यह माया की है। तब वे बड़े लज्जित हुए। चाण्डाल के अन्तर्धान होते ही शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् वासुदेव महात्मा उत्तङ्क के पास आ गये। उनको देखते ही महात्मा उत्तङ्क ने दुःखित होकर कहा—भगवन्, प्यासे ब्राह्मण को चाण्डाल का मूत्र देना आपको उचित नहीं।

यह उलहना सुनकर वासुदेव ने मधुर वचनों से उनको समझाते हुए कहा—महर्षि, मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से अमृत नहीं पिलाया जाता। इसी से मैंने चाण्डालरूपधारी इन्द्र द्वारा गुप्त रूप से आपके पास अमृत भेजा था; किन्तु आप उन्हें पहचान नहीं सके। पहले तो देवराज अमृत देने को तैयार नहीं थे। उन्होंने मुझसे कहा कि वासुदेव ! मनुष्य को अमर करना अच्छा नहीं है, अतएव आप उनको दूसरा कोई वर दे दीजिए। इस पर मैंने उनसे दुबारा अनुरोध किया। तब उन्होंने कहा—केशव, यदि महर्षि उत्तङ्क को आप अमृत देना ही चाहते हैं तो मैं विवश होकर आपकी बात माने लेता हूँ; किन्तु मैं चाण्डाल का रूप धारण करके
३० उनको अमृत देने जाऊँगा। यदि वे अमृत लेना चाहेंगे तो मैं उनको दे दूँगा। और, यदि वे नहीं लेंगे तो अमृत से वञ्चित रह जायँगे।

देवराज इसी शर्त पर, चाण्डाल के वेष में, आपको अमृत देने आते थे। आपने उनको लौटाकर बड़ा बुरा किया। अब मैं आपकी प्यास बुझाने के लिए फिर वर देता हूँ कि आप जिस समय पानी पीने की इच्छा करेंगे उसी समय मरुभूमि में बादल पानी बरसाकर आपको स्वादिष्ट जल देंगे। संसार में वे मेघ 'उत्तङ्क मेघ' कहलावेंगे। वासुदेव के यों वर देने पर महात्मा
३७ उत्तङ्क बड़ी प्रसन्नता से वहीं रहने लगे। अब भी उत्तङ्क मेघ मरुभूमि में पानी बरसाते हैं।

छप्पनवाँ अध्याय

वैशम्पायन का जनमेजय से महर्षि उत्तङ्क का माहात्म्य कहना

जनमेजय ने कहा—भगवन्, महर्षि उत्तङ्क ने ऐसी कौन सी तपस्या की थी जिससे गर्वित होकर वे भगवान् विष्णु को शाप देने के लिए उद्यत हो गये थे ?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महर्षि उत्तङ्क महातपस्वी और गुरुभक्त थे। उन्होंने गुरु के सिवा और किसी की पूजा नहीं की थी। [वे महात्मा जब गुरु के घर रहते थे तब] अन्य ऋषिपुत्र उनकी गुरुभक्ति देखकर उन्हीं के समान गुरुभक्त होने की इच्छा करते थे। महर्षि गौतम, अन्य शिष्यों की अपेक्षा, उत्तङ्क पर अधिक स्नेह करते थे। वे उत्तङ्क के दमगुण, पवित्रता, साहस के कार्य और गुरुभक्ति से बहुत प्रसन्न थे। महर्षि गौतम के हज़ारों शिष्य थे। उन्होंने अन्य शिष्यों को विद्या पढ़ाकर घर जाने की अनुमति दे दी थी; किन्तु स्नेहवश उत्तङ्क को घर नहीं

जाने दिया। गुरु के घर में ही उत्तङ्क बूढ़े हो गये; किन्तु गुरुभक्ति के प्रभाव से वे अपने बुढ़ापे का अनुभव न कर सके। एक बार उत्तङ्क ईंधन लेने गये और लकड़ियों का बोझा सिर पर रखकर बहुत जल्दी आश्रम को लौट आये। बोझ के लाने से वे बहुत थक गये। उनको भूख भी लग आई। इस कारण वे आश्रम में आकर लेट रहे। महात्मा उत्तङ्क लकड़ी में लिपटी हुई, चाँदी के तार के समान सफ़ेद, अपनी जटा देखकर अपने को बूढ़ा समझ दीन स्वर से रोने लगे। उस समय महर्षि गौतम की कन्या ने, पिता की आज्ञा से, जल्दी जाकर झुककर उनके आँसू अपने हाथों में ले लिये। किन्तु उसके हाथ जलने लगे और आँसू पृथिवी पर गिर पड़े। पृथिवी बड़ी कठिनाई से उत्तङ्क के आँसुओं को धारण कर सकी थी।

उत्तङ्क का यह असाधारण तेज देखकर महर्षि गौतम प्रसन्न होकर कहने लगे कि बेटा, आज तुम क्यों दुखी हुए हो। उत्तङ्क ने कहा कि भगवन्, आज तक आपकी सेवा-शुश्रूषा और भक्ति में एकाग्र चित्त से लगे रहने के कारण मुझे पता ही नहीं लगा कि मैं कब बूढ़ा हो गया। मैंने आज तक रत्ती भर भी सुख का अनुभव नहीं किया। मुझे आपकी सेवा करते सौ वर्ष हो गये। इस बीच में आपने, मुझसे छोटे, सैकड़ों शिष्यों को घर जाने की आज्ञा दे दी; किन्तु मुझे अभी तक घर जाने की आज्ञा नहीं दी। इसी से मैं बहुत दुःखित हूँ।

यह उलहना सुनकर महर्षि गौतम ने कहा—बेटा! मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हूँ, इसी से इतने दिन बीत गये और मुझे ख़याल भी न हुआ। अब घर जाना चाहते हो तो जाओ।

उत्तङ्क ने कहा—भगवन्, मैं आपको गुरु-दक्षिणा में क्या दूँ? आज्ञानुसार गुरु-दक्षिणा देकर मैं घर को जाऊँगा।

गौतम ने कहा—बेटा! गुरु को सन्तुष्ट रखना ही, सज्जनों की राय से, गुरु-दक्षिणा है। मैं तुम्हारे आचार-व्यवहार से बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए अब तुमको और किसी प्रकार की गुरु-दक्षिणा देने की ज़रूरत नहीं। आज तुम्हारा बुढ़ापा दूर हो जायगा और तुम सोलह वर्ष के जवान हो जाओगे। मैं अपनी कन्या भी तुमको देता हूँ, तुम इसके साथ विवाह कर लो। इस कन्या के सिवा और कोई तुम्हारे तेज को धारण नहीं कर सकती। महर्षि गौतम के यों कहते ही महात्मा उत्तङ्क उसी दम जवान हो गये और गौतम की यशस्विनी कन्या को भार्या बनाकर फिर गुरु से कहने लगे—भगवन्, आप कुछ दक्षिणा लेकर मुझे कृतार्थ कीजिए। तब गौतम ने कहा—बेटा! तुम गुरु-पत्नी के पास जाकर, उनकी आज्ञा के अनुसार, दक्षिणा दे आओ। गुरु की आज्ञा से उत्तङ्क गुरु-पत्नी के पास जाकर बोले—माता, मैं अपना सर्वस्व देकर आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। आज्ञा दीजिए कि मैं गुरु-दक्षिणा-स्वरूप आपको क्या दूँ। आपकी आज्ञा पाकर दुर्लभ रत्न भी मैं, अपनी तपस्या के प्रभाव से, ले आऊँगा।

अहल्या ने कहा—बेटा, तुम्हारी निष्कपट भक्ति से मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुमको गुरु-दक्षिणा देने की आवश्यकता नहीं है। अब तुम जहाँ जाना चाहो वहाँ प्रसन्नता से जाओ।

यह सुनकर उत्तङ्क को प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने फिर कहा—माता, यथासाध्य आपका हित करना मेरा कर्तव्य है। अतएव आज्ञा दीजिए कि मैं आपको क्या गुरु-दक्षिणा दूँ।

उत्तङ्क का यह आग्रह देखकर अहल्या ने कहा—बेटा, यदि तुम मुझे अवश्य ही कुछ धन देना चाहते हो तो सौदासराज की महारानी के कानों में जो मणिमय कुण्डल हैं उन्हें ला दो।

यह आज्ञा मानकर महात्मा उत्तङ्क कुण्डल लेने के लिए राक्षसरूपी सौदासराज के पास गये। कुछ देर बाद महर्षि गौतम ने उत्तङ्क को न देखकर पत्नी से पूछा—प्रिये, उत्तङ्क नहीं देख पड़ते? अहल्या ने कहा—भगवन्, वे मेरी आज्ञा से सौदासराज की महारानी के कुण्डल लेने गये हैं। यह सुनकर महर्षि गौतम ने दुःखित होकर कहा—प्रिये, राजा सौदास तो वसिष्ठ के शाप से राक्षस हो गया है इसलिए उत्तङ्क को उसके पास भेजना अच्छा नहीं हुआ। जान पड़ता है कि राक्षसरूपी सौदास उत्तङ्क को मार डालेगा। अहल्या ने कहा—भगवन्, मुझे यह नहीं मालूम था। इसी से मैंने उत्तङ्क को भेज दिया। कुछ भी हो, आपकी कृपा से उसका कोई अनिष्ट न होगा। गौतम ने कहा कि परमात्मा चाहेंगे तो ऐसा ही होगा।

सत्तावनवाँ अध्याय

गुरु-पत्नी की आज्ञा से उत्तङ्क का सौदास के पास जाकर उसकी रानी के कुण्डल माँगना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! उधर वन में घूमते-घूमते महात्मा उत्तङ्क ने मनुष्य के रक्त से लिप्त, लम्बी दाढ़ी-मूछवाले, भयङ्कर स्वरूपधारी महाराज सौदास को देखा। उसकी भयावनी सूरत देखकर उत्तङ्क रत्ती भर भी नहीं डरे। वे साहस के साथ उसके सामने खड़े हो गये। तब यमराज के समान भीषण महाराज सौदास ने उत्तङ्क से कहा—तपोधन, मैं दिन के छठे काल में भोजन करता हूँ। इस समय छठा काल आ गया है और मैं अपने भोजन की तलाश में था। खुशी की बात है कि आप आ गये। उत्तङ्क ने कहा—महाराज, मैं अपने गुरु को दक्षिणा देने के लिए यहाँ धन की खोज में आया हूँ। विद्वानों ने कहा है कि गुरु-दक्षिणा की खोज कर रहे मनुष्य की हिंसा न करनी चाहिए। अतएव आप मेरा वध न कीजिएगा। सौदास ने कहा—तपोधन, दिन का छठा भाग मेरे भोजन का समय है इसलिए मैं इस समय भूख के मारे व्याकुल हो रहा हूँ। मैं आपको किसी तरह नहीं छोड़ सकता। यह सुनकर उत्तङ्क ने फिर कहा—महाराज, यदि आप मुझे भक्षण ही कर लेना चाहते हैं तो मुझे कुछ कहना नहीं है; किन्तु मेरी एक बात आप मान लीजिए। मैं गुरु-दक्षिणा के लिए

निकला हूँ, अतएव उसे प्राप्त करके गुरु को दे आने दीजिए। गुरु ने जो दक्षिणा मुझसे माँगी है वह भी आपके ही अधीन है। वही वस्तु माँगने के लिए मैं आपके पास आया हूँ। आप ब्राह्मणों को हमेशा श्रेष्ठ रत्न देते रहते हैं। संसार में आपकी दानशीलता प्रसिद्ध है। आप मेरी अभीष्ट वस्तु मुझे दान कीजिए। महाराज, प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपसे वह वस्तु पाकर और गुरु को देकर मैं शीघ्र आपके पास आ जाऊँगा। मैं कभी झूठ नहीं बोलता।
मामूली बातों में भी मैं झूठ नहीं बोलता, फिर ऐसे अवसर पर झूठ बोलूँगा ही क्यों? १०

यह सुनकर महाराज सौदास ने कहा—महर्षि, यदि आपकी गुरुदक्षिणा मेरे अधीन है तो वह आपको अवश्य मिलेगी। बतलाइए मैं आपको क्या दूँ।

उत्तङ्क ने कहा—महाराज, मैं दान लेने का अधिकारी हूँ। मैं आपके पास, आपकी महारानी के, मणिमय कुण्डल माँगने आया हूँ।

सौदास ने कहा—तपोधन, कुण्डल तो मेरी पत्नी के अधिकार में हैं। अतएव आप और कोई वस्तु माँगिए, मैं आपको दूँगा।

उत्तङ्क ने कहा—महाराज, आपको देना है तो इस तरह का बहाना न कीजिए। कुण्डल देकर सत्य का पालन कीजिए।

सौदास ने कहा—तपोधन, आप मेरी रानी के पास जाकर उनसे मेरी तरफ़ से कुण्डल माँगिए। मेरा नाम सुनकर वे आपको कुण्डल दे देंगी।

उत्तङ्क ने कहा—महाराज, महारानी के पास तक मेरी पहुँच कैसे हो सकती है? आप स्वयं क्यों नहीं चले चलते?

सौदास ने कहा—तपोधन, आज आप इसी वन के किसी झरने के पास उनको देखेंगे। मैं दिन के छठे भाग में उनसे नहीं मिल सकता।

यह सुनकर महात्मा उत्तङ्क ने महारानी मदयन्ती के पास जाकर उनसे अपना प्रयोजन और सौदास का अनुरोध कहा। विशाल नेत्रोंवाली मदयन्ती ने, उत्तङ्क के मुँह से स्वामी की
बात सुनकर, कहा—भगवन्, महाराज ने आपको कुण्डल देने की जो बात कही है उसे मैं झूठ २०
नहीं समझती; किन्तु आप मेरे विश्वास के लिए उनका कोई चिह्न ले आइए। देवता, यक्ष और महर्षि लोग हमेशा मेरे इन मणिमय कुण्डलों को चुरा लेने की घात में रहते हैं। यदि मैं इन कुण्डलों को पृथिवी पर रख दूँ तो रत्नलोलुप साँप उठा ले जावें, यदि अपवित्र होकर इन्हें पहन लूँ तो यक्ष और यदि इनको पहनकर सो जाऊँ तो देवता चुरा ले जावें। इसी से मैं इनको बड़ी सावधानी से पहनती हूँ। ये कुण्डल दिन-रात सुवर्ण उत्पन्न करते रहते हैं। इनकी चमक रात में ग्रहों और नक्षत्रों से भी बढ़कर होती है। इन कुण्डलों के पहन लेने से भूख और प्यास नहीं लगती और विष देनेवाले तथा आग लगा देनेवाले दुरात्मा मनुष्यों से

कोई डर नहीं रहता। छोटा व्यक्ति इन कुण्डलों को पहने तो ये छोटे हो जाते हैं और बड़े डील-डौल का व्यक्ति इन्हें पहने तो ये बड़े हो जाते हैं। मेरे कुण्डलों के गुण तीनों लोकों में
२८ प्रसिद्ध हैं। महाराज का कोई चिह्न ले आने पर मैं अवश्य आपको कुण्डल दे दूँगी।

अट्ठावनवाँ अध्याय

कुण्डल लेकर उत्तङ्क का लौटना। मार्ग में ही एक साँप का नागलोक को कुण्डल ले जाना। फिर कठिनता से कुण्डल लाकर उत्तङ्क का गुरु-पत्नी को देना

वैशम्पायन कहते हैं कि महारानी मदयन्ती के यों कहने पर महात्मा उत्तङ्क ने सौदास के पास जाकर कहा—महाराज, आपका कोई परिचायक चिह्न मेरे पास न होने के कारण महारानी ने कुण्डल नहीं दिये अतएव आप कोई पहचान की वस्तु दीजिए।

सौदास ने कहा—ब्रह्मन्, आप महारानी के पास जाकर कहिए कि सौदास ने कहा है कि 'प्रिये, मैं इस समय जिस दुरवस्था में पड़ा हूँ इससे कभी छुटकारा पाने की मुझे आशा नहीं है; मेरी भलाई के लिए तुम इन ब्राह्मण देवता को अपने कुण्डल दे दो'।

यह सुनकर महात्मा उत्तङ्क ने मदयन्ती के पास जाकर राजा का सन्देश कह सुनाया। महारानी ने उत्तङ्क के मुँह से अपने स्वामी की आज्ञा सुनकर और उसे अभिज्ञान (चिह्न) मानकर उसी दम अपने कुण्डल उत्तङ्क को दे दिये। उत्तङ्क ने कुण्डल लेकर सौदास के पास आकर कहा—महाराज, महारानी ने आपकी आज्ञा पाते ही मुझे कुण्डल दे दिये हैं; किन्तु आपकी इस (अभिज्ञानस्वरूप) बात का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। इसका तात्पर्य बतलाइए।

सौदास ने कहा—भगवन्, क्षत्रिय लोग हमेशा से ब्राह्मणों की पूजा करते आये हैं किन्तु ब्राह्मण हमेशा उनका अनिष्ट करते रहते हैं। देखिए, मैं ब्राह्मणों का इतना भक्त होने पर भी ब्राह्मण के ही शाप से इस दुर्गति में पड़ा हूँ। अब इस दुर्गति से छुटकारा पाकर इस लोक में सुख और परलोक में स्वर्ग पाने की मुझे आशा नहीं है। सारांश यह कि कोई राजा ब्राह्मण से विरोध करके किसी लोक में सुख नहीं पा सकता। यही विचार कर मैंने अपने परम प्रिय मणिमय कुण्डल आपको दे दिये हैं। अब आपने मुझसे जो प्रतिज्ञा की है उसका पालन कीजिए।

उत्तङ्क ने कहा—महाराज, मेरी प्रतिज्ञा झूठ नहीं हो सकती। मैं अवश्य लौटकर
१० आपके पास आऊँगा। मैं आपसे एक और बात पूछना चाहता हूँ। उसका उत्तर दीजिए।

सौदास ने कहा—भगवन्, जो पूछना हो सो पूछिए। मैं अवश्य उत्तर देकर आपका सन्देह दूर करूँगा।

उत्तङ्क ने कहा—महाराज, धर्मज्ञ विद्वानों ने ब्राह्मणों का श्रेष्ठ धर्म सत्यवादी होना ही बतलाया है अतएव मैंने आपसे जो प्रतिज्ञा की है उसका उल्लंघन करने की मैं इच्छा नहीं करता।

किन्तु आज आपके साथ मेरी मित्रता हो गई है, इसलिए मेरा विनाश करने से आपको मित्र की हत्या करने का पाप लगेगा। शास्त्र का वचन है कि मित्र की हत्या करने से सोना चुराने का पाप लगता है, इसलिए मुझे मार डालना आपका कर्त्तव्य नहीं है। आप इस समय राक्षस-भाव में हैं, इससे मुझे जान पड़ता है कि मैं लौटकर आऊँगा तब आप मुझे मार डालेंगे। अब मैं आपसे ही पूछता हूँ कि मुझे आपके पास लौट आना चाहिए या नहीं।

सौदास ने कहा—भगवन्! मेरे पास आने से आपकी मृत्यु अवश्य हो जायगी, अतएव आप लौटकर मेरे पास न आइएगा।

यह सुनकर महात्मा उत्तङ्क बहुत प्रसन्न हुए और, महारानी मदयन्ती के कहने के अनुसार, उनके दिये हुए दोनों कुण्डलों को अपने मृगचर्म के दुपट्टे में बाँधकर शीघ्रता से महर्षि गौतम के आश्रम की ओर चले। थोड़ी दूर चलने पर उनको बड़ी भूख लगी। मार्ग में बेल का पेड़ देखकर उसके फल तोड़ने के लिए वे उस पर चढ़ गये और पेड़ की डाली में अपना मृगचर्म लटकाकर फल तोड़-तोड़कर गिराने लगे। उस समय उनकी असावधानी से बेल के कुछ फल २१
मृगचर्म पर गिर पड़े, जिससे उसका बन्धन ढीला हो गया और दोनों कुण्डल पृथिवी पर गिर गये।

उसी स्थान पर ऐरावत-वंश का एक साँप रहता था। वह कुण्डलों को झटपट मुँह में दबाकर ले भागा और एक बिल में घुस गया। इससे उत्तङ्क को बड़ा क्रोध और दुःख हुआ। वे शीघ्र पेड़ से कूद पड़े और नागलोक को जाने का मार्ग बनाने के लिए डण्डे से उस बिल को खोदने लगे। इस तरह पच्चीस दिन बीत गये; किन्तु महात्मा उत्तङ्क मार्ग न बना सके। उनके डण्डे की चोट पृथिवी न सह सकी और व्याकुल होकर डगमगाने लगी।

महात्मा उत्तङ्क को दुखित देखकर इन्द्र रथ पर सवार होकर पृथिवी पर आये और ब्राह्मण का वेष धारण करके उनके पास जाकर कहने लगे—ब्रह्मन्, नागलोक यहाँ से हज़ारों योजन दूर है। इस कारण आप इस डण्डे से पृथिवी को खोदकर वहाँ नहीं पहुँच सकते। ३२

ब्राह्मणरूपी इन्द्र की यह बात सुनकर उत्तङ्क ने कहा—भगवन्, यदि मैं नागलोक को जाकर कुण्डल न ला सकूँगा तो आपके सामने ही प्राण त्याग दूँगा।

यह प्रतिज्ञा सुनकर वज्रधारी इन्द्र ने उनके डण्डे के अग्रभाग में वज्रास्त्र लगा दिया। तब उस वज्र के प्रहार से पृथिवी फट गई और नागलोक को जाने का मार्ग बन गया। इससे महात्मा उत्तङ्क बहुत प्रसन्न हुए और उसी मार्ग से चलकर शीघ्र नागलोक में पहुँच गये। उन्होंने देखा कि वह लोक हज़ारों योजन विस्तृत है। उसके चारों ओर मणि-मुक्ता आदि अनेक रत्नों से विभूषित प्राकार है। वहाँ बिल्लौर की सीढ़ियों से शोभित बावलियाँ, निर्मल जल से परिपूर्ण नदियाँ और पक्षियों के कलरव से शोभायमान वृक्ष हैं। नागलोक का बाहरी फाटक सौ योजन लंबा और पाँच योजन चौड़ा है। इतने विस्तृत नागलोक को देखकर उत्तङ्क बहुत दुखी हुए।

४० उन्हें कुण्डल मिलने की आशा न रही। इतने में एक तेजस्वी घोड़ा उनको देख पड़ा। उसकी पूँछ के
बाल सफ़ेद और काले थे। उसकी आँखों का और उसके मुँह का रङ्ग लाल था। घोड़े ने
उत्तङ्क के पास आकर कहा—उत्तङ्क! तुम हमारे गुह्य स्थान में मुँह से फूँको, तुमको कुण्डल
मिल जायँगे। ऐरावत-वंश का एक नाग तुम्हारे कुण्डल ले आया है। हमारी गुदा में
फूँकने से तुम घृणा न करो। महर्षि गौतम के आश्रम पर तुमने तो यह काम अनेक बार किया है।
उत्तङ्क ने कहा—हे अश्व! बतलाओ, गुरु के आश्रम पर तुम्हारे दर्शन कब हुए थे।
घोड़े ने कहा—ब्रह्मन्, हम तुम्हारे गुरु के गुरु हैं। हमारा नाम अग्नि है। तुम गुरु
की सेवा के लिए सदा हमारी पूजा करते थे। इसी से तुम्हारा हित करने की हमारी इच्छा हुई
है। तुम शीघ्र हमारे कहने के अनुसार काम करो।
अश्वरूपी अग्निदेव के ये वचन सुनकर उत्तङ्क ने उनकी आज्ञा का पालन किया। तब
अग्निदेव उत्तङ्क से बहुत प्रसन्न हुए। उस घोड़े के शरीर में जितने रोएँ थे उन सबसे धुआँ
निकलने लगा। वह धुआँ इतना बढ़ा कि समूचे नागलोक में अँधेरा छा गया। इससे ऐरा-
५० वत के घर में हाहाकार मच गया। नागराज अनन्त और अन्य सब साँपों के घर धुएँ से छिपकर,
बरफ़ से ढके पहाड़ और वन की तरह, अलक्ष्य हो गये। गरमी के मारे सब नाग व्याकुल हो
उठे। धुएँ से उनकी आँखें लाल हो गईं। सबके सब यह जानने के लिए उत्तङ्क के पास
आये कि इतना धुआँ क्यों फैला है। उनसे सब हाल सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब
अपने बाल-बच्चों समेत नागों ने उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, हम
आपके कुण्डल देते हैं; आप हम पर कृपा कीजिए। इस प्रकार नागों ने उत्तङ्क को सन्तुष्ट करके,
पाद्य और अर्घ्य आदि देकर, उनके कुण्डल ला दिये।
महाराज! इस प्रकार नागों से पूजित होकर महाप्रतापी उत्तङ्क, अग्निदेव की प्रदक्षिणा
करके, गुरु के आश्रम की ओर चले। गुरु-पत्नी को कुण्डल देकर उन्होंने गुरु से वासुकि
आदि नागों का हाल कहा।
महाराज, महात्मा उत्तङ्क इस प्रकार अनेक स्थानों में भ्रमण करके कुण्डल ले आये थे।
६० उत्तङ्क की तपस्या का यही प्रभाव है।

उनसठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का द्वारका पुरी में पहुँचना

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, वासुदेव ने महर्षि उत्तङ्क को वर देकर फिर क्या किया?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! महर्षि उत्तङ्क को वरदान देकर, सात्यकि के साथ वायु के समान वेगगामी घोड़ों से युक्त रथ पर सवार होकर वासुदेव नद, नदी, वन और पहाड़

लाँघकर द्वारका के पास पहुँचे। उस समय रैवतक पर्वत पर महोत्सव हो रहा था। वासुदेव और सात्यकि ने उस पर्वत पर जाकर देखा कि वह मूल्यवान् रत्नों, मनोहर सुवर्ण की मालाओं तथा उत्तम वस्त्रों और कल्पवृक्षों से विभूषित होकर रमणीय हो रहा है। सुवर्णमय दीपवृक्ष रक्खे जाने से गुफाएँ और झरने दिन के समान शोभा दे रहे हैं। चारों ओर सुवर्णमय घण्टायुक्त विचित्र पताकाएँ उड़ रही हैं। सब स्त्री-पुरुष प्रसन्नता से उन्मत्त होकर ऊँचे स्वर से गा रहे हैं। क्रीड़ा करते हुए, मदमत्त और प्रसन्नचित्त मनुष्यों के शब्दों से सब दिशाएँ गूँज रही हैं। पवित्र घर, बाज़ार, भोजन आदि की सामग्री, वस्त्र, मालाएँ, वीणा, वेणु, मृदङ्ग और मदिरा तथा मैरेय से मिली हुई भोजन-सामग्री प्रचुर परिमाण में मौजूद है। पुण्यात्मा मनुष्य दीनों, अन्धों और दरिद्र लोगों को अभीष्ट वस्तुएँ दे रहे हैं। उस समय सब वृष्णिवंशी लोग पर्वत पर विहार कर रहे थे। वासुदेव के पहुँचने पर वह पर्वत इन्द्र-भवन के सदृश हो गया।

थोड़ी देर उस पर्वत की शोभा देखकर वासुदेव बड़ी प्रसन्नता से सात्यकि के साथ अपने घर को चले। तब जिस तरह देवता इन्द्र के पीछे चलते हैं उसी तरह भोज, वृष्णि और अन्धकवंश के लोग उनके पीछे हो लिये। वासुदेव ने अपने घर पहुँचकर उन सबका सम्मान करके, कुशल पूछकर, माता-पिता के पैर छुए। उन्होंने श्रीकृष्ण को छाती से लगा लिया और प्रिय वचनों से उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद श्रीकृष्ण पैर धोकर आसन पर बैठे और वृष्णिवंशी लोग उनके चारों ओर बैठ गये।

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का वसुदेवजी से कौरवों के युद्ध का वर्णन करना

श्रीकृष्ण के बैठ जाने पर वसुदेव ने पूछा—बेटा! कौरवों और पाण्डवों के युद्ध का हाल यद्यपि दूसरों के मुँह से मैंने सुना है किन्तु तुमने इस भयङ्कर युद्ध को अपनी आँखों देखा है। इसलिए मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ कि पाण्डवों ने अनेक देशों के क्षत्रियों के साथ तथा भीष्म, कर्ण, द्रोण, कृप और शल्य आदि वीरों के साथ किस प्रकार युद्ध किया था। आद्योपान्त वर्णन करो।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, पिता की आज्ञा से श्रीकृष्ण अपनी माता देवकी के सामने युद्ध का वृत्तान्त कहने लगे—पिताजी, कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में क्षत्रियों ने बहुत से अद्भुत काम किये हैं। उन कामों का वर्णन सौ वर्ष में भी पूर्ण रूप से नहीं हो सकता। अतएव मैं संक्षेप में कहता हूँ। पहले महावीर भीष्म कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना के

सेनापति हुए और महावीर शिखण्डी, श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन से सुरक्षित होकर, पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना लेकर उनके साथ युद्ध करने लगे। यह युद्ध दस दिन तक हुआ। इन दस दिनों में दोनों ओर के असंख्य वीर मारे गये। दसवें दिन वीर शिखण्डी ने, अर्जुन की सहायता से, लगातार बाण बरसानेवाले महात्मा भीष्म को घायल करके गिरा दिया। भीष्मदेव सूर्य के उत्तरायण होने तक शरशय्या पर पड़े रहे। उत्तरायण होने पर उन्होंने शरीर त्याग दिया।

महात्मा भीष्म के घायल हो जाने पर अस्त्रविद्या के जानकारों में श्रेष्ठ महाबली द्रोणाचार्य कौरव-सेना के सेनापति होकर—कृपाचार्य और कर्ण आदि वीरों की सहायता से—बची हुई नव अक्षौहिणी सेना की रक्षा करने लगे। इधर महावीर धृष्टद्युम्न, मित्र से सुरक्षित वरुणदेव की तरह, भीमसेन द्वारा रक्षित होकर पाण्डवों की सेना की रक्षा करने लगे। वीर धृष्टद्युम्न ने, द्रोणाचार्य द्वारा अपने पिता के पराजित होने का स्मरण करके, आचार्य को मार डालने के लिए युद्ध में बड़े भयङ्कर कार्य किये थे। द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के युद्धकाल में अनेक दिशाओं से आये हुए वीर प्रायः सब नष्ट हो गये। इन वीरों का घोर युद्ध पाँच दिन तक हुआ। अन्त को महावीर द्रोणाचार्य बहुत थक गये और धृष्टद्युम्न के हाथ से मारे गये।

द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद महावीर कर्ण पाँच अक्षौहिणी कौरव-सेना और महाधनुर्धर अर्जुन तीन अक्षौहिणी पाण्डव-सेना लेकर घोर संग्राम करने लगे। दो दिन तक इन वीरों का भयानक युद्ध हुआ। अन्त को महावीर कर्ण, आग में गिरे हुए पतङ्गे की तरह, अर्जुन के हाथ से मारे गये। वीर कर्ण के मारे जाने पर कौरवगण बिलकुल उत्साहहीन और निर्बल हो गये। तब उन्होंने मद्रराज शल्य को बची हुई तीन अक्षौहिणी सेना का सेनापति बनाया। असंख्य वीरों के मारे जाने से पाण्डव भी उत्साहहीन हो गये थे। तब बची हुई एक अक्षौहिणी सेना के अधिपति होकर युधिष्ठिर संग्राम करने लगे। उनके साथ मद्रराज का युद्ध केवल आधे दिन तक हुआ। धर्मराज ने संग्राम में तीक्ष्ण बाणों से मद्रराज शल्य को मार डाला। शल्य के मारे जाने पर महावीर सहदेव ने, वंशनाश के प्रधान कारण, दुष्ट शकुनि को मार गिराया।

शकुनि के मारे जाने पर दुःख से व्याकुल राजा दुर्योधन गदा लेकर रणभूमि से भागे और द्वैपायन तालाब में जा छिपे। कुपित भीमसेन ने उनको तालाब में देख लिया। युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने बची हुई सेना लेकर उस तालाब को जा घेरा। वहाँ महाबली भीमसेन ने दुर्योधन को अनेक प्रकार के कटु वचन सुनाये। वाग्बाणों से व्यथित दुर्योधन, गदा लेकर, तालाब से निकल आये। उनको भीमसेन ने गदायुद्ध में सब राजाओं के सामने मार डाला। उस रात को, युद्ध में बचे हुए, पाण्डवों के सैनिक शिविर में सोये हुए थे। अश्वत्थामा ने पिता के वध का दुःख न सह सकने के कारण उन सैनिकों को उसी दशा में मार डाला।

पाण्डवों के पुत्र, मित्र और सब सैनिक युद्ध में नष्ट हो गये हैं। केवल पाँचों भाई पाण्डव, सात्यकि और मैं, इतने ही योद्धा पाण्डव-पक्ष में बचे हैं। कौरवपक्ष में अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा, ये तीन मनुष्य जीवित हैं। धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु भी, पाण्डवों का आश्रय लेने के कारण, बच गया है। दुर्योधन के मारे जाने पर विदुर और सञ्जय अब युधिष्ठिर के आश्रय में हैं। पिताजी, इस प्रकार अठारह दिन तक कौरवों और पाण्डवों का घोर संग्राम हुआ। इस युद्ध में जितने वीर मारे गये हैं उन सबको स्वर्गलोक प्राप्त हुआ है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, महात्मा वासुदेव के मुँह से यह लोमहर्षण वृत्तान्त सुनकर सब वृष्णिवंशी लोग दुःख और शोक से व्याकुल हो गये। ३

इकसठवाँ अध्याय

सुभद्रा के कहने पर श्रीकृष्ण का अभिमन्यु की मृत्यु का हाल बतलाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार भारतीय युद्ध का वृत्तान्त वसुदेवजी को कह सुनाया। अभिमन्यु के वध का वृत्तान्त उन्होंने इसलिए नहीं कहा कि यह हाल सुनकर पिताजी दुःख और शोक से घबरा उठेंगे। अभिमन्यु की माता सुभद्रा भी वहीं बैठी थीं। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—भैया, मेरे अभिमन्यु के मरने का हाल तो बतलाओ। यह कहकर वे पृथिवी पर गिर पड़ीं।



वसुदेवजी अपने नाती के मरने की ख़बर सुनकर अपने को न सँभाल सके और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। थोड़ी देर में जब होश आया तब उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—बेटा, तुमने सत्यवादी होकर भी अभिमन्यु के मरने का हाल मुझे क्यों नहीं बतलाया! अभिमन्यु के मरने का हाल सुनने से मेरा चित्त घबरा रहा है। विस्तार के साथ उसकी मृत्यु का वृत्तान्त मुझे सुनाओ। शत्रुओं ने किस तरह अभिमन्यु को मारा? हाय, अभिमन्यु की मृत्यु की ख़बर सुनकर मेरे हृदय के सौ टुकड़े नहीं हो जाते, इससे जान पड़ता है कि समय पूरा होने के पहले किसी की मृत्यु नहीं

हो सकती। संग्राम में मरते समय प्रिय अभिमन्यु ने मेरे और अपनी माता सुभद्रा के लिए
१० क्या कहा था ? मेरा अभिमन्यु युद्ध से विमुख होकर तो शत्रुओं के हाथ से नहीं मारा गया ? मरते समय उसका मुँह विकृत तो नहीं हो गया था ? जो महातेजस्वी अभिमन्यु विनीत भाव से मेरे सामने अपने पराक्रम की प्रशंसा किया करता था; जो भीष्म, द्रोण और कर्ण से लोहा लेने की स्पर्धा किया करता था; उस बालक अभिमन्यु को द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्य आदि ने युद्ध में अन्याय से तो नहीं मार डाला ?

नाती के शोक में वसुदेवजी के इस प्रकार विलाप करने पर श्रीकृष्ण ने बहुत दुःखित होकर कहा—पिताजी, अभिमन्यु युद्ध से विमुख नहीं हुआ और उसके मुँह का तेज मरते समय तक ज्यों का त्यों बना रहा। वीर अभिमन्यु ने हज़ारों राजाओं को युद्ध में मार डाला था। यदि एक-एक वीर उससे युद्ध करता तो वह किसी से हार नहीं सकता था। वज्रधारी इन्द्र भी अकेले युद्ध करके उसे नहीं मार सकते थे। मेरे कहने से अर्जुन संशप्तकगण से युद्ध कर रहे
२० थे। इधर द्रोणाचार्य आदि सात महारथियों ने बालक अभिमन्यु को बाणों से ढक दिया। उसी समय दुःशासन के पुत्र ने उसे मार डाला। आपका प्रिय नाती अभिमन्यु युद्ध में असंख्य वीरों को मारकर मरा है इसलिए उसे स्वर्गलोक प्राप्त हुआ है। उसके लिए आप शोक न कीजिए। महात्मा पुरुष कभी शोक और मोह के वश नहीं होते। महावीर अभिमन्यु ने इन्द्र-तुल्य पराक्रमी द्रोणाचार्य और कर्ण आदि वीरों के साथ युद्ध किया है। इसलिए उसे वीर-गति क्यों न मिलेगी ? अब आप शोक त्यागकर शान्त हूजिए।

अभिमन्यु के मरने पर सुभद्रा पुत्र-शोक से व्याकुल होकर, अन्यान्य कौरव-स्त्रियों के साथ, युद्धक्षेत्र में गई थीं। बेटे की लाश को गोद में लेकर सुभद्रा दीन भाव से रोने लगीं। उस समय द्रौपदी ने शोक से व्याकुल होकर सुभद्रा से कहा—बहन, मैं अपने सब पुत्रों को देखना चाहती हूँ। वे सब इस समय कहाँ हैं ? द्रौपदी के यों कहने पर सब स्त्रियाँ बिलख-बिलखकर रोने लगीं। इसके बाद सुभद्रा ने उत्तरा से कहा—बेटी, तुम्हारा पति इस समय कहाँ है ? तुम शीघ्र उसको मेरे आने की ख़बर दो। मेरा बोल सुनते ही बेटा अभिमन्यु घर से निकल आता था, आज मेरे पास क्यों नहीं आता ? हाय बेटा, जब तुम युद्ध के लिए चले थे तब तुम्हारे मामा ने तुम्हारे कल्याण के लिए आशीर्वाद दिया था। तुम प्रतिदिन युद्ध का सब हाल मुझे सुनाते थे, किन्तु आज मुझे इस तरह विलाप करते देखकर भी उत्तर क्यों
३१ नहीं देते हो ? इस तरह विलाप करते-करते सुभद्रा व्याकुल हो गई थीं।

इनकी वह दशा देखकर कुन्ती ने इनसे कहा—बेटी ! वासुदेव, सात्यकि और अर्जुन ने अभिमन्यु की रक्षा के लिए भरसक उद्योग किया था; किन्तु उसकी आयु क्षीण हो गई थी, इस कारण वह जीवित नहीं रह सका। मनुष्य मात्र को एक दिन मरना पड़ता है। अतएव

तुम अभिमन्यु के लिए अब शोक न करो। अभिमन्यु युद्ध में शरीर त्यागकर स्वर्गलोक को गया है। श्रेष्ठ क्षत्रियकुल में जन्म लेकर तुमको पुत्रशोक से इस तरह व्याकुल होना उचित नहीं। तुम्हारी पुत्रवधू उत्तरा गर्भवती है। उसके सुकुमार बालक उत्पन्न होगा।

सुभद्रा को इस प्रकार समझाकर कुन्ती ने अभिमन्यु की अन्त्येष्टि क्रिया करवाई। युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव के कहने के अनुसार उन्होंने ब्राह्मणों को अनेक रत्न और बहुत सी गायें दान कीं। इसके बाद उन्होंने उत्तरा से कहा—बेटी, तुम पति के लिए अब अधिक शोक न करो। तुम्हारे गर्भ में बालक है, इसकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है।

[श्रीकृष्ण कहते हैं—पिताजी,] कुन्ती की आज्ञा से मैं सुभद्रा को ले आया हूँ। अभिमन्यु की मृत्यु का वृत्तान्त विस्तार के साथ मैंने कह दिया। अब आप उसके लिए शोक न कीजिए। ४२

बासठवाँ अध्याय

वसुदेव आदि द्वारा अभिमन्यु का श्राद्ध किया जाना। व्यासजी का हस्तिनापुर आकर युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, श्रीकृष्णचन्द्र के समझाने पर वसुदेवजी ने शोक त्यागकर अभिमन्यु का श्राद्ध किया। श्रीकृष्ण ने भी अपने भानजे अभिमन्यु का श्राद्ध करके ब्राह्मणों को भोजन कराया, उत्तम वस्त्र दिये और बहुत सा धन दान किया। सोना, गायें, शय्या और वस्त्र आदि पाकर ब्राह्मण लोग बहुत सन्तुष्ट हुए और श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देने लगे। इसके बाद बलदेव, सात्यकि और सत्यक ने भी अभिमन्यु का श्राद्ध किया।

इधर हस्तिनापुर में पाँचों पाण्डव भी अभिमन्यु की मृत्यु के कारण शोक और दुःख से व्याकुल हो रहे थे। विराट की बेटी उत्तरा, पति के शोक से, अधीर हो रही थी। कई दिन तक भोजन न करने के कारण उसके गर्भ में स्थित बालक के लिए भय होने लगा। अपने दिव्य ज्ञान से यह हाल जानकर महर्षि वेदव्यास हस्तिनापुर आये और कुन्ती को समझाकर उत्तरा से
कहने लगे—कल्याणी, शोक न करो। श्रीकृष्ण के प्रभाव से और मेरे कहने के अनुसार १०
तुम महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न करोगी। पाण्डवों के बाद तुम्हारा पुत्र ही राज्य करेगा।

व्यासजी ने उत्तरा को ढाढ़स बँधाकर युधिष्ठिर के सामने अर्जुन से कहा—अर्जुन, शीघ्र ही तुम्हारे पौत्र उत्पन्न होगा। वह धर्म के अनुसार सारी पृथिवी का राज्य करेगा। अतएव तुम अभिमन्यु की मृत्यु का शोक छोड़ दो। मेरी बात पर रत्ती भर भी सन्देह न करो। श्रीकृष्ण ने भी तुमसे ऐसा ही कहा है। उनकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती। इसके सिवा महावीर अभिमन्यु अक्षय लोक को गया है, इसलिए उसके निमित्त किसी को शोक न करना चाहिए।

महर्षि वेदव्यास के समझाने से अर्जुन का शोक जाता रहा और उनका चित्त शान्त
हो गया। इसके बाद वेदव्यासजी युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा देकर वहाँ
से चले गये। उनकी आज्ञा पाकर धर्मराज ने यज्ञ करने के उपयुक्त सुवर्ण लाने के लिए सुमेरु
२१ पर्वत पर जाने का निश्चय किया।

तिरसठवाँ अध्याय

अश्वमेध यज्ञ करने के लिए राजा मरुत्त द्वारा सञ्चित सुवर्ण
लाने को सेना समेत पाण्डवों का प्रस्थान

जनमेजय ने पूछा—महान्, धर्मात्मा युधिष्ठिर ने वेदव्यास की आज्ञा से अश्वमेध यज्ञ के विषय में क्या किया था? महाराज मरुत्त जो सुवर्णराशि सुमेरु पर्वत पर छोड़ गये थे उसे पाण्डवों ने किस प्रकार प्राप्त किया?

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! व्यासदेव के चले जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने भीम-
सेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव को बुलाकर कहा—भाइयो! हमारे परम हितैषी महामति
वासुदेव, परम गुरु धर्मात्मा वेदव्यास और पितामह भीष्म ने जो कुछ कहा था उसे तुम
लोगों ने सुना ही है। उन लोगों के कहने के अनुसार काम करने की अब हमारी इच्छा है।
उसके करने से हम सबका कल्याण होगा। व्यासजी ने पृथिवी पर धन की कमी देखकर
हम लोगों को राजा मरुत्त का सञ्चित धन लाने की आज्ञा दे दी है। यदि तुम लोगों में
उस धन के लाने की सामर्थ्य हो तो शीघ्र यह काम सिद्ध हो जाय। भीमसेन! इस विषय
१० में तुम्हारी क्या सलाह है?

महाबली भीमसेन ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, आपके कथन से मैं सहमत हूँ। यदि हम लोगों को महाराज मरुत्त का रक्खा हुआ धन मिल जाय तो सब काम सफल हो जाय। हम मन-वचन-कर्म से भगवान् शङ्कर और उनके अनुचरों को प्रसन्न करके वह धन ले आवेंगे। जो भीषण आकारवाले किन्नर उस धन की रक्षा करते हैं वे शङ्करजी की कृपा से हमारे अधीन हो जायँगे।

यह सुनकर धर्मराज बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन आदि ने भी भीमसेन की बात का समर्थन किया। तब पाण्डवों ने उस धन के लाने का निश्चय करके शुभ दिन और शुभ नक्षत्र में सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर सैनिक तैयार हो गये। पाण्डवों ने धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु को राज्य की रक्षा का भार सौंपकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययन कराया; लड्डू,

खीर और मांस की कचौड़ियों द्वारा महादेवजी की पूजा की और अग्निहोत्री ब्राह्मणों को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की; इसके बाद माता कुन्ती और शोक से पीड़ित धृतराष्ट्र तथा गान्धारी की आज्ञा लेकर, धन प्राप्त करने के लिए, सेना समेत प्रस्थान किया। ब्राह्मणों और नगर-निवासियों ने उनको आशीर्वाद दिया। २४

चौंसठवाँ अध्याय

भाइयों समेत युधिष्ठिर का धन लाने के लिए मुञ्जवान् पर्वत पर जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इस प्रकार तेजस्वी पाँचों पाण्डव सेना समेत नगर से चलकर, रथों की घरघराहट से पृथिवी को प्रतिध्वनित करते हुए, बड़ी प्रसन्नता से हिमालय की ओर चले। सूत, मागध और बन्दीजन स्तुति-पाठ करते हुए उनके साथ हो लिये। उस समय धर्मराज युधिष्ठिर के मस्तक पर सफ़ेद छत्र लगा हुआ था, जिससे पूर्ण चन्द्रमा के समान उनकी शोभा हो रही थी। अनुचरगण आनन्द से महाराज का जयजयकार कर रहे थे और सैनिकों के कोलाहल से आकाश गूँज रहा था।

धर्मराज युधिष्ठिर इस तरह चलते-चलते तालाबों, नदियों, वनों और उपवनों को लाँघकर उस पर्वत के पास पहुँचे जिस पर राजा मरुत्त का सञ्चित सोना रक्खा हुआ था। धर्मराज ने तपस्वी ब्राह्मणों और वेद-वेदाङ्ग-पारदर्शी पुरोहित धौम्य को आगे करके, उनकी आज्ञा से, उस पर्वत पर जाकर समतल भूमि पर डेरा डाल दिया। महर्षि धौम्य और अन्य ब्राह्मणों ने शान्ति-पाठ करके राजा, मन्त्री और सैनिकों के लिए यथोचित स्थान निर्दिष्ट किये और स्वयं भी उचित स्थान पर निवास किया। धर्मराज की आज्ञा से मतवाले हाथियों के लिए एक अलग स्थान बनाया गया। १०

अब राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से कहा—महर्षियो, यहाँ अधिक दिनों तक निवास करना हम लोगों के लिए उचित नहीं। अतएव भगवान् शङ्कर की आराधना के लिए शीघ्र कोई शुभ मुहूर्त्त निश्चित कीजिए।

धर्मराज का प्रिय करनेवाले ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर कहा—महाराज, आज बहुत अच्छा नक्षत्र है अतएव आज हम लोग केवल जल पियेंगे। आप लोग भी आज उपवास कीजिए। ब्राह्मणों की आज्ञा से पाण्डवों ने उस दिन उपवास किया और कुश के आसन पर बैठकर ब्राह्मणों से शास्त्र की बातें सुनते हुए वह रात बिता दी। १६

पैंसठवाँ अध्याय

शङ्करजी की पूजा करके युधिष्ठिर का, सुवर्ण-राशि लेकर, हस्तिनापुर को लौटना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, प्रातःकाल होने पर ब्राह्मणों ने धर्मराज से कहा—राजन्, अब शङ्करजी की पूजा करके अपने काम के लिए यत्न करना चाहिए। तब राजा युधिष्ठिर ने महादेवजी की पूजा के लिए सब सामान एकत्र किया। वेद के पारङ्गत पुरोहित धौम्य ने अग्नि में आहुति देकर, चरु तैयार करके, उसे मन्त्रों द्वारा पवित्र किया। फिर उस चरु और अनेक प्रकार के फूल, लड्डू, खीर तथा मांस से शङ्करजी की पूजा की। उसके बाद भूतगण, यक्षराज कुबेर, मणिभद्र तथा अन्य भूतपतियों और यक्षपतियों को कृसर, मांस, तिल और घड़ों में भरा हुआ भात भेंट किया। फिर राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को हज़ारों गायें देकर उनसे निशाचरों के लिए बलि देने को कहा। उस समय शङ्करजी का निवास-स्थान धूप और
१० अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध से परिपूर्ण होकर रमणीय हो गया था।

इस प्रकार शङ्करजी की और उनके गणों की पूजा करके धर्मराज युधिष्ठिर गन्ध आदि पूजा की सामग्री लेकर उस स्थान पर गये जहाँ वह सुवर्ण-राशि थी। वहाँ उन्होंने सुगन्धित फूल, पुआ और कृसर आदि से धनपति कुबेर, शङ्ख आदि निधियों और निधिपालों की पूजा करके ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया। तब ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया।

इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से पूछकर प्रसन्नता से उस स्थान को खोदने की आज्ञा दी। थोड़ी ही देर खोदने पर सुवर्णमय बड़े और छोटे—गडुआ, कड़ाही, कलश, हण्डा आदि—तरह-तरह के पात्र निकल आये। राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर से चलते समय धन रखने के लिए बहुत से पिटारे और सन्दूक आदि ले आये थे। सोना लादने के लिए साठ लाख ऊँट, एक करोड़ बीस लाख घोड़े, एक लाख हाथी, एक लाख रथ, एक लाख छकड़े, इतनी ही हथिनियाँ, असंख्य गधे और बहुत से मनुष्य उनके साथ थे। धर्मराज की आज्ञा से प्रत्येक ऊँट पर आठ हज़ार, प्रत्येक छकड़े पर सोलह हज़ार और प्रत्येक हाथी पर चौबीस हज़ार सुवर्ण-भार तथा घोड़ों, गधों और मनुष्यों पर यथायोग्य भार लादा गया।

राजा युधिष्ठिर इस प्रकार सब सोना लादकर, महादेवजी की पूजा करके, महर्षि वेदव्यास के आज्ञानुसार पुरोहित धौम्य को आगे करके हस्तिनापुर की ओर चले। लौटते
२३ समय सब वाहनों पर सोना लदा था इसलिए दो कोस से अधिक यात्रा नहीं होती थी।

छाछठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का सुभद्रा समेत हस्तिनापुर आना। उत्तरा के गर्भ से परिक्षित् के जन्म का वृत्तान्त

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! इधर श्रीकृष्ण अश्वमेध यज्ञ का समय जानकर, धर्मराज युधिष्ठिर के कहने का स्मरण करके, यज्ञ में सम्मिलित होने और द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा तथा अन्य अनाथ कौरव-स्त्रियों को ढाढ़स बँधाने के लिए सुभद्रा को साथ लेकर हस्तिनापुर पहुँचे। उनके साथ बलदेवजी, प्रद्युम्न, सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, गद, कृतवर्मा, सारण, निशठ और उल्मुक आदि वीर थे। महाराज धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर और युयुत्सु ने श्रीकृष्ण और बलदेव आदि सब वीरों का यथोचित सम्मान किया।

वृष्णि-वंशियों के आ जाने पर उत्तरा के गर्भ से तुम्हारे पिता महाराज परिक्षित् का जन्म हुआ; किन्तु ब्रह्मास्त्र से पीड़ित होने के कारण उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। पहले तो पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर रनिवास में हर्षसूचक शब्द होने लगा था; किन्तु शीघ्र ही उस पुत्र को मरा हुआ देखकर रोना-धोना मच गया। तब श्रीकृष्ण चिन्तित होकर, युयुत्सु के साथ, शीघ्र १०
रनिवास में गये। वहाँ देखा कि कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि स्त्रियाँ रो रही हैं। यह देखकर श्रीकृष्ण उनके पास गये।

कुन्ती ने रोकर कहा—बेटा श्रीकृष्ण, तुम्हीं हमारी परम गति हो; तुम्हारे ही प्रभाव से हमारा कुल स्थित है। इस समय तुम्हारे भानजे अभिमन्यु का पुत्र, अश्वत्थामा के अस्त्र के प्रभाव से, मर गया है; उसे तुम जिला दो। तुम उसके जिलाने की प्रतिज्ञा कर चुके हो। अतएव अब अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके मेरी और मेरे बहू-बेटों की रक्षा करो। मैं इसी बालक की आशा से जी रही हूँ। यह बालक मेरे पति और ससुर का, तथा तुम्हारे भानजे अभिमन्यु का, श्राद्ध और तर्पण करेगा। आज इसे जिलाकर अभिमन्यु को प्रेत-योनि से मुक्त
करने का उपाय करो। अभिमन्यु ने उत्तरा से कहा था कि 'तुम्हारा पुत्र मामा के घर जाकर २१
वृष्णि और अन्धक महावीरों से धनुर्वेद और नीतिशास्त्र सीखकर बड़ा प्रतापी होगा'। तुम्हारे भानजे की स्त्री उत्तरा अभिमन्यु की इस बात को हमेशा याद किया करती है। मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि इस बालक को जिलाकर कुरुवंश की रक्षा करो। यों कहकर कुन्ती आदि रनिवास की स्त्रियाँ शोक से व्याकुल होकर विलाप करते-करते पृथिवी पर गिर पड़ीं और बार-बार श्रीकृष्ण से बालक को जिलाने की प्रार्थना करने लगीं। तब पृथिवी पर पड़ी हुई
कुन्ती को उठाकर श्रीकृष्ण समझाने लगे। २[illegible]

सड़सठवाँ अध्याय

सुभद्रा का श्रीकृष्ण से, ब्रह्मास्त्र द्वारा मरे हुए, परिक्षित् को जिलाने की प्रार्थना करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इसके बाद अपने भाई की ओर देखकर दुःख से व्याकुल सुभद्रा कहने लगी—भैया! यह देखो, आज अर्जुन का पौत्र भी अन्य कौरवों की तरह परलोक को चला गया। अश्वत्थामा ने भीमसेन को मारने के लिए जो इषीकास्त्र तैयार किया था वही आज अर्जुन के, मेरे और उत्तरा के ऊपर गिरा है। हाय, आज मुझे अभिमन्यु के पुत्र की मृत्यु भी देखनी पड़ी! अभिमन्यु पाँचों पाण्डवों को प्यारा था। आज उसके पुत्र को मरा हुआ सुनकर पाँचों पाण्डवों की क्या हालत होगी? तुमको भी इसकी मृत्यु का दुःख कुछ कम न होगा। हाय, आज अश्वत्थामा की करतूत से पाण्डवों को अत्यन्त दुखी होना पड़ा। भैया, अब हम सब (मैं, द्रौपदी और आर्या कुन्ती) तुम्हारे पैरों पड़कर प्रार्थना करती हैं कि तुम एक बार हम पर कृपादृष्टि करो। पाण्डवकुल की स्त्रियों के गर्भ में स्थित सन्तानों को इषीकास्त्र द्वारा नष्ट कर देने के लिए जब अश्वत्थामा तैयार हुआ था तब
१० तुमने क्रुद्ध होकर उससे कहा था—"हे नराधम, तेरी इच्छा पूरी नहीं हो सकती। उत्तरा के
गर्भ में स्थित अभिमन्यु के पुत्र को मैं अवश्य जिलाऊँगा।" भैया, मैं तुम्हारी शक्ति को अच्छी तरह जानती हूँ। मैं प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके अभिमन्यु के पुत्र को बचा लो। यदि आज तुम अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करोगे तो मैं प्राण दे दूँगी। यदि तुम्हारे रहते भी उत्तरा का पुत्र न जी सका तो तुम मेरे किस काम आओगे! जिस तरह बादल पानी बरसाकर अन्न की रक्षा करते हैं उसी तरह तुम आज कृपा करके अभिमन्यु के पुत्र को जिला दो। तुम धर्मात्मा, सत्यवादी और सत्यपराक्रमी हो; अतएव तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए। तुम चाहो तो तीनों लोकों को जिला सकते हो, फिर अपने भानजे के पुत्र को जिला देना तुम्हारे लिए कौन बड़ी बात है! मैं तुम्हारे माहात्म्य को भली भाँति जानती हूँ। इसी से प्रार्थना करती हूँ कि तुम पाण्डवों पर इतनी कृपा कर दो। एक तो मैं तुम्हारी बहन हूँ, दूसरे मेरा बेटा मारा जा चुका है और फिर मैं तुम्हारी शरण में हूँ, इसलिए
१८ तुम कुरुकुल की रक्षा करो।

अड़सठवाँ अध्याय

पुत्रशोक से पीड़ित उत्तरा का विलाप और श्रीकृष्ण से पुत्र को जिला देने की प्रार्थना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार सुभद्रा के विलाप करने पर श्रीकृष्ण को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अभिमन्यु के पुत्र को जिला देने का वादा किया। उनका यह

अमृतमय वाक्य सुनकर अन्तःपुर की स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। श्रीकृष्ण उसी दम सूतिका-गृह
में घुस गये। उन्होंने देखा कि वह घर मालाओं से सजाया गया है। उसके चारों ओर—
जल से भरे कलश, घी, तिन्दुक काष्ठ की आग, सरसों और पैने अस्त्र आदि—राक्षसों के विनाश
की वस्तुएँ रक्खी हैं। जगह-जगह पर आग जल रही है। बूढ़ी स्त्रियाँ और चतुर चिकित्सक
बैठे हुए हैं। इस प्रकार सूतिका गृह को सुसज्जित देखकर श्रीकृष्ण, प्रसन्न होकर, उसकी
प्रशंसा करने लगे। द्रौपदी तेज़ी से उत्तरा के पास जाकर कहने लगी—बेटी! यह देखो,
तुम्हारे ससुर अचिन्त्यात्मा अपराजित मधुसूदन तुम्हारे पास आये हैं। १०

यह सुनकर रोती हुई उत्तरा, आँसू रोककर, वस्त्र से मुँह ढककर वासुदेव से दीन वचन
कहने लगी—भगवन्! केवल अभिमन्यु की मृत्यु नहीं हुई है, प्रत्युत आज मैं भी पुत्रशोक से
उन्हीं की गति पाऊँगी। मैं आपको बार-बार प्रणाम करती हूँ, ब्रह्मास्त्र द्वारा मरे हुए मेरे पुत्र
को आप प्रसन्न होकर जिला दीजिए। यदि पहले धर्मराज, भीमसेन अथवा आप अश्वत्थामा
से कह देते कि इस इषीका (सींठे) से उत्तरा का विनाश हो तो बड़ा अच्छा होता। मैं
मर जाती तो फिर मुझे यह दुःख न देखना पड़ता। हाय, मेरे गर्भ में स्थित इस बालक को
ब्रह्मास्त्र द्वारा मारने से ब्राह्मणाधम मूर्ख अश्वत्थामा को क्या फल मिला! मैं आपकी शरण हूँ,
यदि आप मेरे पुत्र को न जिला देंगे तो मैं आपके सामने ही प्राण त्याग दूँगी। मैंने इस पुत्र
से जो आशाएँ की थीं उन सबको अश्वत्थामा ने नष्ट कर दिया। अब मेरे जीने का क्या
प्रयोजन है? मेरी अभिलाषा थी कि पुत्र को, गोद में लेकर, आपके पैरों पर डाल दूँगी;
किन्तु मेरे भाग्य में यह नहीं बदा था। इसी तरह जितनी आशाएँ मेरे मन में थीं वे सब
धूल में मिल गईं। ब्रह्मास्त्र द्वारा मरे हुए मेरे पुत्र की ओर आप एक बार देखिए। यह पुत्र २०
भी अपने पिता की तरह निठुर और कृतघ्न है। यदि ऐसा न होता तो पाण्डव-कुल की विपुल
सम्पत्ति छोड़कर परलोक को क्यों चला जाता? हाय, मेरे समान अपने जीवन का मोह
करनेवाली निठुर स्त्री संसार में दूसरी न होगी। पति अभिमन्यु के संग्राम में मरने पर मैंने
उसी समय प्राण त्याग देने की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु मैंने वह प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। अब मैं
शरीर त्यागकर उनके पास जाऊँगी तो वे मुझे क्या कहेंगे? २४

उनहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का परिक्षित् को जिला देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पुत्र-शोक से व्याकुल उत्तरा पगली की तरह करुण स्वर
से विलाप करते-करते पृथिवी पर गिर पड़ी। कुन्ती आदि सब स्त्रियाँ, पुत्र-शोक से अधीर

उत्तरा को मूर्च्छित देखकर, रोने लगीं। रोना-पीटना मचने से पाण्डवों का घर भयावना हो गया। थोड़ी देर बाद उत्तरा को होश आया। वह अपने मृत पुत्र को गोद में लेकर कहने लगी—बेटा, तुम धर्मात्मा अभिमन्यु के पुत्र हो। तुममें तो अधर्म का लेश भी न होना चाहिए। तो फिर आज भगवान् वासुदेव को देखकर भी तुम प्रणाम क्यों नहीं करते ? बेटा ! तुम अपने पिता के पास जाकर उनसे कहना कि 'पिताजी, काल के बिना किसी की मृत्यु नहीं होती इसी से मेरी माता उत्तरा मौत को चाहने पर भी आपके और मेरे विरह में दुःख और शोक से व्याकुल हो दीन भाव से दिन काट रही है।' अथवा तुम्हारे कहने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं धर्मराज की आज्ञा लेकर, आग में जलकर या विष खाकर, प्राण दे दूँगी। हाय, मेरा हृदय कितना कठोर है कि इस समय पति और पुत्र का वियोग होने पर भी इसके सौ टुकड़े नहीं हो जाते। हा पुत्र, तुम उठकर अपनी परदादी कुन्ती, दादी द्रौपदी और सुभद्रा तथा अपनी माता को देखो। हम सब, व्याध द्वारा घायल हिरनी की तरह, तुम्हारे शोक से व्याकुल हो रही हैं। तुम्हारे पितामह के मित्र वासुदेव तुम्हारे सामने खड़े हैं, उठकर तुम इनके दर्शन तो कर लो। इस तरह विलाप करके उत्तरा फिर पृथिवी पर गिर पड़ी। होश आने पर वह, धीरज धरकर, वासुदेव को बार-बार प्रणाम करने लगी।

इस प्रकार बड़ी देर तक उत्तरा के विलाप करने पर श्रीकृष्ण ने आचमन करके, अश्वत्थामा के चलाये हुए, ब्रह्मास्त्र को निष्फल कर दिया। फिर ज़ोर से उत्तरा से कहा—बेटी, मैं कभी झूठ नहीं बोलता। मैंने जो प्रतिज्ञा की थी उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। देखो, मैं सबके सामने तुम्हारे पुत्र को जिलाये देता हूँ।

उत्तरा से यों कहकर श्रीकृष्ण सबके सामने फिर कहने लगे—मैं कभी युद्ध से विमुख नहीं हुआ। मैं सदा सत्य और धर्म का पालन करता हूँ। मैं धर्म पर और ब्राह्मणों पर सदा श्रद्धा रखता हूँ। प्रिय मित्र अर्जुन के साथ मेरा कभी विरोध नहीं हुआ और मैंने धर्म के अनुसार कंस तथा केशी का वध किया है, अतएव मेरे इन सब पुण्यों के प्रभाव से अभिमन्यु का मृत पुत्र जीवित हो उठे। श्रीकृष्ण के यों कहते ही उत्तरा का पुत्र धीरे-धीरे श्वास लेने लगा।



महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकव्यय स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३॥) या ६॥) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकव्यय नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) इसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहरी नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।।) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई त्रुटि न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने इलाके के डाकखाने में उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि मनीआर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।



आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, लखनऊ, काशी (रामनगर), कलकत्ता, गाज़ीपुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहाँ से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस व्यवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जावेंगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए, और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

आश्रमवासिकपर्व

सत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा परिक्षित् का नामकरण; फिर युधिष्ठिर आदि के आगमन का समाचार आना

१. वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र को लौटाकर तुम्हारे पिता को जिला दिया था। ब्रह्मास्त्र प्रज्वलित होकर ब्रह्माजी के पास चला गया और तुम्हारे पिता के तेज से वह सूतिका-गृह शोभित होने लगा। राक्षसगण वहाँ से भाग गये और आकाशवाणी हुई कि "हे वासुदेव, तुम धन्य हो"। तुम्हारे पिता के जीवित हो जाने पर कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तरा आदि सब कौरव-स्त्रियाँ, जिस तरह जल में डूबे हुए मनुष्य को नाव मिल जाय उसी तरह, प्रसन्न होकर वासुदेव की प्रशंसा करने लगीं। फिर वासुदेव की आज्ञा से ब्राह्मण स्वस्तिपाठ करने लगे। मल्ल, नट, ज्योतिषी और सूत-मागध आदि स्तुति-पाठ करनेवाले—कुरुवंश के योग्य—स्तुति द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। जन्म-सूतक का समय बीत जाने पर उत्तरा सूतिका-गृह से निकली। पुत्र को गोद में लेकर उसने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और पुत्र को भी उनके पैरों पर डाल दिया तब महात्मा वासुदेव और अन्य वृष्णिवंशियों ने बड़ी प्रसन्नता से कुमार को अनेक बहुमूल्य रत्न दिये। श्रीकृष्ण १०
ने कहा—"कुल के परिक्षीण होने के समय इस पुत्र का जन्म हुआ है अतएव इसका नाम परिक्षित् होगा।" इसके बाद वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने लगा। उसे देखकर हस्तिनापुर-निवासी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

महाराज! इस प्रकार तुम्हारे पिता का जन्म होने के एक महीने बाद युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई, सुवर्ण-राशि लेकर, हिमालय पर्वत से लौट आये। पाण्डवों के आने का समाचार पाकर, उनका स्वागत करने के लिए, वृष्णिवंशी लोग नगर के बाहर आये। मालाओं, विचित्र पताकाओं और तरह-तरह की ध्वजाओं से हस्तिनापुर सजाया गया और धनी पुरवासियों ने अनेक प्रकार से अपने घरों को सजाया। विदुरजी ने पाण्डवों के कल्याण के लिए देवस्थानों में पूजा करने की आज्ञा दी। सब राजमार्ग अनेक प्रकार के सुन्दर फूलों से अलङ्कृत किये गये। नगर के चारों ओर, समुद्र-गर्जन के समान, कोलाहल होने लगा। स्त्रियों समेत वन्दी-गण स्तुति करने लगे। चारों ओर गानेवालों के गाने और नाचनेवालों के नाचने से वह नगर कुबेरपुरी के समान शोभित होने लगा। हवा लगने से फहरा रही पताकाएँ मानों पाण्डवों को दिशा का ज्ञान करा रही थीं। राजपुरुषों ने नगर में घोषणा कर दी कि आज सब लोग, अच्छे वस्त्र और आभूषण पहनकर, पाण्डवों का स्वागत करने को तैयार हो जायँ। २१

इकहत्तरवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में पहुँचना। व्यासजी का युधिष्ठिर से अश्वमेध यज्ञ की प्रशंसा करके उसके करने की आज्ञा देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! शत्रुनाशन भगवान् वासुदेव, बलदेव आदि वृष्णिवंशियों को साथ लेकर, पाण्डवों के पास गये। युधिष्ठिर आदि ने उनका यथोचित सत्कार करके नगर में प्रवेश किया। उस समय सेना के चलने का शब्द और रथों की घरघराहट का शब्द पृथिवी, स्वर्ग और आकाश में व्याप्त हो गया। इस प्रकार पाण्डव लोग सुवर्णराशि लेकर बड़ी प्रसन्नता से, मन्त्रियों और सम्बन्धियों समेत, नगर में पहुँचे। उन्होंने पहले धृतराष्ट्र के पास जाकर—अपना-अपना नाम बतलाकर—उनको प्रणाम किया, फिर गान्धारी और कुन्ती को प्रणाम करके विदुर तथा युयुत्सु का यथोचित सम्मान किया। इसके बाद अभिमन्यु के पुत्र उत्पन्न होने का अद्भुत वृत्तान्त सुना। श्रीकृष्ण का यह चमत्कार सुनकर पाण्डवों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

कुछ दिनों बाद महर्षि वेदव्यास हस्तिनापुर में आये। युधिष्ठिर आदि पाण्डवों और वृष्णिवंशियों ने, पाद्य और अर्घ्य आदि देकर, उनकी पूजा की। धर्मराज युधिष्ठिर ने बातचीत करने के बाद उनसे कहा—भगवन्, आपकी कृपा से मैं जो धन ले आया हूँ उसके द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने की मेरी इच्छा है। इसके लिए मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ। हम लोग आपके और श्रीकृष्ण के अधीन हैं।

व्यासजी ने कहा—राजन्, बहुत सी दक्षिणा समेत अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा मैं तुमको देता हूँ। अश्वमेध करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं, अतएव तुम यह यज्ञ करने पर सब पापों से छुटकारा पा जाओगे।

वेदव्यासजी की आज्ञा पाकर राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ करने का निश्चय करके श्रीकृष्ण से कहा—वासुदेव, तुम्हारी ही बदौलत मुझे राज्य आदि सब भोग्य वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। अपने पराक्रम और बुद्धि-कौशल से तुमने यह राज्य जीता है, अतएव तुम्हीं इस यज्ञ की दीक्षा लो। तुम हम लोगों के परम गुरु हो। तुम यज्ञ करोगे तो हम लोग निष्पाप हो जायँगे। तुम्हीं यज्ञ हो, तुम्हीं परब्रह्म हो, तुम्हीं धर्म हो, तुम्हीं प्रजापति हो और तुम्हीं सब जीवों की एकमात्र गति हो।

श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्! आप विनीत और सुशील हैं, इसी से आप मेरी प्रशंसा कर रहे हैं; किन्तु मेरी समझ में तो आप ही सब प्राणियों की एकमात्र गति हैं। आप धर्म के प्रभाव से कौरवों में श्रेष्ठ हुए हैं। आपके गुणों से ही मैं गुणवान् हुआ हूँ। आप मेरे राजा और गुरु हैं। अतएव यज्ञ की दीक्षा आप ही लें और मुझे जिस काम में नियुक्त करें वह मैं करूँ। मैं सत्य कहता हूँ, आप मुझे जो काम सौंपेंगे उसे मैं अच्छी तरह करूँगा। आपके यज्ञ करने से भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, सब भाइयों को उसका फल मिलेगा।

बहत्तरवाँ अध्याय

व्यासजी की आज्ञा से अश्वमेध यज्ञ के लिए घोड़े का छोड़ा जाना और उसकी रक्षा के लिए अर्जुन की नियुक्ति

श्रीकृष्ण के यों कहने पर राजा युधिष्ठिर ने व्यासजी से कहा—महर्षि, अब आप यज्ञ का समय निश्चित करके मुझे दीक्षा दीजिए। यह यज्ञ आपकी ही देख-रेख में होगा।

व्यासजी ने कहा—राजन्! जब यज्ञ करने का समय आवेगा तब पैल, याज्ञवल्क्य और मैं, हम तीनों मिलकर विधिपूर्वक यज्ञ करा देंगे। चैत्र की पूर्णिमा को यज्ञ आरम्भ करना। अब यज्ञ की सब सामग्री इकट्ठी कराओ और अश्वविद्या के जानकार सारथी तथा ब्राह्मणों को यज्ञीय अश्व की परीक्षा करने की आज्ञा दो। शास्त्र की विधि के अनुसार वह अश्व छोड़ा जायगा और सम्पूर्ण पृथिवी पर घूमकर तुम्हारे यश को फैलाता हुआ लौट आवेगा।

राजा युधिष्ठिर सब काम व्यासजी की आज्ञा के अनुसार करने लगे। यज्ञ की सब सामग्री एकत्र हो चुकने पर उन्होंने व्यासजी को इसकी सूचना दी।

महर्षि ने कहा—अच्छी बात है, यज्ञ का मुहूर्त आने पर मैं तुमको दीक्षा दूँगा। इस यज्ञ में कूर्च (कुश) आदि जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी उनको सुवर्ण की बनवाओ। आज १०
तुम विधि के अनुसार यज्ञ का अश्व छोड़ो। वह अश्व सुरक्षित रहकर पृथिवी पर घूम आवे।

राजा युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्, इस घोड़े को किस तरह छोड़ना चाहिए और इसकी रक्षा कौन करे?

महर्षि ने कहा—राजन्! भीमसेन के छोटे भाई, धनुर्धरों में श्रेष्ठ, आजानुबाहु, अभिमन्यु के पिता, निवातकवचों का वध करनेवाले महावीर अर्जुन इस घोड़े की रक्षा करें। वे समुद्र पर्यन्त पृथिवी को जीत सकेंगे। उनके पास दिव्य धनुष, दिव्य तरकस और दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं। वे सब शास्त्रों के ज्ञाता और धर्मात्मा हैं। अतएव यह भारी बोझ उन्हीं को सौंप दो। भीमसेन और नकुल भी परम तेजस्वी और पराक्रमी हैं, अतएव ये दोनों वीर राज्य का पालन करें और सहदेव कुटुम्ब की रक्षा के लिए नियुक्त किये जायँ। २०

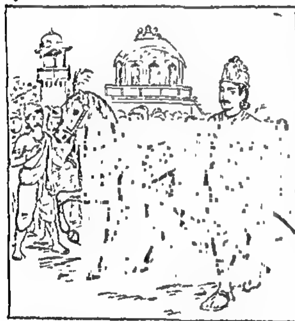
व्यासजी के यों कहने पर महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—भैया, तुम इस यज्ञीय अश्व की रक्षा करो। यह काम तुम्हारे सिवा और कोई नहीं कर सकता। जो राजा तुम्हारे साथ युद्ध करने को तैयार हो जायँ उनसे, जहाँ तक हो सके युद्ध न करके, हमारे यज्ञ का हाल कह देना। इस तरह पृथिवी-पर्यटन करके घोड़े समेत निर्दिष्ट समय पर लौट आना।

राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन को समझा-बुझाकर, धृतराष्ट्र की सलाह से, भीमसेन और नकुल को राज्य का भार सौंपा और सहदेव को कुटुम्ब की देख-रेख के लिए नियुक्त किया। २६

तिहत्तरवाँ अध्याय

घोड़े के पीछे सेना समेत अर्जुन का उत्तर दिशा को जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद दीक्षा का समय आने पर पुरोहितों ने धर्मराज युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा दी। तब वे ऋत्विजों के साथ बैठकर प्रदीप्त अग्नि के समान शोभित होने लगे। उस समय सोने की माला, काली मृगछाला, दण्ड और क्षौम वस्त्र धारण करने से यज्ञ में दीक्षित प्रजापति के समान धर्मराज की शोभा हुई। ऋत्विक् लोगों ने और महावीर अर्जुन ने भी उन्हीं के समान वेष धारण किया। महर्षि वेदव्यास ने, विधि के अनुसार, यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया। महावीर अर्जुन, धर्मराज की आज्ञा के अनुसार, अङ्गुलित्र पहनकर गाण्डीव धनुष घुमाते हुए घोड़े के पीछे-पीछे चले और कहने लगे—अश्व, तुम्हारा कल्याण हो; तुम निर्विघ्न पृथिवी-पर्यटन करके शीघ्र यहाँ लौट आओ।



हस्तिनापुर के निवासी बालक, बूढ़े और स्त्रियाँ, सभी यज्ञ के घोड़े और अर्जुन को देखने के लिए उमड़ पड़े। उस भीड़ के कारण लोगों का दम घुटने लगा और उनके कोलाहल से सब दिशाएँ तथा आकाश-मण्डल गूँजने लगा। नगर-निवासी ज़ोर-ज़ोर से कहने लगे कि वह देखो, घोड़ा जा रहा है और उसके पीछे अर्जुन गाण्डीव धनुष लिये जा रहे हैं। अर्जुन ने दर्शकों की यह बात सुनी कि हे अर्जुन, घोड़े समेत निर्विघ्न शीघ्र लौट आना। कोई-कोई कहने लगा—भीड़-भाड़ के कारण हम अर्जुन को नहीं देख सके; हमने तो उनका गाण्डीव धनुष ही देखा है जो तीनों लोकों में विख्यात है और जिसका शब्द भयङ्कर है। ईश्वर करे, मार्ग में उनको और घोड़े को कोई कष्ट न हो; वे घोड़ा लेकर सकुशल लौट आवें, तब हम उनको देखेंगे।

पुरवासियों के ऐसे मधुर वचन सुनते हुए अर्जुन आगे बढ़े। याज्ञवल्क्य का एक विद्वान् शिष्य, शान्तिकर्म के लिए, अर्जुन के साथ गया। और भी अनेक वेदपाठी ब्राह्मण और क्षत्रिय, धर्मराज की आज्ञा से, अर्जुन के साथ गये।

वह घोड़ा पहले उत्तर की ओर गया, फिर अनेक राज्यों में घूमता-घामता पूर्व दिशा में पहुँचा। वीर अर्जुन भी उसके पीछे-पीछे जा रहे थे। उस समय अगणित राजा, अर्जुन के साथ, युद्ध करके मारे गये थे। पहले कुरुक्षेत्र के युद्ध में किरात, यवन, म्लेच्छ और आर्य आदि जो धनुर्धर परास्त हुए थे उन सबने इस समय अर्जुन का सामना किया। अनेक देशों के राजाओं के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ, किन्तु उनको इन युद्धों में कुछ क्लेश नहीं हुआ।
जिन घोर युद्धों में दोनों पक्षों के वीरों को कष्ट मिला था उनका वर्णन सुनो। २८

चौहत्तरवाँ अध्याय

त्रिगर्तगण के साथ अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! कुरुक्षेत्र-युद्ध में त्रिगर्त देश के जो वीर मारे गये थे उनके महारथी पुत्र-पौत्रों ने अपने राज्य में पाण्डवों के घोड़े को देखकर, उसे पकड़ने के लिए, चारों ओर से घेर लिया। अर्जुन ने उनका अभिप्राय समझकर घोड़ा न पकड़ने के लिए उन्हें बहुत समझाया-बुझाया; किन्तु उन राजाओं ने कुछ परवा न करके उन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। यज्ञ के घोड़े के साथ अर्जुन जब हस्तिनापुर से चले थे तब धर्मराज ने उनसे कह दिया था कि कुरुक्षेत्र-युद्ध में जितने राजा मारे गये हैं उनके पुत्र-पौत्र आदि का विनाश न करना। उसी बात का स्मरण करके अर्जुन ने उनके बाण सह लिये और हँसकर उनसे फिर कहा—हे अधर्मी त्रिगर्तगण, तुम लोग भाग जाओ; प्राणों की रक्षा कर लेने में ही तुम्हारा कल्याण है।

अर्जुन के बार-बार रोकने पर भी जब त्रिगर्तगण ने उनकी बात नहीं मानी तब अर्जुन तीक्ष्ण बाणों द्वारा त्रिगर्तराज सूर्यवर्मा को परास्त करके हँसने लगे। इसके बाद त्रिगर्तगण, रथों की घरघराहट से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए, अर्जुन की ओर झपटे। सूर्यवर्मा १०
ने भी तेज़ी के साथ अर्जुन पर सौ बाण चलाये। सूर्यवर्मा के सैनिक, अर्जुन को मार डालने के लिए, लगातार बाणों की वर्षा करने लगे। अर्जुन ने अपने बाणों से उनके सब बाण काटकर गिरा दिये। इसके बाद सूर्यवर्मा का छोटा भाई केतुवर्मा, भाई की सहायता के लिए, अर्जुन से युद्ध करने लगा। अर्जुन ने उसको देखते ही बाण मारकर घायल कर दिया।

केतुवर्मा के घायल होने पर महारथी धृतवर्मा, रथ पर सवार हो, अर्जुन के सामने आकर बाण बरसाने लगा। इस बालक की फुर्ती देखकर अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए। धृतवर्मा इतना फुर्तीला था कि अर्जुन यह न देख पाते थे कि उसने किस समय बाण निकाला और कब धनुष पर चढ़ाकर चला दिया। अर्जुन ने मन ही मन उसकी बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद
वे उससे युद्ध करने लगे; किन्तु बालक जानकर अर्जुन उसके प्राण नहीं लेना चाहते थे। २०

अब महाबली धृतवर्मा ने अर्जुन के हाथ में एक तीक्ष्ण बाण मारा। इस बाण के लगने से अर्जुन के हाथ में घाव हो गया और गाण्डीव धनुष भी गिर पड़ा। यह देखकर धृतवर्मा ख़ुशी के मारे ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। अर्जुन ने हाथ का रक्त पोंछ डाला और धनुष उठाकर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। यह देखकर दर्शक कोलाहल करने लगे। त्रिगर्त देश के सब वीरों ने अर्जुन को कालान्तक यम के समान देखकर, धृतवर्मा की सहायता के लिए आगे बढ़कर, उसे अपने बीच में कर लिया। उनमें से अठारह योद्धाओं को अर्जुन ने लोहमय
० वज्रतुल्य बाणों द्वारा मार डाला। फिर उन्होंने हँसकर सर्पाकार बाण मारे। इन योद्धाओं के मरते ही अन्य वीर युद्ध छोड़कर इधर-उधर भागने और अर्जुन से कहने लगे—हे धनञ्जय! हम आपके दास हैं; हम आपकी किस आज्ञा का पालन करें? त्रिगर्तदेशीय वीरों के इस प्रकार विनय करने पर अर्जुन ने कहा—हे त्रिगर्तगण, तुम लोग हमारे अधीन हो तो अब खटका छोड़ो। तुम हमारी आज्ञा का पालन करना। यह कहकर
४ अर्जुन ने युद्ध बन्द कर दिया।

पचहत्तरवाँ अध्याय

प्राग्ज्योतिषपुर में वज्रदत्त के साथ अर्जुन का घोर संग्राम

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद वह यज्ञ का घोड़ा प्राग्ज्योतिषपुर पहुँचा। भगदत्त के पुत्र वीर वज्रदत्त ने उस घोड़े को, अपने राज्य में घूमते देखकर, पकड़ लिया। उन्हें घोड़े को नगर की ओर ले जाते देखकर अर्जुन ने बाणों की वर्षा करके उनको मूर्च्छित कर दिया। थोड़ी देर बाद महाराज वज्रदत्त घोड़े को छोड़कर अर्जुन की ओर पैदल दौड़े; किन्तु इस तरह अर्जुन के साथ युद्ध करने का उन्हें साहस न हुआ। तब वे वहाँ से नगर को लौट गये और कवच पहनकर मतवाले हाथी पर सवार हो युद्ध के लिए निकले। अनुचर लोग उनके सिर पर सफ़ेद छाता ताने और चँवर डुलाते हुए उनके साथ चले। वज्रदत्त ने सामने आकर, अपनी मूर्खता के कारण, महारथी अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा और
० कुपित होकर उनकी ओर पर्वताकार मतवाले हाथी को बढ़ाया। वज्रदत्त के अंकुश की चोट से पीड़ित होकर हाथी अर्जुन की ओर झपटा। उसको आते देख अर्जुन कुपित होकर पैदल ही वज्रदत्त के साथ युद्ध करने लगे। वज्रदत्त ने क्रुद्ध होकर अर्जुन पर अग्नि के समान तोमर चलाये। वे तोमर पतङ्गों की तरह तेज़ी से अर्जुन की ओर चले; किन्तु अर्जुन ने बाणों द्वारा उन तोमरों को आधे मार्ग में ही काट गिराया। यह देखकर वज्रदत्त लगातार बाण बरसाने लगे तब अर्जुन ने क्रुद्ध होकर अनेक सुवर्णपुङ्ख बाण मारे। इन बाणों के लगने से घायल होकर तेजस्वी वज्रदत्त हाथी से गिर पड़े, किन्तु बेहोश नहीं हुए। वे झट उठकर

हाथी पर सवार हो गये और अर्जुन को जीतने की इच्छा से उनकी ओर झपटे। महावीर अर्जुन ने उनको आते देखकर सर्प के समान भयङ्कर बाण हाथी पर चलाये। उन बाणों से घायल हाथी के शरीर से रक्त की धारा बह निकली और वह, गेरू की धारा बहा रहे पहाड़ की तरह, शोभित होने लगा। २०

छिहत्तरवाँ अध्याय

अर्जुन का वज्रदत्त को परास्त करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इस प्रकार तीन दिन तक वज्रदत्त के साथ अर्जुन का घोर युद्ध हुआ। चौथे दिन पराक्रमी वज्रदत्त ने हँसकर कहा—अर्जुन, अब मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। मैं शीघ्र तुमको मारकर तुम्हारे रक्त से अपने पिता का तर्पण करूँगा। तुमने मेरे वृद्ध पिता को मार डाला था; किन्तु आज इस बालक के साथ संग्राम में प्रवृत्त हुए हो।

अब वज्रदत्त ने अर्जुन की ओर अपना हाथी बढ़ाया। वज्रदत्त के अंकुशों की मार से पीड़ित होकर हाथी दूर से ही अर्जुन के ऊपर सूँड़ से पानी फेंकता हुआ झपटा। हाथी की सूँड़ से निकले जल से भीगकर अर्जुन, पानी की बूँदों से भीगे हुए नील पर्वत के समान, शोभित होने लगे। वह पर्वताकार हाथी बादल की तरह बार-बार गरजता और नाचता हुआ अर्जुन
के पास पहुँचा। वज्रदत्त का भयङ्कर हाथी समीप आ गया था, फिर भी अर्जुन को डर न लगा। १०
उन्होंने पहले की शत्रुता का स्मरण करके, और काम में विघ्न देखकर, उस हाथी को बाणों से घायल करके वैसे ही रोक दिया जैसे तटभूमि समुद्र के वेग को रोकती है। हाथी के शरीर भर में अर्जुन के बाण छिद गये। इससे वह कण्टकाकीर्ण साही की तरह शोभित होने लगा।

हाथी को बाणों से घायल देखकर वज्रदत्त, क्रुद्ध होकर, अर्जुन पर बाण बरसाने लगे। उन्होंने तीक्ष्ण बाणों द्वारा वज्रदत्त के सब बाण काट गिराये। इस प्रकार बड़ी देर तक दोनों वीरों में घोर युद्ध हुआ। वज्रदत्त ने कुपित होकर फिर अर्जुन की ओर अपना हाथी बढ़ाया। यह देखकर अर्जुन ने हाथी पर अग्नितुल्य नाराच बाण चला दिया। उस बाण से घायल होकर, वज्र द्वारा विदीर्ण पर्वत के समान, वह हाथी पृथिवी पर गिर पड़ा।

हाथी के साथ ही वज्रदत्त भी नीचे आ गये। तब अर्जुन ने उनसे कहा—तुम २०
डरो मत। मुझे महाराज युधिष्ठिर ने आज्ञा दी है कि 'तुम संग्राम में राजाओं और वीरों को न मारना, बल्कि उनसे नम्रता के साथ कहना कि महाशयो! महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ करेंगे, उसमें आप लोग इष्ट-मित्रों समेत कृपा करके सम्मिलित हों'। हे वज्रदत्त, मैं अपने बड़े भाई की उक्त आज्ञा के कारण तुम्हारे प्राण न लूँगा। तुम निडर होकर उठो और अपने घर जाओ। चैत्र की पूर्णिमा को महाराज युधिष्ठिर यज्ञ का आरम्भ करेंगे। उस समय तुम भी
सम्मिलित होना। इस पर महाराज वज्रदत्त ने अर्जुन की बात मान ली। २

सतहत्तरवाँ अध्याय

सिन्धु देश के वीरों से अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद सिन्धु देश के योद्धाओं के साथ जिस प्रकार अर्जुन का युद्ध हुआ था उसका वर्णन सुनो। यज्ञ का घोड़ा जब सिन्धु देश में पहुँचा तब वहाँ के राजाओं ने अर्जुन को अपने राज्य में आया हुआ सुनकर, उनसे युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकलकर, घोड़े को पकड़ लिया। अर्जुन घोड़े से थोड़ी ही दूर पर खड़े थे। कुरुक्षेत्र-युद्ध में सिन्धुराज जयद्रथ के मारे जाने और अपने परास्त होने की याद करके सिन्धु देश के राजाओं ने अर्जुन को जीत लेने की इच्छा से उनको चारों ओर से घेर लिया। वे लोग अपना-अपना नाम-गोत्र बतलाकर, अपनी वीरता की डींग मारकर, उन पर बाणों की वर्षा करने लगे। इतने पर भी अर्जुन ने एक बाण तक नहीं चलाया। तब भी सिन्धु देश के राजाओं ने दम न लिया, बल्कि वे हज़ारों रथों और घोड़ों से अर्जुन को घेरकर बड़े उत्साह से उनपर
० बाण बरसाने लगे। उन वीरों से घिरे हुए अर्जुन बादलों से घिरे हुए सूर्य और पिँजरे में बन्द पक्षी के समान जान पड़ते थे। शरीर में हज़ारों बाण लगने से उनको बड़ा कष्ट होने लगा। बाणों द्वारा अर्जुन के घायल होने पर तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। सूर्यदेव निस्तेज हो गये। अन्धड़ चलने लगा। राहु एक ही साथ सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसने लगा। उल्काएँ चारों ओर से फैलकर सूर्य से टकराने लगीं। कैलास पर्वत डगमगाने लगा। सप्तर्षि और देवर्षिगण दुःख और शोक से व्याकुल होकर लम्बी साँस लेने लगे। चन्द्रमण्डल को चीरकर शश (चन्द्रमा का कलङ्क) पृथिवी पर गिर पड़ा। सर्वत्र अँधेरा छा गया। बिजली चमकने लगी, इन्द्रधनुष देख पड़ा और लाल रङ्ग के बादल उठकर रक्त तथा मांस बरसाने लगे।

इस प्रकार के अशकुन होने पर अर्जुन घबरा गये। उनके हाथ से गाण्डीव धनुष तथा
.१ आवाप (दस्ताना) पृथिवी पर गिर पड़ा। यह देखकर सिन्धु देश के राजा प्रसन्न होकर और भी अधिक बाणों की वर्षा करने लगे। अर्जुन की यह दशा देखकर देवता घबरा गये और उनके कल्याण के लिए शान्ति-कर्म करने लगे। उनकी विजय के लिए ब्रह्मर्षि, देवर्षि और सप्तर्षि लोग मन्त्र जपने लगे। इस प्रकार देवताओं के यत्न करने पर अर्जुन उत्साहित हो गये। उन्होंने गाण्डीव धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर, बार-बार प्रत्यञ्चा का भीषण शब्द करके, सिन्धु देश के राजाओं पर इस तरह बाण बरसाये जिस तरह इन्द्र पानी बरसाते हैं। अर्जुन के बाणों से आच्छादित योद्धा लोग पतङ्गों से घिरे वृक्षों की तरह जान पड़े। वे उनकी प्रत्यञ्चा के शब्द से डरकर बाणों से घायल हो गिरते हुए तितर-बितर होने लगे। बाणों से सबको पीड़ित करके अर्जुन युद्ध-भूमि में, अलातचक्र की तरह, घूमने लगे। उनके बाणों से सब दिशाएँ भर गईं। बादलों की घटा
२ के समान सेना को बाणों द्वारा नष्ट करके वे शरत्काल के सूर्य की तरह शोभित होने लगे।

अठहत्तरवाँ अध्याय

अर्जुन के आने का समाचार पाकर डर के मारे जयद्रथ के पुत्र की मृत्यु होना। अपने पौत्र को लेकर दुःशला का अर्जुन के पास आना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महावीर अर्जुन इस प्रकार सिन्धु देश के योद्धाओं को परास्त करके युद्धभूमि में डटकर खड़े हो गये। सैन्धवगण फिर क्रुद्ध और सुसज्जित होकर अर्जुन पर बाण चलाने लगे। अर्जुन ने उनको फिर सुसज्जित होकर मरने के लिए तैयार देख हँसकर कहा—हे वीरो, तुम लोग भरसक युद्ध करके हमें परास्त करने का उद्योग करो। अब तुम लोगों के लिए बड़ा सङ्कट उपस्थित है। हम अभी तुम्हारे बाणों को काटकर तुम्हारे साथ युद्ध करते हैं। सावधान होकर तुम लोग युद्ध करो, हम अभी तुम्हारे दर्प को चूर्ण कर देंगे।

अर्जुन ने क्रोध के वेग में सिन्धु देश के योद्धाओं से यों कह तो दिया, किन्तु वे फिर सोचने लगे कि चलते समय महाराज युधिष्ठिर ने मुझसे कहा था कि भैया, तुम युद्ध करनेवाले क्षत्रियों का नाश न करके उनको परास्त भर कर देना। धर्मराज की इस आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है, अतएव मुझे इन क्षत्रियों का नाश न करना चाहिए। धर्मात्मा अर्जुन ने यह सोचकर उन लोगों से फिर कहा—हे वीरो, मैं तुम्हारी भलाई के लिए वादा करता हूँ कि तुम लोगों में से जो कोई मुझसे हार मान लेगा उसे मैं न मारूँगा। अतएव मेरे कहने से तुम लोग अपने हित का काम करो, नहीं तो तुम्हारे लिए बड़ी विपत्ति आनेवाली है।

यह सुनकर सिन्धु देश के वीर, कुपित होकर, युद्ध करने को उद्यत हो गये। तब अर्जुन क्रुद्ध होकर उनके साथ युद्ध करने लगे। पराक्रमी सिन्धु देश के वीरों ने अर्जुन पर असंख्य नत-पर्व बाण चलाये। अर्जुन ने भी, तीक्ष्ण बाणों से, सर्पतुल्य उन तीक्ष्ण बाणों को आधे मार्ग में काट डाला और प्रत्येक वीर को घायल कर दिया। सिन्धु देश के वीरों ने सिन्धुराज जयद्रथ के वध का वृत्तान्त स्मरण करके, कुपित होकर, अर्जुन पर शक्ति और प्रास आदि अनेक अस्त्र चलाये। अर्जुन ने उन अस्त्रों को मार्ग में ही काटकर, सिंहनाद करके, नतपर्व भल्ल बाणों द्वारा उनमें से अनेक योद्धाओं के सिर उड़ा दिये। तब बहुत से वीर युद्ध छोड़कर भाग गये, कोई तो अर्जुन की ओर फिर दौड़ा और कोई युद्ध छोड़कर डर के मारे चिल्लाने लगा। उनके चीख़ने से युद्धभूमि में, उमड़े हुए समुद्र के शब्द की तरह, कोलाहल मच गया। अर्जुन के बाणों से इस प्रकार पीड़ित होने पर भी सिन्धु देश के योद्धा बड़े उत्साह के साथ युद्ध करने लगे। तब महापराक्रमी अर्जुन ने तीक्ष्ण बाण मारकर अनेक वीरों को मूर्च्छित और वाहनों को घायल कर दिया।

सिन्धु देश के वीरों की दुर्दशा का हाल सुनकर धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला, अपने पौत्र को गोद में लेकर, रथ पर सवार हो योद्धाओं को शान्त करने के लिए दीन स्वर से रोती हुई अर्जुन के पास आई। बहन दुःशला को आते देखकर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष रख दिया

और उनसे कहा—बहन ! बतलाओ, मैं क्या करूँ। दुःशला ने कहा—भैया, तुम्हारे भानजे सुरथ का यह बालक तुमको प्रणाम करता है। तब अर्जुन ने पूछा—बहन, सुरथ कहाँ है ?

यह सुनकर दुःशला दुःख से व्याकुल होकर कहने लगीं—भैया ! मेरा पुत्र सुरथ, अपने पिता के शोक से व्याकुल होकर, परलोक को चल बसा। अब मैं उसकी मृत्यु का हाल



विस्तार के साथ तुमको सुनाती हूँ। संग्राम
में मेरे पति की मृत्यु होने पर बेटा सुरथ
पितृशोक से बहुत व्याकुल हो गया था।
उसने जब सुना कि घोड़े के पीछे अर्जुन
युद्ध करने के लिए यहाँ आ रहे हैं तब वह
डर के मारे पृथिवी पर गिर पड़ा और
अकस्मात् उसकी मृत्यु हो गई। इस तरह
उसकी मृत्यु देखकर मैं, उसके बालक को
३१ लेकर, तुम्हारी शरण में आई हूँ।

अब दुःख से व्याकुल दुःशला दीन स्वर से विलाप करने लगीं। यह देखकर लज्जा के मारे अर्जुन ने सिर झुका लिया। दुःशला ने फिर कहा—भैया, अब तुम दुर्योधन और मन्द जयद्रथ की करनी को भूल जाओ और अपनी इस अभागिनी बहन तथा भानजे के पुत्र पर कृपा करो। अभिमन्यु का पुत्र परिक्षित् जैसा तुम्हारा पौत्र है वैसा ही सुरथ का बेटा यह बालक भी तुम्हारा पोता है। मैं युद्ध रोकवा देने और इन योद्धाओं के कल्याण के लिए इस बालक को लेकर तुम्हारी शरण में आई हूँ। यह बालक तुम्हारे अभागे भानजे का पुत्र है, अतएव इस पर कृपा करो। देखो, यह बालक सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता है और शान्त होने के लिए तुमसे प्रार्थना कर रहा है। अब इसके पितामह निठुर जयद्रथ के अपराध को भूलकर तुम इस
४० अनाथ अबोध बालक पर कृपा करो।

दुःशला के इन दीन वचनों को सुनकर अर्जुन—गान्धारी और धृतराष्ट्र की याद करके—शोक से व्यथित होकर कहने लगे—"क्षात्र धर्म को धिक्कार है। इस धर्म का अनुयायी होकर, दुर्योधन की दुष्टता के कारण, मैंने अपने कुटुम्बियों और सम्बन्धियों का नाश कर दिया है।" फिर उन्होंने दुःशला को समझा-बुझाकर घर जाने की आज्ञा दी। तब दुःशला योद्धाओं को युद्ध से लौट जाने की आज्ञा देकर, अर्जुन का यथोचित सत्कार करके, घर को चली गईं।

इस प्रकार अर्जुन सिन्धु देश के वीरों को परास्त करके, गाण्डीव धनुष लेकर, इच्छा के
अनुसार चलनेवाले घोड़े के पीछे चलने लगे। उस समय वे मृग के अनुगामी पिनाकपाणि
महादेव के समान शोभित हुए। वह घोड़ा अनेक स्थानों में घूमता हुआ मणिपुर में पहुँचा।
वीर अर्जुन भी उसके साथ वहाँ गये। ४९

उन्नासीवाँ अध्याय

अपने पुत्र, मणिपुर के राजा, बभ्रुवाहन के साथ अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! मणिपुर में अर्जुन के पहुँचने पर उनका पुत्र बभ्रुवाहन पिता के आने का समाचार पाकर, ब्राह्मणों को आगे करके, विनीत भाव से उनके पास आया। क्षात्रधर्मावलम्बी अर्जुन ने पुत्र बभ्रुवाहन को विनीत भाव से आते देखकर उसका आदर न किया, बल्कि क्रुद्ध होकर कहा—बेटा, इस प्रकार दीन भाव से मेरे पास आना तुमको उचित नहीं। मैं जब महाराज युधिष्ठिर के घोड़े की रक्षा के लिए नियुक्त होकर युद्ध करने को तुम्हारे राज्य में आया हूँ तब तुम मेरे साथ युद्ध क्यों नहीं करते? तुम्हारा यह व्यवहार देखकर मैं तुमको क्षत्रिय-धर्म से बहिष्कृत समझता हूँ। तुमको धिक्कार है! मुझे युद्ध के लिए आया हुआ जानकर तुम विनीत भाव से मेरे पास आये हो इससे तुम्हारा जीवन व्यर्थ है। तुममें तनिक भी पुरुषत्व नहीं है। तुम स्त्री के समान हो। यदि मैं तुम्हारे राज्य में ख़ाली हाथ आता तो इस तरह विनीत भाव से मेरे पास आने में तुम्हारी कोई निन्दा न थी।

अर्जुन द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होने पर बभ्रुवाहन सिर झुकाकर सोचने लगे कि अब
क्या करना चाहिए। यह हाल जानकर नागकन्या उलूपी उसी समय पृथिवी फाड़कर निकल
आई। उसने देखा कि उसका सौतेला पुत्र, अर्जुन द्वारा तिरस्कृत होकर, सिर झुकाये कुछ सोच
रहा है। तब उलूपी ने बभ्रुवाहन के पास आकर कहा—बेटा, मैं तुम्हारी विमाता
उलूपी हूँ। तुमको इस समय उपयुक्त उपदेश देने तुम्हारे पास आई हूँ। तुम मेरी बात १०
सुनो और उसी के अनुसार काम करो। यही तुम्हारा परम धर्म है। तुम्हारे पिता जब युद्ध
की इच्छा से तुम्हारे राज्य में आये हैं तब तुम उनके साथ अवश्य युद्ध करो। तुम उनसे
युद्ध करोगे तो वे तुम पर बड़े प्रसन्न होंगे।

उलूपी का यह उपदेश सुनकर बभ्रुवाहन, उत्साहित होकर, युद्ध के लिए तैयार हो गये। उन्होंने तुरन्त सुवर्णमय कवच और शिरस्त्राण धारण कर लिया। अनेक तरकसों से भरे हुए, युद्ध-सामग्री से सुसज्जित, शीघ्रगामी चार घोड़ों से युक्त, सिंहध्वज सुवर्णमय विचित्र रथ पर सवार होकर उन्होंने पिता के सामने झपटकर सैनिकों को यज्ञ का घोड़ा पकड़ लेने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही अनुचरों ने घोड़े को पकड़ लिया। तब अर्जुन, प्रसन्न होकर, बभ्रुवाहन पर बाण

चलाने लगे। महाबली बभ्रुवाहन ने सर्प के समान तीक्ष्ण बाणों द्वारा अर्जुन को पीड़ित कर
२० दिया। इस प्रकार पिता-पुत्र का युद्ध धीरे-धीरे देवासुर-संग्राम के समान भयङ्कर हो गया। इसके
बाद वीर बभ्रुवाहन ने हँसकर, अर्जुन की ओर ताककर, उनके जत्रुस्थान (गर्दन के नीचे की
हँसली) पर एक आनतपर्व बाण मारा। जिस प्रकार साँप बाँबी में घुस जाता है उसी प्रकार
वह बाण, अर्जुन के जत्रुस्थान को भेदकर, पाताललोक को चला गया। उस बाण के लगने से
महावीर अर्जुन बहुत व्यथित हुए और थोड़ी देर तक गाण्डीव धनुष के सहारे अचेत खड़े
रहे। होश आने पर उन्होंने बभ्रुवाहन की प्रशंसा करके कहा—"बेटा, तुम्हारे योग्य यह काम
देखकर आज मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अब मैं बाण मारता हूँ, तुम सावधानी से मेरे
साथ युद्ध करो।" अब अर्जुन ने असंख्य नाराच बाण चलाये। वीर बभ्रुवाहन ने अर्जुन के
चलाये हुए नाराच बाणों के, भल्ल अस्त्र द्वारा, झटपट दो-दो तीन-तीन टुकड़े कर डाले। तब
अर्जुन ने मुसकुराकर तीक्ष्ण बाण मारकर बभ्रुवाहन के रथ की, सुवर्णमय तालवृक्ष के समान,
ध्वजा काट डाली और उनके घोड़ों को भी मार डाला।

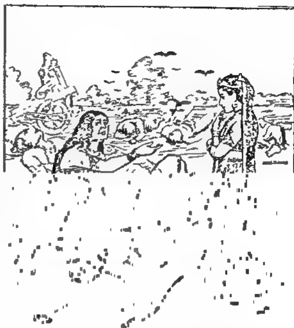
बभ्रुवाहन रथ से उतरकर खड़े हो गये और कुपित होकर अर्जुन के साथ युद्ध करने
३० लगे। पुत्र का असाधारण पराक्रम देखकर अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बभ्रुवाहन को
अत्यन्त पीड़ित नहीं किया। पराक्रमी बभ्रुवाहन ने पिता को, संग्राम से विमुख देखकर भी,
सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणों द्वारा व्यथित कर दिया और बालकपन की चपलता के कारण उनके हृदय
में एक तीक्ष्ण बाण मारा। मर्मस्थल में बाण लगने के कारण अर्जुन मूर्च्छित होकर गिर पड़े।
महावीर बभ्रुवाहन बड़े परिश्रम से युद्ध करके अर्जुन के बाणों से घायल हो ही चुके थे। इस
३५ समय अर्जुन को मूर्च्छित देखकर वे भी बेहोश होकर गिर पड़े।

अस्सी अध्याय

बभ्रुवाहन द्वारा अर्जुन की मृत्यु। पिता और पति के शोक से बभ्रुवाहन और उनकी
माता का प्रायोपवेशन करना। फिर उलूपी का अर्जुन को जिला देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इस प्रकार अर्जुन और बभ्रुवाहन के गिर जाने पर बभ्रुवाहन की माता चित्राङ्गदा, अपने पुत्र और पति को घायल देखकर, समरभूमि में आईं और विलाप करते-करते मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। थोड़ी देर बाद होश में आने पर अपने सामने नागराज-कन्या उलूपी को देखकर उनसे कहने लगीं—बहन! यह देखो, मेरे पुत्र द्वारा घायल होकर समर-विजयी धनञ्जय शरशय्या पर पड़े हैं। इनकी मृत्यु का कारण तुम्हीं हो। यदि तुम सलाह न देतीं तो अर्जुन के साथ मेरा पुत्र युद्ध न करता। क्या यही

तुम्हारा पतिव्रत है ! क्या तुम इसी प्रकार की धर्मज्ञा हो ! आज तुम्हारे ही कारण तुम्हारे स्वामी की मृत्यु हुई। जो हो, यदि अर्जुन ने तुम्हारा कोई भारी अपराध भी किया हो तो भी मैं प्रार्थना करती हूँ कि तुम कृपा करके इनको जिला दो। हाय, पुत्र द्वारा पति को मरवा डालने से तुमको रत्ती भर भी खेद नहीं हुआ। इसी प्रकार का धर्म करने से तुम तीनों लोकों में धार्मिक कहलाती हो। युद्ध में पुत्र के मर जाने का मुझे कुछ भी शोक नहीं है, किन्तु तुमने पुत्र द्वारा जिसे मरवा डाला है उसी के लिए मुझे दुःख है।



शोक से व्याकुल चित्राङ्गदा उलूपी से यों कहकर अर्जुन के पास गई और कहने लगीं—नाथ, तुम कौरवश्रेष्ठ युधिष्ठिर के परम प्रिय हो। अब शीघ्र उठकर उनके घोड़े के पीछे जाओ। इस समय निश्चिन्त होकर पृथिवी पर सो रहना तुमको उचित नहीं है। मैंने तुम्हारा घोड़ा छोड़ दिया है। मेरा जीवन तुम्हारे ही अधीन है। तुमने तो हज़ारों मनुष्यों के जीवन की रक्षा की है, फिर इस समय तुमने क्यों प्राण त्याग दिये?

यशस्विनी चित्राङ्गदा इस प्रकार विलाप करके उलूपी से फिर कहने लगीं—कल्याणी ! यह देखो, मेरे और तुम्हारे पति पृथिवी पर मरे पड़े हैं। पुत्र द्वारा इनको मरवाकर तुमको रत्ती भर भी शोक नहीं है। मैं अपने पुत्र बभ्रुवाहन को जिलाने के लिए प्रार्थना नहीं करती, मैं तो केवल अर्जुन को ही जीवित कर देने की प्रार्थना करती हूँ। इन्होंने बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया है, इस कारण तुम इनका अनादर मत करो। बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह करने से पुरुष दूषित नहीं होते। विवाह-सम्बन्ध तो विधाता का विधान है। उसी के अनुसार अर्जुन के साथ तुम्हारा विवाह हुआ है। तुम अपने विवाह को सार्थक करो। आज यदि तुम मेरे और अपने पति महावीर अर्जुन को नहीं जिला दोगी तो मैं यहीं, तुम्हारे ही सामने, प्रायोपवेशन करके प्राण त्याग दूँगी। उलूपी से यों कहकर शोक से व्याकुल चित्राङ्गदा, बहुत विलाप करके, स्वामी के पैर पकड़कर प्रायोपवेशन करने को तैयार हो गई।

उसी समय महाराज बभ्रुवाहन की मूर्च्छा जाती रही। वे शीघ्र उठ बैठे। वे अपनी माता को समरभूमि में आई देखकर कहने लगे—हाय, आज मैंने श्रेष्ठ धनुर्धर समरविजयी

अपने पिता को मारकर बड़ा बुरा किया। इन वीर के मर जाने से मेरी माता, इनके साथ,
प्राण दे देने के लिए इनके पास बैठी हैं। आज महावीर धनञ्जय को युद्ध में मरा हुआ
देखकर मेरी माता का हृदय टूक-टूक नहीं हो जाता तो निस्सन्देह वह पत्थर का बना हुआ है।
जब इस समय भी मेरी और मेरी माता की मृत्यु नहीं होती तो इसमें सन्देह नहीं कि काल के
बिना किसी के प्राण नहीं निकल सकते। पुत्र होकर मैंने अपने हाथों से पिता का विनाश कर
डाला इससे मुझे धिक्कार है। हाय, आज वीर धनञ्जय का सुवर्णमय कवच पृथिवी पर पड़ा
है। हे ब्राह्मणो! यह देखो, मेरे पिता अर्जुन मेरे हाथों से मरकर समरभूमि में पड़े हैं।
शान्तिकर्म करने के लिए पिताजी के साथ जो ब्राह्मण आये थे उन लोगों ने इनके लिए क्या
किया? जो हो, अब मुझ निठुर पितृघाती दुरात्मा को क्या प्रायश्चित्त करना चाहिए? हे
ब्राह्मणो, शीघ्र मुझे आज्ञा दो। अथवा मृत पिता का चमड़ा ओढ़कर, इनकी खोपड़ी लेकर,
३० बारह वर्ष तक घूमते रहने के सिवा दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। हे उलूपी, समर में तुम्हारे
पति अर्जुन का विनाश करके मैंने तुम्हारा बड़ा प्रिय किया है। अब मैं जीवित नहीं रह
सकता। शीघ्र ही मैं उसी लोक को जाऊँगा जहाँ पिताजी गये हैं। मुझे गाण्डीवधारी अर्जुन
के साथ प्राण त्यागते देखकर तुम सुखी मनाओ।

शोक से व्याकुल बभ्रुवाहन दुखी होकर फिर कहने लगे—हे चराचर जीवो, हे सर्प-
नन्दिनी उलूपी! सब लोग सुनो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि आज मेरे पिता अर्जुन जीवित
न हो जायँगे तो मैं यहीं पर अपना शरीर सुखा डालूँगा। मैं पितृघातक हूँ, मेरा कहीं निस्तार
नहीं हो सकता। पिता की हत्या कर डालने के कारण मुझे घोर नरक में गिरना पड़ेगा।
साधारण क्षत्रिय की हत्या करने से सौ गोदान करने पर किसी तरह उस पाप से छुटकारा
मिल सकता है; किन्तु पिता की हत्या करने पर किसी प्रकार उद्धार नहीं हो सकता। अद्वितीय
धनुर्धर होकर जब मैं पिता की हत्या कर बैठा हूँ तब मुझे निष्कृति नहीं मिल सकती।

अब बभ्रुवाहन ने पिता के शोक से अधीर होकर, आचमन करके, माता के साथ
४० प्रायोपवेशन कर लिया। उनको व्यथित और प्रायोपविष्ट देखकर नागराज-कन्या उलूपी ने
नागलोक में स्थित सञ्जीवन-मणि का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह मणि वहाँ आ
गई। उलूपी ने मणि लेकर, सैनिकों के सामने, बभ्रुवाहन से कहा—बेटा, शोक त्यागकर
उठो। तुम अर्जुन को परास्त नहीं कर सकते। इनको तो इन्द्र आदि देवता भी नहीं जीत
सकते। मैंने यह माया तो तुम्हारे पिता का प्रिय करने के लिए फैलाई थी। युद्ध में तुम्हारा
पराक्रम जानने के लिए ही शत्रुनाशन अर्जुन यहाँ आये हैं, इसी से मैंने तुमको युद्ध करने की
सलाह दी थी। बेटा, तुम इस विषय में रत्ती भर भी पाप की शङ्का न करो। वीर अर्जुन शाश्वत
पुरातन ऋषि हैं। युद्ध में इन्द्र भी इनको नहीं जीत सकते। मैं यह दिव्य मणि ले आई हूँ।

मरे हुए साँप इस मणि के प्रभाव से जी उठते हैं। यह मणि तुम अपने पिता की छाती पर
रख दो। इसके प्रभाव से वे इसी दम जी उठेंगे। ५०

यह सुनकर महापराक्रमी बभ्रुवाहन ने प्रसन्न होकर अर्जुन की छाती पर वह मणि रख दी। मणि रखते ही महावीर अर्जुन जीवित हो गये और सोते हुए की तरह आँखें मींजते हुए उठ बैठे। तब बभ्रुवाहन ने बड़ी भक्ति के साथ उनको प्रणाम किया। देवराज इन्द्र फूलों की वर्षा करने लगे। मेघ के समान गम्भीर शब्दवाले नगाड़े अपने आप बजने लगे। अर्जुन की प्रशंसा से आकाश-मण्डल गूँज उठा।



अब अर्जुन ने बभ्रुवाहन को गले लगाकर उनका माथा सूँघा। फिर उन्होंने दुःख से व्याकुल चित्राङ्गदा और उलूपी को देखकर बभ्रुवाहन से पूछा—बेटा! यहाँ जितने मनुष्य हैं उन्हें हर्ष, शोक और अचम्भा क्यों हो रहा है? तुम्हारी माता चित्राङ्गदा तथा उलूपी यहाँ क्यों आई हैं? मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मेरी आज्ञा से तुमने युद्ध किया था; किन्तु यहाँ स्त्रियों के आने का क्या काम है? इस पर बभ्रुवाहन ने अर्जुन को प्रणाम करके कहा—पिताजी, यह वृत्तान्त
आप मेरी विमाता उलूपी से पूछिए। ६१

इक्यासी अध्याय

अर्जुन का उलूपी से उनके और चित्राङ्गदा के आगमन का कारण पूछना। उलूपी का युद्ध में अर्जुन के परास्त होने का कारण बतलाना

अर्जुन ने उलूपी से पूछा—प्रिये, तुम यहाँ क्यों आई हो और बभ्रुवाहन की माता चित्राङ्गदा ही यहाँ किसलिए आई हैं? मेरे या बेटा बभ्रुवाहन के कल्याण के लिए क्या तुम यहाँ आई हो? मैंने या पुत्र बभ्रुवाहन ने भूल से तुम्हारा कुछ अप्रिय तो नहीं किया है? तुम्हारी सौत, राजकुमारी चित्राङ्गदा, ने तो तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया है?

यह सुनकर नागकन्या उलूपी हँसकर कहने लगी—नाथ, न तो आपने मेरा कुछ अपकार किया है और न बेटा बभ्रुवाहन या उनकी माता चित्राङ्गदा ने ही मेरा अपराध किया है। प्रिय सखी चित्राङ्गदा हमेशा मेरी आज्ञा में चलती है। मैं आपको प्रणाम करके प्रार्थना करती हूँ कि मेरी सलाह से ही बभ्रुवाहन ने युद्ध करके आपको परास्त किया है, अतएव आप मुझ पर क्रोध न कीजिएगा। मैंने आपके हित के लिए बभ्रुवाहन को युद्ध के लिए उत्साहित किया था। आपने कुरुक्षेत्र के युद्ध में अधर्म से भीष्म का वध करके घोर पाप किया था, अब बभ्रुवाहन के हाथ से परास्त हो जाने पर आपको उस पाप से छुटकारा मिल गया। आपने भीष्म के साथ युद्ध करके उनको नहीं मारा था। उनके साथ तो शिखण्डी का युद्ध हो रहा था। आपने शिखण्डी का आश्रय लेकर भीष्म की हत्या करके घोर पाप किया था। उस
१० पाप की शान्ति किये बिना आपकी मृत्यु हो जाती तो निस्सन्देह आपको नरक में जाना पड़ता। इस समय पुत्र के हाथ से परास्त होने पर आपका वह पाप नष्ट हो गया। अब आपको नरक में न जाना पड़ेगा। भगवती भागीरथी और वसुगण ने पहले से ही आपके पाप की शान्ति का यह उपाय निर्दिष्ट कर दिया था।

संग्राम में महात्मा भीष्म के गिर जाने पर वसुगण ने गङ्गा-किनारे जाकर, स्नान करके, भागीरथी से कहा था—देवी, महात्मा भीष्म ने जब युद्ध करना बन्द कर दिया तब अर्जुन ने दूसरे मनुष्य की सहायता से उनको मारा है। अतएव आप आज्ञा दीजिए, हम अर्जुन को शाप देंगे। वसुगण के यों कहने पर भागीरथी ने उनकी बात का अनुमोदन किया। उस समय वहाँ मैं भी मौजूद थी। यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। पिताजी के पास जाकर मैंने उनसे यह सब हाल कहा। सब सुनने से पिताजी को भी बड़ा दुःख हुआ। वे वसुगण के पास जाकर उनसे, आपके कल्याण के लिए, प्रार्थना करने लगे। तब वसुओं ने भागीरथी से अनुमति लेकर मेरे पिताजी से कहा—"नागराज! अर्जुन का पुत्र, मणिपुर का राजा, बभ्रुवाहन संग्राम में बाणों से मारकर अर्जुन को गिरा देगा तब वे इस शाप से मुक्त हो जायँगे। अब तुम अपने स्थान को जाओ।" वसुओं की आज्ञा पाकर मेरे पिता अपने स्थान को लौट गये। उन्होंने यह सब हाल मुझसे कहा। इसी से मैंने बभ्रुवाहन को आपके साथ युद्ध करने के लिए उत्साहित करके आपको उस शाप से मुक्त किया है। इसमें मेरा अपराध न समझिए। यदि आप उस शाप से मुक्त न हो जाते तो निस्सन्देह आपको नरक में जाना पड़ता। बभ्रुवाहन से पराजित होने के कारण आप लज्जित न हूजिएगा। देवराज इन्द्र भी संग्राम में आपको नहीं जीत सकते।
२० पुत्र आत्मस्वरूप है, इसी से आप अपने पुत्र द्वारा परास्त हुए हैं।

उलूपी के यों कहने पर अर्जुन ने प्रसन्न होकर कहा कि प्रिये, तुमने यह काम करके मेरा बड़ा उपकार किया है। फिर उन्होंने उलूपी और चित्राङ्गदा के सामने ही बभ्रुवाहन

से कहा—बेटा, महाराज युधिष्ठिर आगामी चैत्र की पौर्णमासी को अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करेंगे। उस दिन तुम अपनी माता चित्राङ्गदा और विमाता उलूपी को साथ लेकर, मन्त्रियों समेत, हस्तिनापुर को आना।

राजा बभ्रुवाहन ने आँखों में आँसू भरकर अर्जुन से कहा—पिताजी, मैं आपकी आज्ञा के अनुसार अश्वमेध यज्ञ में आकर द्विजों को भोजन परोसूँगा। अब आप कृपा करके मेरी माता और विमाता के साथ अपने इस मणिपुर के भवन में चलकर आज की रात ठहरिए। कल प्रातःकाल घोड़े के पीछे चले जाइएगा।

यह सुनकर अर्जुन ने मुसकुराकर कहा—बेटा, मैं जिन नियमों का पालन कर रहा हूँ उनको तो तुम जानते ही हो। यह यज्ञ का घोड़ा अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ जाता है वहीं, इसके पीछे, जाने का मेरा भी नियम है। इसलिए आज मैं तुम्हारे नगर को नहीं चल सकता। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। महावीर अर्जुन पुत्र से यों कहकर और उसके द्वारा सम्मानित होकर, प्रियतमा उलूपी और चित्राङ्गदा से विदा माँगकर, वहाँ से चल दिये। ३२

बयासी अध्याय

फिर अर्जुन का घोड़े के पीछे मगध देश में जाना और वहाँ मगध के राजा मेघसन्धि को परास्त करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इसके बाद वह यज्ञ का घोड़ा समुद्र तक पृथिवी का भ्रमण करके, हस्तिनापुर को लौटते समय, मगध देश में गया। महावीर अर्जुन उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। मगधराज महदेव के पुत्र मेघसन्धि ने अपने राज्य में उस घोड़े के आने का समाचार पाकर, अस्त्र-शस्त्र लेकर, अर्जुन पर धावा कर दिया। उन्होंने नगर से निकलकर, बालकपन की चपलता के कारण, अर्जुन से कहा—अर्जुन, तुम्हारे इस घोड़े को मैं स्त्रियों द्वारा रक्षित समझ रहा हूँ। मैं इसे पकड़ता हूँ, तुम छुड़ाने का यत्न करो। यद्यपि मेरे पूर्वपुरुषों ने तुम्हारे साथ युद्ध नहीं किया है; किन्तु आज मैं तुमसे युद्ध करके संग्राम में तुमको अपना पराक्रम दिखाऊँगा। मैं अस्त्र चलाता हूँ, तुम भी मुझ पर प्रहार करो।

बलदर्पित मेघसन्धि की यह बात सुनकर महावीर अर्जुन ने मुसकुराकर कहा—राजन्, जो कोई मेरा घोड़ा पकड़ेगा उसी से छुड़ाने का मैं यत्न करूँगा। मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर की यही आज्ञा है। इसे तुम जानते ही होगे। तुम अपनी शक्ति भर मेरे ऊपर अस्त्र चलाओ।

अर्जुन के यों कहने पर, जिस तरह इन्द्र पानी बरसाते हैं उसी तरह, मगधराज मेघसन्धि ने अर्जुन के ऊपर बाणों की झड़ी लगा दी। तब अर्जुन ने गाण्डीव धनुष चढ़ाकर बाणों द्वारा १०

मगधराज के सब बाण काटकर गिरा दिये और दयाभाव से उनको तथा उनके सारथी को घायल न करके ध्वजा, पताका, रथ, यन्त्र और घोड़ों पर बाण मारे। इस प्रकार अर्जुन ने तो मेघसन्धि को बचा दिया; किन्तु वे अपने बाहुबल से अपने को सुरक्षित समझकर अर्जुन पर बाण बरसाने लगे। मेघसन्धि के बाणों से घायल अर्जुन वसन्त ऋतु में फूले हुए पलाश वृक्ष के समान शोभित होने लगे। महावीर अर्जुन मेघसन्धि को व्यथित करना नहीं चाहते थे, इसी से उन्होंने अर्जुन के सामने आकर इतने बाण मारकर उन्हें घायल कर दिया; किन्तु तब भी अर्जुन क्रुद्ध नहीं हुए। बालक को बार-बार उपद्रव करते देखकर अर्जुन से सहा नहीं गया उन्होंने कुपित होकर तीक्ष्ण बाण मारकर मेघसन्धि के घोड़ों को मार डाला, सारथी का सिर उड़ा दिया, धनुष काट डाला और ध्वजा-पताका काटकर फेंक दी। इस प्रकार घोड़ा, सारथी और धनुष न रहने पर मगधराज मेघसन्धि, सुवर्णमय गदा लेकर, बड़ी फुर्ती से अर्जुन पर झपटे। उन्हें गदा लेकर झपटते देख महावीर अर्जुन ने उस गदा पर बाण मारे। अर्जुन
२१ के तीक्ष्ण बाण लगने से वह गदा, टुकड़े-टुकड़े होकर, सर्पिणी की भाँति गिर पड़ी। अर्जुन ने मगधराज को रथ, धनुष और गदा से हीन देखकर फिर उन पर प्रहार नहीं किया, बल्कि उनको दुःखित देखकर समझाते हुए कहा—तुमने बालक होकर भी क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में जो काम किया है वह तुम्हारे लिए प्रशंसनीय है; अब घर को जाओ। धर्मराज ने मुझे राजाओं का विनाश करने को मना किया है, इसी से अपराध करने पर भी तुमको मैंने नहीं मारा।

अर्जुन के यों कहने पर मगधराज मेघसन्धि ने, अर्जुन के पास जाकर, हाथ जोड़कर कहा—महात्मन्, मैं आपसे पराजित हो गया। अब मैं युद्ध नहीं करना चाहता। आज्ञा दीजिए, मैं आपका कौन सा काम करूँ। तब अर्जुन ने उनको ढाढ़स बँधाकर कहा—राजन्, तुम चैत्र की पूर्णिमा को धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ में आना।

अर्जुन द्वारा इस प्रकार निमन्त्रित होकर, उनकी बात स्वीकार करके, मेघसन्धि ने उनकी और उनके यज्ञीय घोड़े की यथोचित पूजा की। इसके बाद वह घोड़ा समुद्र-किनारे होता हुआ बङ्ग, पुण्ड्र और कोशल देश में घूमा। महावीर अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से बङ्ग देश की
३० म्लेच्छ सेनाओं को परास्त किया।

तिरासी अध्याय

चेदि-नरेश शिशुपाल के पुत्र से अर्जुन का युद्ध; फिर काशी, कोशल आदि देशों को परास्त करके गान्धार देश में पहुँचना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इसके बाद महावीर अर्जुन, घोड़े के पीछे-पीछे चलकर, दक्षिण दिशा में पहुँचे। कुछ दिनों बाद वह घोड़ा दक्षिण दिशा से लौटकर अनेक देशों में

घूमता-घामता रमणीय चेदि देश में आया। वहाँ शिशुपाल के पुत्र महाराज शरभ ने पहले अर्जुन के साथ युद्ध करके फिर उनका यथोचित सत्कार किया। फिर वह घोड़ा काशी, अङ्ग, कोशल, किरात और तङ्गण देश को गया। महावीर अर्जुन भी घोड़े के साथ इन सब देशों में जाकर राजाओं द्वारा सम्मानित हुए। फिर वे घोड़े के पीछे चलकर दशार्ण देश में पहुँचे। दशार्ण-नरेश महावीर चित्राङ्गद ने उनको अपने राज्य में आया हुआ देखकर उनके साथ घोर संग्राम किया। अर्जुन उनको परास्त करके निषादराज एकलव्य के राज्य में पहुँचे। निषाद-राज एकलव्य के पुत्र ने, निषादों को साथ लेकर, अर्जुन से भीषण युद्ध किया। महावीर अर्जुन निषादराज के पुत्र को विघ्नरूप समझकर, खेल सा करके, उसे और उसके अनुचरों को परास्त करके दक्षिण समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ द्रविड़, आन्ध्र, महिषक (मैसूर) और कोल्लगिरि-निवासी वीरों के साथ उन्होंने युद्ध किया। उन सबको जीतकर वे घोड़े के साथ सुराष्ट्र, गोकर्ण और प्रभास में होते हुए द्वारका नगरी में पहुँचे।

द्वारका में पहुँचते ही यदुवंश के बालकों ने अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए उस घोड़े को पकड़ लिया और अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। तब वृष्णि और अन्धक वंश के राजा उग्रसेन ने, अर्जुन के साथ विवाद न होने देने के लिए, बालकों को युद्ध करने से रोका और वसुदेव के साथ अर्जुन के पास जाकर प्रसन्नता से उनका यथोचित सम्मान किया। महात्मा उग्र-सेन और मामा वसुदेव की आज्ञा लेकर अर्जुन फिर घोड़े के पीछे चले। इस प्रकार वह घोड़ा समुद्र के पश्चिमी किनारे के देशों में घूमता हुआ पञ्चनद में होकर गान्धार देश में पहुँचा।

चौरासी अध्याय

गान्धारराज शकुनि के पुत्र से अर्जुन का युद्ध। शकुनि
की स्त्री द्वारा अर्जुन का शान्त किया जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! शकुनि के पुत्र महारथी गान्धारराज ने अर्जुन को अपने राज्य में आया हुआ देखकर, युद्ध करने की इच्छा से, चतुरङ्गिणी सेना लेकर ध्वजा-पताका फहराते हुए उन पर धावा कर दिया। गान्धार के योद्धा, शकुनि के वध का वृत्तान्त स्मरण करके, धनुष लेकर अर्जुन की ओर झपटे। तब अर्जुन ने नम्रता-पूर्वक युधिष्ठिर की आज्ञा सुनाकर उनको युद्ध करने से रोका; किन्तु उन्होंने अर्जुन की बात न सुनकर कुपित होकर घोड़े को पकड़ लिया। तब अर्जुन क्रोधित होकर तीक्ष्ण बाणों द्वारा उनके सिर काटने लगे। गान्धार देश के योद्धाओं ने अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर, घोड़े को छोड़कर, दृढ़ता के साथ अर्जुन पर धावा किया। अर्जुन ने कुपित होकर तीक्ष्ण बाणों द्वारा अनेक वीरों का नाश कर दिया।

गान्धार देश के योद्धाओं को अर्जुन के बाणों से मरे हुए देखकर शकुनि का पुत्र स्वयं
अर्जुन से युद्ध करने लगा। गान्धारराज को संग्राम में प्रवृत्त देखकर अर्जुन ने युधिष्ठिर के
आज्ञानुसार कहा—गान्धारराज, महाराज युधिष्ठिर ने मुझे राजाओं के विनाश करने का निषेध
१० किया है अतएव तुम मुझसे युद्ध न करो।
गान्धारराज ने अर्जुन की बात पर ध्यान न दिया। वह मूर्खतावश उन पर बाण
बरसाने लगा। अर्जुन ने कुपित होकर, अर्धचन्द्र बाण द्वारा, गान्धारराज का शिरस्त्राण गिरा
दिया। वह शिरस्त्राण अर्जुन का बाण लगने से, जयद्रथ के सिर की तरह, बहुत दूर पर जा
गिरा। गान्धार के योद्धाओं ने यह देखकर विस्मय के साथ समझ लिया कि अर्जुन ने राजा
समझकर गान्धारराज के प्राण बचा दिये हैं। अर्जुन का यह अद्भुत काम देखकर गान्धार-
राज डर के मारे योद्धाओं समेत संग्राम से भाग गया। अर्जुन ने सन्नतपर्व भल्ल बाणों द्वारा अनेक
वीरों के सिर काट डाले। बहुत से वीर इस तरह जी छोड़कर भागे कि अर्जुन के बाणों द्वारा
कटे हुए अपने बाहुओं की भी उनको ख़बर न हुई। गान्धारराज की चतुरङ्गिणी सेना डर के
मारे संग्रामभूमि में तितर-बितर हो गई। कोई योद्धा अर्जुन का सामना न कर सका।
इस प्रकार सेना के तितर-बितर होने पर गान्धारराज की माता अर्घ्य लेकर, वृद्ध मन्त्रियों
के साथ, नगर से चलकर संग्रामभूमि में आईं। उन्होंने पुत्र को युद्ध करने से रोककर अर्जुन
२० का सत्कार किया। अर्जुन ने मामी का सम्मान करके शकुनि के पुत्र से कहा—भाई, मेरे
साथ युद्ध करके तुमने मेरा बड़ा अप्रिय किया है। तुम मेरे भाई हो, मेरे साथ युद्ध करना
तुमको उचित नहीं था। मैंने माता गान्धारी और धृतराष्ट्र का स्मरण करके तुम्हें छोड़ दिया
है। जो हो, इस तरह का काम अब न करना। वैर छोड़ दो। चैत्र की पूर्णिमा को महाराज
२४ युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करेंगे, उस दिन हस्तिनापुर को आना।

पचासी अध्याय

दूतों के मुँह से अर्जुन के आने का हाल सुनकर युधिष्ठिर का यज्ञभूमि की तैयारी करना। अनेक देशों से राजाओं का आना और युधिष्ठिर का सबको ठहराने का प्रबन्ध करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महावीर अर्जुन गान्धारराज से यों कहकर फिर इच्छा-चारी घोड़े के पीछे चले। अब वह घोड़ा हस्तिनापुर की ओर चला। इधर धर्मराज युधिष्ठिर दूतों द्वारा घोड़े और अर्जुन के कुशलपूर्वक लौट आने का समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। गान्धार आदि देशों में अर्जुन के साथ जो युद्ध हुआ था उसकी ख़बर पाकर उनको और भी

हर्ष हुआ। महाराज युधिष्ठिर ने शुभ नक्षत्र से युक्त माघ की द्वादशी के दिन भीमसेन, नकुल और सहदेव को पास बुलाकर भीमसेन से कहा—भैया, मैंने दूत के मुँह से सुना है कि तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन घोड़े के साथ सकुशल आ रहे हैं। माघ की पूर्णिमा आ रही है। अब यज्ञ आरम्भ करने का दिन बहुत समीप है। घोड़े के आने में भी अधिक दिन न लगेंगे। अतएव वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों को यज्ञ के उपयुक्त स्थान निश्चित करने की आज्ञा दो।

धर्मराज के यों कहने पर, अर्जुन के आने का समाचार पाकर, भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए।
यज्ञकुशल ब्राह्मणों तथा निपुण कारीगरों को साथ लेकर वे यज्ञभूमि देखने गये। उन्होंने ११
ब्राह्मणों की अनुमति से एक स्थान पसन्द करके यज्ञ-कार्य के उपयुक्त, सुवर्ण द्वारा अलंकृत, यज्ञभूमि तैयार कराई। आज्ञा पाकर कारीगरों ने मणिमय सैकड़ों गृह, सुवर्णमय विचित्र खम्भे, बड़े तोरण और अन्तःपुर की स्त्रियों, आये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणों के रहने योग्य घर बनाये। यह काम हो जाने पर, युधिष्ठिर के आज्ञानुसार, भीमसेन ने राजाओं के पास दूत भेजे।

धर्मराज के हित के लिए अनेक देशों के राजा विविध रत्न, स्त्री, घोड़े और अस्त्र-शस्त्र लेकर हस्तिनापुर को आने लगे। शिविर में राजाओं के ठहरने से, समुद्र के शब्द के समान, गम्भीर शब्द होने लगा। धर्मराज की आज्ञा से सब राजाओं के लिए भोजन, पानी, दीपक और शय्या का तथा वाहनों के लिए धान, ऊख, गोरस और ठहरने के लिए स्थान का प्रबन्ध
किया गया। वेद के विद्वान् बहुत से मुनि और शिष्यों समेत श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ आये। २१
धर्मराज विनीत भाव से साथ जाकर सबको ठहरने का स्थान देते थे। यज्ञ के उपयुक्त स्थान तैयार हो जाने की सूचना कारीगरों ने धर्मराज को दी जिसे सुनकर वे और उनके भाई बहुत प्रसन्न हुए।

वैशम्पायन ने कहा—महाराज! अश्वमेध यज्ञ की सब तैयारी होने पर वाग्मी पण्डित लोग सभा में बैठकर, एक-दूसरे को परास्त करने की इच्छा से, हेतु दिखलाकर शास्त्रार्थ करने लगे और आये हुए राजा लोग यज्ञभूमि की सामग्री देखने लगे। यज्ञभूमि में कहीं तो सुवर्णमय विचित्र तोरण, कहीं विविध शय्या, आसन और विहार की सामग्री, कहीं रत्नों के ढेर और किसी स्थान में सुवर्णमय घड़े, कड़ाहियाँ, कलसे और हण्डे देखकर राजाओं को बड़ा अचरज हुआ। किसी स्थान में सोने से अलङ्कृत काठ के यूप, किसी स्थान में जलचर स्थलचर और नभचर जीव, कहीं बूढ़ी स्त्रियाँ, कहीं उद्भिज्ज जीव और कहीं तरह-तरह के पहाड़ी जीव देखकर
राजाओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। सब सामान देखकर दर्शकों को ऐसा जान पड़ा मानों ३४
सम्पूर्ण जम्बूद्वीप युधिष्ठिर की यज्ञभूमि में आ गया है। भोजन के लिए अनेक प्रकार की सामग्री तैयार थी। चारों ओर अन्न के ढेर लगे हुए थे, दूध-दही की नहरें भरी हुई थीं, घी के तालाब भरे हुए थे, तरह-तरह की राजाओं के भोग की सामग्री तैयार थी। सोने की

माला और मणियों के कुण्डल पहने हज़ारों मनुष्य, विचित्र पात्रों में, भोजन की सामग्री लेकर ब्राह्मणों को परोसते थे। जब एक लाख ब्राह्मण भोजन कर चुकते थे तब एक वार नगाड़ा
४२ बजाया जाता था। इस प्रकार प्रतिदिन न जाने कितनी वार नगाड़े बजते थे।

छियासी अध्याय

श्रीकृष्ण और बलरामजी का हस्तिनापुर पहुँचना तथा श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से अर्जुन का सन्देश कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इसके बाद युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—भैया! हमारे यज्ञ में जो ये पूजनीय राजा आये हैं, इनका तुम यथोचित सत्कार करो। आज्ञा पाकर महातेजस्वी भीमसेन, नकुल और सहदेव आये हुए राजाओं का सम्मान करने लगे। इसी समय श्रीकृष्ण भी बलदेवजी को आगे करके—सात्यकि, प्रद्युम्न, गद, निशठ, कृतवर्मा और साम्ब आदि वृष्णिवंशी वीरों समेत—यज्ञस्थल में आये। महारथी भीमसेन ने उन सबका यथोचित स्वागत किया। फिर सब लोग रत्नों से अलंकृत भवनों में ठहराये गये।

अब श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा—महाराज! अर्जुन अनेक देशों में घोर संग्राम करके, बहुत थककर, घोड़े समेत आ रहे हैं।

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर अर्जुन के विषय में वार-वार पूछने लगे। श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज, एक द्वारकावासी से अर्जुन की भेंट हुई थी। उसी ने मुझे अर्जुन का हाल
१० बतलाया है। आप चिन्ता न करके यज्ञ की सफलता के लिए उद्योग कीजिए।

युधिष्ठिर ने कहा—श्रीकृष्ण, यह बड़े भाग्य की बात है कि अर्जुन कुशलपूर्वक आ रहे हैं। यदि उन्होंने मेरे लिए कोई सन्देश भेजा हो तो बतलाओ।

श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज, उस द्वारकावासी ने अर्जुन का और सब वृत्तान्त बतलाकर मुझसे उनका यह सन्देश कहा है कि मौक़ा पड़ने पर महाराज युधिष्ठिर को भी यह सलाह देना अनुचित नहीं कि निमन्त्रित होकर यज्ञ में जो राजा आवें उनका यथोचित सत्कार किया जाय। राजसूय यज्ञ में अर्घ्य देने के समय जैसा अनर्थ हुआ था वैसी दुर्घटना इस समय न होने पावे, जिसमें राजाओं के विरोध से प्रजा का नाश न हो। अर्जुन का कहना है कि मणिपुर का राजा, मेरा प्रिय पुत्र बभ्रुवाहन, जब आवे तब उसका यथोचित सत्कार किया जाय।
२१ वह मेरा परम भक्त और अनुरक्त है।

सत्तासी अध्याय

अर्जुन का हस्तिनापुर पहुँचना। बभ्रुवाहन, उनकी माता चित्राङ्गदा और विमाता उलूपी का आगमन

श्रीकृष्ण के यों कहने पर महाराज युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन के सन्देश की प्रशंसा करके उन्होंने कहा—वासुदेव, तुम्हारे अमृतमय वचन सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। जो हो, इस समय अनेक राजाओं के साथ फिर अर्जुन के संग्राम का हाल सुनकर मुझे यह चिन्ता हुई है कि ऐसा कौन सा कारण है जिससे अर्जुन को हमेशा इस प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। शुभ लक्षणों से युक्त उनके शरीर में तो ऐसा कोई चिह्न नहीं है, जिससे उन्हें हमेशा इस तरह के कष्ट उठाने पड़ें? मैंने तो उनके शरीर में ऐसा कोई लक्षण नहीं देखा। जिस कारण से अर्जुन को ये कष्ट मिल रहे हैं वह, मुझे बतलाने योग्य हो तो, बतलाइए।

श्रीकृष्ण ने थोड़ी देर सोचकर महाराज युधिष्ठिर से कहा—महाराज, अर्जुन की पिंड-लियाँ कुछ मोटी हैं। इसके सिवा और कोई अशुभ लक्षण उनके शरीर में नहीं देख पड़ता। पिंडलियों की स्थूलता के कारण अर्जुन को सदा मार्ग चलना पड़ता है।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की बात पर विश्वास करके कहा कि वासुदेव, तुम ठीक कहते हो। १०
ये बातें सुनकर द्रौपदी ने, ईर्ष्या के साथ, एक बार कनखियों से श्रीकृष्ण की ओर देखा। द्रौपदी के मन की बात को अर्जुन के मित्र श्रीकृष्णजी ताड़ गये। भीमसेन आदि कौरव और याजकगण भी अर्जुनविषयक ये बातें सुनकर प्रसन्न हो रहे थे।

इस प्रकार बातें हो रही थीं कि अर्जुन का भेजा हुआ दूत आ गया। उसने प्रणाम करके युधिष्ठिर से कहा—महाराज, महावीर अर्जुन घोड़े के साथ नगर के समीप आ गये हैं।

यह समाचार पाकर धर्मराज युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। प्रिय संवाद लानेवाले उस दूत को उन्होंने बहुत सा धन दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल महावीर अर्जुन ने घोड़े समेत नगर में प्रवेश किया। उच्चैःश्रवा के सदृश उस यज्ञीय अश्व के पैरों से धूल उड़कर बड़ी शोभा देने लगी। नगरनिवासी लोग प्रसन्नता से पुकार-पुकारकर कहने लगे—अर्जुन! बड़े भाग्य की बात है कि आज हम लोगों ने तुमको सकुशल आया हुआ देखा। महाराज युधिष्ठिर धन्य हैं। तुम्हारे सिवा और कोई पुरुष पृथिवी भर के राजाओं को जीतकर सकुशल घोड़ा लेकर नहीं लौट सकता। सगर आदि जो राजा स्वर्ग को गये हैं उनका भी इस प्रकार का अद्भुत काम हमने
नहीं सुना। भविष्य में जितने राजा होंगे वे भी तुम्हारे जैसा दुष्कर कार्य न कर सकेंगे। २०

हस्तिनापुर की प्रजा के मुँह से ऐसी प्रशंसा सुनते हुए धर्मात्मा अर्जुन यज्ञभूमि में पहुँचे। मन्त्रियों समेत धर्मराज युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण ने उनको देखकर, धृतराष्ट्र को आगे करके, उनका स्वागत किया। अर्जुन ने पहले धृतराष्ट्र को, फिर युधिष्ठिर और भीमसेन को प्रणाम किया; इसके

बाद श्रीकृष्ण, नकुल और सहदेव को गले लगाया। इसी समय मणिपुर के राजा बभ्रुवाहन, अपनी माता चित्राङ्गदा और विमाता उलूपी को साथ लेकर, हस्तिनापुर में पहुँचे। उन्होंने सब
२८ वृद्ध कौरवों और अन्यान्य राजाओं को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद लिया।

अट्ठासी अध्याय

व्यासजी की आज्ञा से युधिष्ठिर का यज्ञ के लिए दीक्षित होना और यज्ञ का आरम्भ

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, बभ्रुवाहन ने अपनी दादी कुन्ती के पास जाकर उनको विनयपूर्वक प्रणाम किया। माता चित्राङ्गदा और विमाता उलूपी भी—कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और अन्य कौरव-स्त्रियों से मिल-भेटकर—नम्रता से सबके साथ बातें करने लगीं। द्रौपदी, सुभद्रा तथा यदु-कुल की स्त्रियों ने उनको अनेक प्रकार के धन-रत्न दिये। मनस्विनी कुन्ती ने, अर्जुन के हित के लिए, चित्राङ्गदा और उलूपी को भेट देकर यथोचित सत्कार किया। इस प्रकार अपनी सास द्वारा सम्मानित होकर वे उनकी आज्ञा से वहाँ रहने लगीं।

बभ्रुवाहन राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर, उनको प्रणाम करके, युधिष्ठिर और भीमसेन आदि के पास आये। पाण्डवों ने बड़ी प्रसन्नता से, स्नेह के साथ, गले से लगाकर सम्मान-पूर्वक उन्हें बहुत सा धन दिया। फिर बभ्रुवाहन ने विनीत भाव से श्रीकृष्ण को प्रणाम किया।
१० श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर उनको दिव्य घोड़ों से युक्त सुवर्णमय उत्तम रथ दिया।

तीसरे दिन महर्षि वेदव्यास ने युधिष्ठिर के पास आकर कहा—महाराज, ऋत्विक् कहते हैं कि अब यज्ञ का मुहूर्त आ गया है। अतएव तुम आज से अश्वमेध यज्ञ आरम्भ कर दो। तुम्हारा यह यज्ञ सर्वाङ्गपूर्ण होगा और बहुसुवर्ण-यज्ञ नाम से प्रसिद्ध होगा। यज्ञ के प्रधान कारण ब्राह्मण ही हैं, अतएव यज्ञ समाप्त होने पर ब्राह्मणों को तिगुनी दक्षिणा देना। तिगुनी दक्षिणा देने से तुम्हें तीन अश्वमेध यज्ञों का फल मिलेगा और सजातीय वीरों के वध करने का तुम्हारा पाप छूट जायगा। अश्वमेध यज्ञ के बाद अवभृथ स्नान करने पर तुम परम पवित्र हो जाओगे।

धर्मराज ने व्यासजी के उपदेशानुसार उसी दिन यज्ञ की दीक्षा ले ली। यज्ञ-निपुण ब्राह्मणों ने यज्ञ आरम्भ करके विधिपूर्वक अपना-अपना काम सँभाला। यज्ञ का कोई काम अधूरा
२० नहीं छोड़ा गया। यज्ञ के कामों में कुशल ब्राह्मणों ने विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके, सोमलता का रस निकालकर, विधि के अनुसार सब काम किये। उस यज्ञ में सब सदस्य वेद-वेदाङ्ग के पारदर्शी, व्रतधारी, ब्रह्मचारी और तर्क-वितर्क में निपुण थे। यज्ञ का आरम्भ होने पर धर्मराज की आज्ञा से महावीर भीमसेन प्रतिदिन भोजनार्थी मनुष्यों को भोजन देने लगे। जितने मनुष्य इस यज्ञ को देखने आये थे उनमें कोई कृपण, दरिद्र, भूखा या दुःखित नहीं रह गया।

इसके बाद यूप खड़ा करने का समय आया। ऋत्विजों ने यज्ञभूमि में बेल, खैर और
पलाश के छः-छः, देवदारु के दो और लसोड़े का एक यूप खड़ा किया। तब भीमसेन ने धर्म-
राज की आज्ञा से, शोभा के लिए, सुवर्णमय अनेक यूप खड़े करवाये। वे सब यूप वस्त्रों
से मढ़े हुए थे। सप्तर्षियों से घिरे हुए इन्द्र आदि देवताओं के समान उन यूपों की शोभा हो
रही थी। इसके बाद ऋत्विजों ने सुवर्णमय ईंटों द्वारा अठारह हाथ लम्बी, त्रिकोणयुक्त, ३०
गरुड़ के आकार की वेदी तैयार करके उसमें अग्नि की चयन-क्रिया की। यह अग्नि की चयन-
क्रिया दक्ष प्रजापति के यज्ञ के चयन-कर्म के समान हुई। इसके बाद विद्वान् ऋत्विजों ने,
शास्त्र के अनुसार, देवताओं के उद्देश से अनेक पक्षियों, बैलों और जलचर जीवों तथा यूपों में
बँधे हुए तीन सौ पशुओं के साथ उस घोड़े को बाँधा।

उस समय धर्मराज की यज्ञभूमि देवर्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, किन्नरों, सिद्धों और ब्राह्मणों
से शोभित हो रही थी। सभामण्डप में व्यासजी की यज्ञकार्यकुशल शिष्यमण्डली उपस्थित थी।
इन शिष्यों ने अनेक शास्त्रों का प्रणयन किया था। प्रतिदिन यज्ञ-सम्बन्धी कार्यों के समाप्त होने
पर नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, चित्रसेन आदि गन्धर्व नाच-गाकर ब्राह्मणों का मनोरञ्जन करते थे। ४०

नवासी अध्याय

अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति और यथोचित सम्मान पाकर सब राजाओं का विदा होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! अब ऋत्विज ब्राह्मणों ने क्रमशः सब पशुओं का वध
करके, उनका मांस पकाकर, विधि के अनुसार उस घोड़े का वध किया। तब पाण्डवों की
पत्नी, श्रद्धा आदि गुणों से सम्पन्न, द्रौपदी को उस घोड़े के पास बैठाया। ब्राह्मणों ने विधि
के अनुसार उस घोड़े की चरबी निकालकर पकाई। भाइयों समेत धर्मराज युधिष्ठिर, सब पापों
का नाश करनेवाले, उसके धुएँ को सूँघने लगे। फिर सोलह ऋत्विक् उस घोड़े के सब अङ्गों
को लेकर अग्नि में आहुति देने लगे। इस प्रकार अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर व्यासजी
और उनके शिष्य, इन्द्रतुल्य तेजस्वी युधिष्ठिर की प्रशंसा करने लगे। इसके बाद युधिष्ठिर ने
विधिपूर्वक ब्राह्मणों को हज़ार करोड़ सोने की मुद्राएँ देकर व्यासजी को सम्पूर्ण पृथिवी दान
कर दी। व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, तुम्हारी दी हुई पृथिवी मैं तुमको
वापस करता हूँ। ब्राह्मण धन पाने की ही इच्छा करते हैं, अतएव तुम मुझे पृथिवी के बदले
धन दान करो। यह सुनकर धर्मराज ने अपने भाइयों और सब राजाओं के सामने ऋत्विजों १०
से कहा—हे ब्राह्मणो, मैंने अश्वमेध यज्ञ में पृथिवी दान कर देने का निश्चय कर लिया है
इसलिए अब अर्जुन की जीती हुई सम्पूर्ण पृथिवी आप लोगों को दान करता हूँ। चातुर्होत्र

यज्ञ की विधि के अनुसार आप लोग इसे चार भागों में बाँट कर ले लीजिए। मैं अब वन को चला जाऊँगा। ब्राह्मणों का धन लेने की मेरी इच्छा नहीं।

धर्मराज युधिष्ठिर के यों कहने पर अर्जुन आदि उनके चारों भाइयों और द्रौपदी ने भी उनकी बात का अनुमोदन किया। यह सुनकर सभा में उपस्थित सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। आकाशवाणी हुई कि युधिष्ठिर, तुम धन्य हो। ब्राह्मण लोग भी प्रसन्न होकर प्रशंसा करने लगे। तब व्यासजी ने ब्राह्मणों के सामने फिर युधिष्ठिर से कहा—महाराज, मैं तुम्हारी दी हुई पृथिवी तुमको वापस करता हूँ। तुम इसके बदले में ब्राह्मणों को सुवर्ण दान करो। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा—महाराज, आप महर्षि वेदव्यास का कहना मान लीजिए। तब श्रीकृष्ण की बात मानकर भाइयों समेत धर्मराज ने ब्राह्मणों को तिगुनी दक्षिणा दी। महर्षि वेदव्यास ने युधिष्ठिर का दिया हुआ धन ब्राह्मणों को दे दिया जिसको चार
२१ भागों में विभक्त करके उन्होंने बाँट लिया।

इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर ऋत्विज ब्राह्मणों को पृथिवी-दान के बदले सुवर्ण-दान करके, निष्पाप होकर, भाइयों समेत बहुत प्रसन्न हुए। ऋत्विजों ने उस सुवर्णराशि में से उत्साह के साथ अन्य ब्राह्मणों को भी सोना दिया। इस यज्ञभूमि में जितने अलङ्कार, तोरण, यूप, बर्तन और ईंटें थीं उनको ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर की आज्ञा से आपस में बाँट लिया। ब्राह्मणों ने जो सुवर्णमय बर्तन उसी स्थान पर छोड़ दिये थे उनको क्षत्रिय, वैश्य और म्लेच्छ उठा ले गये। सारांश यह कि महाराज युधिष्ठिर जिस प्रकार का यज्ञ कर गये हैं वैसा यज्ञ दूसरा कोई नहीं कर सकता।

यज्ञ समाप्त होने पर ब्राह्मण लोग अपरिमित धन लेकर प्रसन्नता से अपने-अपने घर चले गये। व्यासजी ने अपना धन कुन्ती को दे दिया। यशस्विनी कुन्ती ने अपने ससुर से बहुत सा सोना पाकर प्रसन्नता से उसे पुण्य-कर्मों में लगा दिया। इसके बाद धर्मराज युधि-
३० ष्ठिर भाइयों समेत अवभृथ स्नान करके देवताओं समेत इन्द्र के समान शोभित हुए। फिर देश-देशान्तर से आये हुए सब राजा पाण्डवों के पास आये। उस समय पाण्डवगण नक्षत्रों के बीच ग्रहों के समान शोभित होने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने राजाओं को असंख्य हाथी, घोड़े, वस्त्र, अलङ्कार, रत्न और स्त्रियाँ देकर विदा किया। फिर महाराज बभ्रुवाहन को बड़े आदर से अपने पास बैठाकर, अनेक धन-रत्न देकर, मणिपुर जाने की आज्ञा दी। दुःशला को प्रसन्न करने के लिए उनके पौत्र को सिन्धु देश का राज्य करने का आदेश दिया। अब महात्मा श्रीकृष्ण, बलदेव और प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी वीर महाराज युधिष्ठिर और उनके भाइयों द्वारा सम्मानित होकर, उनकी अनुमति से, द्वारका को गये। सब राजाओं के विदा हो जाने पर धर्मराज भी भाइयों सहित प्रसन्नता से अपने घर आये।

महाराज, धर्मात्मा युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ इस प्रकार धूमधाम से समाप्त हुआ। उस यज्ञ में अपरिमित धन-रत्न था। उस यज्ञ में मदिरा का समुद्र, घी के कुण्ड, अन्न के पर्वत
और रसों की नदियाँ बन गई थीं। उस यज्ञ में कितने मनुष्यों ने खाण्डवराग खाया और ४०
कितने पशुओं का वध हुआ उसकी गिनती नहीं की जा सकी। मत्त-प्रमत्त युवतियाँ बड़ी प्रसन्नता से यज्ञभूमि में घूमती थीं। वहाँ मृदङ्ग और शङ्ख की ध्वनि होती रहती थी। वहाँ दिन रात 'दान करो' और 'भोजन करो' के सिवा दूसरा शब्द नहीं सुन पड़ता था।
अनेक देशों के मनुष्य आज भी उस यज्ञ की प्रशंसा करते हैं। ४४

नब्बे अध्याय

न्योले की कथा

जनमेजय ने कहा—भगवन्, मेरे प्रपितामह धर्मराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में यदि कोई अद्भुत घटना हुई हो तो आप उसका वर्णन कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर एक अद्भुत घटना हुई थी। उसका वर्णन सुनो। उस अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों, जातिवालों, कुटुम्बियों, बन्धु-बान्धवों, दीन-दरिद्रों और अन्धों के तृप्त हो जाने पर धर्मराज की दानशीलता देश-देशान्तर में फैल गई और उनके ऊपर फूलों की वर्षा होने लगी। उसी समय एक न्योला यज्ञभूमि में आया। उस न्योले की आँखें नीली थीं और उसका एक पार्श्व सुवर्णमय था। न्योले ने यज्ञभूमि में आकर पहले तो वज्र के समान गम्भीर शब्द करके पशु-पक्षियों को भयभीत कर दिया, पीछे मनुष्य की भाषा में कहा—हे राजाओ, यह अश्वमेध यज्ञ कुरुक्षेत्र-निवासी एक उञ्छवृत्तिधारी दानी ब्राह्मण के सेर भर सत्तू दान करने के समान भी नहीं हुआ।

ढीठ न्योले के यों कहने पर ब्राह्मणों ने चकित होकर पूछा—नकुल! तुम कौन हो,
कहाँ से आये हो, तुममें कौन सा बल और शास्त्रज्ञान है, जो इस यज्ञ की निन्दा करते हो? १०
हमने शास्त्र के अनुसार और अनुभवी कर्मकाण्डियों की सलाह से यज्ञ के सब काम किये हैं। इस यज्ञ में पूज्य पुरुषों की यथोचित पूजा हुई है और मन्त्र पढ़कर होम किया गया है। महाराज युधिष्ठिर ने ईर्ष्याहीन होकर विविध दान द्वारा ब्राह्मणों को, न्याय-युद्ध द्वारा क्षत्रियों को, श्राद्ध द्वारा पितरों को, पालन करके वैश्यों को, अभीष्ट वस्तुएँ देकर स्त्रियों को, कृपा करके शूद्रों को, ब्राह्मणों से बचे हुए धन-रत्न द्वारा अन्य जातिवालों को, अच्छा बर्ताव करके सजातीयों और सम्बन्धियों को, पवित्र हवनीय वस्तुओं द्वारा देवताओं को और रक्षा करके शरणागतों को सन्तुष्ट किया है। फिर तुम इस यज्ञ की निन्दा क्यों करते हो? तुम दिव्य रूपधारी

और बुद्धिमान् होकर भी ऐसी बेढङ्गी बात कहते हो; इससे हम लोगों को बड़ी अश्रद्धा हुई है। बतलाओ, तुमने क्या देखा और सुना है।

इस पर न्योले ने हँसकर कहा—हे ब्राह्मणो, मैंने आप लोगों के सामने गर्व से कोई झूठ बात नहीं कही है। मैं सत्य कहता हूँ, आप लोगों का यह अश्वमेध यज्ञ कुरुक्षेत्र-निवासी एक
२१ उञ्छ वृत्तिवाले ब्राह्मण के सत्तूदान के समान नहीं हुआ। वह दानी ब्राह्मण जिस प्रकार स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू समेत स्वर्ग को गया है और जिस तरह मेरा आधा शरीर सुवर्णमय हो गया है वह अद्भुत वृत्तान्त मैं आप लोगों से विस्तार के साथ कहता हूँ। कुछ दिन पहले धर्मात्माओं से परिपूर्ण कुरुक्षेत्र में एक धर्मात्मा ब्राह्मण उञ्छ वृत्ति द्वारा, कबूतर के समान, निर्वाह करता था। पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू, कुल चार प्राणी उसके परिवार में थे। वह ब्राह्मण दिन के छठे भाग में कुटुम्ब के साथ भोजन किया करता था। किसी-किसी दिन उसे उस समय भी भोजन न मिलता था। तब वह परिवार समेत उस दिन उपवास करके दूसरे दिन छठे काल में भोजन करता था।

एक बार वहाँ बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। ब्राह्मण के पास कुछ सञ्चित अन्न तो था नहीं और खेतों का अन्न भी सूख गया था, इसलिए उसको प्रायः प्रतिदिन उपवास ही करना पड़ता था। वह बड़े कष्ट से दिन बिता रहा था। कई दिन भूखे रहने के बाद वह ब्राह्मण एक दिन शुक्ल पक्ष में दोपहर के समय, भूख से व्याकुल होकर, कड़ी धूप में भोजन के लिए अन्न की खोज में अनेक स्थानों में घूमा; किन्तु उञ्छवृत्ति द्वारा उसे कहीं कुछ न मिला। ऐसी दशा में भी वह
३१ और उसका कुटुम्ब जीवित बना रहा।

किसी प्रकार दिन का छठा भाग बीत जाने पर उस ब्राह्मण को एक सेर जौ मिले। जौ देखकर परिवार के लोग बड़े प्रसन्न हुए। उन लोगों ने जौ का सत्तू बना लिया।

अब वह ब्राह्मण कुटुम्बियों के साथ जप, होम और नित्यक्रिया करके सत्तू के भाग लगाकर भोजन करने के लिए बैठा। इसी समय एक भूखा अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ गया। विशुद्ध-चित्त श्रद्धावान् जितेन्द्रिय ब्राह्मण और उसके परिवार के लोग उस अतिथि को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। अतिथि को प्रणाम करके, कुशल पूछकर और उसे अपने गोत्र तथा ब्रह्मचर्य का परिचय देकर वह ब्राह्मण अतिथि को कुटी में ले गया। उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण ने अतिथि को पाद्य, अर्घ्य और आसन देकर विनीत भाव से कहा—भगवन्! मैंने अपने नियम के अनुसार, बड़ी पवित्रता से, यह सत्तू बनवाया है। कृपा करके भोजन कर लीजिए।

अब ब्राह्मण ने अतिथि को अपना भाग दे दिया। उस सत्तू को खाने से अतिथि का पेट न भरा। उसको तृप्त न देखकर उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण व्यथित होकर सोचने लगा
४१ कि अब अतिथि को किस प्रकार तृप्त करूँ। तब ब्राह्मण की पत्नी ने कहा—भगवन्, आप अतिथि को मेरा भाग दे दीजिए। ये इसे खाकर, सन्तुष्ट होकर, चले जायँगे।

पतिव्रता ब्राह्मणी की यह बात सुनकर ब्राह्मण ने, हड्डी और चमड़े के पञ्जर-स्वरूप वृद्धा सहधर्मिणी को भूख से व्याकुल समझकर, कहा—प्रिये, अपनी भार्या का भरण-पोषण करना कीट-पतङ्ग आदि जीवों का भी कर्तव्य है। अतएव मैं किस प्रकार तुम्हारे भोजन का हिस्सा ले लूँ? पत्नी की दया से ही पुरुष के शरीर की रक्षा होती है। धर्म, अर्थ, काम, शुश्रूषा, सन्तान और पितृकार्य सब कुछ भार्या के अधीन है। जो पुरुष अपनी भार्या की रक्षा नहीं कर सकता उसकी इस लोक में निन्दा होती और परलोक में उसे घोर नरक भोगना पड़ता है।



यह सुनकर ब्राह्मणी ने कहा—नाथ, हम दोनों का धर्म और अर्थ एक ही है। अतएव आप प्रसन्न होकर यह सत्तू अतिथि को दे दीजिए। स्त्री-जाति का धर्म, स्वर्ग, ५०
सत्य, प्रेम और सब अभीष्ट विषय पति के अधीन है। पति ही स्त्रियों का परम देवता है। रक्षा करने के कारण आप मेरे पति, भरण करने के कारण भर्त्ता और पुत्र देने के कारण वरद हैं। अतएव मेरे हिस्से का सत्तू अतिथि को देकर मुझे कृतार्थ कीजिए। जब आप स्वयं वृद्ध, दुर्बल और भूख से व्याकुल होते हुए भी अपना भाग अतिथि को दे चुके हैं तब मेरा भाग देने में क्या हानि है?

ब्राह्मणी के इस प्रकार अपना भाग अतिथि को देने का आग्रह करने पर ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर वह सत्तू अतिथि को देकर कहा—भगवन्, आप यह सत्तू भी खा लीजिए। ब्राह्मण के यों कहने पर अतिथि ने वह सत्तू भी खा लिया, किन्तु तब भी उसका पेट न भरा। यह देखकर ब्राह्मण फिर चिन्ता करने लगा।

तब ब्राह्मण के पुत्र ने कहा—पिताजी, आप मेरा हिस्सा भी अतिथि को दे दीजिए। मैं समझता हूँ कि अतिथि को यह सत्तू दे देने में बड़ा भारी पुण्य है। सदा यथोचित यत्न से आपकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। सज्जन लोग वृद्ध माता-पिता की सेवा किया करते हैं। बहुत पुराने समय से तीनों लोकों में प्रसिद्ध है कि पुत्र को वृद्ध माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। इस सत्तू द्वारा अतिथि को सन्तुष्ट करके आप जीवित रहेंगे तो और तपस्या कर सकेंगे। प्राणों की रक्षा कर लेना मनुष्यों का सबसे श्रेष्ठ धर्म है।

यह सुनकर ब्राह्मण कहने लगा—बेटा, यदि तुम हज़ार वर्ष के हो जाओ तो भी मैं तुमको बालक ही समझता हूँ। पिता पुत्र को उत्पन्न करके उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ करता
६० है। बालकों की भूख प्रबल होती है। मैं बूढ़ा हूँ, इसलिए भूखे रहकर जीवित रहना मेरे लिए उतना कठिन नहीं है। तुम बालक हो, अतएव यह सत्तू अतिथि को न देकर तुम्हीं खा लो। मैं बहुत तपस्या कर चुका, मुझे अब मरने का भय नहीं है।

इस पर पुत्र ने फिर कहा—पिताजी, मैं आपका पुत्र—आपका आत्म-स्वरूप—हूँ, इसलिए मैं आपसे पृथक् नहीं। अतएव सत्तू का यह हिस्सा भी आपका ही है। अतिथि को यह सत्तू देकर आप आत्मरक्षा कीजिए।

ये बातें सुनकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा—बेटा! तुम रूप, चरित्र और जितेन्द्रियता में मेरे समान हो। तुम्हारी सच्चरित्रता का परिचय मुझे अनेक बार मिल चुका है। अब मैं तुम्हारे हिस्से का सत्तू अतिथि को दिये देता हूँ। बस, ब्राह्मण ने पुत्र का हिस्सा प्रसन्नता से अतिथि को दे दिया। अतिथि उसे भी चट कर गया; किन्तु तब भी उसका पेट न भरा। यह देखकर ब्राह्मण बहुत ही लज्जित हुआ और चिन्ता के मारे घबरा गया।

तब ब्राह्मण की पुत्रवधू ने प्रसन्नता से अपना हिस्सा लाकर ससुर से कहा—भगवन्, यह सत्तू अतिथि को दे दीजिए। अतिथि के सन्तुष्ट होने पर आपके पुत्र द्वारा मेरे गर्भ से सन्तान उत्पन्न होगी और आपकी कृपा से मुझे अक्षय लोक प्राप्त होंगे। मेरे गर्भ से आपका जो पौत्र उत्पन्न होगा उसके द्वारा आपको पवित्र लोक प्राप्त होंगे। शास्त्र में धर्म आदि त्रिवर्ग के और दक्षिणाग्नि आदि के समान तीन प्रकार के स्वर्ग बतलाये गये हैं। वे तीनों प्रकार के स्वर्ग पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र के प्रभाव से ही प्राप्त होते हैं। पुत्र द्वारा पितृ-ऋण से उद्धार होता
७१ है और पौत्र तथा प्रपौत्र से शुभ लोकों की प्राप्ति होती है।

पुत्रवधू के यों कहने पर ब्राह्मण ने कहा—बेटी, हवा और धूप के मारे तुम्हारा शरीर सूख गया है। भूख के मारे तुम व्याकुल हो रही हो। ऐसे समय किस तरह तुम्हारा हिस्सा लेकर मैं धर्म-मार्ग का उल्लङ्घन करूँ? तुम अपने हिस्से का सत्तू देने की बात मुझसे मत कहो। तपस्या और व्रत करती हुई तुम प्रतिदिन दिन के छठे भाग में भोजन करती हो। आज मैं तुमको निराहार दिन काटते देखकर कैसे जीता रह सकूँगा! विशेषकर तुम अभी नादान हो, भूख से व्याकुल होकर तुम बड़ा दुःख पाओगी। अतएव तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।

पुत्रवधू ने फिर कहा—भगवन्, आप मेरे गुरु के गुरु और देवता के देवता हैं इसलिए मैं अपना हिस्सा आपको देती हूँ। इसे अतिथि को दे दीजिए। बड़ों की सेवा करने से देह, प्राण और धर्म सबकी रक्षा होती है। आपके प्रसन्न होने पर मुझे श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति होगी। अब आप, मुझे अपनी दृढ़ भक्त और रक्षणीय समझकर, यह सत्तू अतिथि को दे दीजिए।

इन बातों से प्रसन्न होकर ब्राह्मण ने कहा—बेटी, तुम्हारे समान सुशीला और धर्म-
परायणा स्त्री संसार में दुर्लभ है। तुम्हारी भक्ति देखकर मैं तुम्हारा हिस्सा अतिथि को दिये
देता हूँ। अब ब्राह्मण ने वह सत्तू भी अतिथि को दे दिया। ८०

उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण का यह अलौकिक कार्य देखकर अतिथि बहुत प्रसन्न हुआ और
ब्राह्मण से कहने लगा—धर्मात्मन्! न्याय से उपार्जित तुम्हारे पवित्र दान से मैं बहुत प्रसन्न
हुआ हूँ। तुम्हारे दान की प्रशंसा देवता भी कर रहे हैं। यह देखो, आकाश से फूलों की
वर्षा हो रही है। देवता, ऋषि और गन्धर्व तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारा दान देखकर
देवदूत चकित हो गये हैं और ब्रह्मलोकनिवासी ब्रह्मर्षिगण, विमानों पर बैठकर, तुम्हारे दर्शन
करना चाहते हैं। तुमने ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, तपस्या और विशुद्ध धर्म का पालन करके पितरों
का उद्धार किया है। तुम्हारे तप और दान से देवता बहुत प्रसन्न हैं अतएव अब तुम
सुख से स्वर्ग को जाओ। तुमने संकट के समय शुद्ध चित्त से मुझे सब सत्तू देकर अत्यन्त
दुर्लभ स्वर्गलोक हस्तगत कर लिया है। भूख से व्याकुल होने पर मनुष्य का ज्ञान, धैर्य और
धर्म भ्रष्ट हो जाता है। अतएव जो मनुष्य भूख को जीत लेता है वही स्वर्गलोक का विजय
करता है। जिस मनुष्य की श्रद्धा दान में होती है उसका मन धर्म से कभी नहीं डिगता। ९१
तुमने पुत्र और स्त्री का स्नेह छोड़कर, केवल धर्म को श्रेष्ठ समझकर, प्रसन्नता से सब सत्तू मुझे
दे दिया है। इस दान से तुमको बड़ा पुण्य हुआ है। धर्म के अनुसार द्रव्य का उपार्जन
करके श्रद्धा के साथ उपयुक्त समय में सत्पात्र को दान करने से मनुष्यों को महापुण्य होता है।
श्रद्धा से बढ़कर और कुछ नहीं है। स्वर्ग का द्वार बहुत दुर्गम स्थान है। लोभ इस द्वार का
अर्गल है। लोभी मनुष्य इस द्वार के दर्शन भी नहीं कर सकता। तपस्वी जितेन्द्रिय ब्राह्मण
यथाशक्ति दान करके इस द्वार के दर्शन और इसके भीतर प्रवेश करते हैं। जिसके पास
सुवर्ण की हज़ार मुद्राएँ होती हैं वह सौ मुद्रा दान करने से जो फल पाता है वही फल उस
मनुष्य को मिलता है जो सौ मुद्राएँ होने पर दस मुद्राएँ दान कर देता है। जिसके पास कुछ भी
धन नहीं है वह उपयुक्त पात्र को एक अञ्जलि जल देने से उन्हीं के समान फल पाता है। महा-
राज रन्तिदेव ने निर्धन होकर शुद्ध चित्त से जल-दान किया था। उस पुण्य के प्रभाव से वे स्वर्ग-
लोक को गये हैं। अतएव न्याय से प्राप्त वस्तु, श्रद्धा के साथ, थोड़ी सी देने से भी जो धर्म होता है
वह धर्म अन्याय से प्राप्त बहुमूल्य बहुत सा धन देने से नहीं हो सकता। महाराज नृग ने
ब्राह्मणों को हज़ारों गोदान करके महापुण्य सञ्चित किया था, किन्तु दूसरे की एक गाय का
दान कर देने से उनको नरक में गिरना पड़ा। महाराज शिवि ने अपना मांस दान करके
स्वर्गलोक प्राप्त किया था। केवल धन के प्रभाव से मनुष्य पुण्यवान् नहीं हो सकता। न्याय १००
से उपार्जित वस्तु द्वारा जैसा फल सज्जन पाते हैं वैसा फल राजाओं को अनेक यज्ञ करने से भी

नहीं मिल सकता। क्रोध करने से मनुष्य को दान का फल नहीं मिलता और लोभ करने से स्वर्गलोक की प्राप्ति नहीं होती। न्यायपरायण मनुष्य उपयुक्त समय पर सत्पात्र को दान करके स्वर्गलोक को जाते हैं। तुमने यह सत्तू देकर जैसा फल पाया है वैसा फल बहुत सी दक्षिणा देकर अनेक राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करने पर भी नहीं मिलता। सेर भर सत्तू देकर तुमने अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त किया है। अब तुम्हारे लिए दिव्य विमान आ रहा है। उस पर तुम अपने परिवार समेत सवार होकर ब्रह्मलोक को जाओ। मैं धर्म हूँ; ब्राह्मण का वेष धारण करके तुम्हारी परीक्षा लेने आया हूँ। तुमने अपने पुण्य से अपना और अपने परिवार का उद्धार कर लिया। इस लोक में तुम्हारी कीर्ति अमर होगी। अब तुम अपनी भार्या, पुत्र और पुत्रवधू के साथ स्वर्गलोक को जाओ।

अतिथिरूपी धर्म के यों कहने पर वह उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू समेत दिव्य विमान पर सवार होकर स्वर्ग को चला गया।

न्योले ने कहा—मैं उसी ब्राह्मण के घर में रहता था। उसका स्वर्गवास हो जाने पर मैं बिल से निकलकर उसी स्थान पर जूँठन में लोटने लगा, जहाँ अतिथि ने भोजन किया था। तब उस उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण की तपस्या से, उसके दिये हुए सत्तू की गन्ध के प्रभाव से
११ और आकाश से बरसे हुए दिव्य फूलों की गन्ध से मेरा आधा शरीर सुवर्णमय हो गया। यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी समय से, अपना आधा अङ्ग सुवर्णमय करने की आशा से, मैं अनेक तपोवनों और यज्ञस्थलों में घूमा; किन्तु कहीं मेरा अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ। कुरुराज युधिष्ठिर के इस महायज्ञ का वृत्तान्त सुनकर मुझे अपना मनोरथ सफल होने की आशा हुई थी; किन्तु यहाँ भी मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई। इसी से हँसकर मैंने आप लोगों से कहा है कि यह महायज्ञ उस उञ्छवृत्तिधारी महात्मा ब्राह्मण के सेर भर सत्तू दान करने की बराबरी नहीं कर सका। याजक ब्राह्मणों से यों कहकर न्योला चला गया। ब्राह्मण लोग भी अपने-अपने स्थान को चले गये।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, धर्मराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में जो आश्चर्यजनक घटना हुई थी वह मैंने विस्तार के साथ तुमको बतला दी। अतएव तुम यज्ञ को ही सर्वश्रेष्ठ मत समझो। असंख्य महर्षि बिना ही यज्ञ किये, केवल तपस्या के प्रभाव से, स्वर्गलोक को गये हैं। प्राणिमात्र पर दया, सन्तोष, सरलता, सुशीलता, तपस्या, सत्य, जितेन्द्रियता और दान
१२० इनमें से कोई भी यज्ञ से कम नहीं है।

इक्यानवे अध्याय

वैशम्पायन का जनमेजय को यज्ञ की विधि और उसका फल बतलाना

जनमेजय ने कहा—भगवन् ! राजा यज्ञ करके, महर्षि तपस्या करके और अन्यान्य ब्राह्मण शान्ति का अवलम्बन करके श्रेष्ठ गति पाते हैं। अतएव मेरी समझ में तो यज्ञ करना दान आदि सब कर्मों से श्रेष्ठ है। प्राचीन समय में अनेक राजा विविध यज्ञ करके, इस लोक में कीर्ति फैलाकर, स्वर्गलोक को गये हैं। इन्द्र बहुत सी दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ करने से ही देवताओं के अधीश्वर हुए हैं। फिर इन्द्र के समान प्रभावशाली महाराज युधिष्ठिर के महा-यज्ञ करने पर न्योले ने उस यज्ञ की निन्दा क्यों की ?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, मैं यज्ञ की विधि और यज्ञ के फल का वर्णन करता हूँ। ाचीन समय में इन्द्र ने बड़ी धूमधाम से यज्ञ किया था। यज्ञ आरम्भ होने पर ऋत्विक् लोग पना-अपना काम करने लगे। देवताओं का आवाहन किया गया और याजकों ने अग्नि में ाहुति देना आरम्भ किया। अध्वर्युगण स्वर के साथ वेद-पाठ करने लगे। १०

इसके बाद बलिदान का समय आने पर महर्षियों ने पशुओं का दीन भाव देखकर, उन र दया करके, इन्द्र से कहा—देवराज, यज्ञ की यह विधि ठीक नहीं है। कहाँ तो धर्म-प्राप्ति ी इच्छा और कहाँ यह अज्ञान ! यज्ञ में पशु-वध शास्त्रसम्मत नहीं है। ऐसा यज्ञ करने से ापको धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि आप धर्म की इच्छा करते हैं तो शास्त्र के अनुसार, ीन वर्ष के पुराने, बीज द्वारा यज्ञ कीजिए। इस प्रकार का यज्ञ करने से श्रेष्ठ फल प्राप्त होगा।

तत्त्वदर्शी महर्षियों के कहने पर इन्द्र ने मोहवश उनकी बात न मानी। तब महर्षियों ें परस्पर विवाद होने लगा। कोई तो यज्ञ में हिंसा करने का समर्थन करने लगा और कोई वरोध। इसका निर्णय कराने के लिए महर्षियों ने इन्द्र के साथ चेदिराज वसु के पास जाकर उनसे पूछा—महाराज, शास्त्र में यज्ञ की कौन सी विधि बतलाई गई है ? हम लोगों में से कोई ा पशु द्वारा और कोई बीज तथा घी द्वारा यज्ञ करना बतलाता है। इस विषय में हम लोगों का परस्पर मतभेद है। इसी से हम आपके पास निर्णय कराने आये हैं। २१

यह सुनकर चेदिराज वसु ने बिना सोचे-विचारे उसी दम उत्तर दे दिया—महर्षियो, जिस समय जो वस्तु मिले उस समय उसी से यज्ञ करना चाहिए।

चेदिराज वसु को इस प्रकार झूठ बोलने के कारण रसातल में जाना पड़ा। अतएव ब्रह्माजी के सिवा दूसरा कोई, बहुदर्शी होने पर भी, सन्दिग्ध विषयों में व्यवस्था नहीं दे सकता। जो मनुष्य पापकर्म करता हुआ अशुद्ध चित्त से अश्रद्धापूर्वक दान करता है उसके दान का फल नष्ट हो जाता है। हिंसापरायण अधर्मी दुरात्मा को दान करने का फल न तो इस लोक में मिलता है और न परलोक में। जो मनुष्य अधर्म से द्रव्य उपार्जन करके धर्म प्राप्त करने की आशा से यज्ञ

करता है उसे यज्ञ का फल नहीं मिलता। पाखण्डी लोग, विश्वास कराने के लिए, ब्राह्मणों
को दान करते हैं। जो यथेच्छाचारी ब्राह्मण मोह के वश होकर पाप करने के लिए धन का उपार्जन
करते हैं उन्हें नरक में जाना पड़ता है। लोभ और मोह के वश होकर दुष्ट मनुष्य, धन संग्रह
३० करने के लिए, पाप कमा कर प्राणियों को सताते हैं। जो मनुष्य मोह के वश होकर अधर्म से
धन संग्रह करके दान या यज्ञ करता है उसे उसका कुछ भी फल नहीं मिलता। किन्तु महर्षि
लोग उञ्छवृत्ति से प्राप्त फल, मूल, शाक और जल दान करके स्वर्गलोक को जाते हैं। इसी प्रकार
के दान को विद्वान् पुरुष सनातन धर्म कहते हैं। महायोग, दान, दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, धैर्य और
क्षमा, ये सब सनातन धर्म के मूल हैं। पूर्व समय में विश्वामित्र, असित, कक्षसेन और आर्ष्टिषेण
आदि महर्षि तथा जनक और सिन्धुद्वीप आदि राजा न्याय से उपार्जित वस्तुओं का दान और
सद्व्यवहार करके परमगति को प्राप्त हुए हैं। सारांश यह कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र
३७ चारों वर्ण शुद्धचित्त होकर न्याय से प्राप्त वस्तुओं का दान करके स्वर्गलोक प्राप्त कर सकते हैं।

बानवे अध्याय

वैशम्पायन का जनमेजय को, पशुओं का वध न करके, ओषधियों द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान बतलाना

जनमेजय ने कहा—भगवन्! उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण को, सत्तू का दान करने से, स्वर्ग
लोक प्राप्त होने का वृत्तान्त आपके मुँह से सुनकर मुझे जान पड़ता है कि धर्म से उपार्जित धन
का ही दान करने से स्वर्ग लोक प्राप्त होता है। किन्तु थोड़े धन से यज्ञ नहीं हो सकता।
अतएव केवल धर्म से प्राप्त धन द्वारा यज्ञ किस प्रकार किया जा सकता है?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! बहुत सा धन संग्रह किये बिना यज्ञ नहीं हो सकता,
यह आपका भ्रम है। अब मैं महर्षि अगस्त्य के महायज्ञ का प्राचीन इतिहास कहता हूँ।
इस इतिहास के सुनने से आपका भ्रम दूर हो जायगा। महर्षि अगस्त्य ने, सब प्राणियों का
कल्याण करने के लिए, द्वादशवार्षिक यज्ञ का आरम्भ किया था। उस यज्ञ में अग्नि के समान
तेजस्वी, फल-मूलाहारी, अश्मकुट्ट, मरीचिप, परिपृष्टिक, वैघसिक और आत्मज्ञानी आदि अनेक
प्रकार के महर्षि 'होता' थे। इनके सिवा और भी बहुत से संन्यासी और यति वहाँ एकत्र हुए
थे। वे सब दमगुण से युक्त, हिंसा और दम्भ से हीन, धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय थे। उन महा-
त्माओं ने बड़ी पवित्रता से यज्ञ आरम्भ किया। महर्षि अगस्त्य ने यज्ञ के लिए यथाशक्ति अन्न
का संग्रह किया था। महायज्ञ आरम्भ होते ही दुर्भिक्ष पड़ गया। एक बूँद भी पानी
११ न बरसा। तब सब महर्षि आपस में कहने लगे कि महर्षि अगस्त्य ईर्ष्याहीन होकर
यज्ञ में अन्नदान कर रहे हैं फिर भी इन्द्र पानी नहीं बरसाते। अब अन्न कैसे उत्पन्न होगा?
और यह यज्ञ तो बारह वर्ष में समाप्त होगा। अभी इसके समाप्त होने में बहुत दिन बाक़ी हैं।

जान पड़ता है कि इस यज्ञ के समाप्त होने के पहले पानी नहीं बरसेगा। अतएव अब महा-
तपस्वी महर्षि अगस्त्य पर कृपा करना हम लोगों का कर्त्तव्य है।
यह सुनकर महातपस्वी अगस्त्य ने विनीत भाव से कहा—"हे महर्षियो! बारह वर्ष तक
यदि इन्द्र पानी नहीं बरसावेंगे तो मैं सङ्कल्प के द्वारा देवताओं और ऋषियों को तृप्त करके मानस
यज्ञ का, सञ्चित द्रव्य व्यय करने के बदले इन सबका स्पर्श करके स्पर्शयज्ञ का अथवा परिश्रम-
साध्य अन्य प्रकार के कठोर यज्ञ का अनुष्ठान करूँगा। मैंने बारह वर्ष में समाप्त होनेवाले इस
बीजयज्ञ का आरम्भ किया है अतएव इस यज्ञ को बीजों से निर्विघ्न समाप्त करूँगा। इन्द्र पानी २०
बरसावें या न बरसावें, मेरे यज्ञ में वे किसी तरह विघ्न नहीं डाल सकते। मेरी प्रार्थना के अनुसार
यदि देवराज पानी न बरसावेंगे तो मैं स्वयं इन्द्र होकर प्रजा की रक्षा करूँगा। जिस प्राणी का जो
आहार है वही उसे मिलेगा। इस समय तीनों लोकों में जितना सोना और धन है वह अभी
यहाँ आ जायगा और स्वयं धर्म, स्वर्ग, अप्सरा, किन्नर, गन्धर्व और अन्य स्वर्गवासी यहाँ
आवेंगे।" उनके यों कहते ही अतुल धन और धर्म आदि सब देवता वहाँ आ गये।
महर्षि अगस्त्य का तपोबल देखकर ऋषियों को बड़ा हर्ष और आश्चर्य हुआ। उन्होंने
अगस्त्य से कहा—तपोधन, आपका प्रभाव देखकर हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई है। हम
लोग आपकी तपस्या नष्ट नहीं करना चाहते। हम लोग वही करना चाहते हैं जिससे
न्याय मार्ग द्वारा इस यज्ञ की समाप्ति हो। अपने-अपने कार्य में नियुक्त रहकर, न्याय-मार्ग से ३०
जीविका उपार्जन करके यज्ञ, होम आदि सब काम करने की हम लोगों की इच्छा है। हमारे
मत में नियमानुसार ब्रह्मचर्य का पालन करके वेदाध्ययन करना श्रेयस्कर है। हम लोग उचित
समय में घर से निकले हैं और नियम के अनुसार तपस्या करने की इच्छा करते हैं। हिंसा
न करना आपके मत से प्रशंसनीय कार्य है अतएव हिंसा न करके इस यज्ञ के सब कार्य करने
से ही हम लोग आप पर प्रसन्न होंगे। आपका यज्ञ समाप्त होने के पहले हम लोग यहाँ से
कहीं न जायँगे। यज्ञ समाप्त हो जाने पर, आपकी अनुमति से, हम लोग यहाँ से जायँगे।
ऋषियों के यों कहने पर और महर्षि अगस्त्य के तपोबल का चमत्कार देखकर इन्द्र पानी
बरसाने लगे। उन्होंने बृहस्पति को आगे करके महर्षि अगस्त्य के पास आकर उनको प्रसन्न किया।
उस दिन से लेकर यज्ञ समाप्त होने तक, आवश्यकता के समय, पानी बरसता रहा। यज्ञ समाप्त होने
पर महर्षि अगस्त्य ने प्रसन्न होकर मुनियों का यथोचित सत्कार करके सबको बिदा किया।
जनमेजय ने पूछा—भगवन्! धर्मराज का यज्ञ समाप्त होने पर जिस न्योले ने यज्ञभूमि
में आकर, मनुष्य की बोली में, ब्राह्मणों के सामने यज्ञ की निन्दा की थी वह कौन है?
वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! आपने पहले उस न्योले का वृत्तान्त नहीं पूछा,
इसी से मैंने उसका वर्णन नहीं किया। वह न्योला कौन था और मनुष्य की बोली क्यों बोल

४० सकता था, यह वृत्तान्त अब विस्तार के साथ सुनिए। एक बार महात्मा जमदग्नि ने श्राद्ध करने के विचार से होमधेनु का दूध दुहकर एक पवित्र नये बर्तन में रख दिया था। धर्म उनकी परीक्षा लेने के लिए, क्रोधरूपी होकर, उस दूध के बर्तन में प्रवेश करके सोचने लगे कि देखें इन महर्षि का अनिष्ट करने से ये मेरे साथ कैसा बर्ताव करते हैं। यह सोचते-सोचते उन्होंने सब दूध पीकर बर्तन ख़ाली कर दिया। किन्तु महर्षि जमदग्नि ने उन्हें क्रोध समझकर क्रोध नहीं किया। तब क्रोधरूपी धर्म, ब्राह्मण का रूप धारण करके, महर्षि से बोले—महर्षि, आज आपने मुझे जीत लिया। अब मैं भली भाँति समझ गया हूँ कि जो लोग भृगुवंशी पुरुषों को अत्यन्त क्रोधी कहते हैं, उनकी बात बिलकुल झूठ है। आपके समान तपस्वी और क्षमावान् कोई नहीं है। मैं इस समय आपके अधीन हूँ। कृपा करके मुझपर प्रसन्न हूजिए। आपकी तपस्या का ध्यान करके मैं बहुत डर गया हूँ।



महात्मा जमदग्नि ने कहा—हे क्रोध, तुम हमारी परीक्षा कर चुके; अब अपने स्थान को जाओ। तुमने हमारा कोई अपकार नहीं किया है और हम भी तुमसे रत्ती भर क्रुद्ध नहीं हैं। हमने पितरों का श्राद्ध करने के लिए यह दूध रक्खा था अतएव तुम शीघ्र पितरों के पास जाकर उनको प्रसन्न करो।

यह सुनकर क्रोधरूपी धर्म डरकर अन्तर्धान हो गये। पितरों के शाप से उन्हें न्योला होना पड़ा। तब उस शाप से छुटकारा पाने के लिए वे पितरों से प्रार्थना करने लगे। पितरों ने कहा कि तुम धर्म की निन्दा करो, इसी से शाप से मुक्त हो सकोगे। पितरों के कहने से वह न्योला धर्मस्थलों और यज्ञ के स्थानों में जा-जाकर यज्ञ आदि कर्मों की निन्दा करने लगा। अन्त को उसने युधिष्ठिर के यज्ञस्थल में आकर 'यह यज्ञ उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण के एक सेर सत्तू दान के बराबर भी नहीं हुआ' यह कहकर युधिष्ठिर के यज्ञ की निन्दा की। धर्मराज साक्षात्
५३ धर्मस्वरूप थे, इसलिए उनकी निन्दा करते ही वह न्योला शाप से मुक्त हो गया।



महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

आश्रमवासिकपर्व

पहला अध्याय

युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन आदि सब भाइयों और द्रौपदी आदि सब स्त्रियों का धृतराष्ट्र और गान्धारी की सेवा करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, मेरे प्रपितामह पाण्डवों ने राज्य प्राप्त करके कितने दिनों तक उसका उपभोग किया था ? उन्होंने राजा धृतराष्ट्र के साथ कैसा व्यवहार किया था और यशस्विनी गान्धारी ने तथा पुत्रहीन, अमात्यहीन और आश्रय-विहीन राजा धृतराष्ट्र ने किस तरह जीवन बिताया था ?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, शत्रुओं का संहार करके [पाण्डवों ने छत्तीस वर्ष तक राज्य किया था । उनमें से] पन्द्रह वर्ष तक धृतराष्ट्र की अनुमति से उन्होंने सब काम किये । उस समय विदुर, सञ्जय और युयुत्सु धृतराष्ट्र के पास रहते थे । भीमसेन आदि सब भाई, युधिष्ठिर के अधीन रहकर, सदा धृतराष्ट्र की सेवा और पद-वन्दना करते थे । गान्धारी का सम्मान कुन्ती ऐसा करती थीं जैसा सास का किया जाता है । द्रौपदी, सुभद्रा आदि पाण्डवों की स्त्रियाँ सगे सास-ससुर की तरह धृतराष्ट्र तथा गान्धारी का आदर करती थीं । राजा युधिष्ठिर बहुमूल्य शय्या, वस्त्र, आभूषण, विविध मालाएँ और राजा के योग्य अनेक प्रकार के

१० दिव्य भोजन धृतराष्ट्र को देते थे। महाधनुर्धर कृपाचार्य और वेदव्यासजी प्रतिदिन धृतराष्ट्र के
पास जाते थे। वेदव्यासजी उनको देवताओं, ऋषियों, पितरों और राक्षसों की अनेक प्रकार
की कथाएँ सुनाते थे। बुद्धिमान् विदुर, धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार, धर्म और व्यवहार-
सम्बन्धी सब काम देखते थे। विदुर की नीति के प्रभाव से थोड़े ख़र्च में सीमा के राजाओं से
बड़े-बड़े काम निकलते थे। राजा धृतराष्ट्र बँधुए को कारागार से छुड़ा देते और वध के योग्य
मनुष्यों को प्राणदान दे सकते थे। उनकी बात को धर्मराज कभी न टालते थे। महाराज
युधिष्ठिर, विहार-यात्राओं के समय, धृतराष्ट्र को अनेक प्रकार की वस्तुएँ देते थे। उस समय
२० भी, पहले की तरह, अनेक रसोइये धृतराष्ट्र के लिए विविध भोजन बनाते थे। मैरेय (एक
प्रकार की मदिरा), मछली, मांस और मधु आदि खाने-पीने की बढ़िया चीज़ें धृतराष्ट्र के लिए
तैयार की जाती थीं। वहाँ जितने राजा एकत्र होते थे वे सब, पहले की तरह, धृतराष्ट्र का
सम्मान करते थे। कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, उलूपी, चित्राङ्गदा, धृष्टकेतु की बहन, जरासन्ध की
कन्या आदि सब कौरव-स्त्रियाँ गान्धारी की सेवा करती थीं। 'राजा धृतराष्ट्र पुत्रहीन हो गये
हैं अतएव इनको कोई कष्ट न मिलने पावे' यह कहकर धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों को
हमेशा सावधान कर देते थे। उनकी आज्ञा से भीमसेन आदि सब भाई हमेशा धृतराष्ट्र का
विशेष रूप से ख़याल रखते थे। किन्तु धृतराष्ट्र की दुर्नीति के कारण जो द्यूतक्रीड़ा आदि अनर्थ
हुए थे वे भीमसेन के हृदय से दूर नहीं हुए थे, इसी से धृतराष्ट्र के सुख के लिए भीमसेन
२७ विशेष प्रयत्न नहीं करते थे।

दूसरा अध्याय

पाण्डवों की सेवा से प्रसन्न हुए धृतराष्ट्र का, ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर, अपने पुत्रों का श्राद्ध करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार पाण्डवों और ऋषियों से सम्मानित होकर धृतराष्ट्र सुख से रहने और पुत्रों का श्राद्ध करके ब्राह्मणों को श्रेष्ठ वस्तुएँ दान करने लगे। शान्त-स्वभाव युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और मन्त्रियों से कह रक्खा था कि चाचा धृतराष्ट्र हम सबके पूज्य हैं, अतएव जो उनकी आज्ञा का पालन करेगा वह मेरा सुहृद् है और जो उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन करेगा वह मेरा शत्रु है, उसे दण्ड दिया जायगा। चाचाजी अपने पुत्रों के श्राद्ध में इच्छा-नुसार धन दान करें। वे अपने इष्ट-मित्रों को जो कुछ देना-लेना चाहें उसका उन्हें सुभीता रहे।

युधिष्ठिर के यों कहने पर धृतराष्ट्र ने उपयुक्त ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान किया। पाण्डव सोचते थे कि बूढ़े धृतराष्ट्र हमारे ही कारण पुत्रशोक से पीड़ित हैं अतएव हमें वही उपाय करना चाहिए जिससे इस शोक में इनकी मृत्यु न हो जाय। अपने पुत्रों की जीवित अवस्था

में थे जैसा सुख भोगते थे वैसा ही इस समय भी भोगें। यह सोचकर पाण्डव सदा धृतराष्ट्र की आज्ञा
का पालन करते रहते थे। धृतराष्ट्र भी पाण्डवों को अत्यन्त विनीत, आज्ञाकारी और भक्त देखकर १
उनपर स्नेह रखने लगे। पतिव्रता गान्धारी ने भी पुत्रों का श्राद्ध करके बहुत सा धन दान किया।

धर्मराज युधिष्ठिर और उनके भाई सदा धृतराष्ट्र का सम्मान करते थे और वे भी पाण्डवों
का दोष न पाकर उन पर बहुत प्रसन्न रहते थे। पतिव्रता गान्धारी भी, पुत्रों का शोक भूल-
कर, पाण्डवों पर पुत्रों के समान ही स्नेह करने लगीं। धृतराष्ट्र और गान्धारी जिस काम के
करने की आज्ञा देते थे वह, कठिन हो या सरल, धर्मराज प्रसन्नता से करते थे। उनके इन
आचरणों से धृतराष्ट्र प्रसन्न होते थे किन्तु मन्दबुद्धि दुर्योधन के कार्यों का स्मरण करके मन में
पछताते थे। वे प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर पाण्डवों की दीर्घायु के लिए ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन २
कराते और होम करते थे तथा संग्राम में पाण्डवों की विजय के लिए प्रतिदिन जप आदि करते
थे। सारांश यह कि उस समय धृतराष्ट्र पाण्डवों पर जितने सन्तुष्ट थे उतने अपने पुत्रों के
राज्य में नहीं थे। उस समय चारों वर्ण की प्रजा धृतराष्ट्र से प्रसन्न रहती थी। दुर्योधन आदि
की करतूतों का युधिष्ठिर एक बार भी स्मरण न करके धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार सब काम
करते थे। उस समय यदि कोई धृतराष्ट्र का कुछ अप्रिय करता था तो उसे युधिष्ठिर अपना
शत्रु समझते थे। धर्मराज के डर से कोई भी धृतराष्ट्र या दुर्योधन के दोषों का वर्णन नहीं कर
सकता था। धर्मराज की सज्जनता देखकर धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर उन पर बहुत प्रसन्न
रहते थे; किन्तु भीमसेन पर उनका वैसा प्रेम नहीं था। धृतराष्ट्र को देखते ही भीमसेन
उदास हो जाते थे। युधिष्ठिर धृतराष्ट्र का सम्मान करते थे इसी से भीमसेन, दिखावे के लिए,
उनकी सेवा करते थे; किन्तु हृदय से उन्हें धृतराष्ट्र पर श्रद्धा नहीं थी। ३

तीसरा अध्याय

भीमसेन के कठोर वचन सुनकर दुःखित धृतराष्ट्र का गान्धारी समेत वन जाने की तैयारी करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, उस समय राजा युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र के स्नेह में किसी प्रकार का अन्तर नहीं देख पड़ता था। धृतराष्ट्र जब अपने पुत्र का स्मरण करते थे तब मन में भीमसेन की याद करके बड़े दुखी होते थे। महावीर भीमसेन भी धृतराष्ट्र का नाम सुनते ही क्रोध से अधीर हो जाते थे। वे गुप्त रूप से धृतराष्ट्र का अप्रिय करते थे और किसी न किसी बहाने उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन कर देते थे। धृतराष्ट्र के दुर्व्यवहार और उनकी दुर्नीति के कारण भीमसेन को जो क्लेश उठाने पड़े थे उनको वे किसी तरह भूल नहीं सके थे।

एक दिन भीमसेन ने दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण का स्मरण करके, क्रोध से विह्वल होकर, अपने भाइयों से कहा—"भाइयो! मैंने चन्दन से लिप्त अपनी इन विशाल भुजाओं

१० के बल से, अनेक शस्त्रों के जानकार, दुर्योधन आदि का संहार किया है।" समय के उलट-फेर
को समझनेवाली बुद्धिमती गान्धारी ने भीमसेन के इन कठोर वचनों को सुनकर खेद नहीं
किया; किन्तु आज इन वचनों से धृतराष्ट्र को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने मित्रों को
बुलाकर, आँखों में आँसू भरकर, कहा—मित्रो, कुरुवंश का जिस प्रकार नाश हुआ है वह
आप लोगों को मालूम ही है। उस घोर अनर्थ का मूल मैं ही हूँ। मेरी सलाह से ही वह
घोर संग्राम हुआ था। वंश-नाशक दुर्बुद्धि दुर्योधन को मैंने राजा बना दिया था। मन्त्रियों
समेत उस दुरात्मा को मार डालने की सलाह श्रीकृष्ण ने मुझे दी थी; किन्तु मैंने उनकी
बात नहीं मानी। विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भगवान् वेदव्यास, सञ्जय और
२० गान्धारी ने मुझे बार-बार समझाया था; किन्तु उनकी बात पर भी मैंने ध्यान नहीं दिया। श्रीकृष्ण
के समझाने पर भी मैंने गुणी पाण्डवों को उनका पैतृक राज्य नहीं दिया। अब वे सब बातें,
हज़ारों भालों की तरह, मेरे हृदय को बेध रही हैं। पन्द्रह वर्ष के बाद मैं अब अपने उस पाप
का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। अब मैं भरपेट भोजन नहीं करता; कभी दिन के चौथे
पहर और कभी आठवें पहर थोड़ा सा माँड़ वग़ैरह पी लेता हूँ। इस बात को गान्धारी जानती
है। मेरे नौकर-चाकरों तक को इसका पता नहीं। युधिष्ठिर को मेरी बहुत चिन्ता रहती है; उनकी
आज्ञा से नौकर-चाकर मेरी सेवा-टहल में तनिक भी त्रुटि नहीं होने देते। मैं प्रतिदिन मृगछाला
पहनकर, कुशासन पर बैठकर, जप करता हूँ। पृथिवी पर सोता हूँ। यशस्विनी गान्धारी भी इसी
नियम का पालन करती है। मुझे अपने युद्ध-कुशल सौ पुत्रों के मारे जाने का रत्ती भर खेद
नहीं है; क्योंकि वे तो क्षत्रिय-धर्म के अनुसार संग्राम में शरीर त्यागकर स्वर्गलोक को गये हैं।

इसके बाद महामति धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—बेटा, तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे
द्वारा प्रतिपालित होकर सुखपूर्वक अनेक बार महामूल्य वस्तुओं का दान और श्राद्ध करके पुण्य
३१ कर चुका हूँ। पुत्रविहीन गान्धारी बड़े धैर्य के साथ मेरी सेवा करती है। जिन दुरात्माओं ने
तुम्हारा ऐश्वर्य हर लिया था और द्रौपदी का अपमान किया था वे सब, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार
युद्ध में मरकर, स्वर्गलोक को चले गये अतएव उनका उद्धार करने के लिए मुझे कोई उद्योग करने
की आवश्यकता नहीं है। अब जिस काम के करने से मेरा, तुम्हारा और गान्धारी का कल्याण
हो वही काम करना चाहिए। तुम धार्मिकों में श्रेष्ठ, राजा और सब प्राणियों के परम गुरु हो, इसी
से मैं कहता हूँ कि तुम मुझे और गान्धारी को वन जाने की अनुमति दो। मैं गान्धारी को
साथ लेकर, वल्कल पहनकर, वन में रहूँगा और तुमको आशीर्वाद दूँगा। वृद्धावस्था में पुत्र
को राज्य सौंपकर वन को चला जाना हमारे कुल का परम्परागत श्रेष्ठ कार्य है। मैं, गान्धारी समेत,
वन में केवल वायु का भक्षण करके घोर तपस्या करूँगा। उस तपस्या का फल तुम्हें भी मिलेगा;
४० क्योंकि राज्य में जो शुभ और अशुभ कार्य होते हैं उनका फल राजा को अवश्य मिलता है।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने उदास होकर कहा—चाचाजी, आप दुःख के साथ जीवन बितावेंगे तो राज्य मुझे सुखकर नहीं होगा। हाय, आप इतने दिनों से भोजन नहीं करते और पृथिवी पर सोते हैं, यह बात न तो मुझे मालूम है और न मेरे भाइयों में से किसी को। मुझे धिक्कार है! मेरे समान दुर्बुद्धि और राज्य-लोलुप नराधम कोई नहीं है। मुझे विश्वास था कि आप सुखपूर्वक भोजन और शयन करते हैं; किन्तु आप मुझसे छिपाकर बिना भोजन किये दिन काट रहे हैं। जब आप दुःख भोग रहे हैं तब राज्य, भोग्य वस्तुएँ, यज्ञ और सुख, सब मेरे लिए व्यर्थ है। इस समय आपके मुँह से ये दारुण वचन सुनकर मुझे यह राज्य और अपना शरीर भारी हो रहा है। आप हम लोगों के पिता, माता और परम गुरु हैं। भला आप हम लोगों को छोड़कर कहाँ जायँगे? अब आप अपने पुत्र युयुत्सु को युवराज बनाकर स्वयं राज्य कीजिए, मैं वन को चला जाऊँगा। कुल के विनाश की अकीर्त्ति से मैं यों ही दुःखित हो रहा हूँ, अब आप वन जाकर मुझे और सन्ताप न दीजिए। इस राज्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं है; राज्य के अधीश्वर तो आप हैं। मैं आपका सेवक हूँ। भला मैं आपको वन जाने की अनुमति कैसे दे सकता हूँ? दुर्योधन के अत्याचारों का स्मरण करके मुझे रत्ती भर भी क्रोध नहीं आता। भवितव्यता से उस समय हम लोगों की बुद्धि शिथिल हो गई थी, इसी से अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़े। जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र थे वैसे ही हम लोगों को ५०
भी समझिए। मैं माता कुन्ती और गान्धारी में कुछ भेद नहीं समझता। यदि आप मुझे छोड़कर जाना चाहेंगे तो भी मैं आपके साथ चलूँगा। आप वन को चले जायँगे तो अनेक रत्नों से परिपूर्ण यह राज्य मुझे प्रीतिकर न होगा। इसलिए मैं प्रणाम करके कहता हूँ कि आप मुझ पर प्रसन्न हो जायँ। राज्य की सब वस्तुओं पर आपका पूरा अधिकार है और मैं भी आपके अधीन हूँ। हम लोगों पर प्रसन्न होकर आप शोक छोड़ दीजिए। मैं आपकी सेवा करके अपने हृदय का सन्ताप दूर करूँगा।

युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, अब तो तपस्या करने की मेरी बड़ी इच्छा है। वृद्धावस्था में वन को चला जाना हमारे कुल का धर्म है। मैं राज्य में बहुत दिन रह चुका और तुम भी मेरी यथोचित सेवा कर चुके। अब मुझे मत रोको।

वैशम्पायन कहते हैं कि महामति धृतराष्ट्र ने धर्मराज से यों कहकर सञ्जय और कृपाचार्य से कहा—हे वीरो, तुम मेरी ओर से धर्मराज को समझाओ। अब मुझमें अधिक बोलने की शक्ति नहीं है। एक तो बुढ़ापे से और दूसरे बड़ी देर से बोलते रहने के कारण मैं थक गया हूँ। मेरा मुँह सूख गया है। अब धृतराष्ट्र, गान्धारी का सहारा लेकर, बेहोश हो गये। ६१

धृतराष्ट्र की यह दशा देखकर दुःख से व्याकुल युधिष्ठिर कहने लगे—हाय, जिनमें एक लाख हाथियों का बल था और जिन्होंने अपने बाहुबल से भीम की लोहमय मूर्त्ति को चूर्ण कर

डाला था वे आज, एक अबला का सहारा लेकर, मृतप्राय हो रहे हैं। मेरे समान अधर्मी और नराधम कोई नहीं है। मेरे शास्त्रज्ञान को धिक्कार है! मेरे ही कारण इनको यह दुःख भोगना पड़ा। यदि माता और ये गान्धारी आज भोजन न करेंगे तो मैं भी निराहार रहूँगा। अब धर्मराज धृतराष्ट्र के मुँह और छाती पर गीला हाथ फेरने लगे।

थोड़ी देर बाद युधिष्ठिर के, रत्न और ओषधि से युक्त, सुगन्धमय पवित्र हाथ के स्पर्श से धृतराष्ट्र को होश आ गया। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—बेटा, तुम अपने हाथ से फिर मेरे अङ्गों का स्पर्श और मेरा आलिङ्गन करो। तुम्हारे हाथ के स्पर्श से मैं जी उठा। तुम्हारा
७० मस्तक सूँघने और तुम्हारा आलिङ्गन करने की मेरी बड़ी इच्छा है। आज मैंने दिन के आठवें भाग में भोजन करने का निश्चय किया था, अब वह समय आ जाने और तुमसे देर तक बातें करने के कारण मेरा शरीर और मन शिथिल हो गया है। इसी से मुझे मूर्च्छा आ गई थी। तुम्हारे अमृत-तुल्य हाथ के स्पर्श से ही मुझे होश हुआ है।

युधिष्ठिर स्नेह-वश अपने हाथ से महाराज धृतराष्ट्र के अङ्गों का स्पर्श करने लगे। तब उन्होंने सुखी होकर युधिष्ठिर का मस्तक सूँघा और उनका आलिङ्गन किया। विदुर आदि सब लोग दुःखित होकर रोने लगे। वे लोग, शोक के आवेग में, युधिष्ठिर से कोई बात न कह सके। पतिव्रता गान्धारी बड़ी कठिनाई से अपने को सँभालकर सबको समझाने लगीं। कुन्ती समेत सब कौरव स्त्रियाँ रोती हुई धृतराष्ट्र के पास आकर चारों ओर बैठ गईं।

अब धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—बेटा! तपस्या करने की मेरी बड़ी इच्छा है, इसी से मैं बार-बार तुमसे वन जाने की अनुमति माँगता हूँ। अधिक बोलने से मुझे बड़ा क्लेश
८० होता है, अब मुझे कष्ट मत दो।

महामति धृतराष्ट्र के यों कहने पर उनको, उपवास करने के कारण, अत्यन्त दुर्बल—केवल हड्डी और चमड़े का पञ्जर—देखकर सब लोग हाय-हाय करने लगे। युधिष्ठिर ने फिर उनका आलिङ्गन करके, अपने आँसू पोंछकर, कहा—चाचाजी, मैं तो आपका प्रिय करने के लिए ही अधिक उत्सुक रहता हूँ; राज्य करने और जीवन की रक्षा में मुझे विशेष सन्तोष नहीं है। अतएव यदि आप मुझ पर दया करते हैं और मुझे अपना प्रिय समझते हैं तो अब कृपा करके भोजन कर लीजिए। फिर मैं आपके वन जाने की बात पर विचार करूँगा।

धर्मराज की बात सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, आज मैं तुम्हारे अनुरोध से अवश्य
८७ भोजन करूँगा। इसी समय वहाँ व्यासजी आ गये।

चौथा अध्याय

व्यासजी का हस्तिनापुर में आना और, युधिष्ठिर को समझाकर, धृतराष्ट्र को वन जाने की आज्ञा देना

व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्, तुम धृतराष्ट्र की बात मान लो। ये एक तो वृद्ध हैं, दूसरे पुत्रशोक से दुखी हैं; इससे जान पड़ता है कि यहाँ रहकर इनसे यह दुःख न सहा जायगा। यशस्विनी गान्धारी भी केवल ढाढ़स बाँधकर पुत्रशोक का दुःख सह रही हैं। अतएव मैं कहता हूँ कि तुम इनको वन जाने की अनुमति दे दो। ये राजधानी में क्यों व्यर्थ अपने प्राण छोड़ें? वन में जाकर इन्हें प्राचीन राजाओं के समान गति प्राप्त करने दो।



यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्, आप हम लोगों के परम गुरु और कुलगुरु हैं। आप मेरे पिता हैं और मैं आपका पुत्र-स्वरूप हूँ। धर्म के अनुसार पुत्र पिता के अधीन है। अतएव मैं आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा।

अब व्यासजी ने युधिष्ठिर से फिर कहा—बेटा! राजा धृतराष्ट्र बहुत बूढ़े हो गये हैं, इससे मैं इनको वन जाने की आज्ञा देता हूँ। तुम भी इसका अनुमोदन करो। वन में जाकर ये अपनी इच्छा के अनुसार काम करें। तुम इसमें किसी तरह की रोक-टोक न करो। युद्ध में या वन में प्राण ११
त्यागना राजाओं का परम धर्म है। तुम्हारे पिता पाण्डु, पिता के समान, इनकी सेवा करते थे। पाण्डु जिस समय राज-काज करते थे उस समय इन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर अनेक यज्ञ किये थे। धर्म के अनुसार इन्होंने प्रजा का और गायों का पालन किया था तथा अनेक प्रकार के शुभ कर्म किये थे। फिर तुम्हारे वन को चले जाने पर तेरह वर्ष तक, पुत्रों द्वारा सुरक्षित रहकर, इन्होंने राज्य भोगा और बहुत दान-पुण्य किया। तुम भी [पन्द्रह वर्ष से] इनकी और गान्धारी की यथोचित सेवा करते हो। अब इनका समय तपस्या करने का है, अतएव इस विषय में इनको अनुमति दे दो। तुम लोगों पर अब इनको रत्ती भर भी क्रोध नहीं है।

वैशम्पायन कहते हैं कि इस प्रकार बार-बार व्यासजी के समझाने पर धर्मराज ने, विवश होकर, उनकी बात मान ली। युधिष्ठिर को सहमत देखकर व्यासजी अपने स्थान को चले गये।

व्यासजी के चले जाने पर धर्मराज ने धृतराष्ट्र से कहा कि चाचाजी! आपकी जो इच्छा है—और जिसके लिए भगवान् वेदव्यास, महाधनुर्धर कृपाचार्य, विदुर, सञ्जय और युयुत्सु ने मुझसे अनुरोध किया है—उसकी पूर्ति का उपाय मैं अवश्य करूँगा। ये सब महात्मा
२२ मेरे पूज्य और कुरुकुल के हितैषी हैं। अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि पहले आप भोजन कर लीजिए, फिर वन जाने की तैयारी कीजिएगा।

पाँचवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! धर्मराज के यों कहने पर महामति धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ, बूढ़े गजराज की तरह, बड़ी कठिनाई से धीरे-धीरे अपने घर की ओर चले। विद्वान् विदुर, सञ्जय और कृपाचार्य भी उनके पीछे-पीछे चले। घर में जाकर धृतराष्ट्र ने नित्य कर्म किया और ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके भोजन किया। फिर कुन्ती और सब कौरव स्त्रियों से सम्मानित होकर पतिव्रता गान्धारी ने भी भोजन किया। उनके भोजन कर लेने पर पाण्डव और विदुर आदि भी भोजन करके धृतराष्ट्र के पास आ गये। महाराज धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर की पीठ पर हाथ फेरकर कहा—बेटा, तुम इस अष्टाङ्गयुक्त राज्य का शासन सावधानी से किया करना। मैं बतलाता हूँ कि धर्म के अनुसार किस प्रकार राज्य करना चाहिए। तुम हमेशा विद्वानों की
१० सङ्गति करते रहना, उनकी बातें सुनना और उनके उपदेशानुसार सब काम करना। प्रातःकाल उठकर ज्ञानी पुरुषों का सम्मान करना और आवश्यकता पड़ने पर उनसे कर्तव्य के सम्बन्ध में सलाह लेना। वे सम्मानित होकर अवश्य ही तुमको हितोपदेश देंगे। तुम, घोड़ों की तरह, इन्द्रियों को संयत रखना। ऐसा करने से वे, सुरक्षित धन के समान, भविष्य में अवश्य हितकर होंगी। जो मन्त्री निष्कपट और संयमी हों तथा जो पिता और पितामह के समय से काम देखते आये हों उनको सब कामों पर नियुक्त करना। अनुभवी जासूसों द्वारा गुप्त रूप से शत्रुओं का भेद लेते रहना। तुम जिस नगर में रहो उसके चारों ओर की दीवारें और तोरण दृढ़ हों। उसके बीच में छः प्रकोष्ठ, ऊँची अटारियाँ और मज़बूत क़िले हों। उस नगर की रक्षा करने में तनिक भी असावधानी न होने पावे। उसके भारी द्वार ठीक स्थान पर हों, चौकी-पहरे का ठीक-ठीक प्रबन्ध हो और तोपें चढ़ी रहें। जिन मनुष्यों का कुल और स्वभाव अच्छी तरह मालूम हो उन्हीं को प्रत्येक काम सौंपा जाय। आहार-विहार करने, माला पहनने, सोने और आसन पर बैठने के समय सावधानी से आत्मरक्षा करनी चाहिए। कुलीन, सुशील, विश्वासपात्र बूढ़े मनुष्य

सावधानी से तुम्हारे रनिवास की रक्षा करें। विद्वान्, सुशील, कुलीन, विनीत, सरल स्वभाव के
धार्मिक ब्राह्मणों को मन्त्री के पद पर नियुक्त करना। इनके सिवा अन्य किसी के साथ सलाह २१
न करना। सब मन्त्रियों को या व्यक्ति-विशेष को, किसी काम के बहाने एकान्त में ले जाकर,
परामर्श करना। गुप्त स्थान में ही मन्त्रणा की जाय। वन और खुली जगह भी मन्त्रणा के उपयुक्त
स्थान हैं; किन्तु रात के समय इन स्थानों में कभी मन्त्रणा न करे। बन्दर, पक्षी, महामूर्ख और
पँगुले मनुष्य मन्त्रणा-गृह में न आने पावें। मन्त्रणा के खुल जाने से राजाओं का जो अनिष्ट होता
है उसका प्रतिविधान नहीं हो सकता। मन्त्रणा गुप्त न रहने से जो दोष और मन्त्रणा गुप्त रहने
से जो शुभ फल होते हैं उनका वर्णन तुम मन्त्रियों के सामने हमेशा करते रहना। प्रजा के गुण-
दोषों की जानकारी रखना तुम्हारा कर्तव्य है। सन्तोषी और विश्वासपात्र मनुष्यों को न्यायाधीश
के पद पर नियुक्त करके तुम हमेशा जासूसों द्वारा पता लगाते रहना कि वे दोष के अनुसार दण्ड
देते हैं या नहीं। घूस लेनेवाले, पर-स्त्री हरनेवाले, कठोर दण्ड देनेवाले, मिथ्या व्यवहारी, दूसरों
का अनिष्ट करनेवाले, लोभी, दूसरों का धन हरनेवाले, कुकर्मी, सभा में विघ्न डालनेवाले और
वर्णदूषक मनुष्यों को देश-काल का विचार करके सुवर्णदण्ड और प्राणदण्ड देना चाहिए। प्रातः- ३१
काल उठकर पहले व्यय के कामों पर नियुक्त मनुष्यों के काम की जाँच करनी चाहिए। इसके
बाद आभूषण पहने, आश्रित मनुष्यों को यथायोग्य धन दे और सेना की देख-भाल करे।
सन्ध्या के समय दूतों और जासूसों के काम की जाँच करनी चाहिए। बड़े तड़के जागकर
कर्तव्य कार्यों का निर्णय करे और आधी रात तथा दोपहर के समय स्वयं घूम-फिरकर प्रजा के
कार्यों को देखे। तुम प्रत्येक समय कार्य-सिद्धि के उपाय सोचते रहना और न्याय के अनुसार
सदा कोष बढ़ाने का उपाय करते रहना। कोष की वृद्धि में उदासीन रहना या अन्याय से
कोष की वृद्धि करना उचित नहीं है। गुप्तचरों द्वारा मौक़ा देख रहे शत्रुओं का अभिप्राय
समझकर दूर से ही अपने पुरुषों द्वारा उनका विनाश करा देना। कर्मचारियों के कार्यों की
परीक्षा करके उन्हें उनके अभिलषित पद पर नियुक्त करना। आश्रित मनुष्य नियमित
रूप से किसी काम पर नियुक्त हों या न हों, उनसे काम अवश्य लेना चाहिए। उद्योगी,
पराक्रमी, कष्ट सहन करनेवाले, हितैषी और स्वामिभक्त मनुष्य को सेनापति बनाना चाहिए।
देशनिवासी शिल्पी आदि जब तुम्हारा काम करने लायक़ न रहें तब उनके भरण-पोषण (पेंशन)
का तुम विशेष रूप से यत्न करते रहना। अपने और शत्रुओं के दोष हमेशा देखते रहना।
अपने व्यवसाय में निपुण देश-वासियों का समय-समय पर, विहार-यात्रा आदि के उपलक्ष्य
में, उत्साह बढ़ाते रहना। हमेशा यत्न करते रहना जिससे गुणवान् मनुष्यों के गुण बढ़ते रहें
और वे अपने गुणों से विचलित न हों। ४३

छठा अध्याय

धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर से राजनीति का वर्णन करना

धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा ! तुम सदा अपने शत्रुओं के, उदासीन राजाओं के और अपने हितैषी पुरुषों पर दृष्टि रखना। शत्रु, शत्रु के मित्र, शत्रु को परास्त करने के अभिलाषी, शत्रु के मित्रों को परास्त करने के इच्छुक, छः प्रकार के आततायी, अपने मित्र और मित्रों के मित्र, इन बारह प्रकार के मनुष्यों के विषय में जानकारी रखना तुम्हारा कर्तव्य है। शत्रु मौक़ा पाकर मन्त्री, देश, दुर्ग और सेना को आसानी से नष्ट कर सकते हैं, अतएव ऐसा उपाय करते रहना चाहिए जिससे शत्रु को मौक़ा ही न मिले। पूर्वोक्त बारह प्रकार के मनुष्य भी मन्त्रियों के अधीन हैं। कृषि आदि साठ प्रकार के गुणों को नीतिज्ञ आचार्यों ने 'मण्डल' कहा है। राजा इस मण्डल को विशेष रूप से जानता रहता है तो राज्य-रक्षा के छः प्रकार के उपायों का उचित उपयोग कर सकता है। राजाओं को अपनी वृद्धि, क्षय और स्थिति पर हमेशा ध्यान रखना चाहिए। जिस समय अपना पक्ष बलवान् और शत्रु का पक्ष निर्बल हो उस समय शत्रु को परास्त करने का उद्योग करे। किन्तु जब शत्रुपक्ष सबल और अपना पक्ष दुर्बल हो तब शत्रुओं के साथ सन्धि कर ले। राजाओं को हमेशा द्रव्य का सञ्चय रखना चाहिए। जब राजा युद्ध करने में असमर्थ हो तब शत्रुओं को कम उपजाऊ भूमि, पीतल आदि धातुएँ और दुर्बल मित्र देकर उनके साथ सन्धि करे; किन्तु दूसरे लोग जब उसके साथ सन्धि करने का प्रस्ताव करें तब उनसे उपजाऊ पृथिवी, सोना-चाँदी आदि धातुएँ और बलवान् मित्रों
११ को लेने का यत्न करे। सन्धि करना आवश्यक हो तो राजा अपने प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र को, ज़मानत के तौर पर, अपने यहाँ रक्खे। राजा अनेक उपायों द्वारा विपत्ति से छुटकारा पाने का यत्न करे; दीन, दरिद्र और अनाथों पर दया करे। जो राजा अपने राज्य की रक्षा करना चाहता हो वह या तो शत्रुओं को नष्ट कर दे या उनके कोष का विनाश कर डाले। उन्नति चाहनेवाले राजा को अपने सामन्तों से बिगाड़ न करना चाहिए। विजय पाने की इच्छा रखनेवाले राजा के साथ युद्ध न करके, अपने मन्त्रियों की सलाह से, भेद-नीति का प्रयोग करे। सज्जनों पर अनुग्रह करना और दुष्टों को दण्ड देना राजाओं का कर्तव्य है। बलवान् राजा दुर्बलों पर अत्याचार न करे। यदि कोई पराक्रमी राजा दुर्बल राजा पर आक्रमण करे तो वह पहले मन्त्रियों के साथ उसकी शरण में जावे और नम्रता के साथ साम आदि उपायों द्वारा, अथवा कोष या अन्य प्रिय वस्तुएँ देकर अपनी रक्षा का उद्योग करे। यदि इन उपायों से काम
२० न चले तो युद्ध करके, प्राण त्यागकर, मुक्ति प्राप्त करने में ही उसका श्रेय है।

सातवाँ अध्याय

राजनीति का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—युधिष्ठिर, सन्धि और विग्रह के विषय में विशेष रूप से जानकारी रखना परम आवश्यक है। बलवान् शत्रु के साथ सन्धि और निर्बल शत्रु के साथ युद्ध करना चाहिए। सावधानी से अपना बलाबल देखकर युद्ध की तैयारी करे। यदि शत्रु पराक्रमी हो तथा उसके सैनिक बलवान् और सन्तुष्ट हों तो बुद्धिमान् राजा उस पर आक्रमण न करके उसे किसी दूसरे उपाय से परास्त करने का विचार करे। किन्तु दुर्बल शत्रु के साथ संग्राम अवश्य करे। वह उपाय हमेशा सोचते रहना राजा का कर्तव्य है जिससे शत्रु दुःखित, भेद-युक्त, पीड़ित और भयभीत हों। शास्त्र-विशारद राजा अपना और शत्रुओं का उत्साह, प्रभुत्व और मन्त्रणा, इन तीन शक्तियों पर विचार करके यदि अपने को शत्रुओं से श्रेष्ठ समझे तो उनसे युद्ध करने की तैयारी करे। युद्ध के लिए यात्रा करते समय राजा सेना-बल, धन-बल, मित्र-बल, अटवी-बल, भृत्य-बल और श्रेणी-बल का संग्रह करे। मित्र-बल की अपेक्षा धन-बल श्रेष्ठ है और श्रेणी-बल, भृत्य-बल तथा आचार-बल, ये तीनों समान हैं। राजाओं पर, समय-समय पर, अनेक प्रकार की विपत्तियाँ पड़ती हैं। उन विपत्तियों की उपेक्षा न करके, साम आदि उपायों द्वारा,
उनको हटाने का उद्योग करना चाहिए। देश, काल, अपने बल और गुणों का विशेष १
रूप से विचार करके बुद्धिमान् राजा युद्ध की यात्रा करे। जो राजा स्वयं पराक्रमी हो और जिसकी सेना भी हृष्ट-पुष्ट हो वह अकाल में भी युद्ध के लिए यात्रा कर सकता है। बलवान् राजा शत्रुओं का विनाश करने के लिए संग्रामभूमि में हाथी, घोड़ा, रथ, ध्वज, पैदल और बाणों से पूर्ण तूणीर समेत वीरों को एकत्र करके युक्ति के साथ—शुक्राचार्य की बतलाई हुई नीति के अनुसार—शकट, वज्र या पद्म व्यूह बनाकर युद्ध करे। युद्ध छिड़ जाने पर जासूसों द्वारा अपनी और शत्रुओं की सेना की जाँच करके संग्राम में प्रवृत्त होना राजा का कर्तव्य है। सेना को सन्तुष्ट करके बलवान् वीरों के साथ युद्धभूमि में भेजना चाहिए। पहले अपना बलाबल देख ले, उसके बाद सन्धि या युद्ध की तैयारी करे। चाहे जिस तरह हो, राजा अपनी रक्षा और दोनों लोकों में अपने कल्याण का ध्यान रक्खे। इन सब नियमों का अनुसरण करके धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करनेवाला राजा शरीर त्यागकर स्वर्गलोक को जाता है। तुम हमारे कहने के अनुसार काम करके धर्म के साथ प्रजा का पालन करो। ऐसा करने से निस्सन्देह इस लोक में परम सुख और परलोक में स्वर्ग प्राप्त करोगे। महात्मा भीष्म, विदुर और श्रीकृष्ण तुमको इसी प्रकार धर्म का उपदेश दे चुके हैं। इस समय मैंने भी, स्नेहवश, तुमसे उसी का वर्णन किया है। हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने से राजाओं को जो फल मिलता
है वही फल धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करने से मिल सकता है। २

आठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का नगर-निवासियों को बुलाकर उनसे वन जाने की आज्ञा माँगना

युधिष्ठिर ने कहा—चाचाजी, आपने जो उपदेश दिया है उसी के अनुसार मैं काम करूँगा। अब आप मुझे कुछ और उपदेश दीजिए। पितामह भीष्म स्वर्गलोक को चले गये, श्रीकृष्ण भी यहाँ उपस्थित नहीं हैं और महामति विदुर तथा सञ्जय आपके साथ वन को जा रहे हैं। इसलिए आपके चले जाने पर मुझे उपदेश देनेवाला कोई न रह जायगा। आज आप मुझे जो उपदेश देंगे, उसी के अनुसार मैं काम करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजा धृतराष्ट्र ने उनसे कहा—बेटा, मुझे बोलने में बड़ा परिश्रम पड़ता है। मुझमें अब अधिक बोलने की शक्ति नहीं है। तुम इस समय जाओ।

अब धृतराष्ट्र गान्धारी के घर जाकर आसन पर बैठ गये। धर्मपरायणा गान्धारी ने प्रजापति-तुल्य स्वामी से कहा—नाथ, महर्षि वेदव्यास ने आपको वन जाने की आज्ञा दी है। धर्मराज युधिष्ठिर भी इसके लिए सहमत हो गये हैं। तो अब आप किस दिन वन को चलेंगे?

धृतराष्ट्र ने कहा—गान्धारी, महर्षि वेदव्यास ने मुझे आज्ञा दे दी है और युधिष्ठिर भी
मेरे वन जाने के विषय में सहमत हो गये हैं। अब मैं प्रजा को बुलाकर, परलोकगत जुआरी
१० अपने पुत्रों के उद्देश्य से, उसे कुछ धन देकर शीघ्र वन को चलूँगा।

अब महाराज धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर के पास अपना अभिप्राय कहला भेजा। उनकी आज्ञा के अनुसार युधिष्ठिर ने शीघ्र कुरुजाङ्गल-निवासी प्रजा को बुलवा भेजा। आज्ञा पाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बड़ी प्रसन्नता से राजभवन में आने लगे। राजा धृतराष्ट्र ने अन्तःपुर से बाहर आकर सम्पूर्ण प्रजा और बन्धु-बान्धवों से कहा—सज्जनो, आप लोग सदा से कौरवों के साथ निवास करते हैं। कौरवों के साथ आप लोगों का घनिष्ठ स्नेह हो गया है। आप लोग कौरवों के परम हितैषी हैं। कौरव भी हमेशा आप लोगों का हित करते आये हैं। अब मैं आप लोगों से जो प्रार्थना करता हूँ उसे स्वीकार करने की कृपा कीजिए। इसके लिए मैंने महर्षि वेदव्यास और युधिष्ठिर से अनुमति लेली है। मैं, गान्धारी समेत, वन को जाऊँगा। आप लोग भी मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिए। मेरे साथ आप लोगों का जैसा स्नेह-सम्बन्ध हमेशा से चला आ रहा है वैसा सम्बन्ध, मेरी समझ में, अन्य देशों की प्रजा का वहाँ के राजाओं के साथ न होगा। मैं और गान्धारी, दोनों ही एक तो वृद्ध हो चुके हैं, दूसरे हमारे सब पुत्र मारे जा चुके हैं, इसके सिवा उपवास करने के कारण हम लोग बहुत दुर्बल हो गये हैं, अतएव इस अवस्था में वन को चला जाना ही हमारे लिये श्रेयस्कर है। युधिष्ठिर के राज्य में हमको जितना सुख मिला है उतना दुर्योधन के राज्य-काल में नहीं मिला था। मैं एक तो जन्म का अन्धा, दूसरे वृद्ध, उस पर भी पुत्र-पौत्रों के शोक से पीड़ित हूँ; अतएव

अब वन को चले जाने के सिवा मेरे कल्याण का दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए आप लोग मुझे वन जाने की अनुमति दीजिए।

ये बातें सुनकर कुरुजाङ्गलनिवासी लोग रोने लगे। किसी ने कुछ उत्तर न दिया।

नवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का नगर-निवासियों से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगना और युधिष्ठिर को उनके हाथों में सौंपना

[वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, इस प्रकार शोक से पीड़ित होकर प्रजा के रोने और कुछ उत्तर न देने पर] महाराज धृतराष्ट्र ने फिर कहा—सज्जनो ! राजा शान्तनु, भीष्म से सुरक्षित विचित्रवीर्य और मेरे प्रिय भ्राता पाण्डु जिस प्रकार राज्य का पालन कर गये हैं वह आप लोगों से छिपा नहीं है। उसके बाद मैंने राज्य का प्रबन्ध किया है। उसमें यदि त्रुटियाँ हुई हों तो आप लोग मुझे क्षमा करें। दुर्योधन ने जिस समय निष्कण्टक राज्य किया था उस समय उसने भी आप लोगों का कोई अपराध नहीं किया था। अन्त को उसकी दुर्नीति और मेरी भूल के कारण असंख्य राजाओं की मृत्यु हुई। जो हो, मुझसे भला-बुरा जो कुछ हो गया है उसके लिए मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप लोग उन बातों का स्मरण करके मुझ पर क्रोध न कीजिएगा। मुझे वृद्ध, पुत्रहीन, दुःखित और अपने प्राचीन राजाओं का वंशज समझकर आप लोग क्षमा कीजिए। ये वृद्धा गान्धारी भी, मेरी तरह, पुत्रशोक से पीड़ित और बहुत दुःखित हैं। इस समय हम दोनों प्रार्थना करते हैं कि आप लोग प्रसन्न होकर हमको वन जाने की आज्ञा दीजिए। यह ठीक है कि धर्म और अर्थ के मर्मज्ञ, लोकपालों के समान महापराक्रमी, भीमसेन आदि चारों भाई जिनके मन्त्री हैं उन युधिष्ठिर को कभी विपद्-ग्रस्त न होना पड़ेगा; फिर भी आप लोग उन पर कृपादृष्टि रखिएगा। अब ब्रह्माजी के समान महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर आप लोगों का पालन करेंगे। मैं इनको आप लोगों के हाथ में और आप लोगों को इनके हाथ में सौंपता हूँ। आप लोग आज तक कभी मेरे ऊपर कुपित नहीं हुए हैं और आप लोगों की राजभक्ति भी प्रशंसनीय है। अब गान्धारी समेत मैं, हाथ जोड़कर, प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग कृपा करके मेरे मूर्ख, लोभी, स्वेच्छाचारी, दुरात्मा पुत्रों का अपराध क्षमा करके मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिए। १

दसवाँ अध्याय

नगर निवासियों का एक ब्राह्मण द्वारा धृतराष्ट्र के वचनों का उत्तर देना और
बड़े दुःख से उनको वन जाने की अनुमति देना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! राजा धृतराष्ट्र के ये नम्रतापूर्ण वचन सुनकर प्रजा के लोग, आँखों में आँसू भरकर, एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। उस समय किसी के मुँह से एक शब्द तक न निकला। धृतराष्ट्र ने फिर कहा—सज्जनो, अब मैं बहुत बूढ़ा और पुत्रहीन हो गया हूँ। मेरे पिता वेदव्यासजी ने और धर्मराज युधिष्ठिर ने भी मुझे वन जाने की आज्ञा दे दी है। अब मैं अपनी धर्मपत्नी गान्धारी समेत हाथ जोड़कर, दीन भाव से, बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग भी मुझे वन जाने की अनुमति दीजिए।

धृतराष्ट्र के ये करुणा-पूर्ण वचन सुनकर सम्पूर्ण प्रजा शोक से व्याकुल हो उठी; सबको वैसा ही क्लेश हुआ जैसा कि सन्तान को बिदा करते समय माता-पिता को होता है। वे लोग हाथों और दुपट्टों से अपना-अपना मुँह ढककर रोने लगे। इसके बाद धैर्य धरकर लोगों ने साम्ब नामक एक विद्वान् ब्राह्मण से कहा कि भगवन्, आप कृपा करके हम लोगों की ओर से धृतराष्ट्र को उत्तर दीजिए। तब बोलने में चतुर विद्वान् साम्ब
१२ ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज, मैं प्रजा की ओर से कहता हूँ कि आपने जो कुछ कहा है वह बिलकुल सत्य है। कौरवों के साथ हमारा परम स्नेह है। आपके वंश में कोई राजा ऐसा नहीं हुआ जिसने प्रजा का पालन न किया हो या जो प्रजा का अप्रिय रहा हो। सब राजाओं ने, पुत्र के समान, प्रजा का पालन किया है। राजा दुर्योधन ने भी हम लोगों का कोई अप्रिय नहीं किया। धर्मात्मा वेदव्यासजी ने आपको जो उपदेश दिया है उसी के अनुसार आप कार्य कीजिए। आपके चले जाने का हम लोगों को बड़ा शोक है। हम लोग आपके गुणों को कभी भूल नहीं सकेंगे। महाराज शान्तनु, आपके पिता विचित्रवीर्य और वीर पाण्डु ने—आपकी देख-रेख में—जिस प्रकार प्रजा का पालन किया था उसी प्रकार आपके
२० पुत्र राजा दुर्योधन भी राज्य की रक्षा कर गये हैं। उन्होंने तिल भर भी हम लोगों का अनिष्ट नहीं किया। हम लोग पिता के समान उनका विश्वास करते थे। इस समय भी हम लोग बड़े सुख से रहते हैं। ईश्वर से हम प्रार्थना करते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिर हज़ार वर्ष तक राज्य करें। इनके राज्य में हम लोग बड़े सुखी हैं। महाराज युधिष्ठिर—कुरु, संवरण और भरत आदि पुण्यवान् राजर्षियों की रीति-नीति का अवलम्बन करके—धर्म के अनुसार राज्य करते हैं। इनमें दोष नाम लेने को भी नहीं है। आपकी कृपा से हम लोग बड़े सुखी हैं। आपने और आपके पुत्र दुर्योधन ने हमारा कोई अपराध नहीं किया है। आपने जो दुर्योधन को कुल के

नाश का कारण बतलाया है, यह बात निर्मूल है। इस विषय में दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और आप, किसी का दोष नहीं है। दैव के कोप से ही कौरवों का नाश हुआ है। भावी को कोई नहीं मेट सकता। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और कर्ण आदि कौरव पक्ष के योद्धाओं ने तथा सात्यकि, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदि पाण्डव पक्ष के वीरों ने केवल अठारह दिनों में अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार कर डाला। यह अद्भुत काम
दैवबल के सिवा दूसरा कौन कर सकता था? इसके सिवा संग्राम में शत्रु का संहार करते ३१
हुए शरीर त्याग देना क्षत्रियों का श्रेष्ठ धर्म है। इसी से इन पराक्रमी वीरों ने असंख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का विनाश करके परलोक की यात्रा की है। अतएव दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, आप या आपका कोई सम्बन्धी इस घोर संग्राम का कारण नहीं कहा जा सकता। दैव के कोप से ही यह सत्यानाश हुआ है। हम लोग आपको सम्पूर्ण जगत् से श्रेष्ठ मानते हैं। आपको या आपके पुत्र दुर्योधन को हम अधर्मी नहीं समझते। ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि महाराज दुर्योधन, ब्राह्मणों के आशीर्वाद से, बन्धु-बान्धवों समेत दुर्लभ स्वर्ग-सुख भोगें। आप भी तपस्या में मन लगाकर सम्पूर्ण धर्म के मर्मज्ञ हो जावें। हम लोगों से पाण्डवों पर कृपा-दृष्टि रखने के लिए कहना व्यर्थ है; क्योंकि ये वीर पृथिवी की तो बात ही क्या, सम्पूर्ण स्वर्गलोक
का पालन कर सकते हैं। ये सम्पन्न हों या विपन्न, प्रजा हमेशा इनके वश में रहेगी। बुद्धि- ४०
मान् जितेन्द्रिय महाराज युधिष्ठिर, प्राचीन राजर्षियों की रीति-नीति के अनुसार, ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर श्राद्ध आदि करते हैं। इनके समान दयावान्, सरल और पवित्र स्वभाव-वाला दूसरा मनुष्य नहीं है। हम लोगों का पालन ये उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार पिता पुत्र का। इनका कोई मन्त्री क्षुद्र या अनुभवहीन नहीं है। इनके महापराक्रमी भाई भीमसेन आदि भी इनके परम भक्त हैं। अतएव ये हम लोगों का कभी अप्रिय न करेंगे। सज्जनों की रक्षा करना और दुष्टों को दण्ड देना इन लोगों का स्वाभाविक गुण है। कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी और सुभद्रा भी कभी हम लोगों का अनिष्ट न करेंगी। आपने हम लोगों के साथ जैसा सद्व्यवहार किया है और युधिष्ठिर हम लोगों पर जैसा स्नेह करते हैं उसे हम कभी नहीं भूल सकते। प्रजा के अधार्मिक होने पर भी धर्मात्मा पाण्डव धर्म के अनुसार ही पालन करेंगे। अतएव आप अब शोक छोड़कर सावधानी से धर्म का उपार्जन कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, बुद्धिमान् साम्ब के यों कहने पर सम्पूर्ण प्रजा उनकी प्रशंसा करने लगी और सबने उनकी बात का अनुमोदन किया। धृतराष्ट्र ने हाथ जोड़कर, प्रजा
की बातों का सम्मान करके, सबको विदा किया। फिर वे गान्धारी के साथ भीतर चले गये। ५३

ग्यारहवाँ अध्याय

भीष्म और दुर्योधन आदि का श्राद्ध करने के लिए युधिष्ठिर से धृतराष्ट्र का धन माँगना और उनके दोषों का स्मरण करके भीमसेन का धन देने की अनिच्छा प्रकट करना

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, इसके दूसरे दिन प्रातःकाल धृतराष्ट्र ने विदुरजी को युधिष्ठिर के पास भेजा। विदुरजी ने युधिष्ठिर के पास जाकर कहा—राजन्, महाराज धृतराष्ट्र वन जाने की तैयारी कर रहे हैं। वे इसी कार्त्तिक की पूर्णिमा को यात्रा करेंगे। उन्होंने युद्ध में निहत महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक और अपने पुत्रों तथा अन्यान्य सम्बन्धियों का श्राद्ध करने के लिए कुछ धन माँगा है। आपकी सलाह हो तो उस धन द्वारा सिन्धुराज दुरात्मा जयद्रथ का भी श्राद्ध कर दिया जाय।

विदुरजी के वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर और अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए; किन्तु दुर्योधन की
दुष्टता का स्मरण करके भीमसेन ने विदुरजी के वचनों का सम्मान नहीं किया। तब अर्जुन ने
भीमसेन के मन की बात भाँपकर उनसे कहा—भाई! हमारे चाचा वृद्ध राजा धृतराष्ट्र वन
जाने की तैयारी करके, भीष्म आदि का श्राद्ध करने के लिए, धन माँगते हैं अतएव उनको
११ धन देना आवश्यक है। हाय, काल की कैसी अद्भुत गति है। पहले जिन धृतराष्ट्र से हम
लोग माँगते थे, वही धृतराष्ट्र आज हम लोगों से धन की प्रार्थना करते हैं। जो धृतराष्ट्र सारी
पृथिवी का शासन करते थे वही धृतराष्ट्र परास्त होकर आज वन जाने को तैयार हैं। इस
समय आप उनको धन देने की अनुमति दीजिए। उनको धन न देने से हम लोगों को बड़ा
अधर्म होगा और सब लोग हमारी निन्दा करेंगे। आप बड़े भाई धर्मराज से पूछिए कि इस
समय धृतराष्ट्र को धन देना उचित है या नहीं।

यह सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन की बातों का अनुमोदन किया। तब महाबली
भीमसेन ने कुपित होकर कहा—अर्जुन! हम लोग स्वयं महावीर भीष्म, सोमदत्त, भूरिश्रवा,
बाह्लीक, महात्मा द्रोणाचार्य और अन्य बन्धु-बान्धवों का श्राद्ध करेंगे। माता कुन्ती कर्ण का
श्राद्ध करेंगी। इन लोगों का श्राद्ध करने के लिए धृतराष्ट्र को धन देने की क्या आवश्यकता है?
मेरी राय में तो दुर्योधन आदि का श्राद्ध करना ही न चाहिए। हमारे शत्रु कहीं भी प्रसन्नता
से न रहें। दुर्योधन आदि जिन कुलाङ्गारों के द्वारा यह पृथिवी वीर-विहीन हो गई है वे हमेशा
घोर कष्ट पाते रहें। तुम क्या द्रौपदी का अपमान, बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का
२० अज्ञातवास बिलकुल भूल गये? उस समय धृतराष्ट्र का स्नेह कहाँ छिपा था? जिस समय
सर्वस्व गँवाकर, मृगछाला पहनकर, तुम द्रौपदी समेत राजा युधिष्ठिर के पीछे वन को चले थे
उस समय भीष्म, द्रोण और सोमदत्त कहाँ गये थे? जब तुम तेरह वर्ष तक फल-मूल

खाकर वन-वन में भटकते फिरे थे तब तुम्हारे बड़े चाचा का पुत्र-स्नेह कहाँ चला गया था ? दुरात्मा धृतराष्ट्र द्यूतक्रीड़ा के समय बार-बार विदुरजी से पूछता था कि 'इस बार हमको क्या मिला'। क्या तुम उस बात को भूल गये ?

भीमसेन के ये क्रोधपूर्ण वचन सुनकर बुद्धिमान् युधिष्ठिर उनको डाँटने लगे। २५

बारहवाँ अध्याय

भीमसेन की अनिच्छा देखकर युधिष्ठिर का अपने ख़ज़ाने से धन लेने का निवेदन करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, तब अर्जुन ने भीमसेन से कहा—भाई, आप मेरे बड़े भाई हैं। आपको अधिक समझाना मुझे उचित नहीं। मैं आपसे इतना ही कहता हूँ कि राजा धृतराष्ट्र सर्वथा हम लोगों के पूज्य हैं। विशेषकर सज्जन दूसरों के अपकार का स्मरण नहीं करते, वे तो उपकार का ही स्मरण करते हैं।

धर्मात्मा अर्जुन के ये वचन सुनकर धर्मराज ने विदुरजी से कहा—महात्मन्, आप मेरी ओर से कौरवराज धृतराष्ट्र से कहिएगा कि वे अपने पुत्रों और भीष्म आदि का श्राद्ध करने के लिए जितना धन चाहें उतना मेरे ख़ज़ाने से ले लें। इससे भीमसेन असन्तुष्ट न होंगे।

धर्मराज युधिष्ठिर ने विदुरजी से यों कहकर अर्जुन की बड़ी प्रशंसा की। तब भीमसेन अर्जुन को कनखियों से देखने लगे। राजा युधिष्ठिर ने विदुरजी से फिर कहा—महात्मन्, आप ऐसी बातें राजा धृतराष्ट्र से न कहिएगा, नहीं तो वे भीमसेन पर क्रोध करेंगे। वन में भीमसेन को सरदी, गरमी और बरसात के कारण अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं। यह बात आप जानते ही हैं। आप मेरी ओर से चाचाजी से कहिएगा कि वे जितना धन लेना चाहें उतना मेरे घर से ले लें। भीमसेन ने अत्यन्त दुःखित होकर जो कुछ कह डाला है उसे चाचाजी हृदय में स्थान न दें। मेरा और अर्जुन का जितना धन है वह सब उन्हीं का है। वे अपनी इच्छा के अनुसार ब्राह्मणों को धन-दान करें और जिस तरह चाहें, धन का व्यय करके, अपने पुत्रों और सम्बन्धियों का श्राद्ध करें। धन की तो बात ही क्या, मेरा यह शरीर भी उनके अधीन है। १३

तेरहवाँ अध्याय

विदुरजी का धृतराष्ट्र के पास जाकर युधिष्ठिर की बातें कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, राजा युधिष्ठिर के यों कहने पर महामति विदुर ने धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा—राजन्, मैंने युधिष्ठिर से आपका सँदेसा कह दिया। उसे सुनकर युधिष्ठिर और अर्जुन ने, आपकी आज्ञा का यथोचित सम्मान करके, कहा कि हमारा राज्य, धन और प्राण, सब कुछ उन्हीं का है; वे जितना चाहें उतना धन ले लें; किन्तु महावीर

भीमसेन ने पहले के दुःखों का स्मरण करके बड़ी कठिनाई से आपकी बात स्वीकार की है। धर्मराज युधिष्ठिर और वीर अर्जुन ने बहुत अनुनय-विनय करके भीमसेन को राज़ी किया। अन्त में धर्मराज ने बड़ी नम्रता से कहा है कि महावीर भीमसेन ने पहले की बातों का स्मरण करके जो अनुचित वचन कहे हैं उनसे आप दुःखित न हों। महावीर भीमसेन सदा क्षत्रिय-धर्म और युद्ध में ही लगे रहे, इसी से आज भी वे अपना क्रोध नहीं सँभाल सके। जो हो, भीम की बातों के लिए हम और अर्जुन चाचा धृतराष्ट्र से प्रार्थना करते हैं कि वे कृपा करके हम लोगों पर, विशेषकर भीमसेन पर, प्रसन्न हों। वे इस राज्य के और हम लोगों के अधीश्वर हैं। अतएव पुत्रों और सम्बन्धियों का श्राद्ध करने के लिए वे जितना चाहें उतना धन ले लें। वे रत्न, गायें, दास, दासी, भेड़ और बकरा जो कुछ दान करना चाहें वह सब लेकर ब्राह्मणों, अन्धों और दीन-दरिद्रों को दे दें। वे अन्नदान, जलदान और जल पीने के लिए निपान-(पहवचा)-दान आदि पुण्य करें। राजन्, धर्मराज युधिष्ठिर और वीर अर्जुन ने मुझसे यही कहा है। अब आपकी जो इच्छा हो सो कीजिए।

चौदहवाँ अध्याय

भीष्म और दुर्योधन का श्राद्ध करके धृतराष्ट्र का ब्राह्मणों को धन, वस्त्र और अन्न आदि देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, विदुरजी के ये वचन सुनकर धृतराष्ट्र युधिष्ठिर और अर्जुन पर बहुत प्रसन्न हुए और उस दिन से लेकर कार्तिक की पूर्णिमा तक दान-पुण्य करते रहे। उन्होंने भीष्म, द्रोण, सोमदत्त, वाह्लीक और दुर्योधन आदि अपने पुत्रों तथा जयद्रथ आदि सुहृदों का नाम ले-लेकर अन्न, पीने की वस्तुएँ, सवारी, वस्त्र, मणि-मुक्ता आदि विविध रत्न, सोना, दास-दासी, भेड़, बकरा, कम्बल, गाँव, खेत, गायें, अलङ्कृत हाथी, घोड़े, कन्याएँ और सुन्दर स्त्रियाँ आदि अनेक वस्तुएँ दान कीं। उस समय युधिष्ठिर की आज्ञा से गणक और लेखक दिन-रात धृतराष्ट्र से पूछा करते थे कि महाराज, आज्ञा दीजिए इस ब्राह्मण को क्या दिया जाय। धृतराष्ट्र जिसे सौ मुद्राएँ देने की आज्ञा देते थे उसे, युधिष्ठिर की आज्ञा से, हज़ार और जिसे धृतराष्ट्र हज़ार मुद्राएँ दिलाते थे उसे दस हज़ार मुद्राएँ दी जाती थीं। इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र ने, पानी बरसानेवाले बादलों की तरह, धन की वर्षा से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके अन्त को विविध मिष्टान्न द्वारा सब वर्णों को भोजन कराकर पुत्रों, पौत्रों और पितरों का श्राद्ध किया। फिर उन्होंने अपने और गान्धारी के पारलौकिक हित के लिए ब्राह्मणों को दान दिया। इस प्रकार महामति धृतराष्ट्र लगातार दस दिन तक दान-पुण्य करके अन्त को थककर, दान यज्ञ बन्द

करके, बन्धु-बान्धवों से उऋण हो गये। जितने दिन धृतराष्ट्र दान करते रहे उतने दिनों तक उनके भवन मे नटों और नर्त्तकों का नाच होता रहा। १८

पन्द्रहवाँ अध्याय

कुन्ती और गान्धारी समेत धृतराष्ट्र का वन-गमन

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद [ग्यारहवे दिन] कार्तिक की पूर्णिमा को प्रात:काल धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुलाकर उनका अभिनन्दन किया। फिर विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ कराकर, बल्कल और मृगछाला पहनकर, वे गान्धारी तथा अन्यान्य कौरव-स्त्रियों समेत वन जाने के लिए घर से निकले। अग्निहोत्र के अग्नि को उन्होंने साथ ले लिया। उस समय अन्त:पुर में कौरव-स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं। धृतराष्ट्र ने लाजाओं (धान के लावा) द्वारा अपने घर की पूजा करके नौकरों को इनाम देकर वन की यात्रा की।

यह देखकर धर्मराज युधिष्ठिर शोक से व्याकुल होकर, आँखों में आँसू भरकर, ऊँचे स्वर से 'हा तात, आप कहाँ जाते हैं' कहकर रोते हुए गिर पड़े। वीर अर्जुन दु:खित होकर, लम्बी साँस छोड़ते हुए, धर्मराज को समझाने लगे।

अब युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य और अन्य ब्राह्मण धृतराष्ट्र के पीछे-पीछे चले। आँखों पर पट्टी बाँधे पतिव्रता गान्धारी कुन्ती के कन्धे पर और अन्धराज धृतराष्ट्र गान्धारी के कन्धे पर हाथ रखकर वन को चले। द्रौपदी, सुभद्रा, चित्राङ्गदा, उत्तरा और अन्य कौरव-स्त्रियाँ कुररी की तरह रोती हुई उनके पीछे चलीं। चारों वर्णों की स्त्रियाँ शोक से व्याकुल होकर चारों ओर से सड़क पर आने लगीं। सारांश यह कि जिस तरह जुए मे हारकर सभा से पाण्डवों के वन जाते समय नगर-निवासियों को दु:ख हुआ था उसी तरह धृतराष्ट्र के वन-गमन के समय भी वे दु:खित हुए। जिन कुल-कामिनियों ने पहले कभी सूर्य और चन्द्रमा को नहीं देखा था वे भी उस समय, शोक से विह्वल होकर, सड़क पर आ गईं। १

सोलहवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र के साथ विदुर और सञ्जय का भी जाना। युधिष्ठिर आदि के अनेक प्रकार से प्रार्थना करने पर भी कुन्ती का न लौटना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, सड़क पर पहुँचकर धृतराष्ट्र ने अटारियों और अन्य स्थानों से स्त्री-पुरुषों के रोने का शब्द सुना। वे विनीत-भाव से बड़े दु:ख के साथ, स्त्रियों और पुरुषों से परिपूर्ण, राजमार्ग पर चलते हुए हस्तिनापुर के बाहरी फाटक से निकलकर सब

लोगों को विदा करने लगे। उन्होंने महावीर कृपाचार्य और युयुत्सु को युधिष्ठिर के हाथ में सौंपा। ये दोनों पुरुष हस्तिनापुर में रहने को राज़ी हो गये; किन्तु विदुरजी और सञ्जय धृतराष्ट्र के साथ ही चले गये।

क्रमशः नगर-निवासियों के लौट जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र की आज्ञा से, स्त्रियों समेत जब लौटने को तैयार हुए तब उन्होंने कुन्ती से कहा—माताजी, आप अपनी बहुओं के साथ नगर को जाइए। धर्मात्मा कौरवनाथ तपस्या करने जा रहे हैं। मैं इनके साथ वन को जाऊँगा।

गान्धारी का हाथ अपने कन्धे पर रक्खे हुए कुन्ती ने यह सुनकर, आँखों में आँसू भरकर, चलते ही चलते कहा—बेटा, तुम सहदेव पर कृपादृष्टि रखना। सहदेव मेरे और तुम्हारे परम भक्त हैं। मैंने मूर्खता-वश जिन वीर कर्ण को तुम्हारे साथ लड़ाकर मरवा डाला उनको भी न भूल जाना। हाय, मुझ सी अभागिन दूसरी कौन होगी! जब कर्ण की मृत्यु हो जाने पर मेरे हृदय के सौ- टुकड़े नहीं हो गये तब मैं समझती हूँ कि मेरा यह हृदय लोहे का बना हुआ है। मैंने तुमसे कर्ण का परिचय नहीं कराया, इसलिए उनके वध का कारण मैं ही हूँ। जो हो, अब वे बातें तो लौटने की नहीं। अपने बड़े भाई कर्ण के उद्देश से तुम, भाइयों समेत, दान-पुण्य करते रहना। द्रौपदी का कभी अप्रिय न करना। भीमसेन, अर्जुन और नकुल की हमेशा रक्षा करना। आज से कुरुकुल का भार तुम्हारे ऊपर है। अब मैं वन में जाकर तपस्या और तुम्हारे चाचा-चाची की सेवा करूँगी।

वैशम्पायन कहते हैं कि मनस्विनी कुन्ती के यों कहने पर धर्मात्मा युधिष्ठिर दुःखित होकर थोड़ी देर तक सिर झुकाये सोचते रहे। फिर उन्होंने कहा—माताजी, इस समय आपकी बुद्धि क्यों विचलित हो गई? मुझसे ऐसे निठुर वचन कहना आपको उचित नहीं। मैं आपको वन जाने की अनुमति नहीं दे सकता। आप मुझ पर प्रसन्न हों। पहले आपने महात्मा श्रीकृष्ण से विदुला की कथा कहकर हम लोगों को विविध उपदेश दिये थे और अब आप इस प्रकार के कठिन वचन कहती हैं! हम लोगों ने श्रीकृष्ण के मुँह से आपका उपदेश सुनकर, आपके ही कहने के अनुसार, राजाओं का विनाश करके राज्य प्राप्त किया है। इस समय आपकी वह बुद्धि कहाँ गई? हम लोगों को, क्षात्र-धर्म पालन करने की आज्ञा देकर, इस समय त्याग देना आपको उचित नहीं। हम लोगों को और राज्य को त्यागकर आप वन में किस प्रकार रहेंगी? मान जाइए, हम लोगों पर कृपा कीजिए।

धर्मराज युधिष्ठिर के दीन वचन सुनकर भी कुन्ती नहीं लौटीं। वे आँखों में आँसू भरकर धृतराष्ट्र के साथ चलने लगीं, तब भीमसेन ने कहा—माताजी, इस समय पुत्रों का जीता हुआ राज्यसुख और राज-धर्म प्राप्त करके आपकी मति क्यों बदल गई? यदि हम लोगों को

त्यागकर वन को चले जाने का ही आपका इरादा था तो आपने हम लोगों के द्वारा इस पृथिवी को वीर-विहीन क्यों करा दिया ? और, जब हम पाँचों भाई बालक थे तब हमें वन से क्यों ले आई थीं ? अब वन जाने का इरादा छोड़कर आप, प्रसन्न होकर, धर्मराज के बाहुबल से जीते हुए राज्य का भोग कीजिए।

भीमसेन आदि सब भाइयों के इस प्रकार विलाप करने पर भी कुन्ती ने जब वन जाने का विचार नहीं छोड़ा तब मनस्विनी द्रौपदी और सुभद्रा दीन भाव से विलाप करते-करते उनके पीछे चलीं। इतने पर भी कुन्ती नहीं लौटीं। वे रोते हुए पुत्रों को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखती हुई धृतराष्ट्र के साथ चलीं। और पाण्डव दुःखित होकर, नौकरों और स्त्रियों समेत, माता कुन्ती के पीछे-पीछे चले। ३२

सत्रहवाँ अध्याय

कुन्ती का युधिष्ठिर आदि को, दुःखित देखकर, समझाना.

कुन्ती ने कहा—बेटा ! तुम लोग कपट के जुए में दुर्योधन से हारकर बड़े दुखी हुए थे, इसी कारण मैंने तुम लोगों को युद्ध करने के लिए उत्साहित किया था। तुम लोग वीर पाण्डु के पुत्र हो, इसलिए शत्रुओं द्वारा तुम लोगों का विनाश या तुम्हारी अकीर्त्ति होना अनुचित था। तुम लोग इन्द्र के समान पराक्रमी हो, अतएव तुम्हारा शत्रुओं के अधीन रहना उचित नहीं था। युधिष्ठिर, तुम राजाओं में श्रेष्ठ और इन्द्र के समान प्रभावशाली हो अतएव तुम्हारा वन में रहना बहुत अनुचित था। दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले महापराक्रमी भीमसेन और इन्द्र-तुल्य पराक्रमी अर्जुन का दीन भाव से जीवन बिताना उचित नहीं था। इन्हीं बातों पर विचार करके मैंने तुम लोगों को युद्ध करने के लिए उत्साहित किया था। बालक नकुल और सहदेव भूखों न मरें तथा सभा में द्रौपदी का फिर अपमान न हो, इसी के लिए मैंने तुम्हें उत्साहित किया था। जिस समय द्रौपदी को जुए में जीतकर सभा में तुम लोगों के सामने ही दुरात्मा दुःशासन ने मूर्खतावश केश पकड़कर, दासी की तरह, खींचा था और ये केले के पेड़ की तरह काँपती थीं उसी समय मैंने समझ लिया था कि अब इस कुल का
नाश होनेवाला है। पापी दुःशासन ने जब भरी सभा में द्रौपदी को केश पकड़कर खींचा था ११
और ये सहायता की प्रार्थना करके कुररी की तरह रोने लगी थीं तब मेरे होश उड़ गये थे। इन्हीं कारणों से मैंने तुम लोगों का तेज बढ़ाने के लिए, श्रीकृष्ण से विदुला और सञ्जय का संवाद कहकर, तुम लोगों को उत्साहित किया था। तुम लोगों का विनाश होकर इस राजवंश का उच्छेद हो जाना उचित नहीं था। जिसकी बदौलत वंश का नाश होता है उसके पुत्र-पौत्र भी शुभ लोक को नहीं जा सकते। अपने पति वीर पाण्डु के राजत्वकाल में मैंने

विविध सुख भोगे, खूब दान-पुण्य किया और विधिपूर्वक सोमरस पिया है। मैंने जो विदुला की
कथा कहकर तुम लोगों को श्रीकृष्ण से उत्साहित कराया था वह अपने लिए नहीं, केवल तुम्हीं
लोगों के हित के लिए। अब राज्य की इच्छा छोड़कर तपस्या करके पति-लोक को जाने की ही मेरी
अभिलाषा है। पुत्रों द्वारा जीते हुए राज्य का सुख भोगने की मेरी इच्छा नहीं है। अतएव मैं वन में
जाकर, जेठ-जेठानी की सेवा करके, तपस्या द्वारा शरीर को सुखा दूँगी। तुम लोग राजधानी को
२१ लौट जाओ और सुख से राज्य करो। तुम लोगों की धर्म-बुद्धि बढ़े और तुम्हारा मन श्रेष्ठ हो।

अठारहवाँ अध्याय

कुन्ती के न लौटने पर निराश होकर पाण्डवों का वापस होना और धृतराष्ट्र आदि का वन में जाकर उस रात को गङ्गा-किनारे निवास करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कुन्ती के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर आदि सब भाई
लज्जित हो गये। वे धृतराष्ट्र को प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा करके द्रौपदी समेत नगर को
लौट पड़े। कुन्ती को वन जाते देखकर सब स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। तब राजा धृतराष्ट्र ने
गान्धारी और विदुर से कहा कि युधिष्ठिर की माता को लौटा दो। युधिष्ठिर का कहना
बिलकुल ठीक है। पाण्डवों की माता ऐश्वर्य और पुत्रों को त्यागकर क्यों वृथा दुर्गम वन को
चल रही हैं? ये घर रहकर दान-पुण्य और व्रत आदि द्वारा श्रेष्ठ तपस्या कर सकती हैं।
इनकी सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इनसे लौट जाने को कह दो।

यह सुनकर गान्धारी ने, धृतराष्ट्र की ओर से और स्वयं भी, कुन्ती से लौट जाने का
१० अनुरोध किया; किन्तु वे किसी तरह न लौटीं। तब कौरव-स्त्रियाँ कुन्ती का अभिप्राय समझकर
और पाण्डवों को लौटते देखकर रोती हुई नगर को लौट आईं। युधिष्ठिर आदि पाण्डव दुःख
से व्याकुल होकर दीन भाव से, स्त्रियों समेत, रथों पर सवार हो नगर को लौट आये। उस
समय हस्तिनापुर में उदासी छा गई थी। बालक, बूढ़े और स्त्रियाँ सब दुखी हो रहे थे। कुन्ती
के विरह में पाण्डव, बिना गाय के बछड़े की तरह, दुःख और शोक से व्याकुल हो गये।

उधर राजा धृतराष्ट्र उस दिन बहुत दूर चलकर गङ्गा-किनारे पहुँचे। विद्वान् ब्राह्मणों
ने गङ्गा-किनारे तपोवन में नियमानुसार अग्नि प्रज्वलित करके आहुतियाँ दीं। सन्ध्या के समय
सब लोगों ने सूर्योपस्थान किया। इसके बाद विदुर और सञ्जय ने राजा धृतराष्ट्र और
गान्धारी के लिए कुशों का बिछौना बिछा दिया। कुन्ती और गान्धारी एक ही शय्या पर
२० सोईं। विदुर आदि उनके समीप और ब्राह्मण लोग यथास्थान सोये। दूसरे दिन प्रातःकाल
उठकर सबने पूर्वाह्न की क्रिया की, फिर हवन करके सब लोग भूखे ही उत्तर की ओर चले।
२५ वनवास का पहला दिन उनके लिए बड़ा कष्टजनक हुआ।

उन्नीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्र में पहुँचकर शतयूप के आश्रम पर धृतराष्ट्र आदि का तप करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! उत्तर की ओर कुछ दूर चलकर, विदुरजी के कहने से, धृतराष्ट्र ने गङ्गा-किनारे निवास किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वनवासी वहाँ धृतराष्ट्र के पास आये। धृतराष्ट्र ने प्रिय वचनों द्वारा सबको प्रसन्न किया और ब्राह्मणों का तथा उनके शिष्यों का सम्मान करके सबको बिदा किया। सन्ध्या होने पर धृतराष्ट्र और गान्धारी ने गङ्गा-स्नान किया। विदुर आदि ने भी स्नान करके सन्ध्या-वन्दन किया। धृतराष्ट्र और गान्धारी के स्नान कर चुकने पर कुन्ती उनको जल से बाहर ले आईं। ब्राह्मणों ने धृत-राष्ट्र के लिए उसी स्थान पर वेदी बना दी। वहाँ बैठकर धृतराष्ट्र ने अग्नि में आहुति दी।

इस प्रकार नित्यक्रिया समाप्त करके अनुयायियों समेत राजा धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र को चले।
कुरुक्षेत्र के आश्रम पर पहुँचकर उन्होंने राजर्षि शतयूप के दर्शन किये। ये महात्मा पहले
केकय देश के राजा थे; पुत्र को राज्य सौंपकर वन को चले आये थे। धृतराष्ट्र इनसे मिल- १०
कर वेदव्यास के आश्रम पर गये और उनसे दीक्षित होकर फिर शतयूप के पास लौट
आये। महामति शतयूप ने वेदव्यास की आज्ञा से धृतराष्ट्र को वन में निवास करने की सब
विधि बतला दी। अब धृतराष्ट्र स्वयं तपस्या करने लगे और विदुर आदि अपने साथियों
को भी उन्होंने तप करने की अनुमति दे दी। तपस्विनी गान्धारी और कुन्ती भी वल्कल
तथा मृगछाला पहनकर, इन्द्रियों को रोककर, मन-वचन-कर्म से घोर तपस्या करने लगीं।
जटा, मृगछाला और वल्कल धारण करके धृतराष्ट्र, अस्थि-चर्मावशिष्ट होकर, महर्षि के समान
तप करने लगे। परम धार्मिक विदुर और सञ्जय भी चीर-वल्कल धारण करके राजा धृतराष्ट्र
और गान्धारी की सेवा तथा घोर तपस्या करने लगे। १८

बीसवाँ अध्याय

नारद आदि महर्षियों का धृतराष्ट्र के पास आना। उस तपोवन में तपस्या करके अनेक राजाओं के स्वर्ग प्राप्त करने की कथा कहकर नारदजी का धृतराष्ट्र को भी सिद्ध होने की आशा दिलाना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय ! इसके बाद नारद, पर्वत, देवल, परम धार्मिक राजर्षि शतयूप, शिष्यों समेत महर्षि वेदव्यास और अन्यान्य सिद्ध महर्षि धृतराष्ट्र के पास आये। कुन्ती ने सब महर्षियों का यथोचित सत्कार किया। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर महर्षि-गण, धृतराष्ट्र के मनोविनोद के लिए, अनेक प्रकार की कथाएँ कहने लगे। किसी कथा के प्रसङ्ग में देवर्षि नारद ने धृतराष्ट्र से कहा—राजन्, शतयूप के पितामह निर्भीक श्रीमान् सहस्र-

चित्य केकय देश के राजा थे। वृद्धावस्था में वे अपने परम धार्मिक ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंप-
कर वन को चले गये। उन्होंने घोर तपस्या करके, निष्पाप होकर, इन्द्रलोक प्राप्त किया।
मैंने उनको इन्द्रलोक में अनेक बार देखा है। भगदत्त के पितामह राजा शैलालय भी तपोबल
१० से इन्द्रलोक को गये हैं। इन्द्र-तुल्य महाराज पृषध्र ने भी तपस्या करके स्वर्ग-लोक प्राप्त किया
था। श्रेष्ठ नदी नर्मदा जिनकी सहधर्मिणी हुई थीं उन मान्धाता-तनय राजा पुरुकुत्स और
परम धार्मिक राजा शशलोमा ने भी इसी तपोवन में तपस्या करके स्वर्गलोक प्राप्त किया था।
तुम भी इसी तपोवन में तपस्या करो। महर्षि वेदव्यास की कृपा से शीघ्र सिद्ध होकर, गान्धारी
समेत, उन्हीं महात्माओं के समान लोकों को जाओगे। राजा पाण्डु स्वर्गलोक में
सदा तुम्हारा स्मरण करते हैं। वे अवश्य तुम्हारा कल्याण करेंगे। यशस्विनी कुन्ती
तुम्हारी और गान्धारी की सेवा करने के कारण निस्सन्देह पति-लोक को जायँगी। विदुर
तो युधिष्ठिर के शरीर में प्रविष्ट हो जायँगे और महामति सञ्जय स्वर्गलोक को जायँगे।
२० मैं दिव्य दृष्टि से यह सब देख रहा हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, देवर्षि नारद के ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र और
गान्धारी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बड़े आदर से सब महर्षियों की यथोचित पूजा की।
ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर नारदजी की प्रशंसा करने लगे। राजर्षि शतयूप ने देवर्षि नारद से
कहा—महर्षि, आपके वचन सुनकर हम लोगों को आप पर बड़ी श्रद्धा हुई है। आप तत्त्व-
दर्शी हैं। मनुष्यों को जो गति प्राप्त होनेवाली होती है उसे आप दिव्य दृष्टि से देख लेते हैं।
आपने अनेक राजाओं की स्वर्ग-प्राप्ति का वर्णन किया, किन्तु यह नहीं बतलाया कि राजा धृत-
राष्ट्र किस लोक को जायँगे। बतलाइए, धृतराष्ट्र किस समय किस लोक को जायँगे।

राजर्षि शतयूप के यों पूछने पर दिव्यदर्शी नारदजी ने सबके सामने कहा—राजन्, मैंने
३० अपनी इच्छा से एक बार इन्द्र की सभा में जाकर राजा पाण्डु को देखा। सभा में राजा धृत-
राष्ट्र की तपस्या की बातें होने लगीं। तब इन्द्र के मुँह से मैंने सुना था कि धृतराष्ट्र की तीन
वर्ष की आयु और है। उसके बाद वे गान्धारी समेत, दिव्य अलङ्कारों से अलङ्कृत और दिव्य
विमान पर सवार होकर, कुबेरलोक में आकर इच्छानुसार देवलोक, गन्धर्वलोक और राक्षस-
लोक में विचरेंगे। हे शतयूप, तुम्हारे पूछने से मैंने यह गुप्त वृत्तान्त बतला दिया। तपस्या के
प्रभाव से तुम निष्पाप हो गये हो, इसी से मैंने यह गुप्त विषय तुमको बतला दिया।

देवर्षि नारद से ये बातें सुनकर महाराज धृतराष्ट्र और शतयूप आदि सब लोग बहुत
प्रसन्न हुए। इस प्रकार नारद आदि महर्षि, कथाओं द्वारा धृतराष्ट्र को सन्तुष्ट करके, अपने-
३८ अपने स्थान को चले गये।

इक्कीसवाँ अध्याय

पाण्डवों का कुन्ती और धृतराष्ट्र आदि के वियोग में दुखी रहना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! इधर युधिष्ठिर आदि पाण्डव स्त्रियों समेत हस्तिनापुर में आकर, राजा धृतराष्ट्र और माता कुन्ती के वनवास के कारण, बड़े दुखी हुए। नगर के लोग भी धृतराष्ट्र के लिए शोक करने लगे। उस समय हस्तिनापुर-निवासी बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ सब लोग शोक से व्याकुल होकर आपस में यों कहने लगे—हाय, पुत्रशोक से दुःखित वृद्ध राजा धृतराष्ट्र, मनस्विनी गान्धारी और कुन्ती समेत, दुर्गम वन में किस प्रकार रहेंगे ? महाराज धृतराष्ट्र ने कभी दुःख नहीं उठाया। राज्यसुख और पुत्रों का स्नेह छोड़कर वनवास करके कुन्ती ने बड़ी हिम्मत कर दिखाई। धृतराष्ट्र की सेवा में तत्पर महात्मा विदुर और सञ्जय पर न जाने क्या बीतती होगी।

नगर-निवासियों के इस प्रकार विलाप करने पर पाण्डवों को—पुत्रहीन बूढ़े धृतराष्ट्र, गान्धारी, माता कुन्ती, महात्मा विदुर और सञ्जय का स्मरण करके—और भी अधिक शोक हुआ। वे अधिक दिनों तक नगर में न रह सके। उस समय राज्य, स्त्री और वेदाध्ययन
आदि किसी काम में पाण्डवों का मन नहीं लगता था। वे धृतराष्ट्र के वनवास, आत्मीय १०
जनों के विनाश, बालक अभिमन्यु, महावीर कर्ण, द्रौपदी के पुत्रों और अन्य सुहृदों की मृत्यु का
स्मरण करके बहुत दुखी थे। उनको हमेशा यह शोक बना रहता था कि पृथिवी वीरहीन और
रत्नशून्य हो गई। इसी कारण उनको कभी शान्ति नहीं मिलती थी। द्रौपदी और सुभद्रा
भी, पुत्रों के शोक से, पीड़ित रहती थीं। अब तो सबका आधार परिक्षित् ही था। १६

बाईसवाँ अध्याय

अपने भाइयों, द्रौपदी आदि स्त्रियों और नगर-निवासियों समेत युधिष्ठिर का—धृतराष्ट्र को देखने के लिए—वन जाने की तैयारी करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! पाण्डव लोग अपनी माता और धृतराष्ट्र आदि के विरह में दुःखित होकर, पहले की तरह, राजकार्य न कर सके। उस समय किसी काम में उनका मन नहीं लगता था। वे हमेशा शोक से व्याकुल रहते थे। पाण्डव लोग, समुद्र के समान गम्भीर होने पर भी, शोक के मारे हतबुद्धि हो गये थे। युधिष्ठिर आदि सब भाई आपस में कहने लगे कि हाय, हमारी माता कुन्ती बहुत दुर्बल हैं। ये किस तरह धृतराष्ट्र और गान्धारी की सेवा करती होंगी ! हिंसक जीवों से भरे निर्जन वन में पुत्रहीन धृतराष्ट्र किस प्रकार रहते होंगे ! पुत्रशोक से दुःखित गान्धारी उस दुर्गम वन में वृद्ध अन्धे पति की सेवा किस प्रकार करती होंगी !

कुछ दिनों तक इस प्रकार खिन्न रहने के बाद पाण्डव लोग धृतराष्ट्र के पास जाने की तैयारी
करने लगे। तब सहदेव ने युधिष्ठिर को प्रणाम करके कहा—महाराज, आप धृतराष्ट्र के पास चलने की
तैयारी कर रहे हैं, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे हमेशा उनके दर्शनों की इच्छा बनी रहती
१० है। मैं आपके लिहाज़ से मन की बात आपसे प्रकट नहीं करता था। हाय, जो माता कुन्ती महलों
में बड़े आराम से रहती थीं वे अब किस तरह जटा धारण करके तपस्विनी के वेश में कुशों की शय्या
पर सोती होंगी! ऐसा भी कोई दिन होगा कि मैं उनके दर्शन करूँगा! जब राजपुत्री माता
कुन्ती वन में क्लेश उठा रही हैं तब यही कहना पड़ता है कि किसी के दिन सदा एक से नहीं रहते।
अब द्रौपदी ने नम्रता के साथ धर्मराज से कहा—महाराज, मुझे सासजी के दर्शन कब
मिलेंगे? मैं उनके दर्शन करके अपना जीवन सफल करूँगी। आपकी बुद्धि सदा ऐसी ही
बनी रहे। आज आपकी कृपा से हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं ससुर धृतराष्ट्र
और सास गान्धारी तथा कुन्ती को देखने की इच्छा पहले से ही कर रही थी।
अब धर्मराज युधिष्ठिर ने सेनापतियों को बुलाकर कहा—तुम लोग शीघ्र हाथी, घोड़े और
रथ तैयार करो। सुसज्जित सेना आगे चले। मैं धृतराष्ट्र के दर्शन करने वन को जाऊँगा।
फिर उन्होंने रनिवास के अध्यक्ष से कहा कि तुम शीघ्र पालकी आदि सवारियाँ और
२० बाज़ार तैयार कराओ। शिल्पी और कोषाध्यक्ष कुरुक्षेत्र के आश्रम की ओर रवाना हों। पुरवा-
सियों में से यदि कोई धृतराष्ट्र से मिलने के लिए चलना चाहे तो चले। तुम रसोइयों और अन्य
सब काम करनेवाले मनुष्यों को चलने की आज्ञा देकर, खाने-पीने की वस्तुएँ गाड़ियों पर लाद-
कर, धृतराष्ट्र के आश्रम में भेज दो और नगर में घोषणा कर दो कि हम लोग कल प्रातःकाल रवाना
होंगे। हम लोगों के ठहरने के लिए मार्ग में आज ही डेरे तैयार हो जायँ।
धर्मराज दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर, बूढ़ों और स्त्रियों को साथ लेकर, भाइयों
समेत नगर से निकले। फिर वे पाँच दिन तक नगर-निवासियों की तैयारी की प्रतीक्षा
२६ करते हुए नगर के समीप ठहरे रहे।

तेईसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का कुरुक्षेत्र में पहुँचकर धृतराष्ट्र का आश्रम देखना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, छठे दिन अर्जुन आदि वीरों से सुरक्षित सैनिक वन को चलने की आज्ञा पाते ही कोलाहल करने लगे कि 'घोड़े कसो, रथ जोतो'। धृतराष्ट्र को देखने की इच्छा से नगरों के और देश के मनुष्य—कोई चमकीले सुवर्णमय रथों पर और कोई हाथियों, घोड़ों तथा ऊँटों पर सवार होकर—वन की ओर चले। बहुत से मनुष्य पैदल ही चलने लगे। धर्मराज की आज्ञा से महावीर युयुत्सु और पुरोहित धौम्य वन को नहीं गये; वे राज्य की रक्षा के

लिए नगर में ही रहे। कृपाचार्य सेना के साथ वन को चले। रथ पर सवार, ब्राह्मणों से घिरे हुए, युधिष्ठिर के प्रस्थान करने पर सेवकों ने उनके सिर पर सफ़ेद छत्र तान दिया; सूत, मागध और वन्दीगण स्तुति-पाठ करने लगे और अनेक रथ-सवार सैनिक उनके साथ हो लिये। भीमसेन अस्त्र-शस्त्र लेकर, पर्वताकार हाथी पर सवार होकर, बहुसंख्यक गजारोही सैनिकों के साथ वन को चले। महावीर अर्जुन सफ़ेद घोड़े जुते हुए, अग्नि के समान, दिव्य रथ पर सवार होकर युधिष्ठिर
के पीछे हो लिये। नकुल और सहदेव शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार होकर धर्मराज के पीछे चले। ११
द्रौपदी आदि स्त्रियाँ, अन्तःपुर के रक्षकों की देख-रेख में, शिविकाओं में सवार होकर दान-पुण्य करती हुई चलीं। हाथियों, घोड़ों और रथों से युक्त पाण्डवों की सेना में वीणा आदि बाजे बजते जाते थे। सैनिकों समेत पाण्डव रमणीय नदियों के किनारे और तालाबों के पास पड़ाव डालते हुए वन को चले। इस प्रकार उन्होंने यमुना पार उतरकर, कुरुक्षेत्र में पहुँचकर, दूर से ही राजर्षि धृतराष्ट्र और शतयूप के आश्रम को देखा। उन आश्रमों को देखकर, साथियों समेत, पाण्डवों
को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे लोग हर्षसूचक शब्द करते-करते उस तपोवन में प्रविष्ट हुए। १८

चौबीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर आदि का धृतराष्ट्र के पास पहुँचकर, अपना-अपना नाम बतलाकर, उनको प्रणाम करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! दूर से धृतराष्ट्र का आश्रम देखकर युधिष्ठिर आदि सब भाई, विनीत भाव से रथ से उतरकर, आश्रम की ओर पैदल चलने लगे। उनको देखकर सैनिक, पुरवासी और रनिवास की स्त्रियाँ सवारियों से उतरकर पैदल चलीं। थोड़ी देर में सब लोग मृगों से परिपूर्ण, कदली-वन से शोभित, उस आश्रम में पहुँच गये। उस आश्रम के तपस्वी विस्मित होकर पाण्डवों को देखने के लिए पास आ गये। राजा युधिष्ठिर ने गद्गद होकर उनसे पूछा—हे तपस्वियो, कौरवों के वंशधर हमारे चाचा राजर्षि धृतराष्ट्र कहाँ हैं?

तपस्वियों ने उत्तर दिया—महाराज! वे इस समय फूल तोड़ने, यमुना में स्नान करने और जल लेने गये हैं। आप इस मार्ग से जाइए।

तपस्वियों के बतलाये मार्ग से चलकर पाण्डवों ने दूर से धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती को देखा। कुन्ती को देखकर सहदेव रोते हुए दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़े। कुन्ती ने प्रिय पुत्र सहदेव को उठाकर गले से लगा लिया और आँखों में आँसू भरकर गान्धारी से
कहा कि सहदेव आये हैं। फिर युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुल को देखकर वे शीघ्रता १०
से उनकी ओर चलीं। पाण्डवों ने माता को, धृतराष्ट्र और गान्धारी समेत, तेज़ी से आते देखकर

शीघ्र उनके पास आकर प्रणाम किया। अन्धराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों की बोली सुनकर और स्पर्श द्वारा उनको पहचानकर सबको आश्वासन दिया। तब पाण्डवों ने आँसू पोंछकर धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के प्रति विनीत भाव प्रकट करके जल से भरे हुए उनके घड़े ले लिये। उस समय कौरव-स्त्रियाँ और नगरों के तथा देश के सब स्त्री-पुरुष धृतराष्ट्र की ओर एकटक देखने लगे। नाम और कुल बतलाकर राजा युधिष्ठिर ने सबका परिचय धृतराष्ट्र को दिया। धृतराष्ट्र ने सबको पहचानकर, सबका यथोचित सम्मान करके, ऐसा समझा मानों वे आत्मीय जनों के साथ हस्तिनापुर में हों। फिर वे नक्षत्रों से शोभित



२० आकाशमण्डल के समान, दर्शकों से युक्त, सिद्ध-चारणसेवित, अपने आश्रम को गये।

पचीसवाँ अध्याय

तपस्वियों के पूछने पर सञ्जय का, युधिष्ठिर आदि के नाम बतलाकर, सबका परिचय देना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब धर्मराज युधिष्ठिर महापराक्रमी भाइयों के साथ धृतराष्ट्र के आश्रम पर गये। पाण्डवों को देखने के लिए वहाँ अनेक देशों से तपस्वी आये और धृतराष्ट्र से पूछने लगे—महाराज! आपके आश्रम पर जो ये लोग आये हैं इनमें युधिष्ठिर कौन हैं तथा भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी कौन हैं?

महर्षियों के यों पूछने पर सञ्जय ने युधिष्ठिर आदि पाण्डवों, द्रौपदी और सब कौरव स्त्रियों का परिचय देते हुए कहा—महर्षियो! ये जो सुवर्ण के समान गोरे रङ्ग के, विशाल नेत्रोंवाले, सिंह के समान बैठे हैं और जिनकी नाक लम्बी है, इनका नाम युधिष्ठिर है। जो मतवाले हाथी के समान चलनेवाले, तपाये हुए सोने के समान गौरवर्ण, दीर्घबाहु, महापराक्रमी, वीर पुरुष बैठे हैं, ये भीमसेन हैं। इनके पास जो महाधनुर्धर, साँवले रङ्ग के महापराक्रमी बैठे हैं इनका नाम अर्जुन है। कुन्ती के पास विष्णु और इन्द्र के समान जो दो युवा बैठे हुए हैं, वे नकुल और सहदेव हैं। इन दोनों के समान सुन्दर, बलवान् और सच्चरित्र मनुष्य इस लोक में दूसरा नहीं है। ये कमलनयनी, श्याम वर्ण की, परम सुन्दरी द्रौपदी हैं। इनके पास चन्द्रमा के प्रकाश के समान गोरे रङ्ग की परम रूपवती, वासुदेव की

१० बहन, सुभद्रा बैठी हैं। ये जो तपाये हुए सोने के समान रूपवाली परम सुन्दरी बैठी हैं, ये

अर्जुन की स्त्री उलूपी और चित्राङ्गदा हैं। इनके पास नीले कमल के रङ्ग की जो सुन्दरी बैठी हैं [इनका नाम काली है] ये भीमसेन की भार्या हैं। चम्पे की माला के समान गौरवर्ण की जिस रूपवती को आप देख रहे हैं, ये महाराज जरासन्ध की कन्या और सहदेव की भार्या हैं। इन्हीं के पास माद्री के बड़े पुत्र नकुल की स्त्री बैठी हैं [, इनका नाम करेणुमती है]। यह जो परम सुन्दरी गोद में बालक लिये बैठी है यह अभिमन्यु की स्त्री, विराट-पुत्री, उत्तरा है। द्रोणाचार्य प्रमुख सात महारथियों ने इसके पति अभिमन्यु को, रथहीन हो जाने पर, अन्याय-युद्ध करके मार डाला था। सफ़ेद धोतियाँ पहने जिन विधवाओं को आप लोग देख रहे हैं ये सब धृतराष्ट्र के पुत्रों की स्त्रियाँ हैं। इनके पति और पुत्र युद्ध में मारे गये हैं। हे महर्षियो, मैंने आप लोगों को इन सबका परिचय विस्तार के साथ दे दिया।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद सब तपस्वी अपने-अपने स्थान को चले गये और पाण्डव लोग आश्रम से थोड़ी दूर पर ठहर गये। राजा धृतराष्ट्र ने सब लोगों से यथायोग्य कुशल-प्रश्न किया। १९

छब्बीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर की बातचीत। विदुरजी का योग के प्रभाव से शरीर त्यागकर युधिष्ठिर के शरीर में प्रवेश करना

[वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, सबसे कुशल-प्रश्न कर चुकने पर] धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से पूछा—बेटा, तुम सब भाई प्रजा समेत सकुशल हो न? तुम्हारे आश्रित, नौकर-चाकर, मन्त्री और गुरुजन नीरोग हैं न? तुम्हारे राज्य में उन्हें कोई खटका तो नहीं रहता? तुम प्राचीन राजाओं की रीति-नीति के अनुसार सब काम करते हो न? अन्याय से धन प्राप्त करके अपना कोष तो नहीं भर रहे हो? तुम शत्रु, मित्र और उदासीन के साथ यथोचित व्यवहार करते हो न? ब्राह्मणों को यथायोग्य दान-दक्षिणा मिलने में तुम त्रुटि तो नहीं होने देते? वे तुम्हारे बर्ताव से सन्तुष्ट हैं न? तुम्हारे नगर-निवासी, आत्मीय, नौकर-चाकर और शत्रु तुम्हारे आचरण देखकर सन्तुष्ट रहते हैं? तुम श्रद्धा के साथ सदा पितरों, देवताओं और अतिथियों की यथायोग्य पूजा करते हो? तुम्हारे राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं न? तुम्हारे राज्य में बालक, बूढ़े और स्त्रियाँ धन के लिए लालायित और शोक से पीड़ित तो नहीं हैं? तुम्हारे घर स्त्रियों का यथोचित सम्मान होता है न? तुम्हारे राजत्वकाल में कुरुवंश की अकीर्ति तो नहीं होती? १०

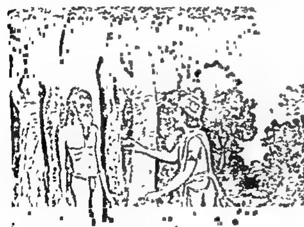
वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, धृतराष्ट्र के यों पूछने पर नीति-निपुण धर्मराज ने कहा—महाराज, आपकी कृपा से मेरे यहाँ सब कुशल है। आपके तप और शम-दम आदि

गुणों की तो वृद्धि हो रही है ? हमारी माता कुन्ती को आपकी सेवा-शुश्रूषा करने में कुछ क्लेश तो नहीं होता ? आपकी सेवा करने से ही इनका वनवास सार्थक होगा। घोर तपस्या कर रही माता गान्धारी, युद्ध में निहत पुत्रों का शोक करके, हमारी करतूत को याद कर कुढ़ती तो नहीं हैं ? सञ्जय तो कुशल से तप कर रहे हैं ? विदुरजी इस समय कहाँ हैं ?

धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा ! महामति विदुर इसी तपोवन में कहीं पर, निराहार रहकर, केवल वायु का भक्षण करके घोर तप कर रहे हैं। वे अब बहुत दुर्बल हो गये हैं। उनको देखने के लिए ब्राह्मण लोग कभी-कभी इस निर्जन वन में आते हैं।

धृतराष्ट्र यों कह रहे थे कि इसी समय जटाधारी दिगम्बर विदुरजी उस आश्रम से थोड़ी दूर पर देख पड़े। उनकी देह में धूल-मिट्टी लिपटी हुई थी। आश्रम को देखकर विदुरजी सहसा लौट पड़े। यह देखकर धर्मराज युधिष्ठिर शीघ्रता से उनके पीछे दौड़े। विदुरजी कभी तो युधिष्ठिर को देख पड़ते थे और कभी अलक्ष्य हो जाते थे। इस तरह चलकर वे घने वन में जा पहुँचे। धर्मराज यों कहते जाते थे—महात्मन्, मैं आपका प्रिय युधिष्ठिर आपके दर्शन करने आया हूँ।

कुछ दूर चलकर विदुरजी उस निर्जन वन में एक वृक्ष के सहारे खड़े हो गये। तब धर्मराज ने उनके पास जाकर कहा—"महात्मन्, मैं आपका परम प्रिय युधिष्ठिर हूँ। आपके दर्शन करने यहाँ आया हूँ।" अब वे विदुरजी के सामने खड़े हो गये। महात्मा विदुर धर्मराज को निर्जन स्थान में खड़े देखकर योगबल से उनकी दृष्टि में दृष्टि, शरीर में शरीर, प्राण में प्राण और इन्द्रियों में इन्द्रियों को मिलाकर उनके शरीर में प्रविष्ट हो गये। अब विदुरजी की आँखें निश्चल हो गईं और उनका शरीर अचेत होकर वृक्ष के सहारे खड़ा रह गया। धर्मराज को अपना शरीर पहले की अपेक्षा अधिक बलवान् जान पड़ने लगा। तब वेदव्यास का कहा हुआ अपना प्राचीन वृत्तान्त उनको स्मरण हो आया।



इसके बाद धर्मराज ने विदुरजी के शरीर का दाह करने का विचार किया। उस समय उनको यह आकाशवाणी सुन पड़ी—महाराज, विदुरजी संन्यासी हो गये थे अतएव उनका दाह न कीजिए। ये सान्तानिक नाम के लोकों को गये हैं। आप उनके लिए शोक न कीजिए।

यह आकाशवाणी सुनकर युधिष्ठिर, विदुरजी का दाह करने का विचार छोड़कर, धृतराष्ट्र के आश्रम को लौट आये। उन्होंने धृतराष्ट्र को विदुरजी का सब वृत्तान्त कह सुनाया। वह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर भीमसेन आदि पाण्डवों और अन्य लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—बेटा, तुम हमारा दिया हुआ जल पियो और फल-मूल खाओ। मनुष्य जब जिस अवस्था में हो तब उसी अवस्था के अनुरूप अतिथि-सत्कार करे। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उनकी बात मान ली। वे अपने भाइयों और सब साथियों समेत चाचा के दिये हुए फल-मूल खाकर जल पीकर उस रात को वहीं, वृक्षों के नीचे, ठहरे रहे। ३८

सत्ताईसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर युधिष्ठिर का महर्षियों के आश्रम देखना। फिर शतयूप आदि के साथ वेदव्यास का धृतराष्ट्र के आश्रम में आना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! आश्रम में रहनेवाले तपस्वियों के साथ उस रात को अनेक शास्त्रों के सम्बन्ध में पाण्डवों की बातचीत होती रही। पाण्डवों ने, राजा धृतराष्ट्र की तरह, फल-मूल खाकर उस रात को वहीं निवास किया। बहुमूल्य शय्या छोड़कर पाण्डव उस रात को माता कुन्ती के चारों ओर सोये। दूसरे दिन प्रातःकाल धर्मराज युधिष्ठिर नित्य-कर्म करके धृतराष्ट्र की आज्ञा से—पुरोहित, स्त्रियों, भाइयों और पुरवासियों समेत—आश्रम देखने की इच्छा से इधर-उधर घूमने लगे। उन्होंने देखा कि मुनिगण स्नान और नित्यकर्म करके प्रज्वलित अग्नि में आहुति दे रहे हैं। सब वेदियाँ मेधा, फूल, फल-मूल और घी के धुएँ से परिपूर्ण हैं। मृग अपनी इच्छा के अनुसार बेखटके इधर-उधर घूम रहे हैं। आश्रम में ब्राह्मणों के वेदाध्ययन का शब्द हो रहा है और मोर, कौवे, कोकिल तथा अन्य पक्षी चहचहा रहे हैं। राजा युधिष्ठिर ने तपस्वियों के लिए लाये हुए सुवर्णमय कलश, मृगचर्म, माला, आसन, ११
स्रुक्, स्रुव, कमण्डलु, बटलोई, लोहे के बर्तन और अन्य अनेक प्रकार के बर्तन उनको दिये। जिस तपस्वी ने जो वस्तु जितनी माँगी उसे धर्मराज की आज्ञा से उतनी ही मिली।

राजा युधिष्ठिर आश्रम-मण्डल में चारों ओर घूमकर, बहुत सा दान-पुण्य करके, धृतराष्ट्र के आश्रम में लौट आये। वहाँ आकर देखा कि धृतराष्ट्र स्नान आदि नित्यक्रिया करके, गान्धारी समेत, आश्रम में बैठे हुए हैं। मनस्विनी कुन्ती, शिष्या के समान, विनीत भाव से उनके पास बैठी हुई हैं। भीमसेन आदि भाइयों और अन्य सब लोगों के साथ धर्मराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के पास जाकर, उनको प्रणाम करके, उनकी आज्ञा से कुशासन पर बैठ गये। राजा धृतराष्ट्र अपने आत्मीय जनों के साथ ऐसे शोभित हुए जैसे देवताओं के बीच बृहस्पति शोभायमान होते हैं। इसके बाद कुरुक्षेत्र-निवासी शतयूप आदि ऋषियों और शिष्यों समेत व्यासजी वहाँ २०

आये। राजा धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर और भीमसेन आदि सब लोगों ने उठकर उनको
प्रणाम किया। धृतराष्ट्र को बैठने की आज्ञा देकर व्यासजी अपने साथ आये हुए सब ब्राह्मणों
२६ को कुशासनों पर बैठाकर स्वयं भी बैठ गये।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

व्यासजी का धृतराष्ट्र से कुशल पूछना और उनको चमत्कार दिखाने की प्रतिज्ञा करना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, पाण्डवों के बैठ जाने पर महर्षि वेदव्यास ने धृतराष्ट्र
से कहा—राजन्, तुम्हारी तपस्या में कुछ विघ्न तो नहीं पड़ता? वन में तुम्हारा जी उचटता तो
नहीं है? अब कभी तुमको पुत्रों के विनाश का शोक तो नहीं होता? तुम्हारी इन्द्रियाँ तो
शुद्ध हो गई हैं? वनवास के धर्म का पालन तुम दृढ़ता के साथ करते हो? बुद्धिमती गान्धारी
अब पुत्रों का शोक तो नहीं करतीं? तुम्हारी और गान्धारी की सेवा करने के लिए अपने पुत्रों
को त्याग देनेवाली देवी कुन्ती, अभिमान छोड़कर, तुम्हारी सेवा करती हैं न? धर्मराज युधिष्ठिर,
भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव को तुमने समझा-बुझा दिया है न? इनको देखने से तुम्हें
प्रसन्नता होती है न? अब तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार का खेद तो नहीं है? विशुद्ध ज्ञान
प्राप्त करके अब तुम्हारा मन निर्मल हो गया है न? शत्रुता न करना, सत्य बोलना और क्रोध
को जीत लेना, इन तीन गुणों से सबका हित होता है। [तुम्हारे इन तीनों गुणों में कोई विघ्न
१० तो नहीं होता?] वन के फल-मूलों का आहार और उपवास तुमको सहन हो गया है न?
साक्षात् धर्म-स्वरूप विदुर ने जिस प्रकार धर्मराज के शरीर में प्रवेश किया है वह तो तुम जानते
ही हो। माण्डव्य के शाप से महात्मा धर्म ने विदुर-रूप से मनुष्य-शरीर धारण किया था।
देवताओं में बृहस्पति और दानवों में शुक्राचार्य जैसे बुद्धिमान् हैं वैसे ही तुम लोगों में विदुर
थे। महर्षि माण्डव्य के, चिर-सञ्चित तपोबल नष्ट करके, धर्म को शाप देने से विदुर का जन्म
हुआ था। उनको मैंने, ब्रह्माजी की आज्ञा से, विचित्रवीर्य के क्षेत्र से उत्पन्न किया था। वे
तुम्हारे भाई थे। उनके असाधारण ध्यान और मन की धारणा के कारण विद्वानों ने उनको धर्म-
स्वरूप कहा है। वे सत्य, शान्ति, अहिंसा, दान और दमगुण के द्वारा विख्यात हैं। उन्हीं
महात्मा धर्म ने, योग के बल से, कुरुराज युधिष्ठिर को उत्पन्न किया है। अग्नि, जल, वायु,
आकाश और पृथिवी जिस प्रकार इस लोक और परलोक में विद्यमान हैं उसी प्रकार धर्म भी
दोनों लोकों में व्याप्त है। धर्म जगत् में सर्वत्र विद्यमान है। निष्पाप सिद्ध महर्षियों के सिवा
२० और कोई धर्म के दर्शन नहीं कर सकता। धर्म ही तो विदुर और विदुर ही युधिष्ठिर हैं। देखो,
वही धर्म-स्वरूप युधिष्ठिर तुम्हारे पास विनीत भाव से बैठे हुए हैं। योगबल से युक्त बुद्धिमान
विदुर इनको देखकर इन्हीं के शरीर में प्रविष्ट हो गये हैं। मैं शीघ्र ही तुम्हारा भी कल्याण करूँगा।

तुम्हारा सन्देह दूर करने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। आज तक किसी महर्षि ने जो चमत्कार नहीं दिखाया है वही मैं, तपोबल के प्रभाव से, दिखाऊँगा। तुम मुझसे क्या चाहते हो? किसी को देखना, छूना या कुछ सुनना चाहो तो कहो। तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगा। २५

पुत्रदर्शनपर्व

उन्तीसवाँ अध्याय

गान्धारी का व्यासजी से धृतराष्ट्र को पुत्र-दर्शन करा देने के लिए प्रार्थना करना

जनमेजय ने कहा—भगवन्! जब धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती समेत, वनवास कर रहे थे और जब विदुरजी सिद्ध होकर धर्मराज के शरीर में समा गये थे तब धृतराष्ट्र के आश्रम में पाण्डवों के रहते समय व्यासजी ने, प्रतिज्ञा के अनुसार, धृतराष्ट्र को किस प्रकार चमत्कार दिखाया था? धर्मराज युधिष्ठिर नगर-निवासियों, स्त्रियों तथा सैनिकों समेत क्या भोजन करते थे और कितने दिनों तक वहाँ ठहरे थे?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! युधिष्ठिर आदि पाण्डव, धृतराष्ट्र की आज्ञा से, विविध भोजन करते हुए सुख से उनके आश्रम में रहने लगे। एक महीना बीतने पर व्यासजी वहाँ आये। महाराज धृतराष्ट्र ने और पाण्डवों ने उनको, यथोचित सत्कार करके, आसन पर बैठाया। उसी समय देवर्षि नारद, पर्वत, देवल, गन्धर्व विश्वावसु, तुम्बुरु और चित्रसेन वहाँ आ गये। धर्मराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की आज्ञा से सबको, यथोचित सम्मान करके, पवित्र श्रेष्ठ आसनों पर बैठाया। युधिष्ठिर के सत्कार से सन्तुष्ट होकर महर्षियों के बैठने पर धृत- १०
राष्ट्र; पाण्डव, गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और अन्य सब लोग उनके चारों ओर बैठ गये। देवताओं, दानवों और प्राचीन महर्षियों के विषय की धर्मकथा महर्षिगण कहने लगे।

थोड़ी देर बाद व्यासजी ने धृतराष्ट्र को चमत्कार दिखाने की इच्छा से कहा—राजन्, तुम्हारे मन की बातें मुझसे छिपी नहीं हैं। गान्धारी और तुम पुत्रशोक से बहुत दुखी हो। कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा भी पुत्रशोक से पीड़ित हैं। तुमको परिवार समेत एकत्र निवास करते सुनकर, तुम लोगों का सन्देह दूर करने के लिए, मैं यहाँ आया हूँ। इस समय तुम अपनी इच्छा मुझपर प्रकट करो। आज देवता, गन्धर्व और महर्षि मेरा तपोबल देखें। २०

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने, थोड़ी देर सोचकर, कहा—भगवन्, आज आप लोगों के आगमन से मैं अनुगृहीत हो गया हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। अब न तो मुझे अभीष्ट गति पाने में कोई सन्देह है और न परलोक का कोई भय है। आज मैं, आप लोगों के आगमन से, परम पवित्र हो गया हूँ। इस समय केवल मन्दबुद्धि दुर्योधन की दुर्नीति का स्मरण करके मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। उस पापी ने अकारण इन निरपराध पाण्डवों को क्लेश दिया और पृथिवी

के असंख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को यमलोक पहुँचा दिया। अनेक राजा लोग उसी के कारण कुरुक्षेत्र में आकर लड़ मरे। हाय! मेरे पुत्र-पौत्र और जो वीर पुरुष—मित्र की सहायता करने के लिए माता-पिता और पुत्र-स्त्री का त्याग करके—इस लोक से चले गये हैं उनको
३१ कौन गति मिली होगी? महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्य का स्मरण करके मैं किसी तरह अपने मन को नहीं समझा सकता। पापी दुर्योधन ने राज्य के लोभ से कुरुकुल का नाश करा डाला। इन बातों का स्मरण करके मैं दिन-रात शोक की आग में जलता रहता हूँ। मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिलती। कृपा करके आप मुझे शान्ति का उपाय बतलाइए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! धृतराष्ट्र के ये दीन वचन सुनकर गान्धारी, कुन्ती, सुभद्रा और अन्य कौरव-स्त्रियों का शोक फिर नया हो उठा। पुत्रशोक से दुःखित, आँखों पर पट्टी बाँधे, *गान्धारी हाथ जोड़कर ससुर वेदव्यास से कहने लगीं*—भगवन्, हमारे पुत्रों की मृत्यु हुए आज सोलह वर्ष हो गये; किन्तु अभी तक राजा का शोक नहीं गया। इनको किसी तरह शान्ति नहीं मिलती। ये हमेशा पुत्रों के शोक में लम्बी साँसें लेते रहते हैं। इनको कभी निद्रा का सुख नहीं मिलता अतएव आप इन्हें इनके पुत्रों को दिखाकर शान्त कीजिए। आप तो तपोबल से नये लोकों तक की सृष्टि कर सकते हैं, फिर इनके पुत्रों को
४० इन्हें दिखा देना आपके लिए क्या बड़ी बात है! देखिए, आपकी पुत्रवधुओं की प्रिय पुत्रवधू द्रौपदी और सुभद्रा पुत्रशोक से दुखी हैं। भूरिश्रवा की स्त्री, पतिशोक से व्यथित होकर, अनेक प्रकार से विलाप कर रही है। इसके ससुर महाराज सोमदत्त ने संग्राम में शरीर त्याग दिया है। आपके जो सौ पौत्र संग्राम में मारे गये हैं, यह देखिए, उनकी स्त्रियाँ हाय-हाय करके रो-रोकर हमारा और राजा का शोक बढ़ा रही हैं। हाय, संग्राम में जो मेरे ससुर सोमदत्त आदि मारे गये हैं उन्हें कौन सी गति मिली होगी! जो हो, अब ऐसी कृपा कीजिए जिससे राजा का, मेरा और कुन्ती का शोक दूर हो जाय।

गान्धारी के यों कहने पर कृशाङ्गी कुन्ती, अपने गुप्त पुत्र कर्ण का स्मरण करके, बहुत दुःखित हुईं। व्यासजी ने कुन्ती को व्याकुल देखकर कहा—'बेटी! बतलाओ, तुम क्या
५२ चाहती हो।' कुन्ती लज्जित होकर, ससुर को प्रणाम करके, अपनी पुरानी बातें कहने लगीं।

तीसवाँ अध्याय

कुन्ती का व्यासजी से कर्ण की उत्पत्ति का वृत्तान्त कहकर उसको देखने की इच्छा प्रकट करना

कुन्ती ने कहा—भगवन्, आप देवदेव और मेरे ससुर हैं। मैं [अपना पूर्व वृत्तान्त ठीक-ठीक बतलाकर] अपने मन की बात कहती हूँ। एक बार अत्यन्त क्रोधी महर्षि दुर्वासा

भिक्षा के लिए मेरे पिता के घर आये थे। मैंने सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट कर लिया। उन्होंने
उस समय ऐसे अनेक काम किये, जिनसे मुझे क्रोध आ सकता था; किन्तु मैंने अपने शुद्ध स्वभाव
से उनके किसी काम पर क्रोध नहीं किया। तब उन वरदानी महर्षि ने प्रसन्न होकर मुझसे
वर माँगने के लिए कहा। महर्षि के बार-बार कहने पर, उनके शाप के डर से, मैंने उनकी
बात मान ली। तब मुझसे "कल्याणी, तुम धर्म की माता होगी और जिस देवता का तुम
आवाहन करोगी वही तुम्हारे वश में हो जायगा" कहकर महर्षि दुर्वासा अन्तर्धान हो गये।
यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। महर्षि का वह वचन मुझे कभी नहीं भूला।

उसके बाद एक दिन प्रातःकाल मैंने अपने कोठे पर चढ़कर सूर्यदेव को देखा। उसी
समय मुझे ऋषि के वचन स्मरण हो आये। अल्हड़पन के कारण, दुर्वासा के वचनों की परीक्षा
लेने के लिए, मैंने सूर्यदेव का आवाहन किया। आवाहन करते ही सहस्ररश्मि सूर्यदेव, अपने
शरीर के दो भाग करके, एक से तो स्वर्ग और मर्त्यलोक को गरमी पहुँचाने लगे और दूसरे
आधे भाग से मेरे पास आ गये। महातेजस्वी सूर्यदेव को देखकर मैं डर के मारे काँपने लगी। १०
उन्होंने मुझसे कहा कि सुन्दरी, तुम जो चाहो वह वर माँग लो। मैंने कहा कि भगवन्, मैं
यही प्रार्थना करती हूँ कि आप शीघ्र अपने स्थान को लौट जाइए। सूर्यदेव ने मुझसे कहा—
कल्याणी, हमारा आगमन व्यर्थ नहीं हो सकता अतएव कोई वर अवश्य माँग लो। यदि
कोई वर न माँगोगी तो हम तुमको और तुम्हारे वरदाता ब्राह्मण को भस्म कर देंगे।
सूर्यदेव के यों धमकाने पर, निर्दोष दुर्वासाजी की रक्षा के लिए, मैंने उनसे कहा—भगवन्! यदि
आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिए कि मेरे, आपके समान, पुत्र उत्पन्न हो।
यों कहते ही सूर्यदेव ने मुझे मोहित करके मेरे शरीर में अपना तेज प्रविष्ट कर दिया और मुझसे
"कल्याणी, तुम हमारे अनुरूप पुत्र प्राप्त करोगी" कहकर वे आकाश को चले गये। उसके
बाद मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता से यह वृत्तान्त छिपाने के लिए मैंने उस, गुप्त रूप से उत्पन्न,
पुत्र को जल में फेंक दिया। सूर्यनारायण के प्रभाव से मैं फिर पहले की सी कन्या हो गई।
अपनी मूर्खता के कारण मैंने उस गुप्त पुत्र की [युद्ध के समय] उपेक्षा कर दी। अब उसका
स्मरण करके छाती फटी जा रही है। मेरा वह काम पाप हो अथवा पुण्य, मैंने आपसे ठीक-
ठीक कह दिया। आप मेरे और राजा धृतराष्ट्र के मन की सब बातें जानते हैं अतएव
हमारी, पुत्र-दर्शन की, इच्छा पूर्ण कीजिए।

महर्षि वेदव्यास ने कुन्ती की बातें सुनकर कहा—बेटी, तुम्हारा कहना सच है।
बालकपन में तुमने जो सूर्य का आवाहन किया था उससे तुमको पाप नहीं लगा। देवता २०
अणिमा आदि ऐश्वर्य से सम्पन्न होते हैं; वे सङ्कल्प, वाक्य, दृष्टि, स्पर्श और प्रीति-उत्पादन, यों
पाँच प्रकार से पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं। तुम मनुष्य हो अतएव देवता के सम्पर्क से पुत्र

उत्पन्न करने में तुमको कोई पाप नहीं लगा। बलवान् के लिए सब वस्तुएँ पथ्य हैं, सब
२४ वस्तुएँ पवित्र हैं और सब काम धार्मिक हैं। सभी वस्तुएँ उसी की हैं।

इकतीसवाँ अध्याय

व्यासजी का गान्धारी से, युद्ध में निहत, सब वीरों को दिखाने की प्रतिज्ञा करना। व्यासजी की आज्ञा से सब लोगों का गङ्गा-किनारे जाना

महर्षि वेदव्यास ने गान्धारी से कहा—कल्याणी! तुम अपने पुत्रों, भाई और अन्य सब सम्बन्धियों को, सोकर उठे हुए की तरह, अभी देखोगी। कुन्ती कर्ण को, सुभद्रा अभिमन्यु को और द्रौपदी अपने पुत्रों, भाइयों तथा पिता को देखेंगी। परलोकगत बन्धु-बान्धवों के साथ तुम लोगों का साक्षात्कार करा देने की इच्छा मैंने पहले ही की थी। इस समय तुम्हारे, कुन्ती और राजा धृतराष्ट्र के कहने से मेरी वह इच्छा बढ़ गई है। अब तुम लोग युद्ध में मरे हुए लोगों के लिए शोक न करो। उन लोगों ने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार वीरगति पाई है। वे देवताओं के कार्य-साधन के लिए स्वर्ग से पृथिवी पर आये थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जितने वीर मारे गये हैं उनमें कोई गन्धर्व, कोई अप्सरा, कोई पिशाच, कोई गुह्यक, कोई राक्षस, कोई यक्ष, कोई सिद्ध, कोई देवता, कोई दानव और कोई देवर्षि था। धृतराष्ट्र नाम के जो गन्धर्वराज प्रसिद्ध हैं वही मर्त्यलोक में आकर तुम्हारे पति हुए हैं। देवश्रेष्ठ विष्णु के अंश से पाण्डु उत्पन्न हुए थे। विदुर और युधिष्ठिर धर्म का अवतार हैं। दुर्योधन कलियुग और शकुनि द्वापर है
१० तथा दुःशासन आदि तुम्हारे और सब पुत्र राक्षस हैं। महापराक्रमी भीमसेन वायु, वीर अर्जुन
पुरातन ऋषि नर, श्रीकृष्ण नारायण तथा नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारों का अवतार हैं। छः महारथियों ने जिस महावीर का नाश किया है वह अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु चन्द्रमा-स्वरूप था। महावीर कर्ण सूर्य के, द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न अग्नि के, शिखण्डी राक्षस के, द्रोणाचार्य बृहस्पति के, अश्वत्थामा रुद्र के और गङ्गाजी के पुत्र भीष्म वसु के अंश से उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार देवगण मृत्युलोक में उत्पन्न होकर, अपना कार्य सिद्ध करके, स्वर्गलोक को चले गये हैं। जो हो, आज मैं तुम लोगों के मन का बहुत दिनों का दुःख दूर कर दूँगा। अब तुम लोग गङ्गा-किनारे चलो। वहाँ पर अपने बन्धु-बान्धवों को देखना।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अब सब लोग बड़ी प्रसन्नता से सिंह के समान गर-
२० जते हुए गङ्गाजी की ओर चले। राजा धृतराष्ट्र, पाण्डव, मन्त्री, मुनि और गन्धर्वगण गङ्गाजी के
तट पर गये। सब लोग वहाँ पर रहे। राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी पाण्डवों और अपने साथियों
समेत, वहाँ एक स्थान पर ठहर गये। मृत राजाओं को देखने की इच्छा से सब लोग वहाँ पर
२५ रात होने की प्रतीक्षा करने लगे। वह दिन उन लोगों को सौ वर्ष के समान जान पड़ा।

बत्तीसवाँ अध्याय

व्यासजी का युद्ध में निहत कौरव-पाण्डव पक्ष के सब वीरों को बुला देना और अपने प्रभाव से धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि देकर उनके पुत्र दिखा देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, सायङ्काल होने पर सब लोग सन्ध्योपासन आदि करके व्यासदेव के पास गये। अन्धराज धृतराष्ट्र शुद्धचित्त होकर, सब महर्षियों और पाण्डवों के साथ, गङ्गा-किनारे जा बैठे। गान्धारी आदि कौरव-स्त्रियाँ भी उन्हीं के पास बैठ गईं। पुरवासी भी यथाक्रम बैठ गये। अब व्यासजी ने गङ्गाजी के पवित्र जल में प्रवेश करके संग्राम में निहत कौरव-पाण्डव पक्ष के वीरों और अनेक देशनिवासी राजाओं का आवाहन किया। आवाहन करते ही जल में पहले की तरह कौरव-पाण्डवों की सेना का घोर शब्द होने लगा। दम भर में भीष्म और द्रोणाचार्य आदि महावीर, पुत्रों और सैनिकों समेत महाराज विराट और द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु, महावीर घटोत्कच, कर्ण, शकुनि, दुर्योधन दुःशासन आदि धृतराष्ट्र के सब पुत्र, जरासन्ध का पुत्र सहदेव, महावीर भगदत्त, जलसन्ध, भूरिश्रवा, शल, शल्य, भाई समेत वृषसेन, राजकुमार लक्ष्मण, धृष्टद्युम्न के और शिखण्डी के लड़के, अपने छोटे भाई समेत धृष्टकेतु, अचल, वृषक, निशाचर अलायुध, महाराज सोमदत्त
और चेकितान आदि सब वीर दिव्य मूर्ति धारण करके जल से निकल आये। पहले जिस १३
वीर का जैसा रूप, जैसा वेष, जैसी ध्वजा और जैसा वाहन था वैसा ही उस समय भी सबको देख पड़ा। उस समय वे सब वीर अहङ्कार, शत्रुता और मत्सर छोड़कर दिव्य वस्त्र, दिव्य कुण्डल और दिव्य माला धारण किये—अप्सराओं के साथ—शोभित हो रहे थे। उनके साथ गन्धर्व गाते और वन्दीगण स्तुति कर रहे थे।

व्यासजी ने तपोबल से अन्धराज धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि दे दी। दिव्य चक्षु पाकर धृतराष्ट्र बड़ी प्रसन्नता से अपने पुत्रों को देखने लगे। पतिव्रता गान्धारी भी संग्राम में मरे हुए अपने पुत्रों और अन्य वीरों को देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और अन्य सब लोग उस अचिन्त्-
नीय लोमहर्षण अद्भुत घटना को एकटक देखते खड़े रहे। २१

तेंतीसवाँ अध्याय

व्यासजी की कृपा से धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर आदि का अपने मृत बन्धु-बान्धवों के साथ सुखपूर्वक रात भर बातचीत करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! वे निष्पाप, क्रोध-मात्सर्य-हीन, देवताओं के समान प्रसन्नचित्त कौरव-पाण्डव पक्ष के वीर आपस में बातें करने लगे। पुत्र पिता-माता के साथ, स्त्री पति के साथ, भाई भाई के साथ और मित्र मित्र के साथ मिलने लगे। महाधनुर्धर कर्ण, अभिमन्यु

और द्रुपद के पुत्रों से मिलकर पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए। महर्षि वेदव्यास के प्रभाव से सब वीर सुहृद्भाव से परस्पर मिलकर बहुत सन्तुष्ट हुए। इसी प्रकार कौरव और अन्य सब राजा अपने-अपने पुत्रों और बान्धवों के साथ मिलकर, स्वर्गवासी राजाओं के समान, परम सुख से वह रात बिताने लगे। उस रात में वहाँ शोक, भय, त्रास, असन्तोष और अयश का लेश नहीं था। सब स्त्रियाँ अपने-अपने पिता, भाई और पति के साथ मिलकर बहुत प्रसन्न हुईं।

रात बीतने पर सब वीर अपने आत्मीयों और स्त्री से मिल-भेंटकर अपने स्थान को जाने के
१२ लिए तैयार हुए। व्यासजी ने उनका अभिप्राय समझकर उनको जाने की अनुमति दे दी। तब वे सब योद्धा अपने-अपने रथ और ध्वज समेत भागीरथी के जल में अन्तर्धान हो गये। कोई देवलोक को, कोई ब्रह्मलोक को, कोई वरुणलोक को, कोई कुबेरलोक को और कोई सूर्यलोक को चला गया। राक्षस और पिशाच आदि में से कोई उत्तरकुरु को और कोई अन्य स्थानों को चले गये।

इस प्रकार उन वीरों के अदृश्य हो जाने पर कुरुकुल के हितैषी धर्मात्मा व्यासजी ने, जो जल में खड़े थे, विधवा स्त्रियों से कहा कि तुम लोगों में से जो अपने पति के लोक को जाना चाहें वे भागीरथी की धारा में कूद पड़ें। यह सुनकर पतिव्रता स्त्रियाँ गङ्गाजी में कूद पड़ीं और मनुष्य-शरीर त्यागकर—अपने पति के समान दिव्य वस्त्र, मूर्ति, आभूषण और मालाएँ धारण कर—
२३ विमानों पर सवार हो पति-लोक को चली गईं। इसके बाद वहाँ उपस्थित लोगों ने जो कुछ चाहा वह व्यासजी ने उनको दिया। संग्राम में मरे हुए राजाओं के लौट आने का वृत्तान्त सुनकर सब देशों के मनुष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। जो मनुष्य श्रद्धा के साथ इस कथा को सुनेगा वह बन्धु-बान्धवों समेत सुख भोगेगा; उसे दोनों लोकों में अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त होंगी। जो मनुष्य दूसरों को यह कथा सुनावेगा वह इस लोक में यश और परलोक में श्रेष्ठ गति पावेगा। मनुष्य स्वाध्याय-सम्पन्न, तपस्वी, शान्त, सदाचारी, दानशील, सरलस्वभाव, पवित्र, हिंसाहीन, सत्यपरायण,
३१ आस्तिक और श्रद्धा से युक्त होकर इस अद्भुत कथा को सुनकर निस्सन्देह श्रेष्ठ गति प्राप्त करेगा।

चौंतीसवाँ अध्याय

जनमेजय का यह प्रश्न कि 'मृत मनुष्य फिर उसी शरीर से कैसे आ सकते हैं' और वैशम्पायन का उत्तर

सौति ने कहा कि हे महर्षियो! महाराज जनमेजय ने वैशम्पायन के मुँह से दुर्योधन आदि के फिर मृत्युलोक में आने का वृत्तान्त सुनकर, प्रसन्न होकर, कहा—भगवन्, यह कथा सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; किन्तु अब मुझे यह सन्देह हुआ है कि हमारे प्रपितामह दुर्योधन आदि तो संग्राम में शरीर त्यागकर परलोक को चले गये थे, फिर वे किस तरह शरीर धारण करके मर्त्यलोक में आ गये!

यह सुनकर व्यासजी के शिष्य द्विजश्रेष्ठ वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय, फल भोगे बिना
कर्मों का नाश नहीं होता। कर्मों के प्रभाव से ही जीवों को शरीर धारण करना पड़ता है।
शरीर महाभूतों द्वारा बनता है, महाभूत परमात्मा के अधिष्ठान हैं, इसलिए देह का नाश होने
पर भी उनका नाश नहीं होता। मनुष्य पूर्वजन्म के कर्मों के प्रभाव से कर्म करता है। कर्म
करने पर उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। उन कर्मों और महाभूतों में लिप्त होकर आत्मा
सुख-दुःख भोगता है। न तो कभी आत्मा का नाश होता है और न वह कभी महाभूतों का
त्याग करता है। मनुष्यों के कर्मों का जब तक अन्त नहीं हो जाता तब तक वे अपना पूर्वरूप
धारण कर सकते हैं; कर्मों का नाश होने पर ही प्राणी दूसरा रूप प्राप्त करते हैं। परलोक में
अपने कर्मों का फल भोगकर प्राणी जब फिर इस लोक में लौट आता है तब वह दूसरा शरीर तो
धारण कर लेता है; किन्तु वह शरीर भी उन्हीं महाभूतों से बना है, जिनसे पहला शरीर बना
हुआ था अतएव पहले शरीर और दूसरे शरीर में कोई भेद नहीं है। अश्वमेध यज्ञ में, अश्व
का वध करते समय, वेद का यही वाक्य कहा जाता है कि दूसरे लोक में जीवों के जाने पर
भी उनके शरीर और प्राण उनको नहीं त्यागते। यज्ञभूमि में बैठकर तुमने भी यह बात सुनी १०
है कि पशु, यज्ञ में मारे जाकर, देवमार्ग से देवलोक को जाते हैं। तुमने जब यज्ञ किया था तब,
तुम्हारे हित के लिए, देवता यज्ञभूमि में आकर निहत पशुओं को स्वर्ग में ले गये थे। जब यह
सिद्धान्त निकला कि आत्मा और पञ्चभूत नित्य हैं तब शरीर कैसे अनित्य हो सकते हैं। जो
मनुष्य मूर्खतावश यह समझता है कि आत्मा अनेक शरीर धारण करता है वह आत्मीय लोगों
के वियोग में बालक की तरह रोता है और जो संयोग तथा वियोग दोनों को तुच्छ समझता है
वह न तो संयोग होने पर सुखी और न वियोग होने पर दुखी होता है। जीवात्मा, केवल
अभिमान के कारण, अपने को परमात्मा नहीं समझता। जब ज्ञान उत्पन्न होता और मोह का
नाश हो जाता है तब जीवात्मा अपने को परमात्मा से भिन्न नहीं समझता। सारांश यह
: मनुष्य का शरीर और आत्मा दोनों अविनाशी हैं। जीवात्मा जो शरीर धारण करके जिन
र्मों को करता है उसी शरीर से उन कर्मों का फल भोगता है। वह मन के द्वारा मानसिक
र शरीर द्वारा शारीरिक कर्मों के फल भोगता है। १८

पैंतीसवाँ अध्याय

जनमेजय के प्रार्थना करने पर व्यासजी का राजा परीक्षित, महर्षि
शमीक और शृङ्गी ऋषि के दर्शन करा देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इस प्रकार विदुरजी ने तपोबल से सिद्धि प्राप्त की और
जा धृतराष्ट्र ने, महर्षि वेदव्यास की कृपा से, आत्मतुल्य रूपवान् अपने पुत्रों को देख लिया।

राजा धृतराष्ट्र जन्म से ही अन्धे होने के कारण पहले कभी अपने पुत्रों को नहीं देख सके थे किन्तु उस समय व्यासजी की कृपा से उन्होंने पुत्रों का मुँह देखा। महर्षि की कृपा से अन्ध-राज को राजधर्म, वेद और उपनिषद् का पूर्ण ज्ञान था।

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, आपके मुँह से व्यासजी का प्रभाव सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। अब यदि वरदाता महर्षि व्यासदेव मुझे मेरे पिता के दर्शन करा दें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ और सदा के लिए कृतज्ञ बना रहूँ; आपकी बात पर भी मुझे पूर्ण विश्वास हो जावे।

सौति ने कहा—महाराज! जनमेजय के यों कहने पर महातपस्वी व्यासजी ने उन पर प्रसन्न होकर पूर्ववत् आयु और रूप से युक्त, मन्त्रियों समेत, राजा परिक्षित् को और महात्मा शमीक तथा उनके पुत्र शृंगी ऋषि को परलोक से बुला दिया। उनको देखकर जनमेजय बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने यज्ञ समाप्त करके पिता को यज्ञान्त-स्नान कराया और फिर स्वयं स्नान करके जरत्कारु के पुत्र आस्तीक से कहा—भगवन्, इस यज्ञभूमि में शोकनाशन पिताजी के आ
११ जाने से मेरा यह यज्ञ बड़ा अद्भुत हो गया है।

आस्तीक ने कहा—महाराज! जिसके यज्ञ में महर्षि वेदव्यास स्वयं उपस्थित हों, उसके हाथ में यह लोक और परलोक दोनों हैं। इस समय तुमने विचित्र उपाख्यान सुनकर विपुल धर्म प्राप्त किया है और तुम्हारे प्रभाव से बहुतेरे सर्प भस्म हो गये किन्तु तुम्हारे सत्य वचन के कारण किसी तरह तक्षक बच गया है। महात्माओं का सत्सङ्ग होने से तुम्हारे मन का सन्देह दूर हो गया है। तुमने ऋषियों की यथोचित पूजा की है। तुम अन्त को अवश्य पिता का सालोक्य प्राप्त करोगे। अब जो परम धार्मिक और सदाचारी हैं तथा जिनके दर्शन करने से पाप का नाश होता है उनको नमस्कार करो।

यह सुनकर राजा जनमेजय ने यथोचित सम्मान करके आस्तीक की पूजा की। इसके बाद
१८ जनमेजय ने, धृतराष्ट्र आदि के वनवास का शेष वृत्तान्त सुनने की इच्छा से, वैशम्पायन से पूछा।

छत्तीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर आदि का गङ्गा-तट से आश्रम पर आना। व्यासजी की आज्ञा से धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर आदि को हस्तिनापुर जाने का आदेश देना

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, धृतराष्ट्र और राजा युधिष्ठिर ने अपने पुत्र-पौत्र आदि को देखकर फिर क्या किया था?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा धृतराष्ट्र वह चमत्कार देखकर शोकहीन होकर अपने आश्रम को लौट आये। फिर सब ऋषि और अन्य लोग, धृतराष्ट्र से पूछकर, वहाँ से चले गये। पाण्डव लोग स्त्रियों और सैनिकों समेत धृतराष्ट्र के आश्रम पर गये।

इसी समय त्रिलोकपूजित महर्षि वेदव्यास ने धृतराष्ट्र के आश्रम पर आकर उनसे कहा—महाराज ! तुमने वेदवेदाङ्गपारदर्शी, परम धार्मिक, ज्ञानवृद्ध महर्षियों से अनेक विचित्र कथाएँ सुनी हैं अतएव अब शोक न करना। समझदार व्यक्ति अपनी दूरदर्शिता के कारण कभी व्यथित नहीं होते। तुमने देवर्षि नारद से देवताओं का रहस्य सुना है। क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में निहत पुत्रों को, सद्गति प्राप्त करके, इच्छानुसार भ्रमण करते भी तुम देख चुके हो। अब बुद्धिमान् युधिष्ठिर को उनके भाइयों, स्त्रियों और सैनिकों समेत राजधानी को जाने की आज्ञा दे दो। ये लोग तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं। इनको इस तपोवन में रहते एक महीने से अधिक हो गया, अब अधिक दिनों तक इनका यहाँ रहना उचित नहीं। राज्य विघ्नों का घर है, अतएव यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करते रहना इनका कर्तव्य है।

अमित प्रभावशाली व्यासजी के ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलाकर कहा—बेटा, तुम्हारा भला हो। तुम्हारी बदौलत मेरा शोक-सन्ताप दूर हो गया। यहाँ मुझे मालूम हो रहा है कि मैं हस्तिनापुर में मौजूद हूँ। तुमसे मुझे पुत्र का फल मिला है। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब मुझे रत्ती भर भी शोक नहीं है। अब तुम हस्तिनापुर जाओ। देर न करो। तुमको देखकर स्नेह के कारण मेरी तपस्या में विघ्न होता है। तुमको देखने के लिए ही मैं इतने दिनों से इस दुर्बल शरीर को धारण किये हूँ। मेरी तरह सूखे पत्ते खाकर प्राण धारण करती हुई कुन्ती और गान्धारी भी अब अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकतीं। महर्षि वेदव्यास के प्रभाव और तुम्हारे आगमन से मैंने दुर्योधन आदि को देख लिया। अब मेरे जीवित रहने का कुछ प्रयोजन नहीं। तुम मुझे तपस्या करने की आज्ञा दो। हमारा कुल, पिण्डदान और कीर्ति तुम्हीं पर निर्भर है। तुम चाहे आज हस्तिनापुर को चले जाओ चाहे कल। देर न करो। तुम अनेक बार राजनीति सुन चुके हो। अब तुमको उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है।

यह सुनकर राजा युधिष्ठिर ने कहा—चाचाजी ! मैं निरपराध हूँ। आप मेरा त्याग न कीजिए। मेरे भाई और अनुचर तो हस्तिनापुर को चले जावें पर मैं यहीं रहकर आपकी तथा दोनों माताओं की सेवा किया करूँगा।

यह सुनकर गान्धारी ने कहा—बेटा, ऐसी बात मत कहो। तुम कौरवों के वंशधर और मेरे ससुर का श्राद्ध-तर्पण करनेवाले हो। तुमने अभी तक हम लोगों की बहुत सेवा की है। अब राजधानी को जाओ। राजा की बात मानो।

यह सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अपने आँसू पोंछकर कुन्ती से कहा—माताजी, राजा और यशस्विनी गान्धारी की आज्ञा मेरे लिए हस्तिनापुर लौट आने की है; किन्तु मैं तो आपका अनुगत हूँ। आपको छोड़कर कैसे जाऊँ ? मैं आपकी तपस्या में विघ्न करना नहीं चाहता।

तपस्या से श्रेष्ठ कुछ नहीं है। तपस्या करने से उत्तम फल मिलता है। अब पहले की तरह
३० राज्य करने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं तपस्या करना चाहता हूँ। इसके सिवा भूमण्डल के मनुष्य-हीन हो जाने से राज्य करने का मुझे अब उत्साह नहीं रहा। बन्धु-बान्धव नष्ट हो गये हैं। अच्छे सैनिक भी नहीं रह गये। द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों के सब वीरों को मार डाला। जो लोग उनसे बचे थे उन्हें अश्वत्थामा ने रात को नष्ट कर दिया। अब उन लोगों का वंश चलानेवाला कोई नहीं है। चेदि और मत्स्य वंश का भी विनाश हो गया। श्रीकृष्ण के प्रभाव से केवल वृष्णिवंश ही बच रहा है। उसको देखकर, केवल धर्म का पालन करने के लिए ही, राज्य में रहने की मेरी इच्छा हुई थी। हम लोगों पर कृपा-दृष्टि रखिए। आपके दर्शन अब हम लोगों को बहुत दुर्लभ हो जायँगे। अब आप गान्धारी समेत घोर तप करेंगी।

इसके पश्चात् सहदेव ने आँखों में आँसू भरकर युधिष्ठिर से कहा—राजन्, मैं किसी तरह माता को न छोड़ सकूँगा अतएव आप राजधानी को जाइए। मैं यहीं रहकर चाचा-चाची और माता की सेवा तथा घोर तपस्या करके अपना शरीर सुखा दूँगा।

कुन्ती ने सहदेव को गले से लगाकर कहा—बेटा, तुम मेरी आज्ञा मानकर हस्तिनापुर को
४० जाओ। तुम लोगों का शास्त्रज्ञान बढ़े और तुम लोग सुखी रहो। यहाँ तुम लोगों के रहने से तपस्या में विघ्न होगा। तुम लोगों की ममता से हमारी तपस्या क्षीण हो रही है। हम लोगों के परलोकगमन में अब अधिक दिन बाक़ी नहीं हैं, अतएव तुम लोग राजधानी को लौट जाओ।

कुन्ती के इस प्रकार समझाने पर सहदेव और राजा युधिष्ठिर का चित्त शान्त हो गया। अब पाण्डवों ने अन्धराज धृतराष्ट्र के पास आकर उनको प्रणाम किया। राजा युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज, आप हम लोगों को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा देते हैं इसलिए हम लोग नगर को लौट जायँगे।

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने उनको आशीर्वाद दिया; भीमसेन को सान्त्वना दी; अर्जुन, नकुल और सहदेव को गले से लगाकर हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दी। इसके बाद पाण्डवों ने गान्धारी से बिदा माँगकर उन्हें प्रणाम किया। कुन्ती ने पाण्डवों का माथा सूँघकर उन्हें छाती से लगाया। अब पाण्डवों ने धृतराष्ट्र की प्रदक्षिणा की और बार-बार उनकी ओर देखकर हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। द्रौपदी आदि स्त्रियाँ ससुर और दोनों सासुओं को प्रणाम करके, उनसे कर्तव्य का उपदेश लेकर, पाण्डवों के साथ हस्तिनापुर को चलीं। उस समय ऊँटों के बलबलाने और घोड़ों के हिनहिनाने का शब्द आश्रम में भर गया और सारथी कोलाहल करने लगे कि 'घोड़े जोतो, घोड़े जोतो'। इस प्रकार राजा युधिष्ठिर भाइयों, स्त्रियों और
५३ सैनिकों समेत हस्तिनापुर को निर्विघ्न लौट गये।

———

नारदागमनपर्व

सैंतीसवाँ अध्याय

नारदजी का हस्तिनापुर जाकर पाण्डवों को धृतराष्ट्र आदि की मृत्यु की सूचना देना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! तपोवन से पाण्डवों के हस्तिनापुर लौट आने पर, दो वर्ष बाद, एक दिन देवर्षि नारद युधिष्ठिर के पास आये। धर्मराज ने यथोचित सत्कार करके उनको आसन दिया। नारदजी के बैठ जाने पर धर्मराज ने कुशल पूछकर कहा—भगवन्, बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए। आप किन देशों में भ्रमण करते हुए आ रहे हैं? आप हम लोगों की परम गति हैं। कहिए, मेरे लिए क्या आज्ञा है।

देवर्षि नारद ने कहा—महाराज, यह न कहिए कि मैं बहुत दिनों बाद तुमसे मिला हूँ। [धृतराष्ट्र के आश्रम पर मैंने तुमको देखा ही था।] मैं इस समय गङ्गाजी और अन्य तीर्थों को देखता हुआ धृतराष्ट्र के तपोवन से आ रहा हूँ।

धर्मराज ने पूछा—भगवन्, गङ्गा-तट के निवासी महात्मा मुझसे कहा करते हैं कि तुम्हारे चाचा महात्मा धृतराष्ट्र तप कर रहे हैं। इस समय वे, माता गान्धारी, कुन्ती और सञ्जय कैसे हैं? आपने उन लोगों को सकुशल देखा हो तो उनका हाल कहिए। मैं बहुत उत्सुक हूँ।

नारदजी ने कहा—राजन्, मैंने धृतराष्ट्र के तपोवन में जो कुछ देखा-सुना है वह सब कहता हूँ। तपोवन से
पर ब्राह्मण, पुरोहित,
धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र से
का भक्षण करते हुए
कठिन तपस्या करते
केवल हड्डियाँ और च १२
ने वहाँ उनका बड़ा स
ने केवल जल पीकर,
एक दिन भोजन और
बाद एक दिन भोजन
ऋत्विज् ब्राह्मणों ने



इस प्रकार छः महीने बीतने पर धृतराष्ट्र तपोवन को लौटे। महात्मा सञ्जय धृतराष्ट्र को और तुम्हारी माता कुन्ती गान्धारी को हाथ पकड़कर आश्रम पर ले गईं। उसके बाद एक दिन धृतराष्ट्र गङ्गा-स्नान करके अपने आश्रम

को जा रहे थे कि उसी समय वन में आग लगी। प्रचण्डवायु की सहायता से प्रज्वलित दावानल
वन को भस्म करने लगा। मृगों के झुण्ड और साँप आदि सब जीव जलकर मरने लगे। वराह
२८ व्याकुल होकर जलाशयों में कूद पड़े। गान्धारी, कुन्ती और राजा धृतराष्ट्र अनशन करने से
बहुत दुर्बल हो गये थे, इसलिए वे लोग भागकर उस विपत्ति से अपनी रक्षा न कर सके। जब
आग उनके पास आ गई तब धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—तुम शीघ्र यहाँ से भागकर अपनी
रक्षा करो। मैं इसी अग्नि में शरीर त्यागकर परम गति प्राप्त करूँगा।

यह सुनकर महात्मा सञ्जय ने कहा—महाराज, इस वृथा अग्नि द्वारा प्राण त्यागने से
आपको सद्गति मिलने की सम्भावना नहीं है और इस अग्नि से आपकी रक्षा होने का भी कोई
उपाय नहीं देख पड़ता। शीघ्र बतलाइए कि इस समय क्या किया जाय।

"सञ्जय, मैंने गृहस्थाश्रम त्याग दिया है। अब इस दावानल में प्राण त्याग देने से मेरा
अनिष्ट न होगा। जल, वायु या अग्नि के संयोग से अथवा प्रायोपवेशन करके प्राण त्यागना
तो तपस्वियों का कर्तव्य है। तुम शीघ्र यहाँ से भाग जाओ।" यह कहकर गान्धारी
और कुन्ती समेत कौरवराज धृतराष्ट्र, पूर्व की ओर मुँह करके, बैठ गये। उनकी यह दशा देख-
कर सञ्जय ने प्रदक्षिणा करके उनसे आत्मसंयम करने (समाधि लगाने) को कहा। यह सुनकर
३० धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती ने शीघ्र आत्मसंयम कर लिया। इन्द्रियों को रोक लेने से उन
लोगों का शरीर काठ के समान निश्चल हो गया। इसके बाद दावानल आ जाने पर उन
तीनों ने प्राण त्याग दिये। महात्मा सञ्जय बड़ी कठिनता से भागकर, किसी तरह उस आग से
प्राण बचाकर, गङ्गा-किनारे महर्षियों के पास पहुँचे। उनसे यह सब वृत्तान्त कहकर वे हिमालय
पर्वत पर चले गये। मैं उस समय उन्हीं महर्षियों के पास बैठा था। सञ्जय के मुँह से वह
वृत्तान्त सुनकर, तुम लोगों को सूचना देने के लिए, यहाँ आया हूँ। आते समय धृतराष्ट्र,
गान्धारी और कुन्ती का दग्ध शरीर मैंने देखा है। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर अनेक
तपस्वी उस वन में गये थे। उन्होंने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के परलोकवास का यह
समाचार सुनकर—उनको सद्गति न मिलने की आशंका करके—शोक नहीं किया है। महर्षियों
के मुँह से भी मैंने उनकी मृत्यु का वृत्तान्त सुना है। धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती ने अपनी
इच्छा से अग्नि में शरीर त्याग दिया है, अतएव तुम उनके लिए शोक मत करो।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, धृतराष्ट्र आदि की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर पाण्डवों
४० को बड़ा दुःख हुआ। रनिवास में हाहाकार मच गया। नगरनिवासी शोक से व्याकुल
होकर रोने लगे। राजा युधिष्ठिर और उनके सब भाई माता का स्मरण करके, ऊपर को हाथ
४५ उठाकर, ज़ोर-ज़ोर से बारबार 'हमें धिक्कार है' कहकर रोने लगे।

अड़तीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र आदि की मृत्यु का समाचार सुनकर पाण्डवों का दुःखित होना

[नगरनिवासियों और रनिवास की स्त्रियों के रोने का शब्द बन्द होने पर] धर्मराज युधिष्ठिर ने धैर्य धरकर देवर्षि नारद से कहा—भगवन्! हम लोगों के जीवित रहने पर तपस्या करते हुए महात्मा धृतराष्ट्र अनाथ की तरह दावानल में भस्म हो गये, इससे बढ़कर निन्दा की बात मेरे लिए और क्या होगी? जब महाप्रतापी धृतराष्ट्र वन में जल गये तब जान पड़ता है कि मनुष्यों की गति अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। हाय! जिन महात्मा के सौ पुत्र थे और जिनमें दस हज़ार हाथियों का पराक्रम था वे दावानल में भस्म हो गये। परम सुन्दरी स्त्रियाँ जिनके पास बैठकर ताड़ के पङ्खों से हवा किया करती थीं, उन पर आज दावानल में भस्म हो जाने से, गिद्ध अपने परों द्वारा हवा करते होंगे। जो धृतराष्ट्र सूत और मागधों की स्तुति सुनकर जागते थे वे आज, इस नराधम के दोष से, पृथिवी पर मरे पड़े होंगे। [पु]त्रहीना माता गान्धारी के लिए मुझे शोक नहीं है; वे पति की अनुगामिनी होकर पतिलोक [को] गई हैं। मेरा हृदय तो उन माता कुन्ती का स्मरण करके शोकानल में भस्म हुआ जा [र]हा है जो अपने पुत्रों की राजलक्ष्मी छोड़कर वन को चली गई थीं। हम लोगों के राज्य, [ब]ल, पराक्रम और क्षत्रिय-धर्म को धिक्कार है। हम लोग मुर्दे के समान हैं। हाय, काल [क]ी गति बड़ी सूक्ष्म है। देखिए न, मनस्विनी कुन्ती मेरी, भीमसेन की और अर्जुन की माता होकर—राज्य-सम्पद् छोड़कर—वन में अनाथ की तरह आग में जल गईं। उनका स्मरण करके मैं व्याकुल हो उठता हूँ। अर्जुन ने खाण्डव वन देकर अग्नि को व्यर्थ सन्तुष्ट किया था। मैंने भली भाँति समझ लिया है कि अग्नि के समान कृतघ्न कोई नहीं है। जिन अग्नि- १०
देव ने ब्राह्मण का रूप धारण करके अर्जुन से प्रार्थना की थी उन्हीं ने किस तरह मेरी माता को भस्म कर दिया! अग्नि को और अर्जुन की सत्य प्रतिज्ञा को धिक्कार है! धृतराष्ट्र ने वृथा अग्नि में शरीर त्याग दिया, यह स्मरण करके मैं घबरा उठता हूँ। उस तपोवन में तपस्या कर रहे महाराज धृतराष्ट्र का मन्त्र-पवित्र अग्नि मौजूद था, फिर वृथा अग्नि में उनकी मृत्यु क्यों हो गई? जान पड़ता है कि जब मेरी माता के चारों ओर आग आ गई होगी तब वे डरकर 'हा धर्मराज, हा भीमसेन, शीघ्र दौड़ आओ' कहकर चिल्लाने लगी होंगी। और पुत्रों की अपेक्षा वे सहदेव को अधिक चाहती थीं, किन्तु उन्होंने भी उस समय आग से उनको न बचाया।

यों कहकर धर्मराज युधिष्ठिर दीन भाव से रोने लगे। भीमसेन आदि सब भाई, शोक से व्याकुल होकर, प्रलयकाल के समय प्राणियों की तरह परस्पर लिपटकर रोने लगे। उनके रोने का शब्द राजभवन में प्रतिध्वनित होकर आकाशमण्डल में छा गया। २१

उनतालीसवाँ अध्याय

पाण्डवों का धृतराष्ट्र आदि की अन्त्येष्टि क्रिया करके उनकी हड्डियाँ गङ्गाजी में पहुँचा देना

[इस प्रकार पाण्डवों के दुःखित होने पर] देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, तुम्हारे चाचा धृतराष्ट्र वृथा अग्नि में भस्म नहीं हुए हैं। मैंने गङ्गातीरनिवासी महर्षियों से सुना है कि धृतराष्ट्र गङ्गा-किनारे से लौटकर जब आश्रम पर गये थे तब उन्होंने यज्ञ करके यज्ञ की आग वहीं छोड़ दी थी। उस अग्नि को निर्जन वन में छोड़कर याजक लोग अपने-अपने स्थान को चले गये। वही आग फैलकर सम्पूर्ण वन को जलाने लगी। उसी, अपने यज्ञ की, आग में भस्म होकर राजा धृतराष्ट्र श्रेष्ठ लोक को गये हैं। उनके लिए शोक मत करो। तुम्हारी माता कुन्ती भी धृतराष्ट्र और गान्धारी की सेवा करके सिद्ध हो गई थीं। अब भाइयों समेत जाकर उन सबका तर्पण करो।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! नारदजी के समझाने पर धर्मराज युधिष्ठिर अपने
१ भाइयों, स्त्रियों और राजभक्त पुरवासियों समेत सिर्फ़ धोती पहने हुए गङ्गा-किनारे गये। उन्होंने युयुत्सु को आगे करके भागीरथी के पवित्र जल में पैठकर—शास्त्र के अनुसार—धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती को जलदान किया। तर्पण करके वहाँ से लौटकर जब सब लोग हस्तिनापुर के समीप आये तब धर्मराज ने विधि जाननेवाले विश्वासपात्र मनुष्यों से कहा—सज्जनो, जिस तपोवन में महाराज धृतराष्ट्र भस्म हो गये हैं वहाँ जाकर तुम लोग उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया करो।

कुछ लोगों को वहाँ भेजकर धर्मराज युधिष्ठिर नगर के बाहर ठहर गये। बारहवें दिन पवित्र होकर उन्होंने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती का श्राद्ध करके ब्राह्मणों को दक्षिणा दी उन्होंने धृतराष्ट्र के उद्देश से सोना, चाँदी, गायें और बहुमूल्य शय्याएँ दीं तथा गान्धारी और कुन्ती का नाम लेकर उत्तम दान किया। उस समय ब्राह्मणों ने शय्या, भोज्य वस्तुएँ, मणि, रत्न, सवारी, वस्त्र और अलंकृत दासियाँ आदि जो कुछ जितना माँगा वह सब युधिष्ठिर ने, गान्धारी और
० अपनी माता कुन्ती के उद्देश से, उनको दिया। इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और सब मनुष्यों के साथ नगर में गये। उनकी आज्ञा से जो मनुष्य धृतराष्ट्र के तपोवन को गये थे वे धृतराष्ट्र आदि के फूलों (हड्डियों) को गन्ध और माला आदि में रख करके गङ्गाजी में बहा आये। उन लोगों ने युधिष्ठिर से सब वृत्तान्त कह सुनाया। इस प्रकार सब काम हो जाने पर देवर्षि नारद, युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर, अपने स्थान को चले गये। धर्मराज को राज-काज करते समय भी धृतराष्ट्र, गान्धारी और अपनी माता की मृत्यु का दुःख बना रहता था। इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र-युद्ध के बाद—संग्राम में निहत अपने पुत्रों, सजातियों और सम्बन्धियों के
७ उद्देश से विविध वस्तुएँ दान करके—पन्द्रह वर्ष नगर में और तीन वर्ष वन में जीवित रहे।



महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

मौसलपर्व



पहला अध्याय

छत्तीसवें वर्ष युधिष्ठिर को अनेक अशकुन देख पड़ना और वृष्णिवंश के विनाश का समाचार मिलना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, इसके बाद छत्तीसवें वर्ष धर्मराज युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के अशकुन दीखने लगे। धूल उड़ाती हुई आँधी चलने लगी। झुण्ड के झुण्ड पक्षी आकाश में दाहिनी ओर उड़ते दीखने लगे। बड़ी-बड़ी नदियों का जल सूख गया और सब दिशाओं में कुहरा छा गया। अङ्गार बरसाती हुई उल्काएँ आकाश से गिरने लगीं। धूल के मारे सूर्य का प्रकाश छिप गया। उदय के समय सूर्य में तेज नहीं रहता था और सूर्य के मण्डल में कबन्ध देख पड़ते थे। सूर्य और चन्द्रमा का मण्डल लाल, काला और धूसर रङ्ग का दीखने लगा। इस प्रकार के और भी अनेक अशकुन देखकर युधिष्ठिर बहुत घबराने लगे। कुछ दिनों बाद उन्हें ख़बर मिली कि मूसल के प्रभाव से वृष्णिवंश का नाश हो गया और श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाई अब इस लोक में नहीं हैं। तब धर्मराज ने भाइयों को बुलाकर कहा—हे वीरो, ब्राह्मण के शाप से वृष्णिवंश का नाश हो गया है। अब क्या करना चाहिए ?

वृष्णिवंश के विनाश का वृत्तान्त सुनकर भीमसेन आदि सभी बड़े दुखी हुए। श्रीकृष्ण की मृत्यु का समाचार तो समुद्र सूख जाने के समान उनको असत्य जान पड़ने लगा। उस समय पाण्डव कर्तव्यविमूढ़ और शोक से व्याकुल होकर बहुत दुःखित हुए।

जनमेजय ने पूछा—भगवन्! महात्मा श्रीकृष्ण के रहते हुए महारथी अन्धक, वृष्णि और भोजवंशीय किस प्रकार नष्ट हो गये?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! राजा युधिष्ठिर को राज्य प्राप्त होने के छत्तीसवें वर्ष, काल के प्रभाव से, वृष्णिवंश में बड़ी अनीति होने लगी। वे आपस में ही युद्ध करके मर मिटे।

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन्! वृष्णि, अन्धक और भोजवंश के महावीर किसके शाप से इस प्रकार आपस में युद्ध करके नष्ट हो गये हैं?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! एक बार महर्षि विश्वामित्र, कण्व और तपोधन नारद द्वारका को गये। सारण आदि कुछ महावीरों ने उनको देखकर, दैव के कोप से, साम्ब को स्त्री के वेष में उनके पास ले जाकर कहा—हे महर्षियो, ये महापराक्रमी बभ्रु की स्त्री हैं। बभ्रु को पुत्र प्राप्त करने की बड़ी लालसा है। आप लोग यह बतलाइए कि इस स्त्री के क्या उत्पन्न होगा?

यह सुनकर सर्वज्ञ ऋषियों ने, उनकी इस धूर्तता से कुपित होकर, कहा—हे मूर्खो! श्रीकृष्ण का पुत्र यह साम्ब, वृष्णि और अन्धक वंश का नाश करने के लिए, एक लोहे का घोर मूसल प्रसव करेगा। उस मूसल से बलदेव और श्रीकृष्ण को छोड़कर सम्पूर्ण यादवों
० का नाश हो जायगा। महात्मा बलदेव तो (योग के बल से) शरीर त्यागकर समुद्र में प्रविष्ट हो जायँगे और श्रीकृष्ण पृथिवी पर लेट रहेंगे; उसी समय जरा नामक व्याध का बाण लगने से वे भी परलोक को चले जायँगे।

सारण आदि से यों कहकर कुपित महर्षि लोग श्रीकृष्ण के पास गये। ऋषियों के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर और उसे अवश्यम्भावी समझकर श्रीकृष्ण ने यादवों से कहा कि महर्षियों के वचन असत्य नहीं हो सकते। उस शाप के निवारण का कोई उपाय न करके श्रीकृष्ण घर को चले गये। दूसरे दिन साम्ब के, वृष्णि और अन्धक वंश का नाश करनेवाला, एक घोर मूसल पैदा हुआ। मूसल उत्पन्न होने का वृत्तान्त राजा से कहा गया। उन्होंने उस मूसल को चूर्ण-चूर्ण करके समुद्र में फेंकवा दिया। इसके बाद आहुक, श्रीकृष्ण, बलदेव और बभ्रु की आज्ञा से नगर में यह घोषणा कर दी गई कि आज से कोई मनुष्य मदिरा न बनावे। यदि कोई छिपाकर मदिरा बनावेगा तो वह, बान्धवों समेत, शूली पर चढ़ा दिया
३१ जायगा। यह घोषणा सुनकर नगर-निवासियों ने मदिरा बनाना छोड़ दिया।

दूसरा अध्याय

यादवों के विनाश का वर्णन। द्वारका में अनेक अशकुन देखकर, श्रीकृष्ण की आज्ञा से, यादवों का प्रभास तीर्थ में जाने की तैयारी करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! अन्धक और वृष्णि वंश के लोगों के ये सब उपाय कर चुकने पर कृष्ण और पिङ्गल वर्ण का, सिर मुँड़ाये, भयङ्कर स्वरूपवाला काल उनके घरों में घूमने लगा। वे लोग कभी-कभी तो उस भयानक काल-पुरुष को देख लेते थे और कभी वह उनको नहीं देख पड़ता था। इस पुरुष को देखते ही वे लोग उस पर हज़ारों बाण चलाते थे; किन्तु किसी तरह उसे नहीं मार सकते थे। इसके बाद यदुवंश के विनाश की सूचना देनेवाले भयङ्कर अशकुन होने लगे। प्रतिदिन बड़े वेग से आँधी आने लगी। मार्ग में चूहे और मिट्टी के टूटे बर्तन देख पड़ने लगे। रात को घर में सोये हुए मनुष्यों के केश और नख काटकर चूहे खा जाते थे। घरों में मैनाएँ दिन-रात चीं-चीं किया करती थीं। वे किसी समय दम नहीं लेती थीं। सारस उलूक की और बकरे गीदड़ों की बोली में चिल्लाने लगे। लाल पैरोंवाले पाण्डु वर्ण के कबूतर, काल के प्रभाव से, यादवों के घरों में घूमने लगे। गाय के गर्भ से गधा, खच्चरी के गर्भ से हाथी या ऊँट का बच्चा, कुतिया के गर्भ से बिलाव और न्योली के गर्भ से चूहा पैदा होने लगा। उस समय श्रीकृष्ण और बलदेव के सिवा यदुवंश के सब लोग ब्राह्मणों, देवताओं और पितरों से द्वेष करने लगे। वे लज्जा छोड़कर पापकर्म और गुरुजनों का अपमान करने लगे।
पति स्त्री को और स्त्री पति को धोखा देने लगी। याजकों द्वारा प्रज्वलित अग्नि की शिखा हरे, ११
नीले और लाल रङ्ग की होकर बाईं ओर को चलने लगी। प्रतिदिन, उदय और अस्त के समय, सूर्य कबन्धों से घिरे हुए मालूम पड़ने लगे। भोजन के समय भोज्य सामग्री में हज़ारों कीड़े देख पड़ने लगे। महात्माओं के जप और पुण्याहवाचन करते समय हज़ारों के दौड़ने का शब्द तो सुन पड़ता था, किन्तु कहीं कोई दिखाई न पड़ता था। यादवगण सब नक्षत्रों को आपस में लड़ते देखते थे; किन्तु अपने जन्म का नक्षत्र किसी को नहीं देख पड़ता था। उनके घर पाञ्चजन्य शङ्ख बजने पर चारों ओर गधे रेंकने लगते थे।

इसके बाद एक बार तेरह दिन का कृष्णपक्ष तथा त्रयोदशी और अमावास्या का संयोग होने पर श्रीकृष्ण ने, यह अशुभ लक्षण देखकर, यादवों से कहा—हे वीरो, कुरुक्षेत्र-युद्ध के समय जिस प्रकार राहु ने सूर्य को ग्रस लिया था उसी प्रकार अब हम लोगों की मृत्यु का सूचक यह दिन आ गया है। यों कहकर श्रीकृष्ण मन में बड़ी चिन्ता करने लगे। उस समय
कुरुक्षेत्र-युद्ध के छत्तीस वर्ष पूरे हो चुके थे। उन्होंने सोचा कि पुत्रशोक से पीड़ित गान्धारी ने २०
जो कहा था उसके सत्य होने का समय आ गया है। सेना के तैयार होने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने भयङ्कर अशकुन देखकर जो कहा था, उसी के अनुरूप अब भी सब बातें देख पड़ती हैं।

यह सब सोचकर श्रीकृष्ण ने, यादवों का नाश करने की इच्छा से, उनको प्रभास तीर्थ की यात्रा करने की आज्ञा दी। श्रीकृष्ण की आज्ञा से प्रभास तीर्थ की यात्रा के लिए
२४ नगर में घोषणा कर दी गई।

तीसरा अध्याय

प्रभास तीर्थ में परस्पर युद्ध करके यादवों का विनष्ट होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, प्रत्येक रात्रि में यादवों को बुरे स्वप्न देख पड़ने लगे। स्त्रियाँ स्वप्न देखने लगीं कि सफ़ेद दाँतोंवाली एक काली स्त्री हँसती हुई उनका मङ्गल-सूत्र (सौभाग्य-चिह्न) लेकर भाग जाती है और पुरुष देखने लगे कि भयङ्कर गिद्ध अग्निहोत्र-गृह में तथा निवास-गृह में उनको खा रहे हैं। इन स्वप्नों को देखकर उनको बड़ी चिन्ता हुई। भयङ्कर राक्षस उनके अलङ्कार, छाते, ध्वज और कवच लेकर भाग जाते थे। अग्नि का दिया हुआ श्रीकृष्ण का वज्रसदृश चक्र, सबके देखते-देखते, आकाश को चला गया। उनके घोड़े, दारुक के सामने ही, सूर्य के समान तेजस्वी रथ को लेकर समुद्र के ऊपर से चले गये। बलदेवजी का तालध्वज और श्रीकृष्ण का गरुड़ध्वज अप्सराएँ उठा ले गईं। वे यादवों को तीर्थयात्रा करने की सलाह देने लगीं। तब सब यादव परिवार समेत प्रभास तीर्थ में जाकर, अलग-अलग घरों में निवास
१० करके, इच्छानुसार मद्य-मांस खाने-पीने लगे।

उस समय योगवेत्ता, अर्थतत्त्वज्ञ, महात्मा उद्धव प्रभास तीर्थ में यादवों के निवास करने की ख़बर पाकर वहाँ गये और उनसे बातचीत करके जब लौटने लगे तब श्रीकृष्ण ने यादवों के विनाश का समय उपस्थित जानकर, उद्धव को वहाँ रोकना उचित न समझकर, उनको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। महात्मा उद्धव श्रीकृष्ण द्वारा सम्मानित होकर, आकाश में अपना तेज फैलाते हुए, वहाँ से चले गये। काल के वशीभूत यादवगण ब्राह्मणों के निमित्त तैयार किया हुआ भोजन, मदिरा मिलाकर, वानरों को दे देते थे। उस समय प्रभास-तीर्थ में नटों, नाचने-वालों और मतवाले मनुष्यों का जमघट था और बाजे बजते रहते थे। श्रीकृष्ण के सामने ही बलदेव, सात्यकि, गद, बभ्रु और कृतवर्मा मदिरा पीने लगे। सात्यकि ने नशे में चूर होकर, कृतवर्मा का उपहास और अपमान करके, कहा—हार्दिक्य, क्षत्रियों में ऐसा निर्दय कोई नहीं है जो सोते हुए मनुष्यों को मार डाले। तुम्हारी करतूत को यादव कभी नहीं सह सकते। महावीर प्रद्युम्न ने भी कृतवर्मा का अपमान करके सात्यकि की बात का समर्थन किया।

यह सुनकर कृतवर्मा को बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने बायाँ हाथ उठाकर सात्यकि और
२० प्रद्युम्न की बातों का तिरस्कार करके कहा—सात्यकि, संग्राम में भुजा कट जाने से वीर भूरिश्रवा के प्रायोपवेशन कर लेने पर तुमने उनका सिर काट डाला था। वीर होकर तुमने ऐसी नृशंसता कैसे की?

कृतवर्मा के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कुपित होकर, तिरछी दृष्टि से, उनकी ओर देखा। तब सात्यकि ने स्यमन्तक मणि का उल्लेख करके बतला दिया कि कृतवर्मा और अक्रूर द्वारा किस प्रकार महाराज सत्राजित् का विनाश हुआ था। सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा, सात्यकि के मुँह से अपने पिता के वध का वृत्तान्त सुनकर, कुपित होकर रोते-रोते श्रीकृष्ण की गोद में गिर पड़ीं और उनका क्रोध बढ़ाने लगीं। तब सात्यकि ने सहसा उठकर सत्यभामा से कहा—कल्याणी! मैं शपथ करके कहता हूँ कि आज इस पापी कृतवर्मा को द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के पास पहुँचा दूँगा। शिविर में सोये हुए मनुष्यों को इस दुरात्मा ने, अश्वत्थामा की सहायता से, मार डाला था। आज मैं इस पापी की आयु और कीर्ति का अन्त कर दूँगा।

अब सात्यकि ने झपटकर, श्रीकृष्ण के सामने ही, खड्ग से कृतवर्मा का सिर काट
डाला। फिर वे अन्य वीरों पर प्रहार करने लगे। श्रीकृष्ण उनको रोकने के लिए दौड़े।
मदिरा के नशे में मतवाले हो रहे भोज और अन्धक वंश के वीरों ने, काल के प्रभाव से मोहित
होकर, सात्यकि को चारों ओर से घेर लिया। श्रीकृष्ण ने, काल की गति देखकर, उन पर क्रोध ३०
नहीं किया। वे सब मिलकर जूठे बर्तनों से सात्यकि को मारने लगे।



सात्यकि को पीड़ित देखकर महारथी प्रद्युम्न, उनकी रक्षा करने के लिए, ढाल रोककर भोजवंशीय वीरों से युद्ध करने लगे। सात्यकि से अन्धकवंशीय वीरों के साथ संग्राम होने लगा। भोज और अन्धक वंशवालों की संख्या अधिक थी, इस कारण सात्यकि और प्रद्युम्न उनको परास्त न कर सके। थोड़ी देर बाद वे दोनों वीर, श्रीकृष्ण के देखते-देखते, भोज और अन्धक वंशवालों के हाथ से मारे गये। सात्यकि और प्रद्युम्न की मृत्यु देखकर कुपित श्रीकृष्ण ने एक मुट्ठी एरका नाम की घास अपने हाथ में ली। श्रीकृष्ण के हाथ में आते ही वह घास मूसल-रूप हो गई। श्रीकृष्ण उस मूसल से भोज और अन्धक वंश के वीरों का संहार करने लगे। उस समय काल के प्रभाव से अन्धक, भोज, शिनि और वृष्णि वंश के सब वीर मूसलों की मार से मरने लगे। जो मनुष्य कुपित होकर

मुट्ठी में घास ले लेता था उसी के हाथ में वह वज्र के समान हो जाती थी। सारांश यह कि उस स्थान की एरका नाम की सब घास, ऋषियों के शाप से, मूसल के रूप में परिणत हो गई। जो वीर कुपित होकर वह घास उखाड़ लेता था उसी के हाथ में मूसल और
४० वज्ररूप होकर वह अभेद्य पदार्थों का भेद कर सकती थी। पिता पुत्र को और पुत्र पिता को मारने लगा। कुकुर और अन्धक वंश के वीर मतवाले होकर, आग में गिरे हुए पतङ्गों की तरह, प्राण त्यागने लगे। किसी ने वहाँ से भागने की इच्छा नहीं की। महात्मा श्रीकृष्ण देखते रहे कि काल के प्रभाव से एरका घास मूसल-रूप होकर सबका विनाश कर रही है। उनके सामने ही साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गद की मृत्यु हो गई। इन सब की मृत्यु देखकर श्रीकृष्ण ने कुपित होकर सब वीरों को मार डाला।

उस समय बभ्रु और दारुक श्रीकृष्ण के पास खड़े थे। सबका नाश हो जाने पर दुःखित होकर उन्होंने कहा—वासुदेव! आपने अनेक वीरों का संहार कर दिया है। अब
४७ चलिए, हम तीनों बलदेवजी के पास चलें।

चौथा अध्याय

श्रीकृष्ण और बलदेवजी का शरीर त्यागकर इस लोक से चला जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, बभ्रु और दारुक की बात मानकर श्रीकृष्ण शीघ्रता के साथ बलदेवजी के पास गये। महावीर बलदेवजी निर्जन स्थान में एक वृक्ष के नीचे बैठे सोच-विचार कर रहे थे। उनकी वह दशा देखकर श्रीकृष्ण ने दारुक से कहा—हे सारथी, तुम तुरन्त हस्तिनापुर जाकर अर्जुन से यादवों के विनाश का वृत्तान्त कहो। यह ख़बर पाकर वे द्वारका को जायँगे।

आज्ञा पाते ही दारुक रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर को गया। इधर श्रीकृष्णजी ने बभ्रु से कहा कि तुम इसी दम स्त्रियों की रक्षा के लिए जाओ। धन के लोभ से डाकू कहीं स्त्रियों की हत्या न कर डालें। महावीर बभ्रु एक तो मदिरा के नशे में थे, दूसरे अपने आत्मीयों का नाश हो जाने से बड़े दुःखित थे, इस कारण वे श्रीकृष्ण के पास ही बैठकर विश्राम कर रहे थे। श्रीकृष्ण की आज्ञा से ज्योंही वे स्त्रियों की रक्षा के लिए चले त्योंही ऋषियों के शाप से उत्पन्न मूसल, एक व्याध के लोहमय मुद्गर में बँधा हुआ, बभ्रु के ऊपर गिरा। इससे उसी दम उनकी मृत्यु हो गई।

अब बलदेवजी से यह कहकर कि "महात्मन्, मैं जब तक स्त्रियों की रक्षा का भार किसी को सौंपकर लौट न आऊँ तब तक आप इसी स्थान पर मेरी प्रतीक्षा कीजिएगा", श्रीकृष्ण द्वारका को गये और वहाँ वसुदेवजी से कहने लगे—पिताजी, जब तक अर्जुन यहाँ न आ जायँ तब तक आप स्त्रियों की रक्षा कीजिए। भाई बलदेवजी वन में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं,

मैं उनके पास जाता हूँ। पहले मैंने कुरुक्षेत्र-युद्ध में कौरवों और अन्य राजाओं का विनाश देखा था, अब मुझे यदुवंश का नाश देखना पड़ा। यादवों से विहीन द्वारका पुरी मुझसे देखी नहीं जाती। मैं वन में जाकर बलदेवजी के साथ तपस्या करूँगा।

महामति श्रीकृष्ण पिता से यों कहकर, उनको प्रणाम करके, शीघ्र वन को चले। घर से १०
उनके निकलते ही बालक और स्त्रियाँ दीन भाव से रोने लगीं। उनके रोने का शब्द सुनकर श्रीकृष्ण फिर लौट आये और उनसे कहने लगे—वीर अर्जुन यहाँ आवेंगे। वे तुम लोगों की रक्षा करेंगे। [तुम लोग रोओ मत।]

अब श्रीकृष्ण ने वन में जाकर देखा कि बलदेवजी समाधि लगाये बैठे हैं और उनके मुँह से सफ़ेद रङ्ग का एक बड़ा सा साँप निकल रहा है। उस साँप के हज़ार सिर हैं और उसका मुँह लाल है। देखते ही देखते साँप बलदेवजी के मुँह से निकलकर समुद्र की ओर चला। उसे देखकर समुद्र, पवित्र नदियाँ, जलाधिपति वरुण तथा कर्कोटक, वासुकि, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, उग्रतेजा, चक्रमन्द, अतिपण्ड, दुर्मुख और अम्बरीष आदि नाग उस सर्प का स्वागत करके, कुशल पूछकर, पाद्य और अर्घ्य द्वारा उसकी पूजा करने लगे। इधर बलदेवजी के मुँह से सर्प के निकल जाने पर उनका शरीर निश्चेष्ट हो गया। तब दिव्य दृष्टिवाले सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई की मृत्यु देखकर, चिन्ता से व्याकुल होकर, उस निर्जन वन में घूमते-घूमते एक स्थान पर जा बैठे। गान्धारी ने जो कहा था और पैर के तलवों में जूठी खीर न लगाने से दुर्वासा ने उनसे जो वचन कहे थे, वे सब बातें उन्हें स्मरण हो आईं। तब वे दुर्वासा [, नारद और कण्व आदि महर्षियों] के वचनों का पालन करने और तीनों लोकों की रक्षा के लिए—देवता (अमर) होने पर भी देह त्यागने, मृत्युलोक त्यागने, की आवश्यकता समझकर—इन्द्रियों का संयम और
योग का अवलम्बन करके पृथिवी पर लेट रहे। उसी समय जरा नाम का व्याध, हिरन २१
का शिकार करने के लिए, उधर आ रहा था। उसने दूर से श्रीकृष्ण को देखकर, उन्हें मृग समझकर, बाण चला दिया। वह बाण श्रीकृष्ण के तलवे में लगा। मृग पकड़ने की इच्छा से दौड़कर वह व्याध श्रीकृष्ण के पास आया। उसने देखा कि अनेकबाहुयुक्त, पीताम्बरधारी, योगासन लगाये लेटा हुआ, कोई पुरुष उसके बाण से घायल हो गया है। यह देखकर व्याध अपने को अपराधी समझकर डर के मारे श्रीकृष्ण के पैरों पर गिर पड़ा। महात्मा श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन देकर, अपने तेज से आकाश को प्रकाशित करते हुए, स्वर्गलोक की यात्रा की। इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओं ने उनका स्वागत किया। उनसे सम्मानित होकर भगवान् नारायण अपने अप्रमेय स्थान को गये। देवता, महर्षि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा और साध्यगण उनकी यथोचित

पूजा करने लगे; मुनिगण ऋग्वेद का पाठ करके और गन्धर्व गाकर उनकी स्तुति करने लगे।
२८ इन्द्र ने प्रसन्न होकर उनका अभिनन्दन किया।

पाँचवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का सन्देश पाकर अर्जुन का द्वारका को जाना और वहाँ की दशा देखकर रोते-रोते पृथिवी पर गिर पड़ना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इधर दारुक ने हस्तिनापुर जाकर पाण्डवों से यादवों के विनाश का सब वृत्तान्त कहा। भोज, अन्धक, वृष्णि और कुकुर वंश के वीरों की मृत्यु का हाल सुनकर पाण्डवों को बड़ा भय और शोक हुआ।

श्रीकृष्ण के प्रिय सखा अर्जुन, भाइयों से सलाह करके, मामा वसुदेवजी को देखने के लिए दारुक के साथ द्वारका को चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि द्वारका अनाथ स्त्री के समान दीन हो रही है। श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ पति के वियोग में बहुत दुखी हैं। उनकी सोलह हज़ार स्त्रियाँ अर्जुन को देखकर हाहाकार करके रोने लगीं। पति और पुत्र से हीन स्त्रियों का आर्तनाद सुनकर अर्जुन की आँखों में आँसू भर आये, इससे वे कुछ देख न सके। उस समय वीर-शून्य द्वारका पुरी वैतरणी नदी के समान जान पड़ने लगी। वृष्णि और अन्धक वंशवाले उसका जल घोड़े मत्स्य, रथ डोंगी, बाजों और रथों के शब्द प्रवाह, घर की सीढ़ियाँ गहरे कुण्ड, रत्न सेवार, कोट कगारे और मार्ग भँवर, चबूतरे ठहरा हुआ जल तथा बलदेव और श्रीकृष्ण भारी नक्र के
१० समान जान पड़ने लगे। श्रीकृष्ण की स्त्रियों को, शिशिर ऋतु की कमलिनी के समान, मुरझाई हुई देखकर अर्जुन रोते-रोते पृथिवी पर गिर पड़े। सत्यभामा और रुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण की रानियाँ अर्जुन के चारों ओर बैठकर रोने लगीं। इसके बाद स्त्रियाँ अर्जुन को उठाकर, सुवर्णमय आसन पर बैठाकर, उनके पास बैठ गईं। अर्जुन मन ही मन श्रीकृष्ण का स्मरण करके,
१५ उनकी स्त्रियों को समझा-बुझाकर, मामा वसुदेवजी को देखने उनके घर गये।

छठा अध्याय

अर्जुन और वसुदेवजी की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अर्जुन ने वसुदेवजी के घर जाकर देखा कि वे पुत्रशोक से व्याकुल पड़े हुए हैं। उनकी दशा देखकर अर्जुन को और भी दुःख हुआ। दुःखित अर्जुन ने रोकर मामा के पैर छुए। वसुदेवजी अपने भानजे अर्जुन को आया हुआ देखकर, दुर्बलता के कारण, उनका सिर न सूँघ सके। उनको गले से लगाकर—पुत्रों, पौत्रों, नातियों और सजातीयों के लिए रो-रोकर—वे कहने लगे—अर्जुन, जिन वीरों ने असंख्य राजाओं और दानवों

को परास्त कर दिया था उनको न देखकर भी मैं आज जीवित हूँ। तुम जिन प्रद्युम्न और सात्यकि को अपना प्रिय शिष्य समझकर हमेशा उनकी प्रशंसा किया करते थे, जो वृष्णिवंश के अतिरथी कहलाते और श्रीकृष्ण के बड़े प्रिय थे, उन्हीं की दुर्नीति के कारण इस समय यादवों का विनाश हो गया। अथवा उनको क्या दोष दूँ, ब्रह्मशाप ही इस अनर्थ का मूल कारण है। जिन श्रीकृष्ण ने महापराक्रमी केशी, कंस, शिशुपाल, निषादराज एकलव्य, काशिराज, कालिङ्ग-गण, मागध, गान्धार, प्राच्य, दाक्षिणात्य और पहाड़ी राजाओं को मार डाला था उन्होंने भी,
यदुकुल का नाश होते देखकर, कुछ परवा न की। तुम, देवर्षि नारद और अन्यान्य महर्षि १२.
जिनको सनातन देवदेव कहते थे उन्होंने अपनी आँखों से यादवों का नाश होते देखकर भी उपेक्षा की। जान पड़ता है कि वे गान्धारी के और ऋषियों के वचनों को व्यर्थ करना नहीं चाहते थे। अश्वत्थामा के महास्त्र द्वारा जब तुम्हारा पौत्र परिक्षित् मृत्यु को प्राप्त हुआ था तब उन्होंने उसे जिला दिया था, किन्तु इस समय अपने सजातीयों की रक्षा करने की उनकी इच्छा न हुई। जब उनके पुत्र, पौत्र, भाई और मित्र सब मर गये तब उन्होंने मेरे पास आकर कहा कि आज यदुकुल का नाश हो गया। मेरे प्रिय मित्र अर्जुन द्वारका को आवेंगे। उनसे यह सब वृत्तान्त कह दीजिएगा। मैंने अर्जुन के पास दूत भेज दिया है। यह भयङ्कर समाचार
पाकर वे अवश्य आवेंगे। अर्जुन में और मुझमें कोई भेद नहीं है। अतएव वे यहाँ आकर जो २०.
कुछ कहें, वही कीजिएगा। वही आपकी और्ध्वदेहिक क्रिया और इन बालकों तथा स्त्रियों की रक्षा करेंगे। वे जब यहाँ से लौटेंगे तब यह द्वारका पुरी समुद्र में डूब जायगी। अब मैं बलदेवजी के साथ किसी पवित्र स्थान में रहकर तपस्या करूँगा। मैं भी वहीं अपना शरीर त्याग दूँगा।

महापराक्रमी श्रीकृष्ण यह कहकर, बालकों समेत मुझे यहाँ छोड़कर, न मालूम कहाँ चले गये। शोक से व्याकुल होकर मैं दिन-रात बलदेव, श्रीकृष्ण और सब कुटुम्बियों का स्मरण करके निराहार दिन काट रहा हूँ। अब मुझे भोजन करने और जीने की इच्छा नहीं है। बड़े भाग्य की बात है कि तुमसे इस समय भेंट हो गई। अब तुम श्रीकृष्ण के कहने के अनुसार काम करो। यह राज्य, स्त्रियाँ और सब रत्न तुम्हारे अधीन हैं। मैं शीघ्र ही
तुम्हारे सामने प्राण त्याग दूँगा। २८

सातवाँ अध्याय

वसुदेवजी की मृत्यु। उनका और्ध्वदेहिक कर्म करके अर्जुन का यदुवंश की स्त्रियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ को चलना और मार्ग में डाकुओं द्वारा स्त्रियों का छिन जाना।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, वसुदेवजी के ये वचन सुनकर वीर अर्जुन ने उदास होकर कहा—मामाजी, श्रीकृष्ण और अन्य वृष्णिवंशीय वीरों से शून्य यह द्वारका पुरी मुझसे

देखी नहीं जाती। धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और मैं, छहों का मन एक है। [यदुकुल के विनाश की ख़बर पाकर उन लोगों को भी मेरे ही समान दुःख हुआ है।] महाराज युधिष्ठिर का भी मृत्युलोक से प्रस्थान करने का समय आ गया है। [अतएव अब यहाँ अधिक दिन ठहरना मुझे उचित नहीं है।] वृष्णिवंश की स्त्रियों और बालकों को लेकर मैं शीघ्र हस्तिनापुर को चला जाऊँगा।

"दारुक, मैं वृष्णिवंशीय मन्त्रियों से मिलना चाहता हूँ। तुम शीघ्र मुझे उनके पास ले चलो।" अर्जुन दारुक से यों कहकर उसके साथ यादवों के लिए शोक करते-करते उनकी सभा में गये। सभा में उनके बैठने पर मन्त्री और वेदवेत्ता ब्राह्मण लोग भी उनको चारों ओर से घेरकर बैठ गये। दुखी अर्जुन ने उन दीनचित्त किंकर्तव्यविमूढ़ मनुष्यों से कहा—सज्जनो, मैं यादवों के परिवार को इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा। श्रीकृष्ण के पौत्र वज्र उस नगर के राजा होकर तुम लोगों की रक्षा करेंगे। इस नगर को शीघ्र ही समुद्र डुबा देगा अतएव तुम लोग शीघ्र रथ और अन्य सवारियाँ तैयार कराओ तथा माल-असबाब
११ साथ ले लो। आज के सातवें दिन प्रातःकाल हम लोगों को इस नगर से बाहर हो जाना चाहिए इसलिए झटपट तैयारी करो।

यह सुनकर वे लोग शीघ्र तैयारी करने लगे। शोक से पीड़ित अर्जुन उस रात को श्रीकृष्ण के घर में सोये। दूसरे दिन प्रातःकाल वसुदेवजी ने, योग का अवलम्बन करके, शरीर त्याग दिया। उनकी मृत्यु होने पर महलों में घोर आर्त्तनाद होने लगा। [बस्ती भर में हाहाकार मच गया।] स्त्रियाँ आभूषण और मालाएँ उतारकर, छाती पीट-पीटकर, रोने लगीं। उनके केश बिखर गये। सजी हुई अरथी पर वसुदेव की लाश को रखकर अर्जुन घर से बाहर
२० ले आये। नगर-निवासी दुःख से व्याकुल होकर जहाँ-तहाँ से अरथी के पीछे हो लिये। नौकर सफ़ेद छाता और याजक प्रज्वलित अग्नि लेकर अरथी के आगे चले। देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा, ये चार स्त्रियाँ—पति के साथ सती होने के लिए—दिव्य आभूषण पहनकर अनेक स्त्रियों के साथ अरथी के पीछे चलीं। जीवित अवस्था में वसुदेवजी को जो स्थान पसन्द था वहीं पर उनके सम्बन्धियों ने उनका दाह-कर्म किया। देवकी आदि उनकी चारों स्त्रियाँ चिता पर बैठ गईं। अर्जुन ने चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं के द्वारा स्त्रियों समेत वसुदेवजी का दाह-कर्म कराया। उस समय चिता के जलने का शब्द, सामवेद के पढ़ने का शब्द और अनेक मनुष्यों के रोने का शब्द उस स्थान में गूँज उठा। अब वज्र आदि यदुवंशीय कुमारों और स्त्रियों ने वसुदेवजी को जलदान किया।

वसुदेवजी की और्ध्वदेहिक क्रिया करवाके परम धार्मिक अर्जुन वहाँ पर गये जहाँ यादवों का विनाश हुआ था। ऋषियों के शाप से मूसल द्वारा मरे हुए यादवों की लाशें

देखकर अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उन सबको जलदान किया और बलदेवजी की तथा श्रीकृष्ण की लाश ढूँढ़कर दाह करा दिया। ३१

इस प्रकार शास्त्र के अनुसार यादवों का प्रेतकर्म कराके अर्जुन सातवें दिन, रथ पर सवार होकर, इन्द्रप्रस्थ को चले। वृष्णिवंश की स्त्रियाँ शोक से व्याकुल होकर रोते-रोते घोड़ों, बैलों, गधों और ऊँटों से युक्त रथों पर बैठकर अर्जुन के साथ चलीं। अर्जुन की आज्ञा से घुड़सवार, रथी, नौकर-चाकर, पुरवासी, देशनिवासी सब मनुष्य—बालकों, बूढ़ों और स्त्रियों को बीच में करके—इन्द्रप्रस्थ को चले। पर्वत के समान ऊँचे हाथियों पर सवार होकर गजारोही चले। हाथियों के साथ उनके शस्त्रधारी रक्षक थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वृष्णि और अन्धक वंश के बालक, श्रीकृष्ण की सोलह हज़ार स्त्रियाँ और उनके पौत्र वज्र, ये सब लोग चले। भोज, वृष्णि और अन्धक वंश की अगणित स्त्रियाँ अर्जुन के साथ चलीं। इस प्रकार महारथी अर्जुन यदुवंश के असंख्य मनुष्यों को साथ लेकर द्वारका पुरी से बाहर निकले। ४०

नगर से द्वारकावासियों के बाहर निकलने पर अर्जुन विविध रत्नों से परिपूर्ण उस नगर के जितने हिस्से को छोड़कर आगे बढ़ते थे उतना हिस्सा समुद्र में डूब जाता था। द्वारकावासी लोग वह विचित्रता देख चकित होकर 'दैव की यह कैसी अद्भुत घटना है' यह कहते हुए तेज़ी से भागे। अर्जुन मार्ग में यदुवंश की स्त्रियों और सब मनुष्यों के साथ नदियों के किनारे, रमणीय वनों में और पर्वतों पर ठहरते हुए इन्द्रप्रस्थ को चले। कुछ दिन चलकर वे समृद्धिशाली पञ्चनद देश में पहुँचकर, पशुओं और अन्न से परिपूर्ण स्थान पर, ठहर गये। वहाँ अहीर डाकुओं ने यह सोचा कि अकेले अर्जुन यादवों की अनाथ स्त्रियों को साथ लिये जा रहे हैं। उनके साथ बहुत से बालक, बूढ़े और असंख्य स्त्रियाँ हैं। उनके साथी योद्धा भी वैसे बलवान् नहीं हैं। अतएव चलो, हम लोग आक्रमण करके उनका सब धन-रत्न छीन लें। इस प्रकार सलाह करके, लट्ठ लेकर, कोलाहल करते हुए हज़ारों डाकू द्वारकावासियों पर टूट पड़े। वीर ५०
अर्जुन ने हँसकर अनुचरों को साथ ले, डकैतों के सामने, आकर कहा—पापियो! तुम लोग जीवित रहना चाहो तो शीघ्र यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम सबको बाणों से मार डालूँगा।

अर्जुन के इस प्रकार धमकाने की परवा न करके डाकुओं ने द्वारकावासियों पर आक्रमण कर दिया। तब अर्जुन कुपित होकर गाण्डीव धनुष पर डोरी चढ़ाने लगे; किन्तु उस समय उनको यह काम बड़ा कठिन जान पड़ा। किसी तरह धनुष पर डोरी चढ़ाकर जब वे दिव्य अस्त्रों का स्मरण करने लगे तब उनको अस्त्रों का स्मरण ही न हुआ। अपने बाहुबल की क्षीणता और दिव्य अस्त्रों के भूल जाने के कारण वे बड़े लज्जित हुए। हाथियों, घोड़ों और रथों पर सवार वृष्णिवंशी योद्धाओं ने डाकुओं को भगा देने का भरसक उद्योग किया, किन्तु किसी उपाय से वे कृतकार्य न हो सके। डाकू जिधर धावा करते थे उसी ओर वीर अर्जुन

उनको रोकने का यत्न करते थे; किन्तु वे उनको न हटा सके। डकैत लोग सैनिकों के सामने ही स्त्रियों को हरने लगे। कोई-कोई स्त्री तो अपनी इच्छा से डाकुओं के साथ जाने लगी। यह देखकर अर्जुन को बहुत दुःख हुआ। वे तूणीर से बाण निकालकर डाकुओं पर चलाने
६१ लगे, किन्तु वह अक्षय तूणीर दम भर में ख़ाली हो गया। बाणों के चुक जाने पर दुःखित अर्जुन धनुष की नोक से डाकुओं को मारने लगे, किन्तु किसी उपाय से उनको हटा न सके। वृष्णि और अन्धक वंश की श्रेष्ठ स्त्रियों को डकैत लोग, अर्जुन के सामने ही, लेकर चले गये। वीर अर्जुन अपने बाहुबल का, दिव्य अस्त्रों और तूणीर के बाणों का नाश देखकर और इसे दैव का कोप समझकर बहुत दुखी हुए।

अब अर्जुन ने बची हुई स्त्रियों और धन-राशि को लेकर, कुरुक्षेत्र में पहुँचकर, हार्दिक्य के पुत्र और भोजवंश की स्त्रियों को मार्तिकावत नगर में ठहरा दिया; अन्य बालकों, बूढ़ों
७१ और स्त्रियों को इन्द्रप्रस्थ नगर में तथा सात्यकि के पुत्र को सरस्वती नगरी में ठहरा दिया। श्रीकृष्ण के पौत्र वज्र को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया। अक्रूर की स्त्रियाँ संन्यासिनी हो गईं। वज्र ने उनको बहुत रोका; किन्तु वे किसी तरह नहीं लौटीं। रुक्मिणी, गान्धारी, शैव्या, हैमवती और जाम्बवती ने अग्नि में प्रवेश करके प्राण त्याग दिये। सत्यभामा आदि श्रीकृष्ण की अन्य प्रिय स्त्रियाँ तपस्या करने के लिए वन को चली गईं। [वे हिमालय पर्वत पर जाकर फलाप नामक ग्राम में फल-मूल खाकर रहने लगीं।] अर्जुन ने द्वारकावासियों को उपयुक्त
७६ स्थान में ठहराकर वज्र के हाथ में सौंप दिया।

आठवाँ अध्याय

सब व्यवस्था करके अर्जुन का व्यासजी के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार सब प्रबन्ध करके अर्जुन वेदव्यासजी के आश्रम पर गये। उन्होंने देखा कि महर्षि एकान्त में बैठे हुए हैं। उनके पास जाकर अर्जुन ने कहा कि भगवन्, मैं अर्जुन आपको प्रणाम करता हूँ। महर्षि ने अर्जुन को देखकर, कुशल पूछकर, बैठ जाने की आज्ञा दी। अर्जुन को बहुत दुःखित और दीर्घ श्वास लेते देखकर उन्होंने पूछा—बेटा अर्जुन! क्या किसी ने तुम्हारे ऊपर नखों का, केशों का, वस्त्र का या घड़े के मुख का पानी फेंक दिया है? तुमने रजस्वला स्त्री के साथ समागम तो नहीं किया? तुम ब्रह्महत्या तो नहीं कर बैठे? क्या तुम युद्ध में किसी से परास्त हो गये हो? आज तुम इतने उदास क्यों हो? तुम तो कभी किसी से पराजित नहीं हुए थे। बतलाने लायक़ हो तो बतलाओ कि आज तुम्हारा तेज क्यों नष्ट हो गया है।

अर्जुन ने कहा—भगवन्, मेघ के सदृश साँवले कमलनयन श्रीकृष्ण और बलदेवजी
शरीर त्यागकर स्वर्गलोक को चले गये। भोज, वृष्णि और अन्धक वंश में जितने वीर थे वे
सब, ऋषियों के शाप और काल के प्रभाव से, प्रभास तीर्थ में मूसल-स्वरूप एरका घास का परस्पर
प्रहार करके नष्ट हो गये। काल की कैसी अद्भुत गति है। जो वीर पहले गदा, परिघ
और शक्ति का प्रहार सह लेते थे वे साधारण तृण की चोट से मर गये! इस प्रकार पाँच
लाख मनुष्यों की मृत्यु हो गई। मैं उन महाप्रतापी यदुवंशियों की मृत्यु का और विशेषकर ११
यशस्वी श्रीकृष्ण की मृत्यु का वृत्तान्त बार-बार स्मरण नहीं कर सकता। महात्मा श्रीकृष्ण
की मृत्यु समुद्र सूख जाने, पहाड़ चलने लगने, आकाश गिर पड़ने और अग्नि शीतल हो जाने
के समान विश्वास के अयोग्य है। अब वासुदेव के बिना एक क्षण भी जीने की मेरी इच्छा
नहीं है। हे तपोधन! मैं जो कह चुका हूँ उससे भी बढ़कर मुझे दुःख देनेवाली एक और
घटना है, जिसका स्मरण करके मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। वह वृत्तान्त भी कहता हूँ।
यादवों की मृत्यु हो जाने पर मैं द्वारका गया था और वहाँ से यदुकुल की स्त्रियों को साथ
लेकर लौट रहा था। पञ्चनद देश में पहुँचने पर वहाँ के अहीर डाकुओं ने आक्रमण करके
मेरे देखते-देखते हज़ारों स्त्रियाँ छीन लीं। मैं गाण्डीव धनुष धारण करके भी डाकुओं को
परास्त न कर सका। अब मुझमें पहले का सा बाहुबल नहीं रह गया। दिव्य अस्त्रों को भी
मैं भूल गया। मेरे तूणीर के सब बाण क्षण भर में चुक गये। मेरे रथ के आगे-आगे दौड़-
कर जो शङ्ख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज पीताम्बरधारी कमलनयन पुरुष शत्रुओं को भस्म कर देते थे
वे अब मुझे नहीं देख पड़ते। वे महापुरुष पहले जिन शत्रुओं को भस्म कर देते थे उन्हीं को मैं २०
गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों द्वारा नष्ट करता था। उन महात्मा के दर्शन न पाने से मैं
बहुत दुःखित हूँ। मुझे चक्कर सा आ रहा है। अब किसी तरह मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।
उन महावीर श्रीकृष्ण के बिना मैं जीवित रहना नहीं चाहता। मैंने जब से सुना है कि श्रीकृष्ण
इस लोक से चले गये तभी से मुझे सब दिशाएँ शून्य दीखने लगी हैं। मैं बल-वीर्यहीन शून्य-
हृदय होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। कृपा करके बतलाइए, अब मैं क्या करूँ।

यह सुनकर महर्षि वेदव्यास ने कहा—अर्जुन, वृष्णि और अन्धक वंश के महारथी ब्रह्मशाप से नष्ट हो गये हैं। तुम उनके लिए शोक मत करो। उन वीरों की मृत्यु को अवश्यम्भावी समझकर, उसे टालने में समर्थ होने पर भी, वासुदेव ने उसकी उपेक्षा कर दी। वे चाहते तो, महर्षियों के शाप को व्यर्थ करने की कौन कहे, स्थावर-जङ्गमात्मक विश्व को भी दूसरे प्रकार से उत्पन्न कर देते। वे पुरातन महर्षि केवल पृथिवी का भार उतारने के लिए वसुदेव के घर उत्पन्न हुए थे। तुम्हारे प्रेम के वश होकर वे तुम्हारे रथ के आगे दौड़ते थे। अब पृथिवी का भार उतर गया है, यह सोचकर वे शरीर त्यागकर अपने स्थान को चले गये। तुमने भी भीमसेन,

नकुल और सहदेव की सहायता से देवताओं का भारी काम किया है। अब तुम सब लोग कृतकार्य हो गये हो अतएव इस लोक से प्रस्थान करना ही तुम लोगों के लिए श्रेयस्कर है। मनुष्य का जब कल्याण होनेवाला होता है तब उसको सुबुद्धि उत्पन्न होती, उसका तेज बढ़ता और उसे भविष्य की अच्छी बातें सूझ पड़ती हैं और जब अमङ्गल होने का समय आता है तब ये सब बातें नष्ट हो जाती हैं। सारांश यह कि काल (ईश्वर) ही जगत् (पञ्चमहाभूतों) का बीज-स्वरूप है। काल के प्रभाव से ही उत्पत्ति और प्रलय का कार्य होता है। काल ही बलवान् होने पर भी दुर्बल और अधीश्वर होने पर भी दूसरों का आज्ञाकारी होता है। तुम्हारे अस्त्रों का सब काम हो चुका है, इसी कारण वे जहाँ से आये थे वहीं चले गये। उनका कार्यकाल जब फिर आवेगा तब वे तुम्हें प्राप्त हो जायँगे।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महर्षि वेदव्यास के ये वचन सुनकर और उनसे आज्ञा लेकर अर्जुन हस्तिनापुर को गये। उन्होंने वृष्णि और अन्धक वंश के वीरों के विनाश का सब
८ वृत्तान्त धर्मराज युधिष्ठिर को कह सुनाया।





महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

महाप्रस्थानिकपर्व

पहला अध्याय

परिक्षित् का अभिषेक करके युधिष्ठिर का महाप्रस्थान करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

राजा जनमेजय ने पूछा—भगवन्, मूसल के प्रभाव से वृष्णि अन्धक आदि यादवों के विनाश का और महात्मा श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण का वृत्तान्त सुनकर मेरे प्रपितामह पाण्डवों ने क्या किया ?

वैशम्पायन ने कहा कि महाराज ! अर्जुन के मुँह से यादवों के विनाश [और श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण] का वृत्तान्त सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने, महाप्रस्थान करने की इच्छा से, अर्जुन से कहा—भाई, काल ही सब प्राणियों का संहार करता है । मैं अब शरीर छोड़ना चाहता हूँ । तुम भी अपना कर्त्तव्य सोच लो ।

युधिष्ठिर की बात का अनुमोदन करते हुए अर्जुन ने कहा—महाराज, मैं भी शीघ्र ही काल के मुख में जाना चाहता हूँ । तब भीमसेन, नकुल और सहदेव भी अर्जुन के इरादे को जानकर कहने लगे कि "हम भी शरीर त्याग देंगे" । इस प्रकार सबने जब प्राण-त्याग का निश्चय कर लिया तब युधिष्ठिर ने परिक्षित् को राज्य दे दिया और उसकी देख-रेख का काम,

वैश्या से उत्पन्न, युयुत्सु को सौंपा। फिर उन्होंने सुभद्रा से कहा—कल्याणी, तुम्हारे पोते
(अभिमन्यु के पुत्र) परिक्षित् को मैंने राजा बना दिया और श्रीकृष्ण के पोते वज्र को पहले ही
इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया है। अब अभिमन्यु के पुत्र परिक्षित् हस्तिनापुर में हमारा राज्य
सँभालेंगे और वज्र इन्द्रप्रस्थ में, मरने से बचे हुए, यादवों का पालन करेंगे। तुम इन दोनों
बालकों को समान दृष्टि से देखकर, सावधानी के साथ, इनकी रखवाली करना।

भाइयों सहित युधिष्ठिर ने अब कृष्णचन्द्र, बलभद्र और मामा वसुदेव तथा अन्यान्य
११ यादवों को तिलाञ्जलि देकर—उनका श्राद्ध आदि करके—श्रीकृष्ण के नाम से महर्षि वेदव्यास,
नारद, मार्कण्डेय और याज्ञवल्क्य आदि को उत्तम भोजन कराया और पहनने के कपड़े, गाँव,
घोड़े, दासी, रत्न, धन आदि देकर सन्तुष्ट किया। इसके बाद कुलगुरु कृपाचार्य की पूजा
करके परिक्षित् को उन्हें सौंप दिया।

फिर धर्मराज युधिष्ठिर ने सब प्रजा को बुलाकर उससे अपना विचार कहा। सुनकर
सब लोग बहुत घबराये और शोक से व्याकुल हुए। उन्होंने कहा कि महाराज, हमें छोड़-
कर जाना आपको उचित नहीं। प्रजा के बार-बार अनुरोध करने पर भी, काल के तत्त्व को
जाननेवाले, राजा युधिष्ठिर ने उसका कहा नहीं माना। सम्मान के साथ प्रजा को विदा
करके, भाइयों के साथ, वन जाने के विचार से उन्होंने सब राजसी वस्त्र और आभूषण
उतारकर वल्कल पहन लिये। अब भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी ने भी
२० मुनियों का वेष धारण कर लिया।

उस समय किया जानेवाला यज्ञ (उत्सर्गेष्टि) समाप्त करके सबने जल में अग्नि का
विसर्जन कर दिया। उस समय द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डवों को जाते देखकर सब स्त्रियाँ उसी
तरह रोने लगीं जिस तरह पहले दुर्योधन से जुए में हारे हुए पाण्डवों को, द्रौपदी के साथ, वन
को जाते देखकर रोई थीं। चारों भाइयों, द्रौपदी और कुत्ते के साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर
से निकले। नगरनिवासी लोग दूर तक पीछे-पीछे गये; परन्तु कोई युधिष्ठिर से
लौटने के लिए न कह सका। तब सब नगरनिवासी, कुछ दूर तक जाकर, लौट
आये। कृपाचार्य आदि सब युयुत्सु के आश्रय में रहने लगे। नागकन्या उलूपी गङ्गाजी
में प्रवेश कर गई। चित्राङ्गदा मणिपुर को चली गई। बची हुई पाण्डवों की स्त्रियाँ
परिक्षित् के पास रहने लगीं।

इधर द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव, बिना कुछ खाये-पिये, लगातार पूर्व की ओर चलने
२९ लगे। सबसे आगे युधिष्ठिर थे, उनके पीछे महावीर भीमसेन, उनके पीछे अर्जुन, उनके पीछे
नकुल और सहदेव तथा उनके पीछे द्रौपदी थीं। हस्तिनापुर छोड़कर वन जाते समय जो कुत्ता
उनके साथ हो लिया था वह सबके पीछे चलने लगा। इस तरह असंख्य देश, नदी, सागर आदि

को लाँघकर पाँचों पाण्डव लालसागर के किनारे (उदयाचल के समीप) पहुँचे। अर्जुन ने रत्न-स्वरूप गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसों को अब तक नहीं छोड़ा था। उस समुद्र के किनारे पाण्डवों के पहुँचते ही भगवान् अग्नि, पुरुषरूप से, पहाड़ की तरह राह रोके आगे खड़े देख पड़े। उन्होंने पाण्डवों से कहा—हे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव! मैं अग्नि हूँ। मैंने अर्जुन और नारायण कृष्ण के प्रभाव से खाण्डव वन को जलाया है। ये तुम्हारे भाई अर्जुन इस गाण्डीव धनुष को छोड़कर वन में जायँ। अब इनको इसकी आवश्यकता नहीं। देखो, महात्मा कृष्ण के पास जो श्रेष्ठ चक्र था वह भी उन्होंने त्याग दिया। फिर समय आने पर वह उनके पास पहुँच जायगा। अर्जुन के लिए मैं यह ४० धनुष वरुण से माँग लाया था। यह श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष वरुण को ही लौटा दो।



अग्नि के यों कहने पर सब भाइयों ने जब अर्जुन से गाण्डीव धनुष फेंक देने के लिए कहा तब उन्होंने वह धनुष और दोनों अक्षय तरकस जल में फेंक दिये।

अग्नि के अन्तर्द्धान हो जाने पर पाण्डव लोग वहाँ से दक्षिण की ओर चले। वे खारी समुद्र के उत्तर तट होकर दक्षिण-पश्चिम के कोने की तरफ़ चले। वहाँ से पश्चिम दिशा को मुड़कर उन्होंने समुद्र में डूबी हुई द्वारका पुरी को देखा। फिर उत्तर की ओर मुड़कर, पृथ्वी-प्रदक्षिणा करने के विचार से, पाँचों पाण्डव आगे बढ़े। ४६

दूसरा अध्याय

राह में अर्जुन आदि के शरीरों का गिरना। भीमसेन के पूछने पर युधिष्ठिर का उसका कारण बतलाना। अकेले कुत्ते का ही युधिष्ठिर के साथ जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, आत्मा को वश में किये हुए एकाग्रचित्त पाण्डवों ने उत्तर दिशा में जाकर हिमवान् पर्वत को देखा। उस पर चढ़कर चलते-चलते उन्हें बालू का महासागर (मरुभूमि) मिला। उसके बाद उन्होंने श्रेष्ठ सुमेरु पर्वत को देखा। यात्रा में मन लगाये

चले जा रहे पाण्डवों के पीछे द्रौपदी जा रही थीं। ध्यान बँटने के कारण द्रौपदी राह में ही गिर पड़ीं। यह देखकर भीमसेन ने युधिष्ठिर से पूछा—धर्मराज! द्रौपदी ने कभी कुछ अधर्म नहीं किया; फिर वे इस तरह पृथ्वी पर क्यों गिर पड़ीं? युधिष्ठिर ने कहा—ये अर्जुन को बहुत प्यार करती थीं, उसी पक्षपात का यह फल है।

वैशम्पायन कहते हैं कि यों कहकर, द्रौपदी की ओर बिना देखे ही, धर्मात्मा युधिष्ठिर मन को एकाग्र करके आगे बढ़े। अब विद्वान् सहदेव उसी तरह पृथ्वी पर गिर पड़े। भीमसेन ने फिर कहा—महाराज! हम सब भाइयों की सेवा करनेवाले, अहङ्कार से शून्य, सहदेव क्यों गिर पड़े? युधिष्ठिर ने कहा—ये अपने बराबर बुद्धिमान् और समझदार किसी को नहीं
१० समझते थे; इसी से इनकी यह दशा हुई।

वैशम्पायन कहते हैं कि अब सहदेव को वहीं छोड़कर राजा युधिष्ठिर, भाइयों के और कुत्ते के साथ, आगे बढ़े। द्रौपदी और सहदेव को गिरे देखकर दुःखित नकुल भी गिर पड़े। इस पर भीमसेन ने फिर युधिष्ठिर से पूछा—ये तो परम धर्मात्मा, अद्वितीय रूपवान् और भाइयों की आज्ञा पर चलनेवाले थे; फिर ये क्यों गिर पड़े? तब सब धर्मों को जाननेवाले युधिष्ठिर ने कहा—नकुल समझते थे कि न तो कोई इनके सदृश सुन्दर है और न इनसे बढ़कर ही। इसी से ये गिर पड़े। भीमसेन, तुम चले आओ। जिसको जो बदा है उसे वह भोगना ही पड़ता है।

द्रौपदी को और दोनों भाइयों को गिरे देखकर, शोक से पीड़ित, अर्जुन भी गिर पड़े। इन्द्र के समान तेजस्वी अर्जुन की मृत्यु देखकर भीमसेन ने फिर युधिष्ठिर से पूछा—जहाँ तक
२० मैं जानता हूँ, ये दिल्लगी में भी झूठ नहीं बोले हैं; फिर ये किस दोष से गिर पड़े?

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन का दावा एक ही दिन में सब शत्रुओं को मार सकने का था; परन्तु अपने को शूर समझनेवाले अर्जुन अपनी इस बात को पूरा नहीं कर सके, इसी से गिर पड़े। वे घमण्ड के मारे सब धनुषधारियों को तुच्छ समझते थे। अपनी बढ़ती चाहनेवाले को कभी अभिमान न करना चाहिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि अब ज्योंही युधिष्ठिर आगे बढ़े त्योंही भीमसेन भी गिर पड़े। गिरकर भीमसेन ने युधिष्ठिर से पूछा—महाराज, आपका प्यारा मैं भीम क्यों गिर पड़ा? आप जानते हों तो बताइए।

"तुमने दूसरे को न देकर आप ही अपना पेट खूब भरा है। तुम अपनी शूरवीरता की शेखी मारा करते थे। इसी से तुम गिर पड़े।" यों कहकर, भीमसेन की ओर बिना देखे
२६ ही, युधिष्ठिर आगे बढ़े। वह कुत्ता अब भी उनके पीछे-पीछे जा रहा था।

तीसरा अध्याय

राह में युधिष्ठिर का कुत्ते के बिना इन्द्र के रथ पर चढ़ना स्वीकार न करना। धर्मराज का प्रकट हो जाना। रथ की सवारी से स्वर्ग में पहुँचकर युधिष्ठिर का भाइयों के बिना स्वर्ग के प्रति भी अनिच्छा प्रकट करना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इसके बाद रथ के शब्द से आकाश और पृथ्वी को परिपूर्ण
करते हुए इन्द्र ने युधिष्ठिर के पास आकर उनसे रथ पर चढ़ने के लिए कहा। तब भाइयों के वियोग
से शोकाकुल युधिष्ठिर ने इन्द्र से कहा—देवराज, मेरे भाई यहाँ गिर पड़े हैं और सुख के योग्य
राजकुमारी द्रौपदी भी गिर पड़ी है। मैं उनके बिना अकेला स्वर्ग को जाना नहीं चाहता। वे लोग
भी मेरे साथ चलें तो मैं चल सकता हूँ। इन्द्र ने कहा—तुम शोक न करो; तुम्हारे भाई द्रौपदी के
साथ पहले ही स्वर्ग पहुँच गये हैं। वहाँ चलकर तुम उनको देख लेना। वे शरीर छोड़कर स्वर्ग
गये हैं; पर तुम अपने पुण्य के बल से इसी शरीर से स्वर्ग जाओगे। युधिष्ठिर ने कहा—हे देवेन्द्र, मेरे
लेखे सब जीव समान हैं। यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है। मैं चाहता हूँ कि यह भी मेरे साथ स्वर्ग
चले। इन्द्र ने कहा—आज तुम देवता, और मेरे समकक्ष, हो गये। सम्पूर्ण लक्ष्मी और बड़ी सिद्धि
तुमको मिल गई। अब तुम्हें स्वर्ग का सुख प्राप्त है। कुत्ते का मोह छोड़ दो। कुत्ते का छोड़ देना
कठोर व्यवहार नहीं हो सकता। युधिष्ठिर ने कहा—भले आदमी को कभी अनुचित व्यवहार न
करना चाहिए। मैं उस लक्ष्मी को नहीं चाहता जिसके लिए भक्त कुत्ते का साथ छोड़ना पड़े।
इन्द्र ने कहा—देखो, कुत्तेवाले के लिए स्वर्ग में स्थान नहीं है। क्रोधवश नाम के देवगण उसके
सब कार्यों के फल को नष्ट कर देते हैं इसलिए तुम सोच-समझकर काम करो। कुत्ते को छोड़ने में १०
कुछ कठोरता नहीं है। युधिष्ठिर ने कहा—हे इन्द्र, भक्त का त्याग ब्रह्महत्या के समान महापाप
है अतएव अपने सुख के लिए मैं इसे नहीं छोड़ सकता। मेरा यह प्रण है कि डरे हुए, भक्त, शरणा-
गत, पीड़ित, कमज़ोर और अपनी जान बचाने के लिए प्रार्थना करनेवाले को मैं, प्राणसङ्कट उप-
स्थित होने पर भी, नहीं छोड़ सकता। इन्द्र ने कहा—कुत्ते के देखने से क्रोधवश नाम के देवता
दान-पुण्य का फल छीन लेते हैं इसलिए इस कुत्ते को छोड़ दो; इसे छोड़ने से तुमको देवलोक
प्राप्त होगा। भाइयों को और प्यारी द्रौपदी को छोड़कर अपने कर्म से तुमने उत्तम लोक प्राप्त किये
हैं। अब तुम इसे क्यों नहीं छोड़ देते? सब कुछ छोड़ करके कुत्ते के मोह में पड़े हो! युधिष्ठिर
ने कहा—लोगों का ख़याल है कि मरे हुओं के साथ इस लोक में रहकर मित्रता या शत्रुता नहीं
हो सकती। भाइयों को और द्रौपदी को जिलाने की शक्ति मुझमें नहीं थी। मैंने उनको जीते में
नहीं छोड़ा; मरने पर ही मैंने उनका साथ छोड़ा है। हे देवेन्द्र! शरणागत को विमुख करना,
स्त्री की हत्या करना, ब्राह्मण का धन हरना और मित्र से द्रोह करना, ये चार महापाप हैं।
भक्त का त्याग भी, मेरी समझ में, इसी श्रेणी का पाप है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज! धर्मराज युधिष्ठिर के यों कहने पर भगवान् धर्म,
कुत्ते का रूप त्यागकर, उनसे कहने लगे—पुत्र! तुममें पिता के समान ही चरित्र, बुद्धि और
सब प्राणियों पर दया है। पहले द्वैतवन में भी मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी। वहाँ पानी लेने
जाकर तुम्हारे सब भाई मर गये थे। वहाँ तुमने पहले अपने सगे भाई भीमसेन और अर्जुन
के जी उठने की प्रार्थना न करके, दोनों माताओं में समता दिखलाने के लिए, सौतेले भाई नकुल
२० के जी उठने की प्रार्थना की थी। इस समय भी तुमने यह समझकर कि "यह कुत्ता मेरा भक्त
है, मेरे साथ आया है" इन्द्र के लाये रथ पर चढ़ना अस्वीकार कर दिया। इससे मैं तुम पर
बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे समान धर्मात्मा स्वर्ग में भी न होगा इसलिए हे युधिष्ठिर, तुम इसी
शरीर से अक्षय लोकों में जाओ। तुमको दिव्य गति प्राप्त हो गई।

वैशम्पायन कहते हैं—इसी समय धर्म, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार आदि देवता और
देवर्षि लोग युधिष्ठिर को रथ पर चढ़ाकर स्वर्ग को ले चले। अपनी इच्छा के अनुसार विचरने-
वाले, पुण्यात्मा, पवित्र वाणी बुद्धि और कर्मवाले सिद्धगण भी विमानों पर सवार होकर युधिष्ठिर
के साथ चले। अपने तेज से पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हुए राजा युधिष्ठिर उस रथ
पर चढ़कर शीघ्रता के साथ ऊपर चढ़ने लगे। तब सब लोकों का हाल जाननेवाले नारदजी, देव-
मण्डली में खड़े होकर, ज़ोर से कहने लगे कि जो राजर्षि पहले स्वर्ग में आये हैं उनकी कीर्ति को
युधिष्ठिर ने, यहाँ आकर, अपनी कीर्त्ति से ढक लिया है। यश, तेज, चरित्र और सम्पत्ति से तीनों
लोकों को व्याप्त करके इसी शरीर से युधिष्ठिर के सिवा और कोई स्वर्ग में नहीं आया। महाराज!
पृथिवी पर से जो तुमने नक्षत्र-तारे आदि और देवताओं के भवन देखे हैं उन्हीं को यहाँ देखो।

यह सुनकर युधिष्ठिर बोले—यहाँ न तो मेरे भाई ही देख पड़ते हैं और न मेरे पक्ष के सब
३० राजा लोग ही। बुरे या भले, जिस स्थान में मेरे भाई गये हैं वहीं मैं जाना चाहता हूँ। मैं
और किसी लोक की इच्छा नहीं करता। युधिष्ठिर की यह प्रेम-पूर्ण बात सुनकर इन्द्र ने कहा—
हे राजेन्द्र, अपने शुभ कर्मों से जीते हुए इस लोक में तुम निवास करो। अभी तक तुम, मनुष्यों
की तरह, स्नेह के बन्धन में क्यों बँधे हुए हो? देखो, जैसी सिद्धि तुमने प्राप्त की है वैसी आज
तक किसी को नहीं मिली। तुम्हारे भाई भी इस स्थान को नहीं पा सके। महाराज, अभी तक
तुममें मनुष्य का भाव बना हुआ है। देखो, यह स्वर्ग है; ये देवर्षि हैं; ये देवताओं के भवन हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—देवराज! भाइयों आदि के बिना मैं यहाँ नहीं रहना चाहता।
जहाँ मेरे भाई गये हैं, जहाँ मेरी प्यारी, स्त्रियों में श्रेष्ठ, उत्तम बुद्धि और गुणोंवाली द्रौपदी
३८ गई है वहीं मैं भी जाऊँगा।



महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

महाभारत का अनुवाद

स्वर्गारोहणपर्व

पहला अध्याय

युधिष्ठिर का स्वर्ग में दुर्योधन को देखना और उसके साथ वहाँ रहना स्वीकार न करके नारदजी से अपने भाइयों को देखने की इच्छा प्रकट करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय ने कहा—भगवन्, आप अद्भुत शक्तिशाली महर्षि वेदव्यास के शिष्य हैं। आपसे कुछ छिपा नहीं है, अतएव कृपा कर बतलाइए कि मेरे प्रपितामह पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि स्वर्गलोक प्राप्त करके किन स्थानों को गये थे।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, आपके प्रपितामह पाण्डवों ने स्वर्ग में जाकर जो काम किये हैं उनका वर्णन सुनिए। धर्मराज युधिष्ठिर ने स्वर्ग में जाकर देखा कि महाराज दुर्योधन, साध्यगण और देवताओं के बीच, महातेजस्वी सूर्य के समान वीर-लक्ष्मी से शोभित हो रहे हैं। यह देखकर युधिष्ठिर को बड़ा क्रोध हुआ। वे वहाँ से लौट पड़े और देवताओं से कहने लगे—हे देवताओ, लोभी दुरात्मा दुर्योधन के कारण हम लोगों ने युद्ध में अपने भाई-बन्धुओं का नाश कर दिया है। इसी के कारण हम लोगों को वन में अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़े हैं। इसी की बदौलत भरी सभा में, बड़े-बूढ़ों के सामने, हम लोगों की सहधर्मिणी द्रौपदी को अपमानित होना पड़ा था। मैं इस दुरात्मा के साथ स्वर्ग में नहीं रहना चाहता। मैं इसका मुँह न देखूँगा। मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ मेरे भाई हैं।

युधिष्ठिर के यों कहने पर देवर्षि नारद ने मुसकुराकर कहा—धर्मराज, ऐसी बात मत कहो। स्वर्ग में किसी के साथ वैर-विरोध नहीं रहता। दुर्योधन के प्रति ऐसे वचन कहना तुमको उचित नहीं। स्वर्ग में जितने राजा रहते हैं वे और सब देवता दुर्योधन का सम्मान करते हैं। यह ठीक है कि वे हमेशा तुम लोगों के साथ लाग-डाँट रखते थे; किन्तु अब वे, क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में शरीर त्यागकर, यहाँ आ गये हैं। महाभय उपस्थित होने पर भी वे डरे नहीं। इन्हीं पुण्यों के प्रभाव से उन्हें यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। अब तुम जुए में हारने, केश पकड़कर द्रौपदी के खींचे जाने और युद्ध आदि में क्लेश मिलने की घटनाओं को भूल जाओ। तुम राजा दुर्योधन के साथ सुहृद्भाव से निवास करो। यह स्वर्गलोक है। यहाँ किसी के साथ वैर-विरोध करना उचित नहीं।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—देवर्षि! जिस दुर्योधन के कारण पृथिवी के असंख्य मनुष्य, हाथी और घोड़े आदि प्राणी मारे गये और जिससे बदला लेने के लिए हम लोग क्रोध की आग में जलते थे, उस दुरात्मा को यदि सनातन वीरलोक प्राप्त हुआ है तो
२२ महापराक्रमी सत्यवादी सत्यप्रतिज्ञ मेरे भाई किस लोक को गये हैं? कुन्ती के पुत्र महावीर कर्ण कहाँ रहते हैं? पुत्रों समेत धृष्टद्युम्न, सात्यकि, विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्र और अभिमन्यु आदि किस लोक में हैं? और जितने वीर क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध
२६ में शरीर त्यागकर आये हैं वे इस समय कहाँ हैं? मैं उनको देखना चाहता हूँ।

दूसरा अध्याय

युधिष्ठिर का देवताओं से अपने भाइयों के पास जाने की इच्छा प्रकट करना और देवदूत के साथ जाकर नरक में उनकी दुर्दशा देखना

अब धर्मात्मा युधिष्ठिर ने देवताओं से कहा—हे देवताओ! यहाँ मुझे महापराक्रमी कर्ण, महावीर उत्तमौजा और युधामन्यु नहीं देख पड़ते। ये लोग कहाँ हैं? इनके सिवा सिंह के समान महापराक्रमी जो राजा और राजपुत्र हमारे लिए संग्रामरूपी अग्नि में भस्म हो गये हैं वे इस समय किस स्थान पर हैं? क्या उन लोगों को स्वर्गलोक नहीं प्राप्त हुआ? यदि वे महारथी यहाँ आये हों तो मैं उनके साथ रहूँगा। उन वीरों और अपने सजातीयों तथा भाइयों के बिना मैं इस लोक में रहना नहीं चाहता। सजातीयों को जलदान करते समय मुझसे माता कुन्ती ने कहा था—"बेटा, तुम कर्ण को भी जलदान करो।" जब से मैंने माता का यह वचन सुना है तब से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। मेरे दुःख का एक बड़ा कारण यह है कि महापराक्रमी कर्ण के पैरों को माता के अनुरूप देखकर भी मैंने उनका आश्रय न लिया। यदि कर्ण मेरे साथ होते तो युद्ध में हम लोगों को इन्द्र भी परास्त न कर सकते।

जो हो, महावीर कर्ण इस समय जहाँ हों वहीं आकर मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ। मैंने
इन्हें, अनजान में, अर्जुन से मरवा डाला, इस कारण मेरा हृदय शोक की आग में भस्म हो रहा
है। महापराक्रमी भीमसेन मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं। मैं उन भीमसेन, इन्द्र-तुल्य महावीर
अर्जुन, यम-सदृश नकुल और सहदेव तथा धर्मचारिणी द्रौपदी को देखना चाहता हूँ। मैं सत्य
कहता हूँ, यहाँ रहने की मेरी इच्छा नहीं है। ऐसा स्वर्ग मेरे किस काम का जहाँ मेरे भाई- ११
बन्धु नहीं हैं? मैं तो उसी को स्वर्ग समझता हूँ जहाँ मेरे भाई रहते हैं।

धर्मात्मा युधिष्ठिर के यों कहने पर देवताओं ने कहा—बेटा, यदि तुम अपने भाइयों के पास
जाना चाहते हो तो शीघ्र जाओ। हम, इन्द्र की आज्ञा से, तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी कर देंगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, देवताओं ने युधिष्ठिर से यों कहकर एक दूत से
कहा—"तुम युधिष्ठिर को इनके भाई-बन्धुओं के पास ले जाओ।" आज्ञा पाकर वह दूत
युधिष्ठिर को एक दुर्गम मार्ग से ले चला जिसमें घोर अन्धकार था। वह मार्ग पापियों के
आने-जाने का है। वह पापियों की बदबू, मांस और रक्त के कीचड़, मच्छरों, मक्खिकाओं,
रीछों, लाशों, हड्डियों, केशों और कृमि-कीटों से परिपूर्ण था। उसके चारों ओर आग
जल रही थी। कौवे, गिद्ध और सूचीमुख पर्वताकार प्रेत वहाँ घूम रहे थे। उन प्रेतों में से २०
किसी के शरीर से मेद और रक्त बहता था; किसी-किसी के बाहु, जाँघें, पेट और हाथ-पैर
नहीं थे। धर्मराज युधिष्ठिर ने, अनेक प्रकार की चिन्ता करते-करते, उस दुर्गन्धमय अति भयङ्कर
मार्ग में देखा कि वहाँ खौलते हुए पानी से परिपूर्ण नदी, तेज़ छुरों से भरा हुआ असिपत्र-वन
और पैने काँटों से युक्त ऐसे सेमर के वृक्ष मौजूद हैं जिनको छूना भी कठिन है। कहीं पर तो
गरम बालू फैली हुई है और कहीं लोहे की शिलाएँ पड़ी हुई हैं। जहाँ-तहाँ लोहे के कलसों
में तेल खौल रहा है और पापी जीव घोर दुःख भोग रहे हैं। यह सब देखकर धर्मराज युधि-
ष्ठिर ने देवदूत से कहा—महात्मन्, ऐसे मार्ग में अभी कितनी दूर चलना पड़ेगा? यह कौन
स्थान है और मेरे भाई कहाँ पर हैं?

देवदूत ने उत्तर दिया—राजन्, चलते समय देवताओं ने मुझे यह आज्ञा दी है कि युधिष्ठिर
जहाँ थक जायँ वहीं से इनको लौटा लाना। सो आप थक गये हों तो लौट चलिए। सब
दुःख और शोक से पीड़ित राजा युधिष्ठिर उस स्थान की बदबू से घबराकर वहाँ से लौट पड़े। ३०

लौटते ही उनको चारों ओर से यह सुन पड़ा—हे धर्मराज, आप हम लोगों पर कृपा
करके क्षण भर यहाँ ठहर जाइए। आपके आते ही सुगन्धित पवित्र हवा चलने लगी है, इससे
हम लोगों को बड़ा सुख मिला है। बहुत दिनों बाद आपके दर्शन पाकर हम लोगों को बड़ा
आनन्द हुआ है अतएव आप क्षण भर यहाँ ठहरकर हम लोगों को सुखी कीजिए। आपके
आ जाने से हमारी यातना बहुत कम हो गई है।

दुखियों के ये दीन वचन सुनने से परम दयालु राजा युधिष्ठिर को दया आ गई। बड़ा दुःख है, कहकर वे खड़े हो गये। अब उनको बार-बार उसी प्रकार का आर्तनाद सुन पड़ने लगा; किन्तु उनकी समझ में न आया कि ये किसके वचन हैं। तब उन्होंने उन लोगों को सम्बोधित करके पूछा—हे दुःखित व्यक्तियो, तुम कौन हो और यहाँ क्यों रहते हो?

धर्मराज के यों पूछते ही चारों ओर से आवाज़ आने लगी—मैं कर्ण हूँ, मैं भीमसेन हूँ, मैं अर्जुन हूँ, मैं नकुल हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं धृष्टद्युम्न हूँ, मैं द्रौपदी हूँ, हम लोग द्रौपदी के पुत्र हैं।
४१ इस प्रकार अपना-अपना नाम बतलाकर वे सब दीन भाव से चीख़ने लगे।

यह सुनकर राजा युधिष्ठिर सोचने लगे कि हाय, दैव की यह कैसी गति है! भीमसेन आदि मेरे भाइयों, द्रौपदी के पुत्रों और कर्ण ने ऐसा कौन सा पाप किया है जो उनको ऐसे दुर्गन्धमय स्थान में आना पड़ा! मैंने तो इन पुण्यात्माओं का कोई दुष्कर्म नहीं देखा! धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन पापी होकर भी, अधर्मी अनुचरों समेत, इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् होकर स्वर्ग-लोक में किस करनी के बिरते पर सुख भोग रहा है और मेरे भाई—जो परम धार्मिक, सत्य-परायण, शास्त्रपारदर्शी तथा क्षत्रियधर्मावलम्बी थे वे—घोर नरक में किस पाप का फल भोग रहे हैं? मैं सो रहा हूँ या जागता हूँ? मेरी बुद्धि ठिकाने है या नहीं? मुझे भ्रम तो नहीं हो गया है? शोक से व्याकुल राजा युधिष्ठिर, अनेक प्रकार से सोच-विचार करके, क्रोध के
५० मारे धर्म और देवताओं की निन्दा करने लगे। उन्होंने देवदूत से कहा—तुम जिनके दूत हो उनके पास जाकर कह दो कि "युधिष्ठिर यहीं रहेंगे। अब स्वर्गलोक को न जायँगे। उनके दुःखित भाई, उनके पहुँच जाने से, बहुत प्रसन्न हुए हैं।" यह सुनकर देवदूत ने इन्द्र के पास
५४ जाकर युधिष्ठिर का सन्देश कह दिया।

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर के पास इन्द्र और धर्म का आना। उनकी आज्ञा से युधिष्ठिर का गङ्गा-स्नान करके, शरीर त्यागकर, दिव्य स्थान को जाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, उस स्थान में धर्मराज युधिष्ठिर के थोड़ी देर ठहरने पर मूर्तिमान् धर्म और इन्द्र आदि देवता वहाँ आ गये। उन तेजस्वियों के आते ही वहाँ का अन्धकार जाता रहा। वैतरणी नदी, कँटीले सेमर के वृक्ष, लोहे के कलसे (जिनमें तेल खौल रहा था), लोहे की गरम शिलाएँ और पापियों की सब यातनाएँ अदृश्य हो गईं। युधिष्ठिर ने पहले जिन विकराल रूपधारी प्रेतों को देखा था वे भी लुप्त हो गये। शीतल मन्द सुगन्ध पवन चलने लगा।

देवताओं समेत इन्द्र, अश्विनीकुमार, वसुगण, साध्य, रुद्र, आदित्य, सिद्ध, महर्षि और मरुद्गण धर्मात्मा युधिष्ठिर के पास आ गये। इन्द्र ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, जो हो

गया सो हो गया। अब तुम्हें कोई कष्ट न मिलेगा। तुम हमारे साथ चलो। तुमको परम
सिद्धि और अक्षय लोक प्राप्त हुए हैं। तुमको जो नरक देखना पड़ा है, इससे हम लोगों पर ११
क्रोध न करना। राजाओं को नरक अवश्य देखना पड़ता है। मनुष्य मात्र को पाप और
पुण्य का फल भोगना पड़ता है। जो व्यक्ति पहले स्वर्ग का सुख भोग लेता है उसे पीछे से
नरक भोगना पड़ता है और जो पहले नरक की यन्त्रणा भोग चुकता है वह बाद को स्वर्ग का
अधिकारी होता है। जो मनुष्य पाप तो अधिक करता है और पुण्य बहुत कम करता है वह
पहले स्वर्ग का भोग करके तब नरक भोगता है तथा जो पुण्य अधिक और पाप कम करता
है वह पहले नरक का भोग करके पीछे स्वर्ग का सुख पाता है। इसी से हमने, तुम्हारे भले के
लिए, तुम्हें पहले नरक दिखला दिया। तुमने द्रोणाचार्य को झूठमूठ अश्वत्थामा के मरने की
ख़बर दी थी, इसी से तुमको भी छल से नरक दिखाया गया। तुम्हारे भाइयों और द्रौपदी
को भी छल से नरक जाना पड़ा था। अब उन लोगों का नरक से उद्धार हो गया है।
तुम्हारे पक्ष के राजाओं को स्वर्गलोक प्राप्त हो गया है। जिन सूर्यपुत्र महाधनुर्धर कर्ण की याद
करके तुम खिन्न रहा करते हो उनको यहाँ देख लेना। अब शोक त्यागकर हमारे साथ चलो।
अपने सुहृदों को यथायोग्य स्थान पर बैठे देखकर अपनी व्यथा दूर करो। तुमको पहले २०
बहुत क्लेश मिल चुके हैं; अब हमारे साथ चलकर, शोक त्यागकर, सुख-पूर्वक तपस्या, दान
और अन्य पुण्य-कर्मों के फल भोगो। आज से अप्सराएँ और गन्धर्व हमेशा तुम्हारी सेवा
करेंगे। अब तुम राजसूय-यज्ञ द्वारा जीते हुए सब लोकों का और तपस्या का महाफल भोगो।
जिस श्रेष्ठ लोक को अन्यान्य राजा नहीं पा सके उसी लोक में महाराज हरिश्चन्द्र, मान्धाता,
भगीरथ और भरत गये हैं; तुम भी वहीं निवास करके परम सुख भोगो। वह देखो, तुम्हारे
समीप ही त्रैलोक्यपावनी मन्दाकिनी विराजमान हैं। उनके पवित्र जल में स्नान करते ही
तुम्हारा शोक-सन्ताप और वैर आदि सब मानुषी भाव नष्ट हो जायँगे।

इन्द्र के यों कहने पर भगवान् धर्म ने अपने पुत्र युधिष्ठिर से कहा—बेटा! तुम्हारी धर्म- ३०
परायणता, सत्यता, क्षमा और दमगुण देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। यह मैंने तीसरी बार
तुम्हारी परीक्षा ली है। इस बार भी मैं तुमको तुम्हारे स्वभाव से विचलित नहीं कर सका।
पहले जब तुम द्वैतवन में रहते थे तब मैंने अरणी काष्ठ छीनकर, माया के प्रभाव से, तुम्हारे
भाइयों का विनाश कर दिया था और तुमसे जितने प्रश्न किये थे उन सबका तुमने उत्तर दे दिया
था। उसके बाद तुम्हारे महाप्रस्थान के समय मैंने कुत्ते का रूप रखकर तुम्हारी परीक्षा ली
थी। उस समय भी मैं तुम्हारी बुद्धि को विचलित नहीं कर सका। इस समय भी मुझे
विश्वास हो गया है कि तुम अपने भाइयों का साथ छोड़ने को तैयार नहीं हो। तुम्हारे समान
पवित्र स्वभाव का दूसरा कोई नहीं है। अब तुम स्वर्ग का सुख भोगो। तुम्हारे भाई नरक

के योग्य नहीं हैं। तुमने जो उनको नरक भोगते देखा है वह इन्द्र की माया है। राजाओं
को एक बार नरक अवश्य देखना पड़ता है, इसी से तुमको भी पल भर यह कष्ट सहना पड़ा
है। अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव, कर्ण और राजपुत्री द्रौपदी, इनमें कोई भी नरक के योग्य
३९ नहीं है। अब तुम मेरे साथ चलकर मन्दाकिनी के दर्शन करो।

भगवान् धर्म के यों कहने पर महात्मा युधिष्ठिर ने देवताओं के साथ जाकर मन्दाकिनी
के पवित्र जल में स्नान किया। स्नान करते ही उन्होंने मनुष्य-शरीर त्यागकर दिव्य स्वरूप धारण
कर लिया। तब उनके हृदय से शोक और वैर भाव जाता रहा। फिर वे धर्म और अन्यान्य
देवताओं के साथ, ऋषियों से स्तुति सुनते हुए, उस स्थान को गये जहाँ उनके चारों भाई और
४४ धृतराष्ट्र के पुत्र, क्रोध त्यागकर, परम सुख से रहते थे।

चौथा अध्याय

युधिष्ठिर का स्वर्ग में कर्ण आदि को देखना। इन्द्र का
युधिष्ठिर को उनके भाइयों का परिचय देना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और अन्य
कौरवों के पास जाकर देखा कि भगवान् वासुदेव ब्राह्म शरीर धारण किये विराजमान हैं। उनका
पहले का सा स्वरूप जान पड़ता है। चक्र आदि दिव्य अस्त्र, पुरुष-रूप धारण किये, उनके
चारों ओर बैठे उनकी स्तुति कर रहे हैं। महावीर अर्जुन उनकी उपासना करते हैं। युधि-
ष्ठिर को देखकर देवपूजित वासुदेव और अर्जुन ने उनका यथोचित सम्मान किया। युधिष्ठिर
ने और लोगों को देखने की इच्छा से दूसरी ओर दृष्टि डाली तो देखा कि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ
कर्ण, द्वादश आदित्यों के समान, दिव्य स्वरूप धारण किये बैठे हैं। मूर्तिमान् पवन के पास
दिव्यरूपधारी भीमसेन, देवताओं के बीच, शोभित हो रहे हैं। अश्विनीकुमारों के पास महा-
तेजस्वी नकुल और सहदेव बैठे हैं तथा उन्हीं के समीप कमलों की माला पहने, अपने रूप-
१० लावण्य से स्वर्ग को प्रकाशित कर रही, द्रौपदी बैठी हैं।

इन सबको देखकर युधिष्ठिर ने इन्द्र से इनका और अन्य व्यक्तियों का विशेष वृत्तान्त
पूछना चाहा। उनका अभिप्राय समझकर इन्द्र ने कहा—महाराज, तुम जिन द्रौपदी को
पवित्र गन्ध से युक्त और रूपलावण्यवती देख रहे हो ये अयोनिसम्भूता लक्ष्मी हैं। तुम लोगों
पर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने इनको उत्पन्न किया था। इन्होंने तुम लोगों की प्रसन्नता
के लिए महाराज द्रुपद के घर जन्म लिया था। अग्नि के समान तेजस्वी ये पाँच गन्धर्व तुम
लोगों के वीर्य और द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। तुम जिन गन्धर्वराज धृतराष्ट्र को देख
रहे हो यही तुम्हारे चाचा धृतराष्ट्र थे। वह देखो, तुम्हारे बड़े भाई सूर्यपुत्र कर्ण सूर्य के

साथ जा रहे हैं। इन्हीं को लोग राधेय कहते थे। यह देखो, वृष्णि, अन्धक और भोज-
वंशीय सात्यकि आदि महापराक्रमी वीर साध्य, देवता और विश्वेदेवगण के साथ बैठे हैं।
सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न वीर अभिमन्यु चन्द्रमा के साथ विराजमान हैं। यह देखो तुम्हारे
पिता महाराज पाण्डु कुन्ती और माद्री समेत बैठे हैं। ये दिव्य विमान पर बैठकर हमसे
मिलने आया करते हैं। यह देखो, महात्मा भीष्म वसुओं के साथ बैठे हैं। तुम्हारे गुरु
द्रोणाचार्य बृहस्पति के पास बैठे हैं। अन्य राजाओं और योद्धाओं में से कोई तो गन्धर्वों के
और कोई यक्षों के साथ स्वर्ग का सुख भोग रहे हैं। कोई-कोई वीर गुह्यक (देवयोनि) की
गति पाकर श्रेष्ठ लोकों में भ्रमण कर रहे हैं। २३

पाँचवाँ अध्याय

देवताओं के अंश से उत्पन्न भीष्म और द्रोणाचार्य आदि के अपने-अपने पूर्व रूप में मिल
जाने का वर्णन। यज्ञ समाप्त करके जनमेजय का हस्तिनापुर में जाकर
राज्य करना। महाभारत-माहात्म्य का वर्णन

जनमेजय ने कहा—भगवन्! महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शङ्ख,
उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन, सत्यजित्, दुर्योधन के पुत्र, शकुनि, कर्ण के महापराक्रमी पुत्र, जयद्रथ और
घटोत्कच आदि महावीरों ने तथा अन्य राजाओं ने कितने समय तक स्वर्ग का सुख भोगा था?
स्वर्ग भोगकर वे अपनी-अपनी प्रकृति में लीन हो गये थे या उनको और कोई गति प्राप्त हुई
थी? तप के प्रभाव से आप सब कुछ जानते हैं, अतएव यह वृत्तान्त मुझे बतलाइए।

सौति ने कहा कि व्यासजी की आज्ञा से नियुक्त वैशम्पायन ने, पूछे जाने पर, उत्तर
दिया—महाराज, कर्मों का फल भोग चुकने पर सभी जीव अपनी-अपनी प्रकृति को प्राप्त
नहीं हो जाते। सर्वतत्त्वज्ञ महाज्ञानी व्यासजी ने संग्राम में मरे हुए वीरों की जो गति मुझे
बतलाई है वह, देवताओं से भी, गुप्त विषय मैं तुमसे कहता हूँ। १०

महात्मा भीष्म वसुलोक को गये। द्रोणाचार्य बृहस्पति के शरीर में प्रविष्ट हो गये।
कृतवर्मा मरुद्गण में मिल गये। प्रद्युम्न सनत्कुमार के शरीर में प्रविष्ट हो गये। गान्धारी समेत
धृतराष्ट्र कुबेरलोक को गये। कुन्ती और माद्री समेत पाण्डु इन्द्रलोक को गये। महाराज
विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, भूरि,
कंस, उग्रसेन, वसुदेव, उत्तर और शङ्ख विश्वेदेवगण के शरीर में प्रविष्ट हो गये। चन्द्रमा के
पुत्र महात्मा वर्चा अर्जुन के पुत्र होकर अभिमन्यु नाम से विख्यात हुए थे। वे क्षत्रिय-धर्म
के अनुसार घोर संग्राम करके, शरीर त्यागकर, चन्द्रमा के शरीर में और महावीर कर्ण सूर्य के
शरीर में प्रविष्ट हो गये। शकुनि द्वापर के शरीर में और धृष्टद्युम्न अग्नि के शरीर में प्रविष्ट हो २०

गये। धृतराष्ट्र के सब पुत्र राक्षसों के अंश से उत्पन्न हुए थे। वे शस्त्रों से पवित्र होकर स्वर्ग को चले गये। महात्मा विदुर और धर्मराज युधिष्ठिर धर्म में प्रविष्ट हो गये। बलदेवजी अनन्त नाग का रूप धारण करके रसातल को चले गये। वे ब्रह्माजी की आज्ञा से पृथिवी को धारण किये रहते हैं। सनातन नारायण के अंश से जिनका जन्म हुआ था वे महात्मा वासुदेव नारायण में प्रविष्ट हो गये। उनकी सोलह हज़ार स्त्रियाँ समय पाकर, सरस्वती नदी में डूबकर, मनुष्य-शरीर त्यागकर अप्सराओं के वेष में उनके पास पहुँच गईं। घटोत्कच आदि राक्षस और अन्य जितने वीर संग्राम में मारे गये थे, उनमें से कोई तो देवलोक को और कोई यक्षलोक को गया। दुर्योधन के अनुगामी लोग राक्षस थे। वे भी इन्द्रलोक, कुबेरलोक और वरुणलोक आदि को गये। महाराज, यह मैंने कौरव पक्ष और पाण्डव पक्ष के वीरों की गति बतला दी।

सौति ने कहा—महर्षियो, सर्प-यज्ञ के अवसर पर महाराज जनमेजय वैशम्पायनजी के मुँह से इस प्रकार भारत-इतिहास सुनकर बड़े विस्मित हुए। उसके बाद ऋत्विकों ने यज्ञ का अवशिष्ट कार्य समाप्त किया। सर्पों के बच जाने से महर्षि आस्तीक बहुत प्रसन्न हुए और ऋत्विक् लोग भी बहुत सी दक्षिणा तथा यथोचित सम्मान पाकर अपने-अपने घर गये। महाराज जनमेजय, यज्ञ समाप्त करके और भारत-इतिहास सुनकर, तक्षशिला से हस्तिनापुर को लौट गये।

महर्षियो! मैंने आप लोगों को, व्यासजी की आज्ञा से, वैशम्पायन द्वारा नागयज्ञ में वर्णित पवित्र भारत-कथा विस्तार के साथ कह सुनाई। इसके समान पवित्र इतिहास दूसरा नहीं है। सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सांख्ययोगवेत्ता, अणिमा आदि ऐश्वर्य से सम्पन्न, सर्वज्ञ, धर्म-ज्ञान-विशारद महर्षि वेदव्यास ने पाण्डवों और अन्य क्षत्रियों की कीर्ति फैलाने के लिए, दिव्य ज्ञान के प्रभाव से, इस अपूर्व इतिहास की रचना की है। जो मनुष्य प्रत्येक पर्व के दिन यह इतिहास दूसरों को सुनावेगा वह सब पापों से छूटकर ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करेगा। जो मनुष्य सावधानी से वेदव्यास-प्रणीत भारत की कथा सुनेगा वह करोड़ों ब्रह्महत्या आदि के पापों से छूट जायगा। जो मनुष्य श्राद्ध के समय ब्राह्मणों को इसका कुछ अंश सुनावेगा उसके पितरों को अक्षय अन्न-पान प्राप्त होगा। मन और इन्द्रियों द्वारा दिन में अनेक पाप करके सन्ध्या के समय भक्तिपूर्वक इस कथा का थोड़ा सा अंश पढ़ने से ब्राह्मण उन पापों से छुटकारा पा जायँगे और रात में स्त्रियों के संसर्ग के कारण जो पाप करेंगे वे पाप प्रातःकाल, इसका कुछ अंश पढ़ने से, नष्ट हो जायँगे। यह पवित्र इतिहास सबसे श्रेष्ठ है। [इसमें भरतवंशी राजाओं के चरित्र का वर्णन है इसी से इसका नाम महाभारत है।] महत्त्व और भारवत्त्व के कारण इसका नाम महाभारत है। जो मनुष्य 'महाभारत' शब्द का अर्थ (निरुक्ति) समझ जायगा उसके सब पाप नष्ट हो जायँगे। वेद के प्रकाण्ड पण्डित व्यासजी का यह सिंहनाद है कि अठारहों पुराण, सारे धर्मशास्त्र और साङ्गोपाङ्ग चारों वेद तो एक ओर हैं और यह महाभारत दूसरी ओर,

अर्थात् यह अकेला ही सब ग्रन्थों के तुल्य है। इस विशाल ग्रन्थ को उन्होंने तीन वर्ष में
पूर्ण किया था। इसको सुनने से लक्ष्मी, यश और विद्या की प्राप्ति होती है। महाभारत
में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इस चतुर्वर्ग का वर्णन है। इसमें जो कुछ वर्णन किया गया है
वह अन्य ग्रन्थों में मिल सकता है, किन्तु जो इसमें नहीं है वह किसी ग्रन्थ में न मिलेगा। ५०
मोक्षार्थी ब्राह्मणों, विजय चाहनेवाले राजाओं और गर्भवती स्त्रियों को यह पवित्र इतिहास अवश्य
सुनना चाहिए। इसे सुनने से स्वर्ग चाहनेवालों को स्वर्ग, विजय चाहनेवालों को विजय और
गर्भवती स्त्रियों को पुत्र या सौभाग्यवती कन्या प्राप्त होगी।

मोक्षार्थी सिद्ध पुरुष वेदव्यासजी ने, धर्म की इच्छा से, साठ लाख श्लोकों की
रचना करके यह महाभारत संहिता तैयार की थी। उन साठ लाख श्लोकों में से तीस लाख
देवलोक में, पन्द्रह लाख पितृलोक में और चौदह लाख श्लोक यक्षलोक में हैं। मृत्युलोक में
केवल एक लाख श्लोक हैं। महर्षि नारद ने देवताओं को, असित देवल ने पितरों को, शुक-
देवजी ने राक्षसों और यक्षों को तथा महात्मा वैशम्पायन ने मनुष्यों को यह इतिहास सुनाया था।
जो मनुष्य ब्राह्मणों को आगे करके इस व्यासोक्त, वेदसम्मत, पवित्र इतिहास को सुनेगा वह
इस लोक में सुख और कीर्ति पाकर अन्त को परम सिद्धि प्राप्त करेगा। जो मनुष्य व्यासजी
पर श्रद्धा रखकर भारत का थोड़ा सा अंश भी दूसरों को सुनावेगा उसे भी परम सिद्धि प्राप्त
होगी। सबसे पहले महर्षि वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को महाभारत का अध्ययन कराया
था। महाभारत में वर्णन किया गया है कि संसार में "मनुष्य असंख्य माता, पिता, पुत्र और ६०
स्त्रियों के संयोग तथा वियोग के कारण दुःख उठाते हैं। संसार में हज़ारों कारण तो हर्ष के और
सैकड़ों कारण भय के मौजूद हैं। इनका आक्रमण अविवेकियों पर ही होता है। विवेकियों के
पास इनकी दाल नहीं गलती। मैं हाथ उठाकर चिल्लाता हूँ, पर कोई मेरी बात नहीं सुनता।
तब धर्म का उपार्जन क्यों नहीं करते जिसकी बदौलत अर्थ और काम दोनों प्राप्त हो जाते हैं।
काम, भय या लोभ के वश होकर अथवा जीवन की रक्षा के लिए धर्म का त्याग कर देना उचित
नहीं। धर्म और जीव नित्य पदार्थ हैं तथा सुख, दुःख और जीव की उपाधि (शरीर) अनित्य
हैं।" जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर महाभारत के इस अंश (भारतसावित्री) का पाठ करेगा
उसे निस्सन्देह परम सिद्धि प्राप्त होगी। समुद्र और हिमालय की भाँति यह महाभारत भी
रत्नों का ख़ज़ाना है। जो मनुष्य सावधानी से इस पवित्र इतिहास को पढ़ेगा उसे निस्सन्देह
परम सिद्धि प्राप्त होगी। भगवान् वेदव्यास के मुँह से निकली हुई पापनाशिनी परम पवित्र
भारत-कथा जो मनुष्य सुनेगा उसे पुष्कर तीर्थ में स्नान करने की क्या आवश्यकता है? इस
पवित्र भारतकथा को हमेशा सुनने से वही फल होता है जो विद्वान् ब्राह्मणों को सोने से
सींग मढ़ाकर एक सौ गोदान करने से। ६८

छठा अध्याय

महाभारत-माहात्म्य। कथा सुनने की विधि और उसका फल

महाराज जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा—ब्रह्मन्, महाभारत किस विधि से सुनना चाहिए? महाभारत सुनने का क्या फल है? कथा सुनने के बाद पारण करने के समय किन देवताओं की पूजा करनी चाहिए? प्रत्येक पर्व के समाप्त होने पर कौन सी वस्तु दान करनी चाहिए और कथावाचक कैसा होना चाहिए?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महाभारत की कथा सुनने की विधि और उसके सुनने का फल सुनिए। क्रीड़ा के लिए पृथिवी पर अवतीर्ण हुए देवताओं, रुद्रों, साध्यों, विश्वेदेवों, आदित्यों, अश्विनीकुमारों, लोकपालों, महर्षियों, गुह्यकों, गन्धर्वों, नागों, विद्याधरों, सिद्धों और अप्सराओं का तथा पर्वतों, समुद्रों, नदियों, ग्रहों, वर्षों, अयनों, ऋतुओं, धर्म, कात्यायन, ब्रह्माजी और स्थावर-जङ्गम-स्वरूप सम्पूर्ण जगत् का वर्णन महाभारत में है। महाभारत पढ़ने से इन सबके नाम और
१० काम देखकर मनुष्य घोर पापों से छुटकारा पा जाते हैं। पवित्र और जितेन्द्रिय होकर यह इतिहास सुनने के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को विविध रत्न, गायें, दुहने के लिए काँसे के बर्तन, अलङ्कृत कन्या, सामान समेत सवारी, गृह, भूमि, वस्त्र, सुवर्ण और हाथी-घोड़ा आदि वाहन, शय्या, शिविका, अलङ्कृत रथ और अन्यान्य श्रेष्ठ वस्तुएँ देनी चाहिएँ। अधिक क्या कहूँ, महाभारत सुनते समय ब्राह्मणों को आत्मदान तथा पत्नी और पुत्र का दान करके भी सन्तुष्ट करना उचित है। मनुष्य प्रसन्न और निःशङ्क होकर भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार इन वस्तुओं का दान करने से सम्पूर्ण महाभारत सुनने का अधिकारी हो जाता है।

सत्य, सरलता, दमगुण और श्रद्धा से युक्त क्रोधहीन मनुष्य जिस उपाय से महाभारत की कथा सुनकर सिद्ध हो सकता है वह उपाय सुनिए। पवित्र, सदाचारी, सफ़ेद कपड़े पहननेवाले, जितेन्द्रिय, सब शास्त्रों के विद्वान्, ईर्ष्याहीन, रूपवान्, दमगुणसम्पन्न, सत्यवादी और
२१ सम्मान के योग्य मनुष्य से ही महाभारत की कथा सुननी चाहिए। कथावाचक सुख के साथ बैठकर सावधानी से स्पष्टतया कथा कहे। वह न तो जल्दी-जल्दी कथा कहे और न रुक-रुककर। कथा सुनाते समय तिरसठ वर्णों का उच्चारण होता जाय और आठ स्थानों की सहायता से वर्ण निकलें। कथावाचक इस ग्रन्थ की कथा कहने के पहले नारायण, नरोत्तम नर और देवी सरस्वती को नमस्कार करके जय शब्द का उच्चारण करे। श्रोता इस नियम से कथावाचक के पास बैठकर महाभारत की कथा सुनने से महाफल पाते हैं।

जो मनुष्य प्रथम पारण के समय ब्राह्मणों को अनेक प्रकार से सन्तुष्ट करता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है और वह अप्सराओं के साथ दिव्य विमान पर बैठकर प्रसन्नता से

स्वर्ग को जाता है। जो मनुष्य दूसरा पारण समाप्त करता है उसे अतिरात्र यज्ञ करने का फल
मिलता है और वह दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य गन्ध से विभूषित होकर रत्नमय दिव्य
विमान पर सवार होकर देवलोक को जाता है। तीसरा पारण समाप्त करने से बारह दिन के उपवास
का फल प्राप्त होता है और बहुत दिनों तक देवताओं के समान स्वर्ग-निवास का सुख भोगने को
मिलता है। चौथा पारण समाप्त करने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। पाँचवाँ पारण समाप्त
करने से वाजपेय यज्ञ का दूना फल मिलता है और वह मनुष्य प्रातःकाल के सूर्य के समान तथा
प्रज्वलित अग्नितुल्य दिव्य विमान पर सवार होकर देवताओं के साथ स्वर्ग को जाकर इन्द्र-भवन में
अपरिमित समय तक निवास करता है। छठा पारण समाप्त करने से पाँचवें पारण के फल की अपेक्षा ३१
दूना और सातवाँ पारण समाप्त करने से उसका तिगुना फल मिलता है। सातवाँ पारण समाप्त
करनेवाला मनुष्य कैलास पर्वत के समान वैदूर्य मणियों की वेदिका से युक्त, मणियों मोतियों और
मूँगों से जड़े हुए दिव्य विमान पर अप्सराओं के साथ बैठकर दूसरे सूर्य की तरह सब लोकों में
भ्रमण करता है। जो आठवाँ पारण समाप्त करता है उसे राजसूय यज्ञ का फल मिलता है और
मन के समान वेगवान्, चन्द्रमा की किरणों के समान सफ़ेद, घोड़ों से युक्त पूर्ण चन्द्रमा के सदृश
दिव्य विमान पर अप्सराओं के साथ बैठकर वह स्वर्गलोक को जाता है। वहाँ सुन्दरी स्त्रियों
की गोद में सोकर उनकी मेखला और नूपुर के शब्द सुनकर जागता है। नवाँ पारण समाप्त
करनेवाले को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है; वह सुवर्णमय खम्भों तथा वैदूर्य मणि की वेदी से
युक्त दिव्य विमान पर अप्सराओं और गन्धर्वों के साथ बैठकर देवलोक में दिव्य माला, दिव्य वस्त्र
और दिव्य गन्ध धारण करके देवताओं के साथ स्वर्गसुख भोगता है। जो मनुष्य दसवाँ पारण ४०
समाप्त करके ब्राह्मणों की पूजा करता है वह अप्सराओं और गन्धर्वों के साथ दिव्य विमान पर
सवार होकर सुवर्णमय दिव्य मुकुट, दिव्य चन्दन और दिव्य माला धारण करके सुखपूर्वक दिव्य
लोकों में विचरता है। इक्कीस हज़ार वर्ष तक गन्धर्वों के साथ इन्द्र-भवन में निवास करके—
बहुत दिनों तक सूर्यलोक, चन्द्रलोक और शिवलोक में रहकर—अन्त को वह विष्णु का
सालोक्य प्राप्त करता है। मेरे गुरु महर्षि वेदव्यास ने कहा था कि श्रद्धा के साथ इस प्रकार
महाभारत की कथा सुनने से निस्सन्देह ये फल प्राप्त होंगे। कथावाचक को हाथी घोड़ा ५०
आदि विविध वाहन, रथ आदि सवारियाँ, कड़े, कुण्डल, ब्रह्मसूत्र, विचित्र वस्त्र और गन्धद्रव्य
दान करके देवता के समान उनकी पूजा करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है।

अब प्रत्येक पर्व में क्षत्रियों की जाति, सत्यता, उनके देश, माहात्म्य और धर्म आदि को
सुनकर ब्राह्मणों को जिन वस्तुओं का दान करना चाहिए सो सुनो। ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति-
वाचनपूर्वक कथा आरम्भ करके पर्व समाप्त होने पर यथाशक्ति उनकी पूजा करनी चाहिए।
आदिपर्व की कथा के समय कथावाचक को गन्ध और वस्त्र देकर मधु और खीर का भोजन

करावे। आस्तीकपर्व की कथा के समय घी, मधु और फल-मूल से युक्त खीर, गुड़-भात, पुवा और लड्डू भोजन करावे। सभापर्व की कथा के समय ब्राह्मणों को हविष्य भोजन करावे। वनपर्व की कथा के समय फल-मूल आदि द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे और अरणीपर्व के आरम्भ में ब्राह्मणों को पूर्णकुम्भ, धान्य, फल-मूल और अन्न देवे। विराटपर्व की कथा के समय ब्राह्मणों को विविध वस्त्र, उद्योगपर्व के आरम्भ में ब्राह्मणों को गन्ध और माला आदि से विभूषित करके इच्छानुसार भोजन, भीष्मपर्व की कथा के समय श्रेष्ठ यान और बनी-बनाई रसोई, द्रोणपर्व के समय उत्तम भोजन, धनुष-बाण और खड्ग, कर्णपर्व के समय ब्राह्मणों को इच्छानुसार श्रेष्ठ भोजन, शल्यपर्व में गुड़-भात, लड्डू, पुवा और विविध अन्न, गदापर्व के समय मूँग की खिचड़ी, ऐषीकपर्व के आरम्भ में घी और भात तथा स्त्रीपर्व में विविध रत्न दान करना चाहिए। शान्तिपर्व में ब्राह्मणों को हविष्य भोजन करावे। अश्वमेधपर्व में ब्राह्मणों की इच्छा के अनुसार उनको भोजन करावे। आश्रमवासिकपर्व में हविष्य भोजन करावे। मौसलपर्व की कथा के समय चन्दन आदि देवे और महाप्रस्थानिकपर्व के समय ब्राह्मणों को अभीष्ट भोजन करावे। स्वर्गारोहणपर्व का आरम्भ करते समय ब्राह्मणों को हविष्य भोजन करावे और हरिवंश की समाप्ति पर हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराकर प्रत्येक ब्राह्मण को एक-एक निष्क सोना और एक-एक गाय तथा दरिद्र मनुष्यों को आधा निष्क सोना और एक-एक गाय दान करे। प्रत्येक पर्व के समाप्त होने पर कथावाचक को सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई महाभारत की पुस्तक दान करे और हरिवंश के समाप्त होने पर उनको खीर खिलावे।

शास्त्रों का जानकार मनुष्य सब लक्षणों से युक्त कथावाचक द्वारा सम्पूर्ण महाभारत की कथा सुनकर रेशमी या सफ़ेद वस्त्र, माला और अलंकार पहनकर स्थिर चित्त से पवित्र स्थान में बैठे और गन्ध, माला से महाभारत ग्रन्थ की पूजा तथा ब्राह्मणों का यथोचित सत्कार करके दक्षिणा-स्वरूप बहुत सा सुवर्ण और खाने-पीने की अनेक वस्तुएँ देकर नर, नारायण तथा अन्य देवताओं के नाम का स्मरण करे। इस प्रकार सब काम करने पर अतिरात्र यज्ञ करने का फल मिलता है। महाभारत के प्रत्येक पर्व की कथा सुन चुकने पर श्रोता को एक-एक यज्ञ करने का फल मिलता है। कथावाचक अच्छे स्वर से स्पष्ट उच्चारण करके महाभारत की कथा कहे। सम्पूर्ण कथा समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणों को भोजन कराकर, अलङ्कार आदि देकर, कथावाचक को सन्तुष्ट करना श्रोता का कर्तव्य है। कथावाचक के सन्तुष्ट होने पर श्रोता को प्रसन्नता होती है और ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होने से श्रोता पर देवता प्रसन्न होते हैं। अतएव धर्मात्मा मनुष्य महाभारत की कथा समाप्त होने पर विविध वस्तुओं का दान करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हैं। यह मैंने महाभारत के सुनने और उसकी कथा कहने की विधि विस्तार के साथ कह दी। अब तुम श्रद्धा के साथ, मेरे उपदेश के अनुसार, काम करो। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता